...कवाद से निबटने के लिए
अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाई जरुरी

...पीय संघ के व्यवसायिक शिखर सम्मेलन के समापन
प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के उद्गार

...र्ता। प्रधानमंत्री ...पश्चिमी यूरोप ...कि आतंकवाद ...शांति के लिए ...इससे कारगर ...र्राष्ट्रीय कार्रवाई ...यूरोपीय संघ के ...न के दूसरे और ...बोधित करते हुए ...पील की कि वे ...कर्तों को परास्त ...न करें। भारतीय ...भारतीय वाणिज्य ...राज्य और उद्योग ...इस सम्मेलन के ...यूरोपीय संघ की ...प्रधानमंत्री गाय ...के अध्यक्ष रामानो ...सोली मारन नेभी ...हा कि अमरीका ...मले के पहले से ...केसाथ बातचीत में लगातार बताती आरही थी कि अपने एक पड़ोसी देश में फैल रहे आतंकवाद से भारत को कितना भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। पिछले दो महीनों में विभिन्न देशों के साथ सघन बातचीत से आतंकवाद के बारेमें भारत की राय से दुनिया की राय सराहनीय ढंग से मिलने लगी है।

बेल्जियम के प्रधानमंत्री वेरहाफस्टाड और यूरोपीय आयोग के अध्यक्ष और इटली के पूर्व प्रधानमंत्री श्री प्रोदी ने भी अपने संबोधन में आतंकवाद के खतरे का उल्लेख किया और कहा कि ११सितंबर के सदमे से दुनिया अभी उबर नहीं पाई है और इसका विश्व अर्थव्यवस्था पर काफी बुरा असर पड़ा है।भारत और यूरोपीय संघके उद्यमियों की बड़ी उपस्थिति में श्रीवाजपेयी ने कहा कि अमरीका पर आतंकवादियों के क्रूर हमलों से पूरा दुनिया का सभ्य समाज क्षुब्ध है।इन हमलों से विश्वशांति के लिए खतरे का आतंकवाद और धार्मिक कट्टरता के पहलू भी सामनेआए हैं। श्रीवाजपेयी ने अर्थव्यवस्था और विकास पर आतंकवाद के प्रभाव का जिक्र करते हुए कहा कि इससे अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में मंदी की स्थिति और गहरा गयी है। लाखों की नौकरियां चली गयी हैं और लाखों लोगों का रोजगार खतरे में पड़ गया है।

उन्होंने आतंकवाद से निपटने के लिए शिक्षा और कला, संस्कृति और जनसंचार क्षेत्र मेंभी पहल करने की अपील की और कहा कि इससे विश्व में सौहार्द और आपसी समझ बढ़ेगी तथा लोग समझेंगे कि हम सभी आज एक अविभाज्य और पारस्परिक निर्भरता वाले विश्व समाजमें रह रहे हैं।

शिक्षा के तालिबानीकरण के आरोप पर रास में हंगामा

नयीदिल्ली, २३नवंबर-वार्ता। पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री कांग्रेस के अर्जुनसिंह द्वारा सरकार पर 'शिक्षा के तालिबानीकरण का आरोप' लगाने से मचे हंगामे के कारण आज प्रश्नकाल के कुछ ही देर बाद राज्यसभा की कार्यवाही पहले १५मिनट और फिर ढाई बजे तक के लिए स्थगित कर दीगयी। मामले ने प्रश्नकाल के दौरान उस समय तूल पकड़ा जबश्री अर्जुन सिंह मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री रीता वर्मा से पूरक प्रश्न पूछने खड़े हुए और भाजपा के श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी ने उन्हें टोक दिया। श्रीसिंह कह रहे थे कि वह दो सवाल पूछना चाहते हैं, लेकिन श्री चतुर्वेदी ने उन्हें टोकते हुए कहाकि वह सवाल को अ और व दो हिस्सों में तोड़ते हुए पूछ लें। दोनों के बीच मामूली विवाद ने उस समय गर्मागर्मीका रुप ले लिया, जब श्री अर्जुन सिंह ने कहा- आप ...क्ष ने ...वाल, ...सिंह ...करने ...तो ...तो ...केस

...सन्तुलित पाक, २३नवंबर। आईसीसी के फैसले को नजरअंदाज करते हुए आज भारत और दक्षिण अफ्रीका के बीच तीसरा क्रिकेट टेस्टमैच शुरु हो गया। आईसीसी ने अपने फैसले में कहा था कि अंपायर माइक डेनिस की अनुपस्थिति में खेला जाने वाला तीसरा क्रिकेट टेस्टमैच अधिकारिक तौर पर वैध नही माना जाएगा।इस बीच भारत और दक्षिण अफ्रीका के क्रिकेट अधिकारियों, खिलाड़ियों ने माइक डेनिस के स्थान पर दूसरे अंपायर की नियुक्ति कर खेल शुरु करने का निर्णय लिया।

दो पाक परमाणु वैज्ञानिक म्यांमार में शरण लिए

इस्लामाबाद, २३नवंबर। पाकिस्तान के दो परमाणु वैज्ञानिकों को पाकिस्तान के अनुरोध पर म्यांमार सरकार ने आज शरण देदी है।पाकिस्तान के वरिष्ठ परमाणु वैज्ञानिक डा० सुलेमान असद सहित एक अन्य वैज्ञानिक का ओसामा बिन लादेन के आतंकवादी संगठन अल कायदा से संबंधों के कारण दोनों वैज्ञानिक इस्लामाबाद छोड़कर म्यांमार पहुंचे।

जहरीली शराब पीने से ८ चाय बागान श्रमिक मरे

गुवाहाटी, २३नवंबर। असम के बोर बाग जिले में आज जहरीली शराब पीने से ८चाय बगान श्रमिकों की मौत हो गयी जबकि कई अन्य श्रमिक चिंताजनक स्थिति में स्थानीय अस्पताल में भर्ती किए गये हैं।ज्ञातव्य है कि कल साप्ताहिक पारिश्रमिक प्राप्त होने के बाद इन श्रमिकों ने छककर शराब पी जिससे उनकी मौत हो गयी।

● लखनऊ, २३नवंबर-वार्ता। राजधानी के महानगर पुलिस थाना क्षेत्रमें आज प्रातः एक छात्र ने कालेज हास्टल में आत्महत्या कर ली। पुलिस ने बताया कि आबाकारी क्षेत्र में कालमी तालुकदार इंटर कालेज के कक्षा ११वीं के छात्र संजय सिंहने आज अपने हास्टल के कमरे में पंखे से लटक कर फांसी लगाली।

कुंदूज में तालिबान सेना पर उत्तरी गठबंधन का भारी हमला

टैंकों, ग्रेनेड लांचरों और छोटे हथियारों से तालिबान लड़ाके घेरे गये

हथियार लुटेरे नक्सलियों की...

भौगोलिक परिस्थितियों की जानक... पुलिस को सफलता मिलना आ...

(ओबरा कार्यालय से)

ओबरा (सोनभद्र), २३नवंबर। अफगानिस्तान की पहाड़ियों में ओसामा बिन लादेन को ढूंढना आसान है लेकिन मीरजापुर सोनभद्र और नौगढ़ के जंगलों में छिपे नक्सलियों की खोज करना काफी मुश्किल।

पिछले सूर्यास्त के समय सुकृत चौकी के अंतर्गत खोराडीह गांव मे पीएसी चौकी पर हमलाकर जिस छापामार तरीके से नक्सलियों ने १४एस एल आर और एक स्टेनगन, हजारों कारतूस की लूट की तथा जवानों को फावड़ा, कुदाल आदि से घायल कर दिया उससे एकबार फिर स्पष्ट हो गया है कि रात के अंधेरे में वे पुलिस केलिए दुर्गम पहाड़ियों, नदियों, नालों को पारकर सुगमता से गुम हो सकते हैं। आज एक बारफिर प्रदेश के पुलिस महकमे के आला अफसरों का जमावड़ा यहां है जो पूरे क्षेत्रमें भारी सशस्त्र बलो के साथलूट के बाद फरार उग्र वापंथियों के लिए कुंविंग अभियान का निर्देशन कररहे हैं। पुलिस के सामने सबसे बड़ी समस्या क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां व पिछड़ापन है। घटना के बाद पहाड़ों का चप्पा चप्पा छानने के बाद भी कोई बड़ी सफलता अबतक इसीलिए नहीं मिली क्योंकि बिना रास्तों के रास्ते से सिर्फ स्थानीय आदिवासी या छिपे हुए नक्सली ही यात्रा करते हैं। काफी घने जंगलों के बीच गांव हैं जहां कोई संपर्क मार्ग भी नहीं है। अकाल और अभाव से त्रस्त कमसे कम पांच लाख आदिवासी एक तरफ नक्सलियों से तो दूसरी तरफ पुलिस के खौफ से आतंकित हैं और मुंह नहीं खोलते। आज समाचार देते समय तक एक बार फिर राजगढ़, शक्तेशगढ़, करमा मधुपुर, नौगढ़ क्षेत्र में पुलिस की भारी खोज कार्रवाई चल रही है।

इस बीच आज खोराडीह पहुंचे उत्तर प्रदेश के पुलिस महानिदेशक आर के पंडित ने पीएसी कैंप

डीजीपी ने मौका मुआयना कि...

प्रदेश की सह... की इस घटना में... सूचना नही है।आ... पर देर से पुलिस... में सफल रही।... दी है। ज्ञातव्य है... कांडमें जब पुलि... मारा था उस सम... घोषणा की थी। पु... जाती है। नक्सलियों... यादव, जिसका ... रहा है, ने बताया... तरह के हमले की ... नक्सल प्रभावित ... गयी है।

हमारे वाराणसी... पुलिस, महानिदेश... ११बजे विमान से... वहां से वे सड़क म... आए एडीपी (पीए... उपमहानिरीक्षक सु... ज्ञातव्य है कि पीए... आई जी जोन डा०... के साथ भारी फोर्स... कर रहे हैं।

...सि... ...घा...

...गढ ...ा ...परिणाम

9·3

❀ ओ३म् ❀

कुलियात आर्य मुसाफ़िर

(हिन्दी अनुवाद)

आर्य पथिक ग्रन्थ-माला

पहला भाग

लेखक
अमर शहीद धर्मवीर पण्डित लेखराम आर्य मुसाफ़िर

अनुवादक
श्री पं० जगत्कुमार जी शास्त्री आर्योपदेशक
तथा
श्री पं० शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी

सम्पादक
प्रिंसिपल राम चन्द्र जावेद एम० ए०
अधिष्ठाता साहित्य प्रकाशन विभाग

—: प्रकाशक :—
मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
गुरुदत्त भवन जालन्धर

[मूल्य ६ रु०]

[प्रथम संस्करण २०००]

प्रकाशक :—
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब,
गुरुदत्त भवन जालन्धर।

अनुवाद कार्य का विवरण

श्री पं० जगत्कुमार जी शास्त्री पृष्ठ १—११७ तथा २२२—४०२
श्री पं० शान्ति प्रकाश जी — पृष्ठ ११८—२२१

मुद्रक :—
श्री रोशन लाल सेठ, कीपर आफ़
जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस,
नेहरू गार्डन रोड, जालन्धर।

विषय-सूची

कुलियात (पहला भाग)

कुलियात हिन्दी का यह पहला भाग,
इस के मूल लेखक अमर शहीद
पण्डित लेखराम जी आर्य पथिक
की पावन स्मृति में—

त्वदीयं वस्तु महा भाग!
तुभ्यमेव समर्पये

विनीत—
राम चन्द्र जावेद
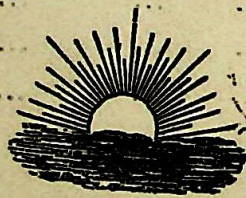
कुलियात के मूल लेखक
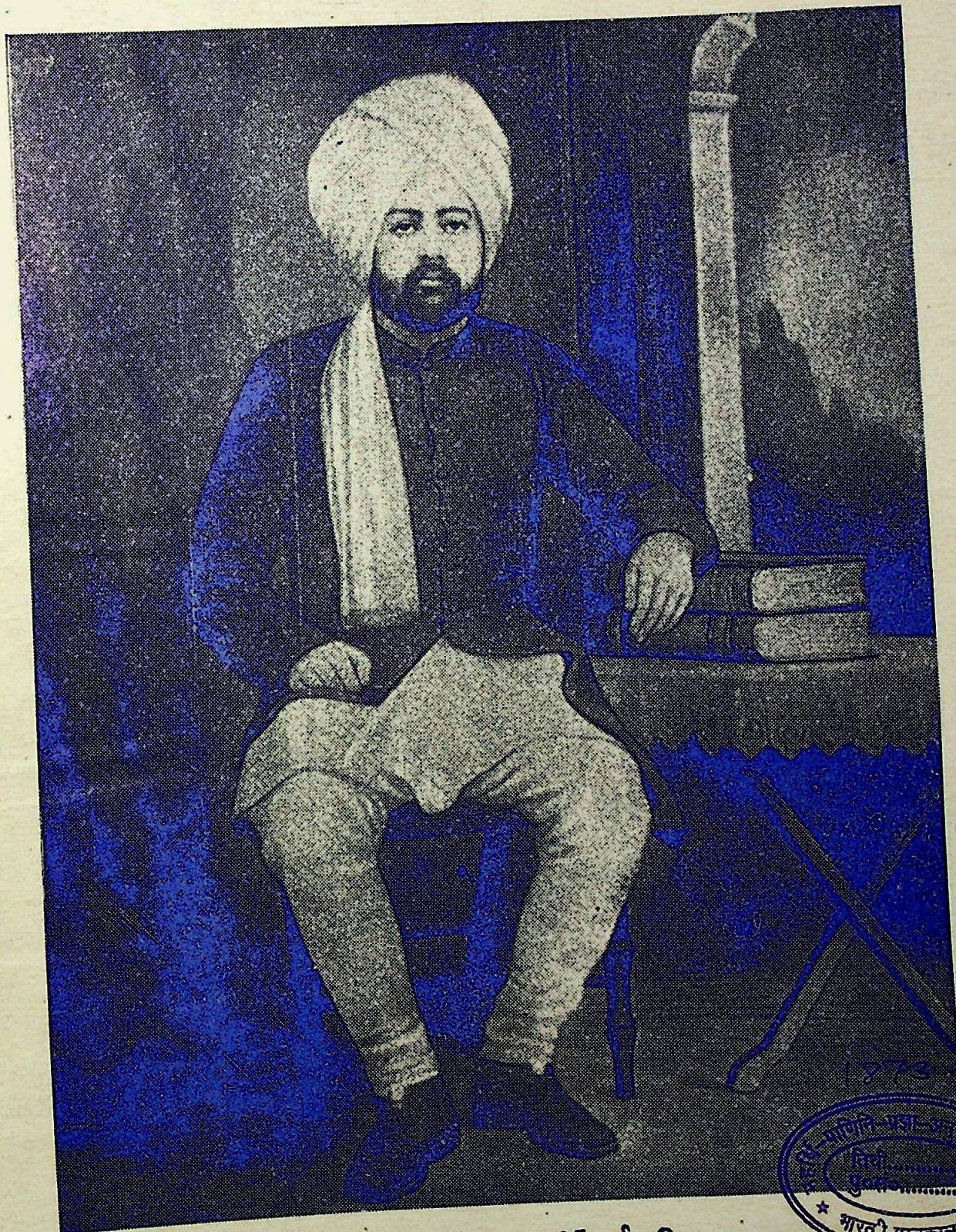
धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य पथिक

सम्पादकीय
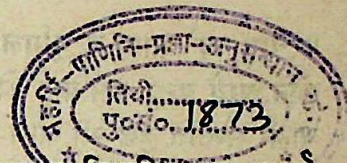
धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य पथिक आर्यसमाज की एक महान् विभूति, एक अपूर्व लेखक एवं ओजस्वी वक्ता और आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के माननीय निर्माताओं में से प्रमुख थे। अपने महान् कार्यों और अपने त्याग, तप एवं बलिदान के द्वारा उन्होंने आर्यसमाज के गौरवपूर्ण इतिहास में जिन नवीन अध्यायों की अभिवृद्धि की, वे बहुत उज्ज्वल, प्रभावोत्पादक एवं स्फूर्तिदायक हैं।

श्री पण्डित जी लगभग सन् १८८० में आर्यसमाज रूपी माता की गोद में आये थे। चार वर्षों में ही उन पर आर्यसमाज का कुछ ऐसा रंग चढ़ा कि वह सितम्बर सन् १८८४ में अपनी सारजन्टी छोड़ कर आर्यसमाज की सक्रिय सेवा में आ गये। मार्च १८९७ में एक पथभ्रष्ट और धर्मान्ध मुसलमान के हाथों वह शहीद हुए।

इन तेरह वर्षों के अल्पकाल में उन्होंने आर्यसमाज की जो महान् सेवा की, वह केवल उन जैसे ही युग पुरुष, सर्वस्व त्यागी और कर्मठ धर्मवीर का ही काम था। भाषण, शंका-समाधान, शास्त्रार्थ, शुद्धि और अपनी जाति के अनेक भोले भाले लोगों की विधर्मियों से धर्म रक्षा कार्य के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द के सर्व प्रथम प्रामाणिक जीवन चरित्र के संकलन का श्रेय भी आप को ही है। इन सब महान् कार्यों के अतिरिक्त आपने इस थोड़े से समय में जो छोटे और बड़े ग्रन्थ लिखे उन की संख्या तैंतीस बनती है। जिन्हें उनके बलिदान के सात वर्ष पश्चात् सन् १९०४ में आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने "कुलियात आर्य मुसाफ़िर" के नाम से उर्दू में प्रकाशित कराया था। उर्दू के सात सौ पृष्ठों के इस संकलित ग्रन्थ का सम्पादन उस काल के आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता महात्मा मुन्शीराम जी, जो बाद में उन के मार्ग पर चलते हुए स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, ने किया था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उस काल की आर्य जनता ने किस उत्साह के साथ कुलियात का स्वागत किया। शायद वही सब से प्रथम अवसर था जब कि इतना बड़ा धर्म ग्रन्थ, जिस को विश्व कोष ही कहना चाहिये, आर्य जगत में पहली बार प्रकाशित हुआ था।

मानना चाहिये कि कुलियात आर्यसमाज के सिद्धान्तों के मण्डन और विधर्मियों विशेषतया इस्लाम और ईसाइयत के खण्डन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। स्वर्गीय पण्डित जी ने जिस परिश्रम से अपने पक्ष के समर्थन के लिये सभी धर्मों के सत् शास्त्रों के प्रमाण संकलित किये हैं और युक्ति युक्त रूप में जिस प्रकार अपना पक्ष प्रस्तुत किया है तथा अपने नित्यप्रति के भाग-दौड़-पूर्ण जीवन में जितना अनुसन्धान कार्य किया है उस का दूसरा उदाहरण आर्यसमाज के समूचे इतिहास में कोई नहीं मिलता। भाषा की प्रौढ़ता के साथ विषय का प्रतिपादन इतना सुस्पष्ट और प्रभावक है कि अपने तो क्या पराये भी मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

इसी कारण महात्मा मुन्शीराम जी के काल से ही इसके हिन्दी अनुवाद की मांग प्रारम्भ हो गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि समय समय पर कुलियात के कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद अवश्य छपा। किन्तु समूचे ग्रन्थ के क्रमिक अनुवाद का प्रयास अब तक कभी नहीं हुआ था। देश के बटवारे के

पश्चात् उर्दू भाषा के धूमिल भविष्य ने इस मांग में और भी औचित्य और बल पैदा कर दिया क्योंकि कौन आर्य बन्धु इस बात को सहन कर सकता है कि आर्य पथिक के इस महान् प्रयास से हमारी आने वाली सन्तति कुछ भी लाभ न उठाये। और यह हमारा धर्म ग्रन्थ कालान्तर में एक विदेशी ग्रन्थ समझा जाय। फलस्वरूप हमारे प्रान्त की शिरोमणि संस्था आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने इसके हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का निश्चय किया।

महात्मा मुन्शीराम जी ने उर्दू कुलियात के तीन भाग किये थे। उन्होंने अपनी भूमिका में स्वयं लिखा है कि किसी काल-क्रम से उन्होंने न तो यह भाग बनाये हैं और न आर्य पथिक जी के ग्रन्थों को उसी लक्ष्य से क्रम दिया है। पहले भाग में पुनर्जन्म के दो भागों में कुछ थोड़ा बहुत खण्डन है शेष सभी ग्रन्थ मण्डनात्मक और स्वर्गीय पण्डित जी के अनुसन्धान कार्य के परिचायक हैं। दूसरे भाग में भी "ईसाई मत दर्पण" को छोड़ शेष प्रायः ग्रन्थ मण्डनात्मक हैं। तीसरा भाग अहमदियों और इस्लाम के सम्बन्ध में है। चूंकि यह विषय आर्य पथिक जी को अधिक रुचिकर था इसलिये पूरे ग्रन्थ का आधा भाग इसी तीसरे भाग ने ले लिया है।

सभा की ओर से सर्वप्रथम अनुवाद का कार्य श्री पं० जगत्कुमार जी शास्त्री ने आरम्भ किया। उन्हों ने "सृष्टि इतिहास" के दोनों भागों तथा "पुनर्जन्म प्रमाण" के पहले भाग का अनुवाद किया। उन के पश्चात् श्री पण्डित जगदीश चन्द्र जी ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया उन्हों ने पहले दो भाग छोड़ कर तीसरे भाग का अनुवाद सर्वप्रथम आरम्भ किया और सम्भवतः पहली पुस्तक "तकज़ीब बुराहीन अहमदिया" "अहमदियों की युक्तियों की असत्यता" तक ही पहुँच सके। उक्त दोनों महानुभाव १९६०–६१ में यह कार्य करते रहे। अब यह काम प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी ने संभाला है। और प्रसन्नता की बात है कि उन्हों ने उर्दू कुलियात के पहले भाग का अनुवाद सम्पूर्ण कर लिया है।

मैंने गत वर्ष सभा के पानीपत अधिवेशन के पश्चात् जब पहली अन्तरंग में साहित्य प्रकाशन विभाग का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था तो मन ही मन यह सङ्कल्प कर लिया था कि सभा के अगले अधिवेशन से पूर्व "कुलियात का पहला भाग" हिन्दी में अवश्य आर्य जनता तक पहुँचाने का प्रयास करूंगा। इसी दृष्टि से दूसरी छोटी बड़ी पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त मैं ने अपना मुख्य ध्येय कुलियात को ही रखा।

प्रकाशन का आरम्भ हम ने उर्दू कुलियात के पहले पृष्ठ से किया है। ज्यों ज्यों यह कार्य आगे चलने लगा हमने यह अनुभव किया कि उर्दू कुलियात के एक पृष्ठ का अनुवाद हमारी $\frac{२०\times३०}{८}$ साइज़ की पुस्तक के तीन पृष्ठों में छपता है। महात्मा मुन्शीराम जी की भूमिका तथा उन के द्वारा लिखित आर्य पथिक और उन की धर्म पत्नी के संक्षिप्त जीवन-चरित्र के आठ पृष्ठों के अतिरिक्त उर्दू कुलियात के पहले भाग के कुल १८६ पृष्ठ हैं। मैंने अनुभव किया कि यदि हम इस पहले भाग का पूरा अनुवाद प्रकाशित कर दें तो हिन्दी में पहले भाग की पृष्ठ संख्या लगभग ६०० अवश्य बन जायेगी। हम इस का आकार और मूल्य बढ़ाना नहीं चाहते थे। क्योंकि हम समझते हैं कि जितना इस का मूल्य कम होगा उतनी यह पुस्तक अधिक लोगों तक पहुँच सकेगी। इस दृष्टि से हम ने उर्दू कुलियात के पहले भाग के क्रम में थोड़ा परिवर्तन कर के "पुनर्जन्म प्रमाण" नामक पुस्तक को दूसरे नम्बर से उठा कर सब से अन्त में कर दिया है और इस पहले भाग में पुनर्जन्म" का दूसरा भाग नहीं दिया। इस प्रकार यह हिन्दी कुलियात का पहला भाग उर्दू कुलियात के १३८ पृष्ठों का अनुवाद है जो ४०२ पृष्ठ में पूर्ण हो

सका है। पुनर्जन्म के दूसरे भाग के शेष ५६ पृष्ठों का अनुवाद, जो तैयार है, हिन्दी कुलियात के दूसरे भाग में दिया जा रहा है।

अब मुझे कुछ बातें अनुवाद के सम्बन्ध में कहनी हैं :—

१—स्वर्गीय आर्य पथिक जी की कुलियात की उर्दू अस्सी वर्ष पूर्व की उर्दू है जिस में फ़ारसी, अरबी के शब्दों के बाहुल्य के साथ वाक्य रचना भी पुराने ढंग की है। दोनों अनुवादक महोदयों ने इसे आधुनिक हिन्दी की साहित्यिक भाषा में अनूदित करने का भरसक प्रयत्न किया है।

२—मूल पुस्तक में फ़ारसी अरबी के प्रमाणों तथा उर्दू और फ़ारसी के शेरों (पद्यांशों) की भरमार है। यदि इन सब को छोड़ दिया जाता तो जहां विषय का सम्यक् प्रतिपादन न हो सकता वहां मूल लेखक से भी बहुत बड़ा अन्याय होता। और शायद यह अनुवाद प्रणाली के भी विरुद्ध होता, अतः कुछ एक अनावश्यक लम्बे फ़ारसी उद्धरणों को छोड़ कर शेष सब दे दिये गये हैं किन्तु उन के अर्थ फुट नोटों के रूप में सर्वत्र दे दिये गये हैं। उर्दू, फ़ारसी, अरबी न जानने वाले बन्धुओं को हमारी इस विवशता को सम्मुख रखते हुए उक्त उद्धरणों के अनुवाद पर ही सन्तोष करना चाहिये।

३—क़ुरान शरीफ़ की अरबी आयतों को जिस प्रकार मूल कुलियात में लिखा गया है, उन्हें हिन्दी में भी उसी प्रकार लिखने का पूरा प्रयत्न किया गया है। साथ ही प्रायः प्रमाणों को क़ुरान शरीफ़ से मिलाने का भी हमारा प्रयास रहा है किन्तु इस पर भी उन की शुद्धता का उत्तर-दायित्व नहीं लिया जा सकता।

४—उर्दू भाषा में यह दोष समझिये कि उस में जैसा लिखा जाता है आवश्यक नहीं कि वैसा पढ़ा जाय। इस बात को सम्मुख रखते हुए उर्दू कुलियात में जितने नाम आये हैं विशेष रूप में अंग्रेज लेखकों के, वे यथोचित रूप में पढ़े नहीं जाते और दुर्भाग्य से वे पुस्तकें भी अब प्राप्त नहीं जिन के प्रमाण आर्य पथिक जी ने दिये हैं। इस लिये उन्हें ज्यों का त्यों दिया गया है।

५—मूल पुस्तक का अनुवाद अक्षरशः किया गया है। कहीं भी किसी भाव तथा विचार को तनिक भी नहीं बदला गया। इस बात को मैं ने प्रेस में अनुवाद की कापियां भेजने से पहले तथा पुनः प्रूफ़संशोधन के समय भली भाँति स्वयं देखा है।

प्रकाशन के सम्बन्ध में भी हम ने इसे अपना धर्म-ग्रन्थ समझ कर प्रूफ़ संशोधन की ओर पूरा ध्यान दिया है। द्वाबा हाई स्कूल जालन्धर के हिन्दी अध्यापक श्री पण्डित टेक चन्द जी आर्य से इस कार्य में मुझे बहुत सहयोग मिला है इस के लिये मैं उन का बहुत आभारी हूं।

अन्त में मैं सभा के अधिकारियों का हृदय से धन्यवाद करता हूं जिन के सक्रिय सहयोग से आज मैं धर्मवीर आर्य पथिक पण्डित लेखराम के अमर ग्रन्थ कुलियात का पहला भाग हिन्दी कलेवर में आर्य जनता को भेंट करने योग्य हो सका हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि हमने स्वर्गीय पण्डित जी के महान् परिश्रम को अक्षुण्ण बनाने के लिये कदम उठा लिया है। यदि आर्य जनता ने सहयोग दिया तो हम आगे ही आगे बढ़ते जायेंगे।

आर्य मात्र के सहयोग का अभिलाषी

राम चन्द्र जावेद
अधिष्ठाता
साहित्य प्रकाशन विभाग
आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब

गुरुदत्त भवन,
जालन्धर
ऋषिनिर्वाण दिवस १५ नवम्बर, १९६३

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोध वर्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥
दे मरे हम को मुनासिब काम पण्डित लेखराम।
तर गये जगदीश के गुण गाय पण्डित लेखराम॥

[कवि नाथूराम शंकर]
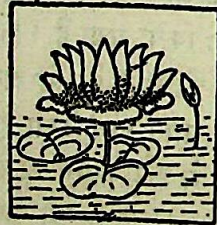
❀ ओ३म् ❀

अनुवादकों की ओर से
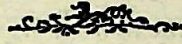
१

१—श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त-भवन, जालन्धर-शहर ने मुझे "कुलियात आर्य मुसाफिर" का हिन्दी अनुवाद करने का आदेश दिया, और अन्तरंग सभा के निश्चय के अनुसार मुझे १ भाद्रपद, सं० २०१७ वि० से अनुवाद-कार्य में नियुक्त किया गया। मैं ने इस काम को सहर्ष स्वीकार किया, और कार्य आरम्भ कर दिया।

२—सभा के अधिकारी इस कार्य को बहुत शीघ्र ही सम्पूर्ण हुआ देखना चाहते थे। उन्होंने मेरा जो कार्य-क्रम निर्धारित किया, उस के अनुसार मेरे पास समय कम था, और कार्य अधिक। तथापि मैं अपने उत्तरदायित्व को समझता था। अतः इस हिन्दी अनुवाद को प्रस्तुत करते समय मैंने अमर शहीद धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर के विमल यश और मान्या सभा की उच्च-मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा।

३—मैंने वाक्य-रचना को हिन्दी साहित्य की आधुनिक शैली में ढालने का यत्न किया है। ऐसा करने के लिये उर्दू की वाक्यावलियों में अवश्य फेरबदल मुझे करने पड़े हैं। तथापि मैंने मूल-रचना में भावों और अर्थों का हेर-फेर नहीं किया है। मूलभावों की रक्षा के लिये मैंने कई प्रसंगों में किंचित्-सदोष वाक्यों को भी ज्यों का त्यों रखा है।

४—जिस समय पूज्य आर्य मुसाफिर जी ने अपनी पुस्तकों की रचना की थी, तब साधन-सामग्री का भारी अभाव था। आर्य समाज के इतिहास और उस की साहित्य-सृष्टि का वह आरम्भिक-युग था। इस दृष्टि से श्री आर्य मुसाफिर जी की रचनायें मौलिक भी हैं, महत्वपूर्ण भी, और वर्तमान एवं भावी साहित्य-स्रष्टाओं के लिये मार्ग दर्शक भी। यद्यपि आर्य विद्वानों ने आर्य मुसाफिर की रचनाओं के प्रति कुछ-कुछ उपेक्षा का व्यवहार किया है, और उर्दू में होने के कारण उर्दू से अनभिज्ञ जनता इन पुस्तकों से पूरा-पूरा लाभ भी अब तक नहीं उठा सकी है, तथापि इन बातों से इन रचनाओं की कुछ भी गौरव हानि नहीं हुई है। इन रचनाओं का ओज और तेज आज भी गुणकारी और प्रभावशाली है।

५—मुझे आशा है कि हिन्दी-संसार अमरशहीद धर्मवीर आर्य मुसाफिर की रचनाओं का विशेष रूप से स्वागत और सन्मान करेगा, आर्य विद्वान् भारत की विभिन्न भाषाओं में इन पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित करायेंगे, नई-साहित्य-सृष्टि पर कुलियात आर्य मुसाफिर के हिन्दीकरण का विशेष प्रभाव होगा, लेखन-कार्य की वृद्धि होगी, और फिर से लेखराम-युग की नूतन-झांकियां हमारे दृष्टिपथ में आयेंगी।

६—व्याकरण-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान्, देहली निवासी श्री पण्डित भीमसेन जी शास्त्री, देहली के प्रसिद्ध उर्दू लेखक और पत्रकार श्री प्यारे लाल जी भल्ला, यशस्वी लेखक श्री सन्त राम जी अजमावी

और श्री पण्डित जगदेव सिंह जी सिद्धान्ति सभा प्रधान से मुझे कार्य-सम्पादन में विशेष सहयोग मिला है। धन्यवाद।

७—मैंने कुछ सन्दर्भों में पाद-टिप्पणियां लिखकर, कुछ स्पष्टिकरण प्रस्तुत किये हैं। कुछ सन्दर्भों में और भी टिप्पणियां आवश्यक थीं, जोकि समय की कमी के कारण लिखी नहीं जा सकीं।

८—मैंने सृष्टि का इतिहास और पुनर्जन्म-प्रमाण इन दो ग्रन्थों का अनुवाद किया है। "पुनर्जन्मप्रमाण" ग्रन्थ बड़ा भी है, और महत्वपूर्ण भी बहुत अधिक है। इसके पूरे गुण तो तभी प्रकट होंगे, जब पाठकवृन्द इस का स्वाध्याय आद्योपान्त कर लेंगे। तथापि मैं अपने तुलनात्मक अध्ययन एवं गम्भीर विचार के पश्चात् यहां इतना अवश्य कहूंगा कि यह एक सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ है। पुनर्जन्मवाद के विषय में पक्ष या विपक्ष में जो कुछ कहा जा सकता है, वह सब कुछ पाठकों को इस में अवश्य ही मिलेगा। इस ग्रन्थ के प्रथम उर्दू संस्करण के पश्चात् आज तक भी इस विषय का कोई ऐसा उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। यही स्थिति सृष्टि के इतिहास की है। इसके लिये महायश पण्डित जी ने जो प्रयत्न किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

९—महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में जो विवरण सृष्टि संवत् का लिखा है, उस में सन्धिकाल का समावेश नहीं है। उन्हों ने वहां १९६०८५३०६१ सृष्टि संवत् लिखा है। इसी प्रकार श्री पण्डित लेखराम जी ने इस पुस्तक के आरम्भ में सृष्टि-संवत्-गणना-प्रसंग में सन्धिकाल को नहीं गिना। यद्यपि 'सूर्य-सिद्धान्त' के सन्धि-काल-गणना-प्रमाण को पूज्य पण्डित जी ने लिखा है। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार १९७२९४९०६१ वर्ष सृष्टि संवत् की गणना होनी चाहिये। मैंने इस विषय में बहुत-सा साहित्य पढ़ा है। और सुयोग्य विद्वानों से विचार-विमर्श भी किया है। मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि सृष्टि-संवत् में सन्धिकाल की गणना भी आवश्यक है। इस विषय की सूचना इस पुस्तक में मैंने यथास्थान दी है।

१०—बहुत वर्षों से मेरी यह दृढ़ धारणा थी कि उर्दू और हिन्दी ये दो नाम एक ही भाषा के हैं। मैं समझता था कि जिसे फ़ारसी अक्षरों में लिखा जाये; उसे उर्दू कहते हैं, और जिसे देवनागरी अक्षरों में लिखें, वह हिन्दी कहलाती है। पंजाब में उत्पन्न होने, बचपन में उर्दू पढ़ने और जीवन में उर्दू तथा हिन्दी दोनों से ही काम लेने के कारण मुझे उर्दू और हिन्दी दोनों से एक ही-सा प्रेम रहा है, और वह अब भी है। परन्तु इस 'पुनर्जन्मप्रमाण' की तैयारी में मैंने समझा है कि उर्दू की लिपि ही फ़ारसी नहीं होती उसमें अरबी और फारसी की भरमार भी होती है।

११—मैंने यह अनुवाद "कुलियात-आर्य मुसाफिर" के सन् १९०४ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से श्री महात्मा मुन्शी राम जी द्वारा प्रकाशित संस्करण के आधार पर तैयार किया है। अरबी और फारसी के अधिकांश उद्धरणों के अर्थ मूल पुस्तक में नहीं लिखे गये हैं। ऐसे सभी उद्धरणों के अर्थ इस "पुनर्जन्मप्रमाण" में पाद टिप्पणियों में दे दिये गए हैं। मूल उद्धरणों को भी यथा-स्थान सुरक्षित रखा है।

१२—मैंने पूज्य आर्य मुसाफिर जी के भावों को सुरक्षित रखने का और उर्दू के शब्दों के स्थान पर हिन्दी के उचित शब्द प्रयुक्त करने का पूरा-पूरा यत्न किया है। कुछ सन्दर्भों के शब्दों के निर्वाचन

में मुझे बहुत कठिनाई भी अनुभव हुई और कार्य सम्पादन में देर भी लगी। ऐसे अवसरों पर मैंने अपने विद्वान् मित्रों से सहायता ली है। इस कार्य में उर्दू बाजार देहली के कुछ विद्या प्रेमी मौलवी और मुन्शी मित्रों ने भी मेरी सहायता की है। कहना न होगा कि मूल पुस्तक की उर्दू एक सौ वर्ष पुरानी है। वह वर्तमान उर्दू से भिन्न है। आजकल की लिखावट भी तब से भिन्न है। कुछ प्रसंगों में मैंने पूज्य आर्य मुसाफिर जी के भावों को स्पष्ट करने के लिये मूल पुस्तक के वाक्यों का हिन्दी-करण करने में हिन्दी के मुहावरों का स्वतन्त्र उपयोग भी किया है। ऐसा करने में जहां कुछ कठिनाई हुई वहां मैंने मूल पुस्तक के शब्दों को ही रहने दिया है। ऐसा करते हुए कहीं-कहीं तो मैंने अरबी या फारसी की परिभाषाओं को भी ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।

१३—मुझे स्वर्गीय आर्य पथिक जी की बहुमूल्य पुस्तक कुलियात के अनुवाद को प्रस्तुत करने का सन्मान श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने प्रदान किया, एतदर्थ मैं मान्या सभा के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूं। इसकी तैयारी में मान्या सभा के मान्यवर अधिकारियों ने जो सहयोग मुझे दिया, तदर्थ उनका विशेष धन्यवाद मैं करता हूँ। मेरे शिष्य प्रियवर प्रह्लाद प्रभाकर एवं मेरे पुत्र प्रिय सत्यपाल एम० ए० ने भी इस पुस्तक की तैयारी में मेरा हाथ बटाया है। इनको धन्यवाद क्या दूं ? ये तो मेरे बहुत अधिक अपने हैं। इन सबके पूर्ण सहयोग के भरोसे पर ही मैंने इस कार्य के बड़े उत्तरदायित्व को ग्रहण किया था। इन के सहयोग को प्राप्त करके ही मैं आगे बढ़ रहा हूँ।

१४—आज जब कि मैं आर्य समाज की सेवा में यह अमर ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ, मैं अपने महान् गुरु और आचार्य स्वर्गीय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का पुण्य स्मरण करता हूं, जिनके चरणों में बैठकर मैंने श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में शिक्षा प्राप्त की थी और आर्योपदेशक की दीक्षा ग्रहण की थी।

१५—मेरा अनुवाद-कार्य कैसा रहा ? इस विषय में मैं इतना ही कहूँगा कि मैं ने मनोयोग पूर्वक अपने कर्तव्य का पालन किया है। मैं प्रेमी-पाठकों, और सहृदय-समालोचकों के निर्णय की प्रतीक्षा में हूँ। एक महान् लेखक की रचनाओं को नये रूप में प्रस्तुत करने में सम्भव है, अनजाने में मैंने कोई भूल की हो। एतदर्थ मैं अग्रिम क्षमा याचना करता हूँ। सूचना मिलने पर मैं भूलों को स्वीकार करूंगा। और उनका यथोचित परिमार्जन भी होगा।

विनीत—
—जगत्कुमार शास्त्री
आर्योपदेशक

—देहली

—२—

पिछले कई वर्षों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के माननीय अधिकारी वर्ग स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी की अमूल्य कृति कुलियात के अनुवाद का प्रयत्न कर रहे हैं। मुझसे पूर्व कुछ भाग का अनुवाद श्री जगत् कुमार जी शास्त्री और श्री जगदीश चन्द्र जी कर चुके थे। किन्तु जहां इन दोनों महानुभावों के अनूदित भाग अब तक प्रकाशित न हो सके थे वहां अनुवाद कार्य भी रुका हुआ था।

किन्तु इस वर्ष सभा के पानीपत अधिवेशन में जब मेरे प्रिय भाई प्रिंसिपल रामचन्द्र जावेद एम० ए० सभा के पुस्तकाध्यक्ष निर्वाचित होकर सभा में आये तो उन्हों ने सभा के प्रकाशन विभाग का उत्तरदायित्व सम्भालते हुए पहली घोषणा यह की कि वह इस वर्ष कुलियात का पहला भाग अवश्य प्रकाशित करायेंगे।

मैं अपने दुर्बल स्वास्थ्य के कारण सभा के वेद प्रचार विभाग के अधिष्ठाता पद से मुक्त हो चुका था और कुछ विश्राम करने का मन बना रहा था कि सभा की अन्तरंग से निर्णय करा के कुलियात के अनुवाद का शेष कार्य भाई जावेद जी ने मेरे ज़िम्मे करा दिया। अमर शहीद पण्डित लेखराम जी के प्रति अपनी निष्ठा, सभा की आज्ञा और जावेद जी के आग्रह के कारण मैंने अपने आपको इस नवीन सेवा के लिये सहर्ष उद्यत कर लिया। और जी जान से अनुवाद कार्य में लग गया।

प्रातः स्मरणीय महात्मा मुन्शीराम जी ने समूचे कुलियात के तीन भाग किये हैं। पहले भाग में सृष्टि इतिहास और पुनर्जन्म के पहले भाग के अतिरिक्त जो कुछ है, उस का मैंने पूरा अनुवाद कर दिया है। किन्तु हिन्दी में प्रकाशित होने पर जब कुलियात के पहले भाग के पृष्ठ ४०० से अधिक बढ़ने लगे तो यह निश्चय किया गया कि उर्दू कुलियात के पहले भाग का पुनर्जन्म वाला दूसरा भाग हिन्दी कुलियात के दूसरे भाग में दे दिया जाय, ताकि पृष्ठ-संख्या के साथ पुस्तक का मूल्य अधिक न बढ़ जाये।

जो कुछ मैं कर पाया हूँ और जैसा कुछ मैं अनुवाद आगे कर रहा हूँ, उस का नमूना कुलियात के पहले भाग के रूप में आर्य जनता के सम्मुख प्रस्तुत है। यदि आर्य भाइयों ने इस पहले भाग को उत्सुकता से अपनाया तो निश्चय ही दूसरा भाग शीघ्र ही उन के हाथों में पहुँच जायेगा।

अन्त में मैं सभा, उसके माननीय अधिकारियों और प्रकाशन विभाग के अधिष्ठाता श्री जावेद जी का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ कि जिन्होंने मुझे इस सेवा का अवसर प्रदान किया।

विनीत
शान्ति प्रकाश
महोपदेशक

—गुरुग्राम

❀ ओ३म् ❀

भूमिका*

लेखक—अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी
[श्री महात्मा मुन्शी राम जी जिज्ञासु]

पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफ़िर की सब पुस्तकों को एकत्रित करके, एक संग्रह के रूप में प्रकाशित करने का जो गौरव श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने 'सद्धर्म-प्रचारक-प्रेस' को प्रदान किया है, वह सर्वथा उचित है। क्योंकि इस प्रेस के साथ आर्य मुसाफ़िर का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। न केवल यह कि अपने जीवन में ही पण्डित लेख राम जी ने अपनी रचनाओं का अधिकांश भाग जालन्धर में तैयार किया था; अपितु उनके वैदिक-धर्म पर प्राण न्योच्छावर करने के बाद भी उनके अन्तिम उपहार का प्रकाशन इसी प्रेस की ओर से किया गया था। और जितनी भी पुस्तकें या लघु-पुस्तिकायें वे पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप में तैयार कर गये थे, वे सब भी इसी प्रेस की ओर से मुद्रित व प्रकाशित हो कर सत्यप्रिय जनों की सेवा में पहुँचती रही हैं।

आर्य समाज के साहित्य में श्री स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों के बाद जिन ग्रन्थों की मांग सब से अधिक है, वे स्वर्गीय आर्य मुसाफिर के ग्रन्थ ही हैं। यह कोई आकस्मिक बात नहीं है कि बीसियों आर्य लेखकों में से केवल पण्डित लेख राम जी की ही रचनाओं को पढ़ने की रुचि उर्दू-शिक्षित जनों में सब से अधिक पाई जाती है। जिस उत्साह से किसी समय मुन्शी अलखधारी जी की रचनाओं को हमारे देश के विचारवान् पुरुष पढ़ा करते थे, उसी उत्साह से अब पण्डित लेख राम जी की रचनाओं को पढ़ा जाता है। श्री पण्डित जी की पुस्तकों के प्रेमियों में बड़ी संख्या तो हिन्दुओं की ही है; परन्तु सत्य और न्यायप्रिय मुसलमान सज्जन भी उन की पुस्तकों के अध्ययन में पर्याप्त मात्रा में संलग्न हैं। इस का कारण यह है कि श्री पण्डित लेख राम जी की लेखन-शैली बहुत रोचक और सर्वप्रिय है। इस के साथ ही उन की रचनाओं का प्रत्येक शब्द सच्चे हृदय से निकला है। और वह पाठकों के हृदय एवं मस्तिष्क पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है।

वैदिक-धर्म के विरोधियों ने सर्वत्र यह प्रसिद्ध कर रखा है कि पण्डित लेख राम जी की लेखन-शैली बहुत अधिक कठोर है। और उनकी आलोचनायें संयम एवं शिष्ट-मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाली हैं। परन्तु जब कभी भी उन की रचनाओं की जांच-पड़ताल का अवसर आया, तब उनके प्रत्येक विरोधी को अपने आधारशून्य एवं अनुचित आक्षेपों के लिये लज्जित होना पड़ा है। जिस समय देहली के डिप्टी कमिश्नर साहिब की अदालत में, देहली के मुसलमानों की तरफ़ से मुकद्दमा चलाया गया था, उस समय उक्त डिप्टी कमिश्नर महोदय ने, अपने सरिश्तेदार को घर पर बुलाकर बड़ी

*कुलियात आर्य मुसाफिर के सम्वत् १९६१ वि० तदनुसार सन् १९०४ के संस्करण से उद्धृत और अनुवादित।—अनुवादक।

गम्भीरता और संलग्नतापूर्वक पण्डित जी की पुस्तकों के वे अँश सुने थे, जिन्हें मुहम्मदियों ने कठोर और आक्षेपजनक बतलाया था। अन्त में उक्त डिप्टी कमिश्नर महोदय ने अपने निर्णय में लिखा था कि मोटे तौर पर कुछ कठोर प्रतीत होने पर भी इस व्यक्ति की प्रतिपादन शैली ऐसी निर्दोष और परिमार्जित है कि यह अपनी ओर से किसी पर आक्रमण वा आक्षेप करता ही नहीं है। इसके साथ ही विरोधियों के आक्षेपों के उत्तर भी यह ऐसी उत्तमता और शिष्टता से देता है कि इस का कानून की पकड़ में आना तो एक तरफ़ रहा, प्रत्युत प्रत्येक न्यायप्रिय मनुष्य को इसकी प्रशंसा करनी पड़ती है।"

पंजाब पुलिस के सुप्रसिद्ध अधिकारी स्वर्गीय श्री कृष्टी साहेब से जब मैं आर्य मुसाफ़िर के हत्यारे की खोज के सिलसिले में मिला था, तब उन्होंने बतलाया था कि मुसलमानों की शिकायतों पर सरकार ने दो-तीन बार श्री पण्डित लेखराम जी की पुस्तकों की जांच करवाई थी। और प्रत्येक बार यही परिणाम निकला था कि इन पुस्तकों में कोई भी बात ऐसी नहीं है, जो क़ानून की पकड़ में आती हो। हां, इन पुस्तकों का लेखक अपने धर्म का कुछ अधिक उत्साही-रक्षक अवश्य प्रतीत होता है। श्री कृष्टी ने यह भी बतलाया था कि सरकार को बहुत समय पहले ही यह ज्ञात हो गया था कि पण्डित लेखराम जी पर विरोधियों की तरफ़ से सभी प्रकार के आक्रमण किये जायेंगे। इस लिये पुलिस को ये गुप्त आदेश दिये गये थे कि सभी स्थानों पर उनकी रक्षा का विशेष ध्यान रखा जाये।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि सभी विरोधी, विशेष रूप से मुहम्मदी भाई पण्डित लेखराम जी को बदनाम करने की कोशिश क्यों करते रहे? और सब से बढ़ कर मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद कादियानी ने उन का विरोध क्यों किया? एवं ऐसा करने के लिये उन्हों ने घृणित से घृणित उपायों का अवलम्बन करने में भी कोई संकोच क्यों न किया? उत्तर के लिये हमें वह पत्र-व्यवहार पढ़ लेना चाहिये जोकि आर्य मुसाफ़िर ने मिर्ज़ा साहिब के साथ किया था। और ज़ो 'अहमदी युक्तियों का खण्डन' (तक्ज़ीब बुराहीने अहमदिया) के अन्त में प्रकाशित हुआ है।

साधारणतया मुहमदियों के विरोध का कारण यह है कि वर्तमान काल में पण्डित लेख राम जी ने ही इस्लाम को सब से बड़ा धक्का लगाया। यद्यपि मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबादी भी बहुत बड़े मुन्शी थे। और उनकी लेखनी में विरोधियों को पूर्णतया पराजित करने वाला अपूर्व बल भी मौजूद था; परन्तु उनके लेख विरोधियों के विश्वासों और सिद्धान्तों को हिला नहीं सके। इसके विपरीत आर्य-मुसाफ़िर की शैली अद्भुत और अमोघ है। उन्हों ने अपनी एक-एक स्थापना के लिये बीसियों पुष्ट प्रमाण उपस्थित किये हैं। उन्होंने अपने परिणाम गहरे एवं विद्वत्तापूर्ण विवेचन के पश्चात् प्रस्तुत किये हैं। और उनके पक्ष में प्रबल ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। अस्तु, आर्यमुसाफिर के लेखों में जो प्रभाव तथा चमत्कार है, उसका अनुमान भली प्रकार से वे निष्पक्ष और न्यायप्रिय विद्वान् ही लगा सकते हैं, जिन के दोष पूर्ण विश्वासों तथा भ्रान्त सिद्धान्तों को उनकी अकाट्य युक्तियों ने जड़ से हिला दिया था।

पण्डित लेखराम जी की कृतियों की विस्तृत आलोचना करने का अवसर यह नहीं है। क्योंकि उनका जीवन चरित्र भी तैयार हो रहा है। और वह भी शीघ्र ही प्रकाश में आने वाला है। उसमें आर्यमुसाफ़िर की जीवनगाथा के साथ उनके लेखन-वैभव पर भी विस्तृत प्रकाश डाला जायेगा। यहां तो इतना ही अभीष्ट है कि बहुत व्यस्त रहते हुए और अनेक कठिनाइयों के होने पर भी पण्डित लेखराम

आर्यमुसाफ़िर ने ज्ञान का कितना बड़ा और कितना महत्वपूर्ण भण्डार सत्यप्रिय जनों के लाभ के लिये निर्मित कर दिया है? निस्सन्देह उचित परिणामों पर पहुँचने के लिये श्री पण्डित लेखराम जी आर्य-मुसाफ़िर के पुरुषार्थ के परिणामस्वरूप जिज्ञासु जनों को बहुत अधिक आसानी हो गई है।

यद्यपि विषय-भेद के अनुसार इस संग्रह में आर्यमुसाफ़िर की रचनाओं को *तीन भागों में बांटा गया है, तथापि यह विभाजन काल क्रमानुसार नहीं है। पण्डित लेखराम जी ने जितनी पुस्तकें और लघु-पुस्तकें वैदिक सिद्धान्तों के सत्यस्वरूप को प्रकाशित करने के लिये लिखी थीं, उनका संग्रह प्रथम भाग में किया गया है। दूसरे भाग में उन सब रचनाओं का समावेश है, जो विभिन्न मत-मतान्तर-वादियों के आक्षेपों के उत्तर में रची गई थीं। तीसरे भाग में मुहमदी आक्षेपों के उत्तर में रची गई कृतियों का संकलन है। इन रचनाओं में से कोई एक भी ऐसी नहीं है, जिसका कुछ न कुछ, अपना स्वतन्त्र इतिहास नहीं है।

अनुसन्धान से पता चला है कि पण्डित लेखराम जी की साहित्य रचना की विशेष रुचि उनमें अपनी आरम्भिक अवस्था में ही मौजूद थी। पुस्तक रूप में जो उनकी सर्व-प्रथम रचना प्रकाश में आई थी, वह 'स्त्री शिक्षा' है। जो कि †इस संग्रह में चौथे अनुक्रम पर प्रकाशित है। इस लघु-रचना की भाषा इस बात का प्रमाण है कि तब तक आर्यमुसाफ़िर की शैली में वह ओज तथा प्रवाह वर्तमान न था, जो कि "हुज्जते-इस्लाम" में प्रकट हुआ। और जिसे देखकर अपने-पराये सभी चकित हो गये। ऐसा होने पर भी विश्वासों की दृढ़ता और संकल्प-शक्ति की प्रबलता तो पण्डित जी की आरम्भ की रचनाओं में भी भली प्रकार वर्तमान है। इसके बाद पण्डित जी पेशावर से लाहौर की ओर चले आये। फ़िरोज़पुर में उन्होंने 'आर्य-गज़ट' का सम्पादन-भार सम्भाला। उसी समय उन्हें मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद की पुस्तकों के अवलोकन का अवसर मिला। और उन्होंने सत्य-धर्म के गौरव को प्रकट करने के लिये असीम उत्साह के साथ मिर्ज़ा साहिब के साथ अपना ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार आरम्भ किया।

इस के पश्चात् पण्डित जी ने किस प्रकार मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद कादियानी की पोल खोली और एक कहावत के अनुसार झूठे को उसके घर तक पहुँचा दिया? यह पण्डित जी की पुस्तकों के विज्ञपाठक भली प्रकार जानते हैं। इसी अवधि में पण्डित जी ने वह प्रसिद्ध ग्रन्थ तैयार किया जो कि "नुस्खाये ख़ब्ते अहमदिया" के नाम से प्रसिद्ध है। इसके विषय में मैंने कई मुसलमानों को यह कहते हुए सुना है कि इसके पश्चात् इसके जोड़ की कोई दूसरी पुस्तक पण्डित जी ने नहीं लिखी। इतना ही नहीं अपितु जिस "हुज्जते इस्लाम" नामक पुस्तक के प्रकाशन पर, मुहमदी लोगों ने पण्डित लेखराम जी को प्राण-हरण की धमकियां देनी आरम्भ कर दी थीं, कुछ लोग अब तक भी "नुस्खाये ख़ब्ते अहमदीया" को उस से भी बढ़ कर मानते हैं।

"तकज़ीबे बुराहीने अहमदिया" के दोनों भागों के निर्माण का सम्पूर्ण इतिहास, उनके अन्दर ही लिख दिया गया है। "तकज़ीबे बुराहीने अहमदिया" के दूसरे भाग की पाण्डु लिपि मुझे जिस अस्त-व्यस्त रूप में मिली थी, और उसके प्रकाशन में मुझे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उनका उल्लेख मैंने उस पुस्तक की भूमिका में कर दिया है। "सृष्टि का इतिहास" (तारीख़े दुनिया) और "पुनर्जन्म" (सबूते तनासुख़) नामक ग्रन्थों की तैयारी में जो परिश्रम पण्डित जी को करना पड़ा था,

* मूल पुस्तक जो उर्दू में है, उसके तीन भाग हैं।

† मूल पुस्तक में चौथे अनुक्रम पर "स्त्रीशिक्षा" पुस्तक है।

उसे मैं भली प्रकार जानता हूँ। इन पुस्तकों के पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि पण्डित लेखराम जी अंग्रेज़ी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे। ऐसा होने पर भी उन्होंने जिस उत्तमता से स्थान-स्थान पर अंग्रेज़ी ग्रन्थों के उद्धरण इन पुस्तकों में दिये हैं, उन से एक अनजान व्यक्ति तो यही परिणाम निकालेगा कि पण्डित लेखराम जी अंग्रेज़ी भाषा के भी बहुत बड़े विद्वान् थे।

पण्डित लेखराम जी का काम करने का ढंग आलसी और प्रमादी पुरुषों से सर्वथा भिन्न प्रकार का था। वे अंग्रेज़ी जानने वाले लोगों से निरन्तर उन विषयों पर वार्तालाप किया करते थे, जिनके विषय में उनको संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियों को जानने की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार जब भी उनको अपने काम की कोई बात मालूम होती थी तब वे खोज करके उसके विषय में असली और प्रामाणिक पुस्तक को प्राप्त कर लेते थे। इसके बाद वे तीन चार पृथक्-पृथक् अंग्रेज़ी के विद्वानों से उसके आवश्यक अंशों का अनुवाद करवाते थे। और फिर भली प्रकार विचार एवं अर्थों की तुलना करके उसे अपनी पुस्तक में स्थान देते थे। इस प्रकार की खोज और ऐसे अनुसन्धान के लिये जिस संलग्नता, धैर्य एवं सन्तोष व शान्ति की आवश्यकता होती है, उस का कुछ अनुमान सूक्ष्म विषयों में रुचि रखने वाले सज्जन ही लगा सकते हैं। बोलने के प्रसंगों में तो पण्डित लेखराम जी बहुत अधिक उतावले हो जाया करते थे; परन्तु साहित्य-रचना के कार्यों में वे इतने अधिक गम्भीर और धैर्यशील दिखाई देते थे कि देखने वालों को आश्चर्य होने लगता था।

जब कभी पण्डित जी बाहिर यात्रा करके, सद्धर्म प्रचारक प्रेस जालन्धर में लौटा करते थे, तब उनका सर्व प्रथम आदेश यही होता था कि गत मास के सभी पत्र और पत्रिकायें प्रस्तुत करो। उन पत्र-पत्रिकाओं के सामने आते ही वे अपनी भूख-प्यास सब भूल जाया करते थे। जब तक वे उन का एक-एक शब्द पढ़ न लेते थे, और उनमें से अपने काम की बातों को निकाल न लेते थे, तब तक उनको चैन न आता था। कई बार ऐसा भी हुआ कि जिन बातों को मैंने सरसरी तौर पर देख कर छोड़ दिया था, उन का महत्व पण्डित लेख राम जी ने प्रकट किया। और कई बार तो मुझे लज्जित भी होना पड़ा। उन्होंने अपने व्यवहार से मुझे यह सिखाया कि संसार में कोई छोटी से छोटी घटना भी ऐसी नहीं है, जिससे कुछ उत्तम शिक्षा प्राप्त न हो सके।

जितनी पुस्तकों का प्रकाशन इस ग्रन्थ माला में किया जा रहा है, उन की रचना ही एक मनुष्य की विद्वत्ता और कर्तव्य-परायणता का एक बहुत बड़ा प्रमाण है। परन्तु इन सब की रचना करते हुए, इनके साथ ही साथ उन्होंने अपने सच्चे पथप्रदर्शक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के जीवन-चरित्र की सामग्री एकत्रित करने के लिये भारत के सभी भागों की कष्ट-साध्य यात्रायें भी की थीं। इसके परिणाम स्वरूप उन्होंने केवल सामग्री ही एकत्रित नहीं की; अपितु उन्होंने पाँच सौ बड़े पृष्ठों के लेख भी अपने सामने ही कातिब को लिखने के लिये सौंप दिये थे। उनके परिश्रम का अन्त यहां पर ही न था, अपने विचार के अनुसार तो उन्होंने अभी लेखन-कार्य का आरम्भ ही किया था। अपनी मृत्यु के बहुत वर्ष पूर्व से ही वे भारत वर्ष का एक प्रामाणिक इतिहास लिखने के लिये आवश्यक सामग्री का संग्रह कर रहे थे। उनके क़तल के बाद २३ अप्रेल सन् १८९७ ई० के समाचार पत्र सद्धर्म प्रचारक में मैंने इस विषय में लिखा था—

"जब कभी किसी भारतीय विद्वान् के किसी योरोपीय-विद्या-संस्थान का सदस्य होने का समाचार आता है, तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या अब तक भी आर्य सन्तान में उच्च-कोटि के विचार-विमर्श, दार्शनिक खोज और तात्विक सिद्धान्त निरूपण की आवश्यक योग्यता मौजूद है ! जब तक डाक्टर जगदीशचन्द्र वसु की विद्युत-विद्या विषय खोज प्रकाश में न आई थी, तब तक कौन यह स्वीकार करता था कि आर्य सन्तान भी अपने अन्दर पदार्थ विद्या के तथ्यों और सूक्ष्म तत्वों को समझने की उच्च योग्यता रखती है। इस प्रकार विद्या और विज्ञान विषयक खोज के और भी छोटे बड़े कई क्षेत्र हैं, जिन में जब तक कोई भारतवासी विद्वान् अपना पग आगे नहीं बढ़ाता, तब तक किसे को यह विश्वास ही नहीं होता कि ऋषियों की सन्तान के पास अभी तक भी खोज और तत्त्व निरूपण करने के लिये आवश्यक विद्या-बल और बौद्धिक-वैभव मौजूद है । इस में सन्देह नहीं कि हमारी प्रकट में अयोग्यता सूचक इस स्थिति का कारण केवल मात्र हम ही नहीं हैं । इसमें हमारी राजनैतिक दासता और हमारे विदेशी शासकों की नीति का बहुत अधिक प्रभाव भी कारण है। फिर भी हम स्वीकार करेंगे कि हमारे वश में भी बहुत कुछ है । भारतवर्ष एक आदर्श देश है । और अपनी विशेषताओं के लिये यह बहुत अधिक प्रसिद्ध है । सम्पूर्ण भू-मण्डल के ऋतु, जल-वायु, वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी और नाना प्रकार के मनुष्य इस भू-खण्ड में पाये जाते हैं । एक ऐसे बड़े भू-खण्ड को जिसे हम एक पृथक् महा भू-खण्ड भी कह सकते हैं, और जिस का इतिहास केवल मात्र विगत पन्द्रह, बीस या पच्चीस शताब्दियों का ही इतिहास नहीं है, जिस देश को ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति अर्थात् ज्ञान के सर्वप्रथम प्रकाश को प्राप्त करने का गौरव भी प्राप्त है, उस महा भू-खण्ड और प्राचीन महा देश में खोज की जितनी अधिक आवश्यकता है, वह एक सीमा तक ही किसी मनुष्य के विचार में आ सकती है। परन्तु खेद है कि ऐसा उत्तम अवसर प्राप्त होने पर भी हम लोगों की मनो-वृत्तियां सत्य की ओर अग्रसर नहीं होती हैं।

यदि हिमालय की अज्ञात गुफाओं और गौरी शंकर की गगन चुम्बी चोटियों का पता लगाना हो, तो उसके लिये खोज-समितियां विलायत से बनकर आती हैं, यदि जालन्धर का इतिहास जानना हो तो उसके लिये परसर साहेब की बन्दोबस्त की रिपोर्ट पढ़नी पड़ती है। क्या हमारे लिये यह शर्म की बात नहीं है कि हमें अपने रस्म-रिवाजों को जानने के लिये भी विदेशियों की ही शरण ग्रहण करनी पड़ती है। यही कारण है कि अंग्रेजों और अन्य विदेशी विद्वानों की बहु मूल्य और प्रशंसनीय अनेक विध खोज के बाद अब तक भी हमारे महान् देश का कोई प्रामाणिक इतिहास मौजूद नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि हमें अपने विदेशी शासकों का हार्दिक धन्यवाद करना चाहिये। इस लिये कि उन्होंने हमारी आँखें खोल दीं। और हमारे काम की बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री भी उन्होंने अपनी कष्टपूर्ण खोज के आधार पर प्रस्तुत कर दी। फिर भी इतिहास का अभाव तो अपने स्थान पर ज्यों का त्यों मौजूद ही है। क्या कोई भारतीय विद्वान् यह कह सकता है कि हमारे देश का कोई प्रामाणिक इतिहास ऐसा मौजूद है, जिस पर पूरा-पूरा विश्वास किया जा सके। और जो भारतीय इतिहास की विलुप्त कड़ियों को जोड़ दे ? जो हमें हमारे जातीय इतिहास की सच्ची-सच्ची गौरव-गाथा सुनाकर हमें सच्ची उन्नति के लिये प्रेरित तथा अग्रसर कर सके ?

विदेशी विद्वानों ने भारतवर्ष के जितने भी इतिहास लिखे हैं, उन में उन के अपने विचार, अपनी भ्रान्तियां और अपने-अपने पक्षपात भी समाविष्ट हैं। ऐसे विद्वानों में हमें कर्नल टाड साहेब का नाम

विशेष सम्मान के साथ स्मरण करना चाहिये। जिन्हों ने अपनी प्रेम भरी खोज के द्वारा राजपूतों की वीरता को सारे संसार में प्रसिद्ध कर दिया। परन्तु क्या भारत में कर्नल टाड के समकक्ष कोई दूसरा विद्वान् पैदा हुआ ? हमें शोक से कहना पड़ता है कि नहीं। हम बड़े खेद के साथ देखते हैं कि हमारे देश के धनपतियों के बेटे इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। विद्या और विज्ञान आदि विषयों में आवश्यक खोज करने वालों के प्रति उचित आदर-सम्मान का भाव, उन की सुख-सुविधा और उन को अपने कार्यों में उत्साहित करने का विचार भी अभी तक हमारे देशवासियों में उत्पन्न नहीं हुआ है। पाश्चात्य देशों के अनुसन्धान कर्त्ता विद्वान् अपनी-अपनी सरकारों एवं अपने-अपने देशवासियों के सहयोग से क्या कुछ नहीं कर दिखाते ? परन्तु दुर्भाग्यवश अपने देश की सरकार से हम तो कुछ भी आशा नहीं कर सकते। और हमारे देशवासियों की तो इस प्रकार की खोज में कोई रुचि ही नहीं है।

ये ऐसी बड़ी-बड़ी कठिनाइयां हैं, जिन के कारण एक साधारण व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। परन्तु फिर भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो अपनी मदद अपने आप करता है, ईश्वर भी उस की मदद करता है। ऐसी कौन सी कठिनाई है, जो पुरुषार्थ के सामने ठहर सकती है ? हम ने ऐसे भारतीय विद्वान् बहुत ही कम देखे हैं, जिन में सत्य-प्रेम का वह उत्साह विद्यमान हो, जो पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर के हृदय और मस्तिष्क को प्रेरित किया करता था। पण्डित लेखराम ने भारतवर्ष के क्रमबद्ध और प्रामाणिक इतिहास की आवश्यकता को बहुत अधिक अनुभव किया था। उन का विचार था कि महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र तैयार करने के पश्चात् फिर एक बड़ी, भारत व्यापी यात्रा का आरम्भ करेंगे और भारतवर्ष का प्रामाणिक इतिहास लिखने के लिये आवश्यक सामग्री का संचय करेंगे। इस बड़े कार्य के अनुष्ठान के लिये उन्होंने भारतीय इतिहास के विषय में बहुत से ग्रन्थों का संग्रह भी आरम्भ कर रखा था। खेद है कि दुराग्रही और निर्दयी हत्यारे ने अपने खूंखार छुरे से इन सब महत्वपूर्ण आयोजनों का अन्त कर दिया। परन्तु मैं सोचता हूँ कि हमारे लिये क्या यह भी आर्य मुसाफिर की एक वसीयत नहीं है ?

क्योंकि हमारे धर्म की प्रवर्त्तना सृष्टि के आरम्भ में हुई थी, और वेदों का गम्भीर नाद सर्व प्रथम हिमालय की चोटी से उतर कर, आर्यवर्त में ही फैला था। इस लिए आर्यवर्त का सम्पूर्ण और प्रामाणिक इतिहास तैयार करना भी आर्य पुरुषों का ही काम होना चाहिये। इस समय आर्यसमाज में सैंकड़ों उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान् मौजूद हैं। उन में से बीसियों ऐसे हैं, जो थोड़ा-सा ही यत्न करके संस्कृत भाषा में भी विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। सम्भवतः कुछ विद्वान् ऐसे भी मिल जायेंगे, जिन्हें अपनी आजीविका की भी कोई चिन्ता नहीं है। इतना ही नहीं वे इस काम पर पर्याप्त रुपया खर्च कर सकते हैं। और इस काम के लिये यथेष्ट समय भी दे सकते हैं। क्या इन विद्वानों में से कोई एक भी आर्य मुसाफिर की अन्तिम वसीयत को पूरा करने के लिये कार्य क्षेत्र में न उतरेगा ? इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य का सम्यकतया सम्पादन करने के लिये धैर्य, एकाग्रता, उत्साह और साहस आदि सद्गुणों का होना आवश्यक है। और इस में भी सन्देह नहीं कि जो कोई भी विद्वान् इस काम को अपने हाथ में लेगा, उसे बहुत वर्षों तक एकान्त में रहना और कष्टों को सहना होगा; परन्तु यदि वह अपने कार्य में योग्यता पूर्वक सफल हो जायेगा, तो वह आर्यावर्त के क्रमबद्ध इतिहास को तैयार करके एक बहुत बड़ा ज्ञान-कोष अपने देशवासियों के लिये छोड़ जायगा। ऐसा होने पर, जब आर्य-सन्तान अपने विगत गौरव का पूर्ण परिज्ञान प्राप्त करेगी, और अपनी वर्तमान अवस्था पर विचार करेगी, एवं अपने रोग को

झ कर, जब वह उसका उचित उपचार आरम्भ करेगी, तब उस वीर पुरुष का उद्देश्य अवश्य ही ा हो जायेगा। हम ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि वह किसी सुयोग्य आर्यपुरुष के हृदय को प्रेरित , जिससे वैदिक-धर्म के प्रचार कार्य का एक कठिन उद्देश्य पूरा हो जावे।"

लग-भग सात वर्ष हो गये, जब मैंने ऊपर लिखी प्रार्थना प्रकाशित की थी, और अपना आशा-द प्रकट किया था। दयामय परमेश्वर शुभकर्मों के अनुष्ठान के लिये योग्य जनों को प्रेरित तो निरन्तर किया करते हैं; परन्तु तब से अब तक कोई विद्वान् भी भारतवर्ष के प्रामाणिक एवं क्रमबद्ध इतिहास र्माण के क्षेत्र में उतरा नहीं है। ऐसी अवस्था में यदि धर्मवीर पण्डित लेखराम आर्य मुसाफ़िर को चित् अधिक व्यग्रता के साथ स्मरण किया जाये, तो ऐसा कौनसा कठोर हृदय होगा, जो इस पुण्य-रण में शामिल न होगा ?

आर्य मुसाफिर की रचनाओं को प्रकाशित करके, इतने कम मूल्य में वितरित करने का मुख्य द्देश्य यही है कि प्रत्येक धर्म-पिपासु-जन के पास इस माला के सभी ग्रन्थ अवश्य ही पहुँच जायें। जो ोग इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ-माला को मूल्य देकर प्राप्त करने में असमर्थ हैं, उन तक इस ग्रन्थ-माला को हुँचाना साधन-सम्पन्न आर्य पुरुषों का काम है। जो लोग आर्य सन्तान को मुहमदी और ईसाई प्रभृति तवालों के फन्दों से छुड़ा कर, उन्हें सदा के लिए सबल एवं सुरक्षित बनाना चाहते हैं, उनका यह ावश्यक कर्तव्य है कि वे इस ग्रन्थ-माला की अधिक से अधिक प्रतियां मंगवायें। और उन्हें बिना ूल्य वितरित करके, पुण्य एवं यश के भागी बनें।

—:o:—

श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफ़िर

का

संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त

[स्व० स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की लेखनी से]
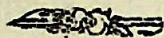
संसार की उन्नति का इतिहास सदा ही महापुरुषों के रक्त से तैयार होता रहा है। जिन शूरवीरों ने धर्म के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, यहां तक कि अपने प्यारे सिद्धान्तों की रक्षा के लिये, अपने प्रिय प्राणों को न्योछावर करने में भी संकोच नहीं किया, उनकी धर्म-परायणता ने उनके विचारों के प्रसार के लिये विद्युत से भी बढ़कर कार्य किया है। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि किसी भी समुदाय के जीवन का अनुमान उसके त्याग, तप और बलिदान के आधार पर ही किया जा सकता है। प्रत्येक जीवित समाज और समुदाय अपने जीवन का प्रमाण इस प्रकार के बलिदानों के रूप में ही प्रस्तुत किया करता है। किसी भी सत्य के प्रचार को अपने विरोधियों के हाथों जितनी अधिक विपत्तियां सहन करनी पड़ती हैं, दूसरे शब्दों में, किसी भी सत्य प्रचारक ने अपने प्रचारित सत्य के पक्ष में जितनी भी अधिक प्रबल शहादत प्रस्तुत की है, उसके सत्य का उतना ही अधिक प्रसार संसार में हुआ है। अतः, धन्य है, वह समुदाय और वह समाज जिसके प्रवर्तकों और प्रचारकों ने अपने प्रिय प्राणों को बलिदान करके, और धर्म के मार्ग में अपना खून बहा कर, अपनी और अपने सिद्धान्तों की सत्यता को प्रकट किया है।

अभी पूरे पच्चीस वर्ष भी नहीं बीते, जब कि आर्यसमाज वैदिक सत्य का प्रदीप हाथ में लेकर, मानव जाति के कल्याण और अभ्युत्थान के लिये सन्नद्ध हुआ था। स्वामी दयानन्द के गम्भीर नाद ने कुम्भकरण की नींद में सोई पड़ी हुई भारत-सन्तान को जगा दिया। आलस्य के स्थान पर पुरुषार्थ का प्रकाश फैला। सत्य-धर्म की पिपासा प्रत्येक हृदय में भड़क उठी। वैदिक ज्योति ने अन्धकार का विनाश आरम्भ कर दिया। सम्पूर्ण भारत राष्ट्र में एक अपूर्व हलचल मच गई। विरोधियों की ओर से होने वाले भीषणतम आक्रमणों को शान्ति और आश्चर्यजनक धैर्य से सहन करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। परन्तु ससीम मनुष्य के कार्य भी तो सीमा वाले ही होते हैं। यदि महर्षि दयानन्द अपने आत्म-बलिदान के रूप में अपने अन्तिम त्याग, तप और बलिदान का परिचय देकर अपने सिद्धान्तों की सत्यता की साक्षी न देते, तो वह प्रबल आन्दोलन, जो उनके बाद सम्पूर्ण भारत में उठा, फैला और ग्राम-ग्राम एवं घर-घर में पहुँचा, कभी भी दिखाई न देता। एक महर्षि की मृत्यु ने हजारों क्या लाखों जीवन-ज्योतियों का काम किया। वैदिक-धर्म-प्रचार की अग्नि प्रचण्ड से प्रचण्डतम होती चली गई।

यद्यपि प्रत्येक उत्तम आन्दोलन को महापुरुषों के आत्म बलिदानों के परिणाम स्वरूप अपूर्व

बल और प्रोत्साहन प्राप्त होता है, परन्तु हमें भूलना न चाहिये कि उस बल और प्रोत्साहन के मार्ग में कुछ छोटी-बड़ी बाधायें भी मौजूद होती हैं। जिन को दूर करने के लिये अन्य धर्मवीरों के बलिदान अपेक्षित होते हैं। आर्यसमाज के आन्दोलन के मार्ग में भी इसी प्रकार की बाधायें आ-आ कर उपस्थित रहती हैं। और प्रभु की दिव्य-व्यवस्था एवं हमारे कर्मों के अनुसार उन बाधाओं के निवारण के लिये नये-नये बलिदानों की आवश्यकता भी लगी ही रहती है। इसी प्रकार की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये महर्षि दयानन्द के बलिदान के छः वर्ष पश्चात् मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी ने तिल-तिल करके आत्म-बलिदान प्रस्तुत किया था। छः वर्ष का समय और बीत गया। फिर कुछ नई बाधायें आ उपस्थित हुईं। फिर से बलिदान की आवश्यकता हुई। नई बाधाओं के निवारण के लिये धर्मवीर पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफ़िर ने छः मार्च सन् १८९७ ई० की सन्ध्या वेला में फिर अपना जीवन बलिदान किया। और सचमुच ही अपने पवित्र रक्त के द्वारा वैदिक-धर्म की सत्यता एवं महत्ता का एक नया तथा प्रभाव पूर्ण प्रमाण अंकित कर दिया।

यद्यपि धर्मवीर पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफ़िर की गणना उस वर्ग में नहीं हो सकती जो कि बुद्ध, शंकर, नानक और दयानन्द प्रभृति के लिये ही सुरक्षित है। और जिसमें वे अपने-अपने चन्द्रमा रूपी स्वरूप में संसार को प्रकाश प्रदान करते हुए आनन्द की वर्षा कर रहे हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि श्री पण्डित लेखराम जी उन उज्वल नक्षत्रों में से एक हैं, जो कि ऐसे चन्द्रमाओं की शोभा को बढ़ाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। इस लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि श्री पण्डित लेखराम जी का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त इस पुस्तक-माला के माननीय पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जाये। जिससे कि वे पुस्तक-माला के प्रणेता के जीवन-वृत्त के साथ ही साथ उसकी उस उदात्त भावना और कर्तव्य-निष्ठा का भी परिचय प्राप्त करलें, जो कि इस पुस्तक माला की मूल प्रेरक बनी थी।

तहसील चकवाल जिला जेहलम के एक अप्रसिद्ध ग्राम "सैयदपुर" नाम में ८ चैत संवत् १९१५ वि० में शुक्रवार के दिन, एक मोहियाल ब्राह्मण परिवार में एक लड़का उत्पन्न हुआ। उस समय कौन यह कह सकता था कि उस छोटे-से शिशु के अन्दर कैसी-कैसी अद्भुत शक्तियां वर्तमान हैं? पाँचवें वर्ष में वह बालक विद्या प्राप्ति के लिये फ़ारसी-भाषा के विद्यालय में बैठाया गया। माता पिता ने उस का नाम लेखराम रखा। पन्द्रह वर्ष का होने तक यह लड़का भी अन्य लड़कों जैसा ही एक सामान्य विद्यार्थी था; तथापि लेखराम पढ़ने लिखने में अधिक उत्साही था। और उस की स्मरण-शक्ति भी दूसरों से बढ़ चढ़ कर थी। उस की एक विशेषता भी थी। जिस पर उस के सभी अभिभावक आश्चर्य किया करते थे। वह यह कि उस के स्वभाव में बहुत अधिक दृढ़ता पाई जाती थी, जो कि कभी-कभी हठ का रूप भी धारण कर लेती थी।

एक बार, जब उस की आयु सात या आठ वर्ष की ही थी, विद्यालय में पढ़ते समय लेखराम को प्यास लगी। इस पर उस ने घर जाने की छुट्टी मांगी। अध्यापक ने कहा—"विद्यालय में पानी मौजूद है। यहां ही पी लो।" परन्तु लेखराम ने पानी न पिया। प्यासा बैठा रहा। घर जा कर ही पानी पिया।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में लेखराम जी अपने चाचा श्री गण्डा राम जी के पास पुलिस का काम

सीखने के लिये चले गये। इस समय * श्री गण्डा राम जी पेशावर में डिप्टी इन्स्पैक्टर पुलिस हैं। उन्हीं दिनों एक बूढ़े सिख भाई से, जोकि श्री गण्डा राम जी के आधीन कार्य करता था, लेखराम का परिचय हो गया। वह बड़े सवेरे उठकर, स्नान आदि करके गुरुमुखी अक्षरों में गीता की पोथी व... किया करता था। उस सिख उपासक के सम्पर्क में रहकर, लेखराम ने समाधि लगानी आरम्भ क... उन के चाचा जी ने बतलाया कि एक दिन लेखराम जी समाधि में ऐसे मग्न हुए कि चारपाई से नीचे गिर पड़े। फिर भी उनकी समाधि न खुली।

सन् १८७६ ई० के लग-भग लेखराम जी पुलिस विभाग में नौकर हुए और कुछ काल पश्चात नकशा-नवीस-सारजेण्ट नियुक्त किये गये। धर्म-पिपासा की अनुभूतियों ने उसी समय अपनी छटा दिखानी आरम्भ कर दी थी। अस्तु, सन् १८८० ई० में उन्होंने काशी से गीता-पुस्तक मंगवाई। उस को पढ़ने और उस के श्लोकों पर गहरा-मनन करने का कार्यक्रम बन गया। रोटी एक ही सम... अपने हाथ से पका कर खाते थे। और कृष्ण-कृष्ण का जाप किया करते थे। उसी वर्ष, जबकि ... आयु लग-भग बीस या बाईस वर्ष की थी, माता-पिता ने विवाह के लिये जोर देना आरम्भ किया... सगाई तो पहले ही हो चुकी थी। परन्तु लेखराम के सिर पर तो दूसरी ही धुन सवार थी। विवाह की बात चलते ही उस ने नौकरी छोड़ने, और मथुरा वृन्दावन की ओर जाने का निश्चय कर लिया। सम्बन्धियों ने पत्र लिख-लिख कर बहुत ऊँच-नीच की बातें समझाईं। परन्तु मोक्षलाभ के उत्साह की अग्नि अधिकाधिक प्रचण्ड होती चली गई। अन्त में पण्डित लेखराम के चाचा अपने थाने के कामका... छोड़ कर समझाने के लिये आये। इस पर पण्डित लेखराम ने अपने चाचा को एक दृष्टान्त सुना... जो कि योग की पुस्तकों में पाया जाता है। वह इस प्रकार है :—

"एक था राजा। उस के पास नट आये, तमाशा दिखाने के लिये। राजा बोला! योगी की नक़ल उतारो। पाँच सौ रुपये इनाम मिलेगा। नट ने पूरा योगी बनकर दिखा दिया। परन्तु जिस समय नट की समाधि खुली, उसने तुरन्त ही इनाम की आशा से अपना हाथ फैला दिया।"

यह दृष्टान्त सुना कर लेखराम जी ने कहा यदि मैं गृहस्थ के बन्धनों में उलझ जाऊंगा, तो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल न हो सकूंगा। उस की दृढ़ता के सामने घर वालों ने अपनी ... मान ली। उन की मंगेतर का विवाह विवश हो कर उन के छोटे भाई से किया गया।†

इस घटना के कुछ काल पश्चात् लेखराम जी को श्री कन्हैया लाल जी अलखधारी की पुस्तकें पढ़ने का चस्का लगा। श्री मुन्शी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी की पुस्तकें तो वे इससे पूर्व ही पढ़ ... और मुहम्मदी लोगों के साथ धार्मिक विषयों पर पूछताछ तथा वाद-विवाद का कार्य भी वे आ... कर चुके थे। श्री अलखधारी जी की एक पुस्तक में स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की प्रशंसा लेखराम ने पढ़ी। कुछ समाचार-पत्रों के लेख पढ़ने पर उस प्रशंसा की पुष्टि भी हो गई। लेखराम जी ने तुरन्त ही स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के ग्रन्थ मंगवाये। और मनोयोग पूर्वक उनका अध्ययन आरम्भ कर दिया। ज्यों-ज्यों धर्म के मर्म अधिकाधिक मालूम होते गये, त्यों-त्यों श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्व...

* सन् १९०३ ई० में।—अनुवादक।

† चौबीस वर्ष की आयु में लेखराम जी ने श्रीमती लक्ष्मी देवी जी के साथ विवाह कर लिया था। इस का उल्लेख आगे "सती का जीवन" शीर्षक लेख में मिलेगा।

—अनुवादक

के दर्शनों के लिये उन की लालसा और व्यग्रता भी बढ़ती चली गई। दिल वे काबू हो गया। अन्त उन्होंने सन् १८८१ ई० में पेशावर में आर्य समाज स्थापित किया। फिर एक महीने का अवकाश प्राप्त किया। और श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनों के लिए चल दिये।

लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि आर्य समाजों में होते हुए लेखराम जी अजमेर पहुँचे। वहां महर्षि दयानन्द जी के दर्शन एवं उनसे वार्तालाप करके, उन्होंने अपने मन के सम्पूर्ण संशय निवृत्त किये। लौटने पर उन्होंने एक पत्र "धर्मोपदेश" वैदिक-धर्म के प्रचार के लिये निकाला और तन, मन, एवं धन से आर्य समाज पेशावर की उन्नति में जुट गये। पुलिस की नौकरी के दिनों में ही अपनी स्पष्ट-वादिता के लिये उन्होंने भरपूर प्रसिद्धि प्राप्त करली। धार्मिक वार्तालापों और वादविवादों में वे सांसारिक पद-मर्यादा आदि के आधार पर किसी का कुछ भी लिहाज़ न करते थे। शराब की बुराइयों की रोक-थाम करने के उद्देश्य से एक बड़ा सम्मेलन आयोजित किया गया। ज़िले के सब मुख्य अधिकारी और सेना के कमाण्डिंग अफ़सर भी उपस्थित थे। पण्डित लेखराम जी का ओजस्वी भाषण उस सम्मेलन में सभी को आश्चर्य-चकित कर देने वाला था। सैनिकों पर उनके भाषण का प्रभाव बहुत ही उत्तम हुआ।

पण्डित लेखराम जी की प्रकृति आरम्भ से ही स्वतन्त्र थी। इस लिए पक्षपाती और विद्वेषी अधि-कारियों से उनकी बनती न थी। सन् १८८२ ई० के आरम्भ में उनकी बदली पेशावर से देहात में कर दी गई। फिर भी लेख भेज-भेजकर लेखराम जी ने "धर्मोपदेश" का प्रकाशन जारी रखा। अन्त में आर्य समाज पेशावर ने व्यय-भार को सहन करने में असमर्थता प्रकट करते हुए "धर्मोपदेश" को बन्द करने का प्रस्ताव किया। उसके विषय में पण्डित लेखराम जी ने १२ मार्च सन् १८८३ ई० को जो पत्र अपने चाचा के नाम लिखा था, उस से ज्ञात होता है कि अपनी आय के बहुत कम होने पर भी, पण्डित जी "धर्मोपदेश" के व्यय का कुछ भाग स्वयं वहन करने के लिये भी तैयार हो गये थे। परन्तु आर्य समाज पेशावर के सहमत न होने के कारण यह पत्र उसी वर्ष बन्द हो गया था।

सन् १८८४ ई० के आरम्भ में ही वैदिक-धर्म के सुप्रकाश ने लेखराम जी के हृदय-मन्दिर को प्रकाशित कर दिया था। उस प्रकाश का रूप दिन प्रतिदिन अधिक प्रचण्डता धारण करता हुआ निरन्तर ही निखर... जा रहा था। अपनी पुलिस की नौकरी से भी उन्हें अरुचि हो गई थी। सम्बन्धियों, मित्रों और सरकारी अधिकारियों के समझाने पर भी लेखराम जी अपने विचारों में दृढ़ रहे। नवम्बर सन् १८८४ ई० में त्याग-पत्र देकर उन्होंने मनुष्यों की दासता से छुटकारा प्राप्त कर लिया और स्वतन्त्रता का आनन्द लेने लगे।

पहले वे लाहौर पधारे और कुछ समय तक संस्कृत-व्याकरण पढ़ते रहे। फिर वे "आर्य गज़ट" के सम्पादक नियुक्त होकर फ़िरोज़पुर चले गये। उस समय उर्दू का एकमात्र पत्र यह आर्य-गज़ट ही था। पण्डित लेखराम जी ने जिस उत्तमता से, तब आर्य गज़ट को चलाया, उसका प्रमाण आर्यगज़ट की फ़ाईल को देखने से मिलता है। उनकी लेखनी तो सत्य के प्रचार में उसी समय से संलग्न हो चुकी थी, जब वे आर्य समाज के सभासद बने थे। वे इस से पूर्व ही सन् १८८३ ई० में "विधवाओं की पुकार" (नवीदे बेवगान्) नामक पुस्तक भी लिख चुके थे।

पण्डित लेखराम जी की वह सर्व प्रथम पुस्तक जिसने उन्हें सम्पूर्ण आर्यवर्त में प्रसिद्ध कर दिया, और जिसने आर्य-सन्तान के मुरझाये हुए हृदय को नव-जीवन प्रदान करके प्रफुल्लित कर दिया, वह थी "तक़ज़ीबे बुराहीने अहमदिया" इसमें पण्डित जी ने मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद कादियानी की निरर्थक

वोक्तियों और मन्तव्यों का खण्डन करते हुए वैदिक-धर्म की महत्ता को भारतवासियों के हृदय पर भली प्रकार अंकित कर दिया है। इसके बाद उन्होंने "नुस्खाये ख़ब्ते अहमदिया, क्रिश्चियन-मत-दर्पण और सबूते तनासुख़" प्रभृति कई बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखीं।

इनके साथ ही उन्हों ने बीसियों पुस्तिकायें भी लिखीं, जिनमें ईसाई, मुहमदी और पौराणिक प्रभृति विरोधियों के आक्षेपों के दान्त-तोड़ उत्तर दिये गये थे। परन्तु इस सम्पूर्ण अवधि में क्या पण्डित लेखराम जी किसी एक ही स्थान पर जमकर बैठे रहे थे ? क्या उन्होंने किसी पुस्तकालय की सहायता से अपने ग्रन्थ रचे थे ? नहीं, वे तो चिरकाल से मुसाफिर बने आर्यावर्त के विभिन्न नगरों में, ग्रामों में, वनों और पहाड़ों में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन चरित्र के लिये सामग्री का संचयन करते हुए दौड़ते फिर रहे थे। इसी लिये उन्होंने अपना नाम ही "आर्य मुसाफ़िर" रख लिया था। आवश्यक सामग्री एवं साधनों के बिना, पुस्तकालयों की सहायता के पूर्ण अभाव में और निरन्तर कष्ट-साध्य यात्रा प्रसंगों में रहकर, सैंकड़ों व्याख्यान देते हुए और शास्त्रार्थ करते हुए भी पण्डित लेखराम जी ने वह काम करके दिखा दिया जो बड़े-बड़े साधन सम्पन्न विद्वानों से भी न हो सका।

धार्मिक विषयों में अनुसन्धान करने की प्रबल रुचि पण्डित लेखराम जी में लड़कपन से ही मौजूद थी। यही कारण है कि जब महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित्र के लिए घटनाओं और आवश्यक सामग्री का संचय करने की आवश्यकता हुई, तब पण्डित लेखराम जी के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति उस काम के लिये उपयुक्त न समझा गया। उस समय से विभिन्न प्रदेशों में वैदिक-धर्म का प्रचार करते हुए आर्य मुसाफिर ने जो प्रसिद्धि प्राप्त की, वह शायद ही कभी किसी उपदेशक को प्राप्त हुई होगी। वैदिक-धर्म की महत्ता को स्वीकार करने के बाद, पण्डित लेखराम जी का जीवन एक सार्वजनिक जीवन बन गया था। इस लिए उन के सार्वजनिक जीवन का विवरण इस छोटे से लेख में प्रस्तुत करना, हमारे लिये सम्भव नहीं है। यहां तो हम केवल यही दिखाना चाहते हैं कि पण्डित लेखराम जी का जीवन इस प्रकार का था कि प्रत्येक मत वा पक्ष के अनुयाई को न केवल यह कि उनका सम्मान करना चाहिये; अपितु सत्य प्रेमी जनों को उनके जीवन से शिक्षा भी ग्रहण करनी चाहिये।

मुहम्मदी-मत की पड़ताल आर्य मुसाफ़िर ने विशेष रूप से की थी। इस लिये उन की अधिकांश रचनायें उस के विषय में ही हैं। पण्डित लेखराम जी की लेखनशैली की यह विशेषता है कि वे पहल नहीं करते। अर्थात् अपनी ओर से किसी के ऊपर आक्रमण नहीं करते। उन्हों ने अपनी खण्डनात्मक सभी पुस्तकें विरोधियों के सर्वथा अनुचित और तीव्र आक्षेपों व आक्रमणों के उत्तर में ही लिखी हैं। इस लिये कोई भी न्याय-प्रिय व्यक्ति उन के विरुद्ध कटुता वा कठोरता का आक्षेप नहीं कर सकता। परन्तु कुछ मुहम्मदी प्रचारकों ने, विशेष रूप से मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी ने पण्डित जी के लेखों तथा ग्रन्थो से घबराकर, कठोरता के दोष लगाने और मुहम्मदी तलवार से उन्हें धमकाना आरम्भ कर रखा था। पण्डित जी की प्रभावपूर्ण युक्तियों से घबरा कर मुल्लां-मौलानाओं ने अपने भोले-भाले मत वालों को बहकाना और उकसाना भी आरम्भ कर रखा था। पण्डित लेखराम जी की लेखनी की गति को रोकने के लिये कई उपाय किये गये थे। अदालत का आश्रय लेने से भी विरोधी जन चूके नहीं थे। अन्त में जब उनके सभी उपाय व्यर्थ हो गये, तब उन्हें एक दुष्ट, धोकेबाज मुसलमान के खंजर का शिकार बना दिया गया। इस प्रकार जड़ता और मूर्खता ने प्रगति और बुद्धिवाद पर विजय प्राप्त करने

का प्रयत्न किया। पण्डित लेखराम जी का भौतिक शरीर लुप्त हो गया। वे हाथ, जिन्हों ने लेखनी उठा कर पक्षपातियों और सम्प्रदायवादियों के मूढ़ विश्वासों को चकनाचूर कर दिया था, अब फिर कभी भी अपनी लेखनी को न उठा सकेंगे। किन्तु फिर भी सत्य की सीधी काट को रोकने का सामर्थ्य किस में है ?

श्री पण्डित लेखराम जी एक महान् कर्मयोगी थे। इसका प्रमाण इस से बढ़कर और क्या हो सकता है कि लगभग बारह वर्ष के समय में लगातार प्रचार कार्य करते हुए उन्होंने महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित्र के लिये लगभग तीन हजार पृष्ठ की सामग्री एकत्रित की। इस के साथ ही बहुत-सी श्रेष्ठ पुस्तकें भी लिखीं। वे और भी कई सौ पृष्ठों की लेख-सामग्री तैयार करके छोड़ गये थे। अपने कर्तव्य पालन की धुन में वे दिन रात एक कर देते थे। उनकी स्वतन्त्रवृत्ति का संकेत हम पहले ही कर चुके हैं। धार्मिक बातों में बहुत दृढ़ होने पर भी उन का हृदय बहुत कोमल था। किसी को कष्ट में देख कर वे द्रवित हुए बिना न रहते थे। अधिक लेख विस्तार का तो यहां स्थान नहीं है, फिर भी उनकी दुर्बलता को भी हमें जान लेना चाहिये। उन के साहस, इन्द्रिय दमन, सत्यविश्वास और ऊँचे आध्यात्म-ज्ञान ने उन्हें वैदिक-धर्म का ऐसा दृढ़ अनुयाई बना दिया था कि लोग उन्हें पक्षपाती समझने लगे थे। जब उनका यह मनोभाव जागता था, तब दूसरों की दुर्बलताओं को क्षमा करना उन के वश में न रहता था। अवैदिक सिद्धान्तों की प्रशंसा सुन कर वे चुप नहीं रह सकते थे। वे कभी-कभी प्रतिपक्षियों की सामाजिक पद-मर्यादा का कुछ भी विचार न करके, उनके ऊपर निर्भय हो कर झपट पड़ते थे। इसी लिये लाला कांशी राम जी ने, जोकि ब्राह्मसमाजी और पंडित लेखराम जी के मित्र थे, पण्डित जी को आर्यसमाज के अली * की पदवी प्रदान कर रखी थी। परन्तु पण्डित जी की यह दुर्बलता उन के व्याख्यानों में ही प्रकट होती थी। उन की पुस्तकों में तो इस दुर्बलता की गन्ध भी नहीं है।

वेद, वैदिक-समाज, वैदिक सिद्धान्त, और वेदाचार्य महर्षि दयानन्द के प्रति उन के हृदय में इतना अधिक सम्मान-भाव था कि लोग उसे पागलपन की सीमा तक पहुँचा हुआ कहा करते थे। [illegible] भी [illegible] धर्म के लिये काम करने वाले और, मर मिटने वाले तो पागल होते ही हैं। यदि पागल न हों तो वे भी अन्य दुनियादारों की तरह रहें। पण्डित जी का पागलपन एक शुभ और पावन-पागलपन था।

६ माच सन् १८९७ को सायंकाल के समय एक पथभ्रष्ट मुसलमान ने, जोकि शुद्धि का बहाना करके आया था, धोखा देकर, पण्डित जी के पेट में छुरा घोंप दिया। हत्यारा भाग गया। पण्डित जी को बचाने के सभी सम्भव उपचार किये गये; परन्तु सब व्यर्थ। रात को दो बजे गायत्री-मन्त्र का जाप करते हुए, धर्म वीर पण्डित लेखराम जी ने इस नाशवान संसार को छोड़ा, और वे अपने सच्चे देश को चले गये। चलते समय उन्हीं ने वहां उपस्थित आर्य पुरुषों को अपना यह अन्तिम आदेश दिया था कि :—

* हजरत अली इस्लाम के चौथे खलीफ़ा, सदाचारी विद्वान् और उत्साही धर्म प्रचारक थे। —अनुवादक।

तहरीर का काम बन्द न होने पाये :

आर्य पुरुषो ! विरोधियों के आक्षेपों और आक्रमणों के समुचित उत्तर देने का भार अब सब पर है। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे हमें बल और उत्साह प्रदान करें। जिस से हम धर्म मर्यादानुसार अपने कर्तव्य का पालन कर सकें।

*सती का शिक्षादायक जीवन

[लेखक—स्व. स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज]

देवी लक्ष्मी का भौतिक शरीर अब कहां है ? चार जुलाई सन् १९०२ ई० के सद्धर्म प्रचारक सभी को ज्ञात हो चुका है कि दो जुलाई सन् १९०२ ई० को देवी लक्ष्मी का देहावसान जालन्धर में हो चुका है। धर्मवीर पण्डित लेखराम जी के साथ मेरा जो प्रकट-सम्बन्ध अब तक शेष [illegible] रहा था, इस प्रकार उसका भी अन्त हो गया। जालन्धर की सूचना है कि देवी की श्मशान-[illegible] आर्य पुरुषों की भीड़ बहुत अधिक थी। जालन्धर के आर्य पुरुषों ने देवी लक्ष्मी के अन्त्येष्टि-[illegible]में, बड़ी संख्या में भाग लेकर अपने एक आवश्यक कर्तव्य का पालन किया है। इसके लिये [illegible]आत्मा का धन्यवादी हूं।

लक्ष्मी देवी का जीवन, धूम-धड़ाके का जीवन न था। इस समय तो ऐसी महिलायें भी हैं, जिन्होंने संसार में बहुत अधिक शोर मचा रखा है। और कुछ ऐसी देवियां भी हैं जिन को [illegible] केवल दिखावे के लिये ही प्रसिद्ध कर रखा है। इस प्रकार की स्त्रियों ने अब तक संसार [illegible] लिये कुछ भी काम नहीं किया है। आगे भी उन से कुछ आशा नहीं की जा सकती। [illegible]श में इस प्रकार की सती स्त्रियां भी हो चुकी हैं, और इस समय की पतित अवस्था में भी ऐसी सती देवियां प्रकाश में आती रहती हैं कि जिन के शुभ कर्मों और शिव-संकल्पों ने संसार को रसातल में जाने से बचा रखा है। श्रीमती लक्ष्मी देवी भी एक ऐसी ही श्रेष्ठ [illegible]

[illegible]क्ष्मी देवी कब और कहां पैदा हुई ? उनके माता-पिता के नाम क्या थे ? उनका बचपन [illegible]? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने में हमें कोई लाभ नहीं। इतना मालूम है कि उनका जन्म [illegible]के समीप एक पहाड़ी गांव में हुआ था। यद्यपि पता लगाकर उनके पिता और भाइयों के [illegible] भी लिखे जा सकते हैं, परन्तु उन से यही ज्ञात होगा कि हमारी सम्मान के योग्य देवी देहाती [illegible] घर में अन्य सामान्य लड़कियों की तरह से ही पली थी। जो लोग धर्म-वीर पण्डित [illegible] के जीवन से परिचित हैं, वे जानते हैं कि जब लक्ष्मी जी की आयु सोलह वर्ष की थी [illegible] विवाह पण्डित लेखराम जी के साथ हुआ था। विवाह के दो तीन वर्ष बाद पण्डित जी [illegible] जी को जालन्धर में अपने साथ लाना आरम्भ किया था। मेरे साथ पण्डित जी का जो [illegible]म्बन्ध था, उसके आधार पर मैं जानता हूं कि आरम्भ से ही श्रीमती लक्ष्मी देवी जी के [illegible] वाचालता का दोष न था। वे तो आवश्यकता से भी कम बोला करती थीं। स्वभाव में [illegible] कोटि का था। कोई किसी प्रकार उनकी आवश्यकता वा कष्ट को जान ले, और उन का कष्ट [illegible]र दे, तो कर दे। अपनी ओर से किसी से कहना और किसी को किसी प्रकार का कष्ट [illegible] जानती ही न थीं।

विवाह के समय से ही आर्य मुसाफ़िर ने अपने मन्तव्य के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया

* सती से अभीष्ट आर्य मुसाफ़िर पं० लेखराम जी की धर्म पत्नी है।

था। अर्थात् जिस उत्साह के साथ वे मौखिक रूप में स्त्री-शिक्षा का प्रचार किया करते थे, उसी उत्साह के साथ, उन्होंने अपनी धर्म-पत्नी जी को भी पढ़ाना आरम्भ किया। जालन्धर में स्त्री आर्य समाज और आर्य समाज के साप्ताहिक सत्-संगों में श्रीमती लक्ष्मी देवी जी नियम पूर्वक भाग लिया करती थीं। स्वर्गवासी आर्य मुसाफिर जी अपनी धर्मपत्नी को भी स्त्री जाति की सेवा के लिये, उसी प्रकार से तैयार करने के इच्छुक थे, जैसे कि वे स्वयं पुरुष जाति की सेवा किया करते थे। श्री पण्डित जी ने मुझे कई बार अपने भावी जीवन का कार्यक्रम बतलाया था। श्री मती लक्ष्मी देवी का वर्णन भी उसमें होता ही था। यदि वानप्रस्थ की बात करते थे, तो उसमें भी लक्ष्मी देवी जी की बातें करते थे। धर्मवीर पण्डित लेखराम जी लक्ष्मी देवी जी को क्या बनाना चाहते थे ? यह उस समय-विभाग विषयक लेख से जाना जा सकता है, जो आर्य मुसाफिर की जीवन-चर्या के विवरण में सद्धर्म प्रचारक में छपा था। उस में प्रातः काल के कार्यों के सिलसले में लिखा है :—

"अग्निहोत्र को लक्ष्मी देवी जी कर लिया करें" अर्थात् गार्हपत्य-अग्नि की रक्षा का काम गृह पत्नी को सौंप कर उन्हें आर्या पद की अधिकारिणी समझ लिया गया था। उसी लेख में तीसरे अनुक्रम पर लिखा है :—

"११ बजे से २ बजे तक भोजन, आराम, घरके आवश्यक काम-काज और लक्ष्मी देवी जी को पढ़ाया जाये।"

जालन्धर में ही श्रीमती लक्ष्मी देवी जी की गोद हरी-भरी हुई। और वहां ही उनको अपने प्रिय पुत्र का वियोग भी सहन करना पड़ा। देवी जी के पुत्र के रोग का एक कारण वह तैयारी भी थी जो कि वे अपने भावी सेवा-कार्य के लिए किया करती थीं। श्रीमती लक्ष्मी देवी जी के स्वभाव में लज्जा और विनम्रता इतनी अधिक थी कि एक दो ऐसी स्त्रियों को छोड़ कर, जिनके साथ उनकी संकोचशीलता हट चुकी थी, अन्य अपरिचित स्त्रियों के साथ साधारण वार्तालाप में भी वे सकुचाया करती थीं।

पण्डित लेखराम जी चाहते थे कि उनकी धर्मपत्नी उन से धर्म-शिक्षा की तैयारी में, उन से सहायता लेकर, महिला-मण्डल में वैदिक-धर्म का प्रचार करे। उन्होंने मुझ से कई बार पूछा कि लक्ष्मी देवी जी का उत्साह किस प्रकार बढ़ाया जाये ? मैंने परामर्श दिया कि वे उनको आर्यसमाजों के वार्षिक उत्सवों पर अपने साथ ले जाया करें। अस्तु ! मेरे इस परामर्श को स्वीकार करके ही वे श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अम्बाला छावनी और मथुरा की आर्य समाजों के उत्सवों में अपने साथ ले गये थे। जहां से लड़के को बहुत अधिक रुग्णावस्था में वापिस लाना पड़ा था। यह उल्लेख सम्भवतः सन् १८९६ ई० की वर्षा ऋतु के विषय में है। इसके पश्चात् क्योंकि महर्षि दयानन्द जी के जीवन-चरित्र की छपाई का कार्य आरम्भ होने वाला था, इस लिए श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अपने पति के साथ जालन्धर से लाहौर जाना पड़ा।

एक दुःख से तो अभी पूरा छुटकारा मिला भी न था, अर्थात् पुत्र की मृत्यु के शोक को तो वे भूलने भी नहीं पाईं थीं कि एक धोकाबाज शैतान, उनके सामने ही, उनके प्यारे पति के पेट में छुरा घोंप कर भागने लगा। उस वीरांगना ने आगे बढ़कर हत्यारे के हाथ से छुरा छीन लेने का यत्न किया। और ऐसा करने में उनका हाथ घायल हो गया। इन घटनाओं को वे सज्जन भली प्रकार जानते हैं, जिन्हों ने मार्च सन् १८९७ ई० के समाचार-पत्रों को और उनके जोश भरे लेखों एवं समाचारों को पढ़ा है।

अपने पुत्र और पति दोनों को ही वैदिक-धर्म की सेवा में बलिदान करके लक्ष्मी देवी जी अपनी सास के साथ अपने घर चली गईं। वहां से कुछ समय पश्चात् फिर दोनों देवियां जालन्धर में मेरे घर आईं। उस समय मुसलमानों के फ़सादी टोले में आर्य समाज के विरोध की आग बड़े जोर से भड़क रही थी। और आर्य समाजियों को प्रतिक्षण अपने नेताओं तथा प्रचारकों की जान का खटका लगा रहता था। क्योंकि जालन्धर आर्य समाज के सभासद अधिक प्रभाव शाली समझे जाते थे। और जालन्धर के मुसलमानों में भी पक्षपात का दोष नाम-मात्र को भी न था, इस लिए मैं ने धर्मवीर की माता जी से निवेदन किया कि वे अपनी पुत्रवधु के साथ मिलकर जालन्धर में ही निवास करें। परन्तु माता जी को उनके सम्बन्धियों का प्रेम रावलपिण्डी की तरफ खींचता था। और लक्ष्मी देवी जी अकेली रहना न चाहती थीं, इस लिये दोनों देवियां फिर रावलपिण्डी चली गईं।

रावलपिण्डी जाकर लक्ष्मी देवी जी का स्वास्थ्य चिन्ताजनक रूप में बिगड़ने लगा। एक साधारण स्त्री भी अपने साधारण-पति के वियोग में दुःख सागर में डूब जाती है। ऐसी अवस्था में एक अत्यन्त भावुक और संवेदनाशील महिला के हृदय पर अपने धर्मवीर, साहसी और यशस्वी पति की मृत्यु का क्या प्रभाव हुआ होगा? इसका अनुमान सरलता से किया जा सकता है। दिन-रात का शोक मनुष्य को खाने-पीने योग्य नहीं रहने देता। पाचन-शक्ति बिगड़ गई। शरीर दुर्बल हो गया। दिन प्रति दिन अवस्था बिगड़ती ही जाने लगी। मुझे इन सब बातों की कोई सूचना ही न मिली। जब गुरु-कुल के लिये भिक्षा मांगता हुआ मैं सन् १८९९ ई० में रावलपिण्डी पहुँचा, तब देवी के दर्शन करके, मैंने यह सब जाना और मुझे महान् दुःख हुआ। उनका शरीर सूख कर कांटा होगया था। घर में साधारण-सा सामान था, फिर भी सफ़ाई की ओर ध्यान ही न था। शोक और सन्ताप के सिवा इनका साथी और कोई भी नहीं है, मुझे यही लगा। मैं ने फिर प्रार्थना की कि माता जी इनको साथ लेकर जालन्धर आ जायें।

श्री पण्डित लेखराम जी के परिवार में मैं सब से बढ़ कर सम्मान उन के चाचा श्री पण्डित गण्डा राम जी का करता हूँ, जोकि जिला पेशावर में डिप्टी इन्स्पैक्टर पुलिस हैं। जब मैं उन्हीं दिनों में पेशावर गया, तब श्री गण्डा राम जी ने मुझ से मिलकर ऐसी बातें कीं कि मेरी दृष्टि में उन का सम्मान और भी अधिक बढ़ गया। उन्हों ने मुझे प्रेरित किया कि मैं श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को जालन्धर ले जाऊं। और वहां कन्या विद्यालय में उन के पढ़ने का प्रबन्ध कर दूं। साथ ही यह भी कहा कि यदि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी अपना सब कुछ आर्य समाज को भेंट कर दें, तब भी मैं प्रसन्न हूं। क्योंकि भगवान् ने मुझे सब कुछ दे रखा है।

आर्य समाज रावलपिण्डी का वार्षिक उत्सव १७ व १८ दिसम्बर सन् १८९९ को निश्चित था। उस अवसर पर मैं फिर रावलपिण्डी गया। मैं ने फिर माता जी को प्रेरित किया। उस समय तक शायद पण्डित गण्डा राम जी भी अपना काम कर चुके थे। इस लिये माता जी ने स्वयं तो अपने सम्बन्धियों के प्रेम के कारण रावलपिण्डी छोड़ने से इन्कार कर दिया, परन्तु श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को जालन्धर जाकर रहने की अनुमति प्रदान कर दी।

उसी उत्सव पर सिकन्दराबाद की जो भजन-मण्डली रावलपिण्डी आई थी, उस ने धर्मवीर पण्डित लेखराम जी के विषय में बहुत अधिक जोशीले भजन गाये। उन भजनों को सुनाने के लिये, वह मण्डली लक्ष्मी देवी जी के पास भी गई। अपने ओजपूर्ण और वीररस में सने हुए, करुणरस भरे

भजनों से उस मण्डली ने गली के सभी स्त्री-पुरुषों को आठ-आठ आंसू रुलाया। बाद में मुझे पता लगा कि उन भजनों को सुन कर श्रीमती लक्ष्मी देवी बेहोश हो गई थीं। मुझे खेद है कि आर्य पुरुषों ने जो कार्य श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को प्रसन्न करने के लिये किया था, उसी ने उन के रोग को और भी अधिक बढ़ा दिया।

धर्म वीर पण्डित लेखराम जी के बलिदान के बाद ऐसे जोश भरे भजन प्रायः उन सभी जलसों में गाये जाते रहे हैं, जिन में श्रीमती लक्ष्मी देवी जी भी मौजूद होती थीं। परन्तु उन को सुन-सुन कर देवी जी प्रायः सर्वत्र ही बेहोश हो जाया करती थीं। मुझे यह रहस्य प्रथम बार तब ज्ञात हुआ, जब मार्च सन् १९०१ ई० में जालन्धर में एक विशेष सभा में, श्री पण्डित लेखराम जी के विषय में जोशीले भाषणों को सुन कर देवी जी मूर्छित हो गईं। उस समय से मैं सदा ही यह प्रयत्न करता रहा हूं कि देवी जी की उपस्थिति में किसी भी सभा, समारोह या उत्सव में धर्मवीर लेखराम जी के विषय में भाषण, कविता, गान आदि का कोई कार्यक्रम रखा ही न जाये। सन् १९०१ ई० में लाहौर आर्य समाज का जो उत्सव हुआ था, उस में भी देवी जी मूर्छित हो गई थीं। यही कारण है कि जब गुरुकुल के उद्घाटन-समारोह में कुछ भाईयों ने धर्मवीर पण्डित लेखराम जी के विषय में भजन सुनने की इच्छा प्रकट की थी, तब मैंने तुरन्त ही निषेध कर दिया था। कारण यह कि उस समारोह में श्रीमती लक्ष्मी देवी जी भी उपस्थित थीं।

हां, मैं आर्य समाज रावलपिण्डी के वार्षिक उत्सव का उल्लेख कर रहा था। अन्तिम दिन जब वेद-प्रचार के लिये अपील की गई, तब व्याख्यानदाता महोदय ने बड़े करुणाजनक शब्दों में वेद-प्रचार कार्य के लिये धर्मवीर पण्डित लेखराम जी के बलिदान का भी शब्द-चित्र प्रस्तुत किया। श्रीमती लक्ष्मी देवी जी ने उसी समय अपने कानों से सोने की बालियां उतार कर वेद-प्रचार-निधि में दे दीं। उस दान देने पर, देवी जी के सम्बन्धियों ने उस समय बड़ा शोर मचाया था, और देवी जी को उनके हाथों घोर कष्ट एवं अपमान भी सहन करना पड़ा था। परन्तु देवी जी ने अपने स्वाभाविक तपोबल के आधार पर उस कष्ट को सहन कर लिया था।

ऐसे समय में जब कि उस दान के कारण सास की तरफ़ से भी बहू के प्रति कठोरता का व्यवहार किया गया था, यह आशा नहीं की जा सकती थी कि बहू के हृदय में सास के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न न होने पायें। परन्तु उस समय भी जब मैंने आज़माया, तो इस प्रकार की संकीर्णता से मैंने लक्ष्मी देवी जी को सर्वथा ही मुक्त पाया। जब श्रीमती लक्ष्मी देवी जी जालन्धर आने लगीं, तब यह आवश्यक हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ़ से माता जी और लक्ष्मी देवी जी को जो मासिक वृत्ति सम्मिलित रूप में निर्वाह के लिये दी जाती थी, उस का दोनों में उचित बटवारा हो जाये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अन्तरंग सभा में भी यह प्रश्न उठा। सभा ने मुझे यह कार्य सौंपा कि मैं दोनों के निर्वाह के लिये मासिक वृत्ति का पृथक्-पृथक् रूप में उचित निश्चय कर दूं। यह तो सभी जानते थे कि निर्वाह-वृत्ति पर धर्मवीर की विधवा का ही अधिकार है। परन्तु; क्योंकि माता जी भी साथ रहती थीं, इस लिये उनका निर्वाह-व्यय भी उसी में से मिलना उचित माना गया था। सभा के सदस्य समझते थे कि शायद लक्ष्मी देवी अपने लिये आठ और माता जी के लिये पाँच रुपये मासिक की व्यवस्था करेंगी। परन्तु हम सब को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि लक्ष्मी देवी जी ने स्वयं अपनी अन्तः प्रेरणा से ही माता जी के लिये दस रुपये मासिक स्वीकार कर लिये।

इसके पश्चात् मैं यात्रा में रहा। और यात्रा में रहकर ही पत्र द्वारा श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को जालन्धर जाने के लिये प्रेरित करता रहा। अन्त में जब गुरुकुल के लिये भिक्षा का काम पूरा करके मैं ८ अप्रैल सन् १६०० ई० को वापिस जालन्धर पहुँचा, तब मैंने देखा कि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी पहले ही वहां पधार चुकी हैं। उन के निवास का प्रबन्ध श्री लाला नगीनामल जी के मकान में कर दिया गया। और उन्हों ने कन्या महाविद्यालय में नियमपूर्वक पढ़ना आरम्भ कर दिया। पढ़ने का दृढ़-संकल्प करके लक्ष्मी देवी जी ने थोड़े समय में ही अच्छी प्रगति कर ली। परन्तु बीमारी के कारण उनकी शिक्षा में बारंम्बार विघ्न पड़ता रहा।

उन दिनों मेरी भावज और मेरी पुत्रियां प्रायः प्रति दिन श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अपने साथ लेकर सैर करने के लिये जाया करती थीं। और इस प्रकार उनकी पाचन-शक्ति एवं उनके शारीरिक बल को बढ़ाने व सुरक्षित रखने के प्रयत्न किये जाते थे। क्योंकि अकेली होने के कारण वे प्रायः एक ही समय भोजन बनातीं और उसे ही दो बार खाती थीं, इस लिये उनका स्वास्थ्य पूर्णतया सुधर न सका। उनको प्रायः प्रति सप्ताह पेट में बहुत अधिक दर्द हो जाता था। और अफ़ारे तथा कोष्ठबद्धता के कारण भारी कष्ट सहना पड़ता था। कभी-कभी तो पिचकारी के बिना मलविसर्जन ही न कर सकती थीं। यह सब होने पर भी उन्होंने सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के कुछ अंश भली प्रकार पढ़कर समझ लिये। इन के साथ ही उन्होंने सामान्य पढ़ाई और हिसाब की शिक्षा भी जारी रखी। चिकित्सा-पद्धति लक्ष्मी देवी जी ने उस विशेष श्रेणी में सीखी थी, जो कि श्री लाला देवराज जी ने श्री पण्डित विश्वनाथ जी से जारी करवाई थी। उस श्रेणी में पढ़ने वालियों में से यदि किसी ने कुछ लाभ उठाया, तो वह केवल लक्ष्मी देवी जी ने ही। नाड़ी की परीक्षा करना वे भली प्रकार जान गई थीं। कुछ औषधियों के गुण दोष और प्रयोग भी समझ चुकी थीं। सामान्य शिक्षा का क्रम चल ही रहा था। वे बहुत कुछ करने का प्रयत्न करती थीं, परन्तु आये दिन की बीमारी कुछ करने ही न देती थी।

उनकी कठिनाई और स्वास्थ्य की दुर्बलता आदि सब बातों पर विचार करके, मैंने अपनी पुत्रियों के साथ अपने ही घर पर श्रीमती लक्ष्मी देवी जी के रहने-रखने की व्यवस्था की। मेरी बड़ी पुत्री वेद कुमारी जी के साथ उन का प्रेम बहुत अधिक था। तभी मुझे और भी अच्छी तरह से यह जानने का समय मिला कि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी के विचार कैसे शुभ और उत्तम हैं? मैंने भी उनके उच्च विचारों को उत्साहित किया। और प्रसिद्ध चिकित्सक श्री डाक्टर गंगा राम जी से नियम पूर्वक उनका इलाज करवाना आरम्भ किया। उनका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन सुधरता गया। मेरी पुत्रियों के साथ ही लक्ष्मी देवी जी भी सत्यार्थ प्रकाश के कठिन-सन्दर्भ मुझ से पढ़ने लगीं। संस्कृत का भी आरम्भ कर दिया। कुछ आरम्भिक ज्ञान के बाद ऋजु पाठ के साथ ही लघु-कौमुदी पढ़ने का भी विचार कर लिया। परन्तु मैं एक ओर तो उन दिनों गोपीनाथ वाले मुकद्दमे में फंसा हुआ था, दूसरे मेरी पुत्री के विवाह की तैयारी भी जारी थी। इस लिये मुझे पढ़ाने का अवसर कम ही मिल पाता था। ऐसा होने पर भी लक्ष्मी देवी जी स्वयं अपने यत्न और अपनी प्रतिभा से ही सराहनीय उन्नति कर रही थीं। एक अवसर पर श्रीमती लक्ष्मी देवी ने उन्हीं दिनों मुझ से कहा था कि यदि दो वर्ष तक संस्कृत व्याकरण और धर्म ग्रन्थों को इसी प्रकार पढ़ने का अवकाश और मिला, तो वे कन्या आश्रम जालन्धर का कार्य-भार सम्भाल लेंगी। और कन्या महाविद्यालय में अध्यापन कार्य भी भली प्रकार से कर सकेंगी।

उन्हीं दिनों मुझे गुरुकुल की सेवा का भार सौंपा गया। और मुझे समय से पहले ही लक्ष्मी देवी जी से कन्या आश्रम का कार्य सम्भालने के लिये प्रार्थना करनी पड़ी। उन्होंने मेरी प्रार्थना को बिना ननुनच के स्वीकार कर लिया। दिसम्बर सन् १९०१ ई० के मध्य में उन्होंने कन्या आश्रम जालन्धर का कार्य आरम्भ कर दिया। तब मुझे पता चला कि उनके अन्दर प्रबन्धकार्य की कैसी ऊँची योग्यता मौजूद है। मैंने तो पहले इस बात की ओर ध्यान ही न दिया था कि चुपचाप रहने वाली एक साधारण-सी दिखाई देने वाली यह देवी अपने अन्दर इतनी बड़ी शक्ति को धारण किये हुए है। और वह कन्याओं पर पूरा नियन्त्रण रख कर, उन से प्रेम करते हुए, उनकी उन्नति में बहुमूल्य सहयोग भी दे सकती है।

दिन रात काम अधिक और आराम कम करने के कारण उनको जुकाम तो मेरे सामने ही हो गया था। ७ जनवरी सन् १९०२ ई० को मैं जालन्धर से चला आया। उस समय से श्रीमती लक्ष्मी देवी जी लाला सोमनाथ जी मैनेजर कन्या आश्रम के साथ आश्रम का काम करती रहीं। श्री सोमनाथ जी को यह मालूम न था कि वे अपनी बीमारी का हाल बतलाया ही नहीं करती हैं। जब जनवरी के अन्त में मैं फिर जालन्धर गया, तब मुझे लक्ष्मी जी की बीमारी का हाल मालूम हुआ। मैंने श्री सोमनाथ जी का ध्यान उधर दिलाया। उस दिन से लाला सोमनाथ और उनकी धर्मपत्नी जी ने उनकी ख़बर लेनी शुरू की। जिस प्रेम और श्रद्धा से उन दोनों ने लक्ष्मी जी की सेवा की है, उसके लिये आर्य जनता को उनका धन्यवाद करना चाहिये। लाला सोमनाथ जी ने सेवा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। परन्तु बीमारी बढ़ती ही चली गई। यहां तक अवस्था बिगड़ी कि वे दिन में तीन-तीन बार मूर्छित होने लगीं। फ़रवरी के अन्त में मैं फिर वहां गया। उस समय वे और भी अधिक दुर्बल हो चुकी थीं। परन्तु उस समय तक भी कुछ न कछ पढ़ने का क्रम चल ही रहा था इसके पश्चात् लक्ष्मी देवी जी ने बहुत दुर्बल होने पर भी गुरुकुल के उद्घाटन-समारोह में सम्मिलित होने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

फ़रवरी के अन्त में मेरे वहां जाने पर उन्होंने यह विचार प्रकट किया था कि उनके पास जो तीन हज़ार रुपये मौजूद हैं, उनमें से दो हज़ार रुपये वे धर्मार्थ कार्यों में दान देना चाहती हैं। गुरुकुल-भूमि में वे मेरी छोटी पुत्री को अपने साथ लेकर आई थीं। आते ही वे कनखल में बीमार हो गईं। वहां पहुँचने पर गंगा-स्नान से उन्हें कुछ लाभ भी हुआ। ज्वर हट गया। परन्तु वह पुराना दर्द फिर आरम्भ हो गया। डाक्टरी उपचार से आराम न हुआ, तब श्री पण्डित गंगा दत्त जी की दवा दी गई। दो ही दिन में उस दवा से अच्छा लाभ पहुँचा। मुझे विश्वास हो गया कि पण्डित जी की दवा और गंगा-जल से उनको अवश्य ही पूर्ण लाभ हो जायेगा। उस समय यहां पर पूर्णतया अभाव था, सुख-सुविधा और साधन-सामग्री का। सब का निवास तम्बू-डेरों में था। तथापि मैंने लक्ष्मी देवी जी से अनुरोध किया कि वे कुछ समय तक गुरुकुल-भूमि में रहें। और अपने स्वास्थ्य को सुधारें। स्वयं लक्ष्मी देवी जी को भी बड़ा स्वास्थ्य लाभ प्रतीत हो रहा था। और वे भी समझती थीं कि उस दवा से अवश्य ही उन्हें पूर्ण लाभ हो जायेगा। फिर उन्हें गुरुकुल के काम और मेरी कठिनाइयों का ध्यान आया। इस पर उन्होंने यहां से जाना ही उचित समझा।

उनके उस समय के उच्च भाव को मैं कभी भी भूल न सकूंगा। उनके शब्द ये थे—"भाई जी! यदि ईश्वर को मुझे जीवित रखना है, और मुझे अपनी बहिनों की सेवा के योग्य बनाना है तो वहां भी मैं अपने कर्मों का फल भोगने के बाद अवश्य ही स्वस्थ हो जाऊंगी। परन्तु यहां रहने से तो आप का सारा ध्यान, जो गुरुकुल की सेवा में लगना चाहिये, बट जायेगा।"

इसी उत्सव पर लक्ष्मी देवी जी ने एक छात्रवृत्ति देने के लिये वह अपना दो हज़ार रुपया भी गुरुकुल को दान में दे दिया। जब उन्होंने मुझ से अपने दान की बाबत कहा, तब मैंने उन्हें फिर भली प्रकार सोच विचार करने की प्रेरणा की थी। और साथ ही यह भी जतलाया कि लोग कहेंगे कि क्योंकि ये जालन्धर में रहती थीं, इस लिये मैंने इस बात का लाभ उठाकर उनका दो हज़ार रुपया अपनी संस्था के लिये ले लिया है। परन्तु देवी जी ने मेरी बात अनसुनी कर दी फिर मैंने पण्डित रामभजदत्त जी प्रधान आर्य प्रति निधि सभा पंजाब से, जो कि इस उत्सव में पधारे हुए थे, श्रीमती लक्ष्मी देवी जी के दान के संकल्प का हाल बतलाया। उन्होंने भी मुझे यही परामर्श दिया कि मैं लक्ष्मी देवी जी को पुनरपि विचार करने की प्रेरणा करूं। मेरे दूसरी बार विचार करने को कहने पर वे बोलीं—"भ्राता जी! जीवन का भरोसा नहीं है। न जाने कब प्राण निकल जावें? यदि संसार के कहने का ही विचार किया जायेगा, तब तो शायद कोई भी शुभ कार्य न हो सकेगा।" इस दान की सूचना जनता को देते हुए पण्डित रामभजदत्त जी ने कहा था:—कि वे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब को प्रेरित करेंगे कि सभा दो हज़ार रुपये में ही एक स्थायी छात्र-वृत्ति आर्य मुसाफ़िर के नाम पर गुरुकुल को देने की व्यवस्था करे।"

गुरुकुल के उद्घाटन-समारोह से जब लक्ष्मी देवी जी जालन्धर लौटीं, तब वहां प्लेग की महामारी फूट पड़ी थी। दूसरे ही दिन वे लाहौर चली गईं। और वहां से सीधी रावलपिण्डी के लिये रवाना हुईं। वहां जाकर, उनका स्वास्थ्य और भी अधिक बिगड़ गया। बीमारी का प्रकोप एक तरफ़ था। दूसरी तरफ दो हज़ार रुपया गुरुकुल को दान दे देने पर सम्बन्धियों की ओर से लानत फटकार और तानों की भरमार थी। दिन प्रति दिन हालत बिगड़ने लगी। दस्तों और ज्वर ने आ घेरा। लक्ष्मी जी जानती थीं कि मैं गुरुकुल के कामों में व्यस्त हूँ। इस लिये मुझे उन्हों ने अपने हाल की कोई सूचना ही न दी। परन्तु लाला सोमनाथ जी को उन्होंने लिख दिया कि—"यदि उनकी प्राण-रक्षा करनी है, तो किसी को भेज कर उन्हें जालन्धर बुलवा लिया जाये।" यहां फिर एक कठिनाई सामने आई। श्री सोमनाथ जी आश्रम से पृथक् होकर रोपड़ जा रहे थे। अतः उन्होंने लिख भेजा कि यदि लक्ष्मी जी उनके परिवार के साथ रोपड़ चल कर रहना स्वीकार करें तो वे वहां पर आजीवन उनकी सेवा करते रहेंगे। श्रीमती लक्ष्मी देवी जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

श्री लाला सोम नाथ जी ने सत्य धर्म प्रचारक प्रेस के सहायक प्रवन्धक लाला बस्ती राम जी को बुलवाया कि वे जाकर श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अपने साथ ले आयें। मैं यह लिखना भूल गया हूँ कि पण्डित लेखराम जी के जीवनकाल से ही लाला बस्ती राम जी के परिवार पर पण्डित जी और लक्ष्मी देवी जी को बड़ा विश्वास था। ७ जून को लाहौर जाते समय मुझे जालन्धर के रेलवे स्टेशन पर लाला बस्ती राम जी मिले। और वे मेरे साथ ही लाहौर तक की यात्रा करके रावलपिण्डी चले

गये । ६ जून को मैं लाहौर से जालन्धर पहुँचा । श्रीमती लक्ष्मी देवी जी भी पधार चुकी थीं । मैं उनके दर्शन के लिये गया । उनकी दुर्बलता को देख कर मुझे भारी आघात लगा । चेहरे पर यक्ष्मा के लक्षण स्पष्ट थे । उसी समय श्री डाक्टर गंगाराम जी को बुलवाया गया । और नियमानुसार इलाज होने लगा ।

श्री लाला सोमनाथ जी अपने परिवार समेत १५ जून को रोपड़ जाने के लिये तैयारी कर चुके थे । परन्तु डाक्टर जी की राय में श्रीमती लक्ष्मी देवी जी की स्थिति यात्रा के कष्ट सहन करने योग्य न थी । डाक्टर गंगाराम जी ने स्टैथोस्कोप के द्वारा स्वास्थ्य-परीक्षा करके यह सन्देह प्रकट किया कि उन्हें राजयक्ष्मा रोग है । और शायद प्रभाव फेफड़ों पर भी पहुँच चुका है । तब सिविल सर्जन डाक्टर स्मिथ साहिब को भी बुलाया गया । उन्होंने भली प्रकार परीक्षा करके जिगर की बीमारी बतलाई । वे आशा के स्थान पर निराशा का वातावरण बनाकर चले गये । दवाइयों, अनुपानों और पथ्य के चक्कर चलने लगे । परन्तु उनके जीवन की सन्ध्या वेला समीप आती चली जा रही थी । जब जीवन ही समाप्त होने वाला था, तब मानव-प्रयत्नों से क्या लाभ होता ?

मुझे लौटकर शीघ्रातिशीघ्र गुरुकुल में पहुँचना चाहिये था । परन्तु कई कारणों से मुझे जालन्धर में ही ठहरना पड़ रहा था । एक मुख्य कारण लक्ष्मी देवी जी का रोग भी था । उन्हें मुझ पर बहुत अधिक भरोसा था । वे समझती थीं कि मेरे जालन्धर में रहने से उनका इलाज उचित रूप में हो सकेगा । मैं भी उनकी सेवा को अपना धर्म समझता था । एक तो इस लिये कि उनको धर्मवीर पण्डित लेख राम जी आर्य मुसाफिर की धर्मपत्नी होने का गौरव प्राप्त था । दूसरे इस लिये कि उनके शील स्वभाव और सद्गुणों को मैं व्यावहारिक रूप में उत्तम देख चुका था । और मैं हृदय से उनका सम्मान किया करता था ।

उन का शरीर दिन प्रतिदिन घुलता जा रहा था । मेरे सामने भी शीघ्र ही इधर पहुँचने की जल्दी थी । मैंने चिकित्सा का प्रबन्ध श्री लाला वज़ीर चन्द्र जी को सौंपा । रात की गाड़ी से चलने की तैयारी की । रात को मेरे चलते समय लक्ष्मी जी का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ गया । मैंने यात्रा स्थगित कर दी । फिर सवेरे की गाड़ी से चलना चाहा । साथी-संगी बोले कि मैं उनको बिन मिले ही चल दूं । फिर निश्चय हुआ कि मिलकर जाना ही ठीक है । चलते समय मैं उनको मिलने गया । नमस्ते का उत्तर देकर इस से पहले ही कि मैं कुछ बोलता, वे बोलीं—— "आप गुरुकुल को कब जायेंगे ?"

उत्तर में मैंने कहाः— "मैं तो जाने के लिये तैयार होकर ही आया हूं । यदि मेरी आवश्यकता हो तो मैं ठहर जाऊं ।"

देवी ने उत्तर दिया—"आप की वहां जरूरत है आप जाइये ।"
मैं अन्तिम नमस्ते कह कर चल दिया ।

मेरे चले आने के पश्चात् उनकी अवस्था दिनप्रतिदिन अधिकाधिक बिगड़ती चली गई । पहले तो लक्ष्मी जी को अपने स्वस्थ होने की कुछ आशा हो गई थी । मुझे सूचना पहुँची थी कि

जब कुछ भी लाभ न समझ कर डाक्टर गंगा राम जी की दवा बन्द कर दी गई, तब उन्होंने कहा था कि डाक्टर को बुला दो। और यह भी कहा था कि यदि बाबू जी यहां पर होते तो वे अवश्य ही बड़े डाक्टर को बुला देते। परन्तु ३ जुलाई को उन्हें भी विश्वास हो गया कि अब तो चलो चली की बात है। इसी लिये उन्होंने कुछ भद्रपुरुषों को बुला कर, उनके सामने अपनी सम्पत्ति के विषय में अपनी अन्तिम वसीयत भी लिखवा दी। जो कि अक्षरशः श्री बाबू अमर सिंह जी बी. ए. वकील ने लिख ली।

उस वसीयत के अनुसार उन्होंने दो हज़ार रुपया तो पहले ही गुरुकुल को दे देना स्वीकार किया। अपने सब भूषण, जो लगभग सात-आठ सौ रुपये मूल्य के होंगे, चार सौ रुपये नकद समेत उन्होंने अपनी सास को दिये, जो कि पहले ही जालन्धर आ चुकी थीं। एक सन्दूक में से कुछ रेश्मी कपड़े और चालीस रुपये के दो करेंसी नोट तथा आठ रुपये नकद थे । ये उन्होंने एक अनाथ बालिका को भेंट कर दिये, जिसका कि विवाह होने वाला था। शेष सब रुपया, जो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पास जमा था, जो शायद छः सौ रुपये था, वह लेखराम-स्मारक-निधि में भेंट कर दिया । इस वसीयत के करने के बाद दूसरे दिन उनकी वाणी भी बन्द हो गई । और ३ जोलाई को उनके प्राण पखेरू उनके देह रूपी पिंजरे को तोड़ कर उड़ गये। आर्य पुरुषों ने वैदिक रीति से उनका अन्तिम संस्कार कर दिया।

लक्ष्मी देवी जी का जीवन सचमुच ही सती का जीवन था। अपने हृदय में ही सीमित रखकर जितना कष्ट उन्होंने सहन किया, उतना लेखों में पढ़ने वाले हम लोग कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकते। सती ने अपना काम पूरा किया और चल दी। हमारे शोक और सहानुभूति की उन्हें अब क्या परवाह है ? और क्या आवश्यकता ? इस में सन्देह नहीं कि पूर्ण मुक्तावस्था को वे न पहुँच सकीं, परन्तु इस में भी सन्देह नहीं कि वे अपने भावी जन्म में इस जन्म के संस्कारों के अनुरूप अवश्य ही उत्तम जन्म धारण करेंगी। और अपने अधूरे काम को पूरा करेंगी।

देवी ! तुम्हारे शुभ-संकल्प ऐसे तो न थे कि पूरे ही न होते। परन्तु इस अभागे देश के भाग्य ही ऐसे न थे कि तुम्हारे सहयोग से इस का कल्याण होता। प्रिय पाठक वृन्द ! उस सती का जीवन चरित्र आजकल की तड़क-भड़कदार जीवनियों जैसा तो नहीं है। परन्तु क्या इस से आपको कुछ भी शिक्षा नहीं मिल सकती ? क्या आप यह भी नहीं सोच सकते कि उस देश की अवस्था बहुत ही अधिक ख़राब होगी, जिस में अपने अन्दर परोपकार का उत्कट भाव रखकर भी एक शिव-संकल्प वती देवी अपनी शुभ-कामनाओं की पूर्ति न कर सकी ?

सच्ची सहानुभूति आजकल इस देश में कहां है ? वैदिक-धर्म की सच्चाइयों और अच्छाइयों का डंका बजाते हुए भी हमारे जैसे पतित आर्य समाजियों में धर्म के गौरव को अनुभव करने का विशुद्ध भाव कहां है ? इस सामाजिक अवस्था में समाज-सेवा की ओर अग्रसर होने का साहस कोई कैसे कर सकता है ? ऐसा वीर पुरुष कौन है, जो सारे संसार के विरोध एवं व्यंग वाणों की मार, तथा घर वालों के तानों को सहन करके धर्म-पालन में दृढ़ रह सकता है। इस सारे अन्धकार में मुझे एकही चमत्कार दिखाई देता है। और वह है, श्रीमती लक्ष्मी देवी जी जैसी सतियों की सहनशीलता। उनका

प्रभाव उनके साथ ही समाप्त नहीं होता; अपितु वह आने वाली सन्तति को भी प्रभावित किया करता है। वह चिरस्थाई होता है।

हे दयानिधे ! यदि हमारी की हुई इच्छापूर्ण हो सकती है, और यदि अपने दुष्कर्मों का दण्ड यह देश भोग चुका है, तो दिवंगता लक्ष्मी देवी जी की आत्मा को फिर ऐसी अवस्था में पैदा करो कि वह इस जन्म से भी चौगुनी तैयारी करके अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सके।

❀ ओ३म् ❀

सृष्टि का इतिहास

आवश्यकता

आर्यावर्त्त में तथा अन्य देशों में विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बहुत बड़ी संख्या में होने लगा है। परन्तु उनमें से किसी एक में भी प्राचीन ऋषियों के गौरव और उन्होंने जो उत्तमोत्तम सत्य विद्यायें प्रचारित एवं प्रकाशित की थीं, उनका उल्लेख नहीं होता है। ज्योतिष-विद्या जो कि इतिहास का एक मात्र मुख्य आधार है, कुछ समय से उसकी एक नई शाखा का भी प्रचलन देखने में आता है। यह नई शाखा 'फलित-ज्योतिष' के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् अब जन साधारण 'ज्योतिष' शब्द से दो प्रकार की विद्याओं का ग्रहण करने लगे हैं। एक तो गणित-ज्योतिष और दूसरा फलित-ज्योतिष।

जिस प्रकार दो और दो चार होते हैं। उसी प्रकार गणित ज्योतिष को भी जो कि वास्तविक ज्योतिष है, सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ स्वार्थियों को छोड़ फलित-ज्योतिष को तो सभी अस्वीकार करते हैं। यूरोप और अमेरिका के सभी प्रसिद्ध ज्योतिषी फलित-ज्योतिष को नहीं मानते। आर्यावर्त के प्रकाण्ड ज्योतिषी बापू देव जी भी फलित-ज्योतिष को अस्वीकार करते हैं। इसी प्रकार प्राचीन काल के सब ज्योतिषी भी फलित-ज्योतिष को स्वीकार नहीं करते थे।

जिस प्रकार सर्वथा न होने पर भी कुछ लोग अन्ध-विश्वासों के वश में होकर, पारस-पत्थर, मोहन-मन्त्र, चिन्तामणि और हुमा नामक पक्षी के अस्तित्व को मानते हैं, और अपना घर बरबाद करके भी इनको प्राप्त करना चाहते हैं, वैसी ही दशा फलित-ज्योतिष मानने वालों की भी है। रमलवालों के समान ही ये लोग भी चालाक होते हैं। ये वाकछल, अनुमान, मनोविज्ञान, सामुद्रिक, जासूसी, युक्ति आदि के द्वारा भोले-भाले लोगों को ठगते रहते हैं। यहां तक होता है कि जुआ खेलने, खतना कराने, चोरी करने, व्यभिचार करने, शराब पीने, हत्या करने आदि दुष्कर्मों के करने के मुहूर्त भी अपने फलित ज्योतिष के द्वारा बतलाया करते हैं। आज जब कि दूरबीन अर्थात् दिव्यचक्षु अथवा दूरवीक्षण और खुरदबीन अर्थात् सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र आदि के अनुसन्धान में पाश्चात्य देशों के विद्वान् प्रतिदिन बढ़ चढ़ कर उन्नति कर रहे हैं, ऐसे उन्नति के समय में, क्या केवल उंगलियों पर गिनने और गुन गुनाने वाले, और, सारे ही भारत की खोटी दशा बतलाने वाले, मूर्खता, असभ्यता और जंगलीपन का कलंक भारत के माथे पर लगाने वाले ये फलित ज्योतिषी क्या सत्य-विद्या और सद्गुणों के बिना ही कुछ उन्नति कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं।

कहां वह आर्यों का प्राचीन सत्यानुराग, विवेक, विचार, अनुसन्धान और गुप्त रहस्यों व उद्घाटन और कहां यह फलित-ज्योतिष-वादियों का अन्ध एवं मूढ़ विश्वास ? तथा उन की भ्रम भरी बातें ?

चे निस्बत जाहे—सिफ़ली रा,
ब निगहत गाहे रूहानी ।
चे मानद गुलख़ने तीरह,
ब गुलशनहाये सुलतानी ।।*

फलित ज्योतिष के माननेवालों ने तो अपनी मूढ़—परम्परा के द्वारा उन्नति का द्वार ही बन्द कर दिया है। इसी लिये वे स्वयं भी सब प्रकार की उन्नति से वंचित होगये हैं।

वर्तमान् सृष्टि कब बनी ? कितने वर्ष हुए ? इस का हिसाब किस प्रकार है ? यह कब तक स्थिर रहेगी ? इस विषय में प्रमाण क्या—क्या हैं ? इस विषय में वेदों में क्या लिखा है ? प्राचीन तत्त्ववेत्ता ऋषियों के मन्तव्यों का वर्तमान् काल की आधुनिकतम खोजों और प्राकृतिक-जगत् में काम करने वाले अटल-नियमों से किस विषय में ? कितना मेल ? और, कितना विरोध है ?

वैदिक-सिद्धान्तों और प्राचीन महर्षियों के मन्तव्यों पर विभिन्न मत वालों ने क्या—क्या आक्षेप किये हैं ? और उनके उत्तर क्या हैं ? पाश्चात्य जगत् के विद्वानों के आविष्कार और उनकी खोज अभी कहां तक पहुँची है ? इस विषय में सभी देशों में इस समय प्रचलित सभी सम्वतों का उल्लेख यथातथ्य रूप में हम सब से पहले करेंगे। हमारी इच्छा है कि एक ऐतिहासिक खोज आरम्भ करें और उसके परिणाम पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करें।†

[लेखक की भूमिका समाप्त।]

* तुच्छ और दोषों से परिपूर्ण भौतिक ऐश्वर्य, आध्यात्मिक ऐश्वर्य की सुन्दरता की बराबरी कैसे कर सकता है ? एक काली कलूटी अंगीठी, या एक उजड़े हुए बग़ीचे का राजा के सुविस्तृत तथा सुवासित फूलों से लदे हुए बाग़ के साथ क्या मुकाबला हो सकता है ?

—अनुवादक।

† श्री ठाकुर अमरसिंह जी आर्यपथिक ने देहली से जो 'सृष्टि का इतिहास' छपवाया है, उसमें यह भूमिका नहीं है। सम्भवतः इस का अनुवाद करना वे भूल गये हैं।

—अनुवादक।

❁ ओ३म् ❁

सृष्टि का इतिहास

पहला—भाग

पहला खण्ड

ऐतिहासिक खोज *

प्रत्येक देश में काल गणना और लोक-व्यवहार की सिद्धि के लिये पृथक्-पृथक संवत् प्रचलित हैं। उनके प्रचलन की कथायें भी पृथक्-पृथक् हैं। संसार के कुछ सब से अधिक प्रचलित संवत् इस प्रकार हैं :—

१—आर्य संवत्, २—कलि गणित विद्या या क़लियुगी संवत्, ३—युधिष्ठिर संवत् या पाण्डव अब्द, ४—बुद्ध संवत्, ५—विक्रम संवत्, ६—शालिवाहन संवत, ७—ईस्वी संवत्, ८—चीनी संवत्, ९—ख़ताई संवत, १०—कालदिया संवत् ११—फारसी संवत, १२—मिश्री संवत्, १३—तौरी संवत्, १४—इब्राहीमी संवत्, १५—अस्पारटा संवत, १६—मौसमी संवत्, १७—दाऊदी संवत्, १८—यूनानी संवत्, १९—रूमी संवत्, २०—नाबूसारी संवत्, २१—सिकन्दरी संवत् २२—मुहम्मदी संवत्।

आर्य-संवत्

अब हम अनुक्रम पूर्वक प्रत्येक संवत् के विषय में कुछ अनुसन्धान करना चाहते हैं। आर्यावर्त के विद्वान् जिस प्रकार अन्य विद्याओं में पूर्ण दक्ष थे, उसी प्रकार काल गणना अर्थात् संवत् निश्चित करने और ऐतिहासिक घटनाओं की जांच पड़ताल करके समुचित रूप में स्थिर रखने में भी सर्वोपरि योग्य और प्रशंसा के पात्र हैं। उनके सभी नियम, विधान और अनुसन्धान श्रेष्ठ विद्याओं के पूर्ण ज्ञान के आधार पर प्रतिष्ठित होने के कारण, पत्थर की लकीर के समान अमिट होते थे। उनके

---

* यहां से यह पुस्तक 'सृष्टि का इतिहास' आरम्भ होती है। इस से पूर्व जो लेख है वह श्री पण्डित लेखराम जी द्वारा लिखित भूमिका है। कुलियात-आर्यमुसाफिर इस भूमिका को मिला कर छापा गया है। इस लिये वहां पुस्तक और भूमिका का भेद ज्ञात नहीं होता। हमने यह भेद तारीख़-ए-दुनिया के दूसरे संस्करण के आधार पर यहां दर्शाया है। वह दूसरा संस्करण हमारे पास सुरक्षित है। जोकि सन् १८९८ ई० में सद्धर्म-प्रचारक प्रैस जालन्धर में, श्री ला० मुन्शी राम जी (स्वा० श्रद्धानन्द जी) के प्रबन्ध से छपा था।

अनुवादक।

सिद्धान्तों की सत्यता से मतभेद प्रकट करने का प्रसंग कभी आता ही न था। उनकी इस महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा का एक आधार था, जिस के कारण उनके मन की बगिया सदा ही हरीभरी और प्रफुल्लित रहती थी। उनके उस प्रतिष्ठित और महत्वपूर्ण आधार का नाम वेद है।

कल्प का परिमाण

पवित्र वेद में जगद्विधाता ने इस तथ्य को बहुत उत्तम और युक्तियुक्त रूप में दर्शाया है कि मैं सनातन न्याय के नियमों के आधार पर, इस सृष्टि की रचना और संहार बारम्बार किया करता हूँ। और इस की रचना व संहार करने की मेरी शक्ति कभी भी विकार को प्राप्त नहीं होती। सूर्य, चन्द्र, ग्रह उपग्रह, समुद्र, मेघ आदि ये सभी पदार्थ मैं ने प्रकृति से बनाये हैं। और, अपने सर्वोपरि ज्ञान एवं बल के आधार पर मैंने ही उनको पारस्परिक आकर्षण की शक्ति से संयुक्त करके सुस्थिर किया है। उत्पन्न होने के पश्चात् जब तक यह सृष्टि स्थिर रहती है, उस समय को शास्त्रीय परिभाषा में एक "कल्प" कहते हैं। इसी की दूसरी संज्ञा सहस्र-महायुग भी है। और, वह एक कल्प चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का होता है। इस विषय में ईश्वर का यह उपदेश है :—

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः

अथर्व० काण्ड ८ अनुवाक १ मन्त्र २१

इस से पूर्व सृष्टि रचना का रहस्य बताते हुए परब्रह्म परमेश्वर उपदेश देते हैं कि इस सृष्टि की स्थिति कब तक रहती है ? इस विषय में इस प्रकार जाना कि दस हजार सैंकड़ा अर्थात् दस लाख तक शून्य देने पर, अनुक्रम पूर्वक दो तीन और चार लगाने से सृष्टि की आयु का हिसाब प्राप्त होता है।

[४३२००००००००]

इस से सिद्ध होता है कि यह सृष्टि चार अरब बत्तीस करोड़ वष तक स्थिर रहेगी।

जब वेद ने यह दर्शाया तब वेद व्याख्याकर ऋषियों ने इसे यथावत् रूप में जाना और इसका प्रचलन लोकव्यवहार में भी होने लगा। सूर्य सिद्धान्त, जो गणित ज्योतिष का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है उस में लिखा है :—

युगानां सप्तति सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धि प्रोक्तो जलप्लवः ॥१८॥
स सन्ध्यस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।
कृत प्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पंचदशः स्मृतः ॥१९॥
इत्थं युग सहस्रेण भूत संहार कारकः।
कल्पं ब्राह्महः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥२०॥

सूर्य सिद्धान्त।

मन्वन्तर और सन्धिकाल

इकहत्तर चतुर्युगियों को एक मन्वन्तर कहते हैं। उस की सन्धि एक सतयुग के समान उसके अन्त में होती है। ऐसे चौदह मन्वन्तर सन्धि सहित होते हैं। कल्प के आरम्भ में जो सन्धि होती है,

भी एक सतयुग के बराबर होती है। इस प्रकार सन्धियों की संख्या पन्द्रह होती है। वह जगद्विधाता मेश्वर एक हजार महायुग तक इस सृष्टि को स्थित रखता है। इस एक हजार महायुग के काल को ही त्र ब्राह्म दिन कहते हैं। और इसको ही एक कल्प भी कहते हैं। जितनी काल गणना एक ब्राह्म दिन एक कल्प की होती है, उतनी ही गणना एक ब्राह्म रात्रि की भी होती है।

इस से स्पष्ट है कि ऋषियों ने पहले चौदह मन्वन्तरों की गणना यथार्थ रूप में की। फिर नका विभाजन करके इकहत्तर चतुर्युगियों का विधान भी रचा।

गणित-शास्त्र की रीति से यह काल विभाग इस प्रकार है :—

चतुर्युगी या महायुग

[प्रथम नियम के अनुसार प्रथम चित्र]

नाम युग	युगों के वर्षों की निश्चित् संख्या
सतयुग	१७२८०००
त्रेतायुग	१२९६०००
द्वापर युग	८६४०००
कलियुग	४३२०००
एक चतुर्युगी या महायुग	४३२०००० वर्ष

यहां यह भी विदित हो कि कलियुग का दुगना द्वापर, तिगुना त्रेता और चौगुना सतयुग या कृतयुग होता है। अर्थात्—

कलियुग × २ = द्वापर युग।
कलियुग × ३ = त्रेतायुग।
कलियुग × ४ = सतयुग।

ब्राह्म दिवस और ब्राह्म रात्रि

[प्रथम नियम के अनुसार द्वितीय चित्र] *

यह द्वितीय चित्र 'सूर्य-सिद्धान्त' के अनुसार बनाया गया है। जिसने वैदिक सिद्धान्त की सत्यता को भली प्रकार प्रकाशित कर दिया है। एक मन्वन्तर ३०६७२०००० वर्ष का होता है। इस लिए

चौदह मन्वन्तर या ९९४ महायुग ३०६७२०००० × १४ =	४२९४०८०००० वर्ष
मन्वन्तर के मध्य की १४ तथा आरम्भ की एक, सब १५ सन्धियां =	२५९२००००
एक कल्प या एक सहस्र महायुग, या एक ब्राह्म दिवस के वर्षों की पूर्ण संख्या—	४३२०००००००

महा मुनि व्यास जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भारत में भी इस विषय का उल्लेख किया है।† यथा:-

* कुल्लियात आर्य मुसाफिर तथा अन्यत्र प्रकाशित पुस्तकों में यह चित्र अशुद्ध है। अनुवादक।

† महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ३२, श्लोक १७ अनुवादक।

सहस्रयुग पर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रि युग सहस्रान्तां ते ऽहौरात्र विदो जनाः ।।
(गीता अध्याय ८ श्लोक १७)

एक हजार चतुर्युगियों तक एक ब्राह्म दिवस होता है । और उतनी ही बड़ी उस की ब्राह्मरात्रि भी होती है । अर्थात् बड़ा दिन और बड़ी रात्रि ।

विशेषज्ञों ने एक दूसरे प्रकार से प्रयुक्त किया है । उन्होंने इस सृष्टि के समय को एक बड़ा दिन मान करके; उसे एक ब्राह्म दिवस की संज्ञा प्रदान कर दी है । और उसके चार प्रहर नियत किये हैं । ऐसे एक प्रहर के समय को जानने के लिये एक ब्राह्म दिवस के समय को चार पर विभक्त करके जाना जा सकता है । यथा :—

$$\frac{४३२००००००००}{४} = १०८००००००००$$

आर्यलोग सृष्टि के आरम्भ और वेदों के प्रकाश से आज तक लगातार ही विद्या के आधार प हिसाब करते कराते और लिखते लिखाते चले आये हैं, जो कि इस समय भी सम्पूर्ण आर्यावर्त में प्रचलित है । इस विषय में किसी भी प्रकार का मत भेद नहीं है । इस बात का समर्थन सुप्रसिद्ध अमेरीकन* विदुषी मैडम ब्लैवेस्टकी ने भी अपनी पुस्तक "सेक्रिट डाकट्रिन" में की है । (देखो खण्ड २ पृष्ठ ६६) राय बहादुर पण्डित श्री निवास जी ने इस पुस्तक को बहुत उत्तम रूप में प्रकाशित किया है । (देखो रिसाला थियोसोफिस्ट, मास नवम्बर सन् १८८५ ई०)

वर्तमान् आर्य-संवत् या सृष्टि संवत्

अब हम पाठकों को यह बतलाते हैं कि इस सृष्टि को उत्पन्न होकर कितने वर्ष बीत चुके हैं ? स्मरण रहे कि इस समय तक छः मन्वन्तर गुजर चुके हैं । और सातवां मन्वन्तर अब गुजर रहा है । इसका हिसाब और विभाग नीचे लिखे अनुसार है :—

१—छः मनवन्तर जो बीत चुके हैं—	१८४०३२००००
२—सातवां मन्वन्तर जो बीत रहा है उस की २७ चतुर्युगियों का समय —	११६६४०००००
३—अट्ठाइसवीं चतुर्युगी जो बीत रही है उसके तीन युगों का समय—	३८८८०००
४—वर्तमान् कलियुग का बीता समय	४६६०

* मेडम ब्लैवेस्टकी जैसा कि उसके नाम से भी प्रकट है, एक रूसी महिला थी वह संसार के बिभिन्न देशों की यात्रा करके अमेरिका गई थी और वहां से महर्षि दयानन्द के साथ पत्र-व्यवहार करने के पश्चात् भारत में आकर महर्षि दयानन्द से मिली थी । वह "थियोसोफिस्ट सोसाइटी के संस्थापकों में से एक थी । इस सोसाइटी को पहले आर्यसमाज की शाखा बनाया गया था, किन्तु फिर सम्बन्ध विच्छेद हो गया था । —अनुवादक ।

*सर्वयोग —१९६०८५२९९०

और ऐसा ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, परम सुधारक स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में लिखा है। जोकि अवश्य ही पढ़ने के योग्य और बहुत उत्तम पुस्तक है। उस महात्मा ने अपने इस वैदिक भाष्य में अपने ईश्वर प्रदत्त विद्याबल के द्वारा बहुत बड़ा चमत्कार कर दिया है। सच पूछो तो उसने सत्यान्वेषी जनों की झोलियों को सत्य ज्ञान की मणियों और मोतियों से भर दिया है। किसी ने सच कहा है—

वले दरिया ब इसरारेमआनी ।
कि रोशन शुद बनूरे-जाविदानी ।

आर्य-संवत् के समर्थन में प्रमाण

हमारे इस कथन की पुष्टि नीचे लिखे प्रमाणों से भी होती है :—

प्रमाण—१

†सम्पूर्ण आर्यवर्त में जो संकल्प प्रचलित है, और जो आर्यावर्त के द्विजों के बच्चे-बच्चे को याद है, उससे भी यही सिद्ध होता है। उसमें यह स्पष्ट लिखा है कि—

वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे
कलि प्रथम चरणे आर्यावर्तान्तर्गते——॥

अर्थात् आर्यावर्त देश में यह सातवां मन्वन्तर है, जो वैवस्वत कहलाता है। उस का यह अठाइसवां कलियुग है। और कलियुग के चार चरण, भाग हैं, उनमें से यह प्रथम चरण व्यतीत हो रहा है। कलियुग के वर्षों की संख्या ४३२००० वर्ष है। इस को चार पर विभक्त करने से १०८००० वर्ष का एक भाग होता है। ऐसे चार समान भागों में से यह प्रथम भाग व्यतीत हो रहा है। जिस के अब तक ४९९० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अभी १०३०१० वर्ष प्रथम भाग के व्यतीत होने शेष हैं। जिन के व्यतीत होने पर दूसरा चरण आरम्भ होगा।

प्रमाण—२

कवि कालिदास जो कि संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकवि थे, उन्होंने संवत् २४ विक्रमी में "ज्योतिर्विद्याभरण" नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसके शेष अध्याय में वे लिखते हैं :—

*इस गणना में सात सन्धियां भी जोड़नी चाहियें। एक सन्धि एक सतयुग के बराबर होती है अर्थात् एक सतयुग के वर्ष १७२८००० होते हैं। सात सन्धियों के वर्ष १२०९६००० होते हैं अतः सृष्टि की आयु का योग=१९६०८५२९९०+१२०९६०००=१९७२९४८९९० वर्ष है। — अनुवादक।

† यह अर्थ का दरिया भी बहुत अधिक रहस्यमय है। जो इस में स्नान करता है, वह अनन्त प्रकाश से सुप्रकाशित हो जाता है। —अनुवादक।

वर्षे सिन्धर्दर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौ संमिति ।
मासे माधव संमिते ऽत्रविहितो ग्रन्थ क्रियोपमः ॥

[ज्योतिर्विद्याभरण]

जब कलियुग के ३०६७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, तब मैंने अर्थात् कालिदास ने, वैशाख मास में इस ग्रन्थ को पूरा किया। इसी पुस्तक में दूसरा लेख यह है कि इसकी रचना संवत् २४ विक्रमी में की गई थी।

इस के अनुसार भी कलियुग के प्रथम चरण का अब तक का समय ३०६७—२४=३०४३ तथा ३०४३+१९४७ (विक्रमी संवत्)=४९९० वर्ष ही सिद्ध होता है।

प्रमाण—३

सिद्धान्त-शिरोमणि में लिखा है :—

याताः षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्यु गाङ्घ्रि ।
त्रयं नन्दाद्रीन्दु गुणास्तथाशकनृपस्यान्ते कलेर्वसिराः ॥

छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके। सातवां मन्वन्तर जो गुज़र रहा है, उस की भी सत्ताईस चतुर्युगियां गुज़र चुकी हैं। जो अठाईसवीं चतुर्युगी चल रही है, उसके तीन युग गुज़र चुके हैं। और चौथा जो कलियुग है, उसके भी शाका शालिवाहन तक ३१७९ वर्ष गुज़र चुके हैं। अब शाका शालिवाहन का संवत् १८११ है। अतः १८११+३१७९=४९९० वर्ष।

प्रमाण—४

आर्यावर्त के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री बापूदेव जी शास्त्री अपने पंचांग बाबत संवत् १९४६ वि० में लिखते हैं कि यह ब्राह्म दिवस के दूसरे प्रहर का आधा और वैवस्वत मन्वन्तर का जो अठाईसवां महायुग है, उस के कलियुग को शालिवाहन के आरम्भ तक ३१७९ वर्ष होते हैं। वे लिखते हैं :—

नन्दाद्रीन्दु गुणमितानि सौरवर्षाणि व्यतीतानि ॥

नन्द के ९, अद्रि शब्द के ७, इन्दु का एक और गुण शब्द का अर्थ ३ प्रसिद्ध है।

इस प्रकार ३१७९ सौरवर्ष कलियुग के आरम्भ से शाका शालिवाहन के आरम्भ तक व्यतीत हो चुके हैं। अतः सब वर्ष—१८११+३१७९=४९९० ही होते हैं। (देखो उनका पंचांग संवत् १९४६ वि० पृष्ठ ३)

[प्रथम चित्र ब्राह्म दिवस और शाका शालिवाहन के अनुसार]

ब्राह्म दिवस का एक प्रहर—	१०८०००००० वर्ष
ब्राह्म दिवस के दूसरे प्रहर का आधा—	५४०००००० वर्ष
इस कलियुग के आरम्भ तक जो आधे प्रहर से ऊपर गुज़र चुका—	३४०८४८००० वर्ष
कलियुग के आरम्भ से शालिवाहन तक—	३१७९ वर्ष
शालिवाहन से अब तक—	१८११ वर्ष

सर्वयोग अथवा आर्य संवत्—१६६०८५२६६० वर्ष

[द्वितीय चित्र मन्वन्तर और शाका शालिवाहन के अनुसार।]

छः मन्वन्तर—	१८४०३२०००० वर्ष
वैवस्वत की २७ चतुर्युगियां—	११६६४०००० वर्ष
अट्ठाईसवें चतुर्युग के ३ युग—	३८८०००० वर्ष
शालिवाहन तक कलियुग के—	३१७६ वर्ष
शालिवाहन से अब तक *—	१८११ वर्ष

† सर्वयोग अथवा आर्य संवत् १६६०८५२६६० वर्ष

आक्षेपों के उत्तर

अब हम कुछ आक्षेपों के उत्तर देते हैं :—

श्री पादरी विलसन साहब लिखते हैं कि ईसा से ३३०१ वर्ष पहले कलियुग का आरम्भ हुआ था। (देखो संसार का इतिहास सन् १८५६ ई० नूरूलबसार, प्रथम भाग, पृष्ठ ११)

पादरी आहार सकिन्स साहब ने लिखा है कि कलियुग का चौथा समय ४३२००० वर्ष है। जोकि सन् ईस्वी से ३०० वर्ष पहले आरम्भ होता है। (देखो मुतवसित लुग़ात सन् १८८२ ई० पृष्ठ ३३३, कालम २, बदायूं।)

विदित हो कि प्रथम लेख में तो एक पादरी साहब ने २०१ वर्ष अधिक कर दिये हैं। और दूसरे साहब ने १०० वर्ष कम कर दिये हैं। इस प्रकार इन दोनों के ही लेख अशुद्ध हैं। इस विषय में सर्वथा ठीक लेख तारीख़ बदी-अ-हिन्दोस्तान के सुयोग्य लेखक का है। वे लिखते हैं कि वास्तव में ईसा से ३१०० वर्ष पूर्व कलियुग का आरम्भ हुआ था। (देखो पृष्ठ ७) अतः—३१०० में ईस्वी सन् के १८६० वर्ष जोड़ने से ४६६० वर्ष होते हैं। और इतने ही वर्ष वर्तमान् कलियुग के अब तक+ बीते हैं।

अनुसन्धान

[३००० वर्ष] डाक्टर डब्ल्यू हण्ट साहिब लिखते हैं :—

"तीन हज़ार वर्ष से अधिक समय पूर्व ब्राह्मणों ने सौर वर्ष की गणना का प्रकार निश्चित् किया था, जो कि लगभग ठीक ही है। इस के अनुसार ३६० दिन का वर्ष होता है। और प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद एक मास लौन्द का माना जाता है।× जिससे कि प्रत्येक वर्ष में सवा पांचे दिन अधिक होने का हिसाब भी पूरा हो जाता है। ब्राह्मण लोग चन्द्रमा की कलाओं, ग्रहों अर्थात् सितारों की गतियों और

---

* पं० लेखराम जी ने यह पुस्तक संवत् १९४७ वि० शक संवत् १८११ एवं सन् १८९० ई० में लिखी थी। —अनुवादक।

† आर्य संवत् की इस संख्या में सन्धिकाल के वर्षों की संख्या १२०९६००० जोड़नी भी आवश्यक है। इस प्रकार आर्य-संवत् १९७२९४८९९ होता है। —अनुवादक।

+ अर्थात् सन् १८९० ई० तक। —अनुवादक।

× पांच वर्ष में लौन्द के दो मास होते हैं। —अनुवादक।

सूर्य की संक्रान्तियों के विज्ञान से भी भली प्रकार परिचित थे। यूनानियों के भारतागमन से पूर्व ही, अर्थात् ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व ही भारतवासियों ने ज्योतिष-विज्ञान में बहुत अधिक उन्नति की थी।"

[देखो भारतवर्ष का इतिहास पृ० १५ सन् १८८४ ई०]

[३०००] देहरादून के सरकारी अजायब-घर में उज्जैन के किले की खुदाई से प्राप्त होने वाली एक सागवान की लकड़ी रखी है, जो कि अधिक समय व्यतीत होने के कारण पत्थर बन गई है। उसके विषय में भूगर्भ-विज्ञान-विशेषज्ञों का मत है कि वह तीन हज़ार वर्ष से भी अधिक पुरानी है।

[देखो आजायब-घरका सूची-पत्र]

[४०००] श्री लप-सी-ऐस के कथन से सिद्ध होता है कि मिस्र के बारहवें वंश का अन्त चार हज़ार वर्ष पहले हो गया था।

[४०००] उनके (चीन के) इतिहास में लिखा है कि चार हज़ार वर्ष पूर्व उनके पूर्वज उत्तमोत्तम विद्याओं को भली प्रकार जानते और उन्हें व्यवहार में भी लाते थे।

(देखो चीन का इतिहास, फारसी पृष्ठ ८६)

[४५००] लन्दन में मिस्र देश के तीसरे वंश के समय की कुछ मूर्त्तियां वर्तमान हैं, जोकि चार हज़ार तीन सौ वर्ष पुरानी हैं, जिन के निर्माण का समय स्वर्गीय वेरनवन्स साहब प्रभृति विद्वानों ने चार हज़ार पांच सौ वर्ष पूर्व निश्चित् किया है।

[४५२६] चीन के इतिहास में लिखा है कि रेशम के गुणों और उसके व्यवहार के विषय में ईसा से ३६२६ वर्ष पूर्व ही पूर्ण जानकारी मौजूद थी।

[देखो चीन का इतिहास, फारसी, पादरी श्री एकसोविस साहब द्वारा रचित
पृष्ठ ३-४ सन् १८६४ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित।]

[४६३०] महमूद और सोम नाथ की विजय का विवरण। उसी अवस्था में उस ने कुछ मन्दिर देखे, जोकि हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार ४००० वर्ष पहले निर्मित किये गये थे।

[फरिश्ता का इतिहास, पृष्ठ ३०]

[४६७६] ईसा से ३०७६ वर्ष पूर्व राजा सैन का बहुत पुराना राज्य वर्तमान था। जिस को यूसेस नामक सुप्रसिद्ध इतिहासकार ने भी सन् १३१३ ई० में, प्रथम ओलीमेडी से पहले का बताया है। उस राज्य के विषय में यह बात भी प्रमाणित हो चुकी है कि यह राज्य एक हज़ार वर्ष तक स्थिर रहा था।

[देखो यूनान का इतिहास पृष्ठ १८-१६ सन् १८६५ ई०]

[५००.] काहिरा से १५ मील दूर वशूर नाम का एक स्थान है। वहाँ के संग्रहालय के एक अधिकारी ने पाँच हज़ार वर्ष पहले की राजकुमारियों के दो शव कबरों में से प्राप्त किये हैं। उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उन्होंने अभी-अभी प्राण-त्याग किये हैं। उनके सिरों पर सुन्दर राज मुकुट, वस्त्र और आभूषण आदि भी अपने नये और वास्तविक रूप में मौजूद हैं।

[देखो अनीसे हिन्द, १३ अप्रैल सन् १८६५ ई० जिल्द ३, संख्या ५]

(इसी प्रकार के दो पुजारियों की लाशें जयपुर के संग्रहालय में भी सुरक्षित हैं, जोकि कई हज़ार रुपये खर्च करके मिस्र देश से ही मंगवाई गई हैं। वे भी ईसा से तीन-चार हज़ार वर्ष पूर्व की हैं।

—लेखक)

[५०००] एक प्रसिद्ध विद्वान् इतिहासकार का कथन है कि हमें प्राचीन मिस्र की मूर्तियों में ऐसे बहुत से प्रमाण मिल सकते हैं, जोकि पाँचवें वंश की एक क़ब्र में से निकले थे। निःसन्देह ये मूर्त्तियाँ पाँच हज़ार वर्षों से भी अधिक पुरानी हैं। इन की बनावट आजकल के किसानों से ज्यों की त्यों मिलती है। उनका रंग व रूप भी यथावत् सुरक्षित है। इस से इन महान् कलाकृतियों के निर्माण के आधार पर, इनके निर्माण-काल और उस से पूर्व के समय की उन्नत-अवस्था का प्रमाण भी प्राप्त होता है। उनका समय नूह के प्रसिद्ध जल-विप्लव से पूर्व का है।

[देखो श्री पिलटस साहब की आई-क्रो ग्रेफी अंग्रेजी पृष्ठ १११]

[५२४०] मिस्र देश के इतिहासकार इस विषय में एक मत हैं कि मिस्र के स्तम्भ (मीनार) ईसा से ३३५० वर्ष पूर्व निर्मित हुए थे।

[देखो डाक्टर नालिज, खण्ड १ पृष्ठ २४२ व ४००]

[५३१६] मिस्र के चौथे वंश के समय में भी स्तम्भ, क़ब्रें और मूर्तियां बहुत बड़ी संख्या में मौजूद थे। श्री लप-सी-ऐस के कथनानुसार मिस्र का चौथा वंश ईसा से ३४२६ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था।

[५६६०] मैनस और उसका वंश मिस्र के चौथे वंश से ७५० वर्ष पूर्व विद्यमान था। कहते हैं कि उसने ईसा से ४१०० वर्ष पूर्व स्तम्भ आदि बनवाये थे।

[देखो सेक्रेट डाक्टर्न पृष्ठ ४३२]

[६०००] श्री कलशन साहब नूह के जलविप्लव के विषय में लिखते हैं कि भूगर्भ-विज्ञान के आधार पर ज्ञात होता है कि छः हज़ार वर्ष से अब तक किसी भी जल विप्लव का होना असम्भव है।

[७८००] एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित ज्योतिषी का ज्योतिष-विज्ञान के आधार पर, यह कथन है कि मिस्र का सर्वप्रथम स्तम्भ=पैरामिड—७८०० वर्ष पूर्व बना था।

[देखो सेक्रेट डाक्टर्न, खण्ड २, पृष्ठ ४३२, लन्दन-संस्करण।]

[१००००] श्री इन्सटीड नामक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी ने लिखा है कि दस हज़ार वर्ष पहले गरमी की ऋतु में सूर्य समीप होता था। और सरदियों में दूर रहता था।

[देखो भूतत्व प्रदीप सन् १८८७ ई० पृष्ठ ५२]

[१२०००] सर चार्लस लायल साहेब के मतानुसार बारह हज़ार वर्ष के अन्दर-अन्दर इटना के कटिबन्ध पर किसी भी विनाशकारी जलविप्लव का कोई भी चिह्न वर्तमान नहीं है। जैसा कि बाइबल में नूह के तूफान का हाल लिखा है। एवं आदरनी की ज्वालामुखी पर्वत-माला की नोकदार चोटियों की राख में दबे पड़े प्राणियों की अस्थियों से, जो अटना-पर्वत-माला की सीमा निर्धारित करती हैं, यह प्रमाणित होता है कि वे और भी अधिक प्राचीन हैं।

[१२३१७] मिस्र देश की प्राचीनता के कथन, कोई नये कथन नहीं हैं। यूनान का सुप्रसिद्ध हकीम अफ़लातून, जो ईसा से ४२७ वर्ष पूर्व हो गुज़रा है, मिस्र निवासियों के विषय में कहता है कि मिस्र देश की पत्थरों पर विद्यमान चित्रकारी को दस हज़ार वर्ष का समय हो चुका है। तब यह कला विशेष रूप में उन्नत थी।

[११५६४] करनल अल्काट साहब * सुप्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान् का कथन है कि बाइबल के लिखे जाने, यहूदी जाति की उत्पत्ति होने, बेबीलन नगर की आधार-शिला रखी जाने, मिस्र के मकबरों =समाधि-स्थानों के बनने, और मिस्र के सुविशाल स्तम्भों का निर्माण होने से पाँच हज़ार, सात सौ वर्ष पूर्व, जिस को कि कोई-कोई ईसाई-मतानुयाई विद्वान् सृष्टि की उत्पत्ति का समय बताते हैं, आर्य लोगों ने समाज और सभ्यता के विषय में बहुत अधिक उन्नति की थी। उन्होंने व्याकरण-शास्त्र के ऐसे उत्तम नियम बनाये थे कि जिन के समान नियम कोई भी नहीं बना सका।

[देखो भारत की त्रिकाल-दशा, पृष्ठ ७६ से ८१ तक सन् १८८३ ई० में प्रकाशित, मद्रास—संस्करण।]

[१८०००] कुछ इतिहासकारों का कथन है कि फोही के बाद पन्द्रह राजा गद्दी पर बैठे थे। उन का सम्पूर्ण राज्य काल अट्ठारह हज़ार वर्ष के लग-भग था।

[देखो चीन का इतिहास, खण्ड २, पृष्ठ ११, सन् १८५३ ई० में प्रकाशित कलकत्ता-संस्करण।]

[२२०००] इतिहासकार नाट ऐण्ड गिल्डन महोदय का कथन है कि इस विषय की खोज केलिए कि हज़रत आदम से पूर्व भी मानव जाति के अस्तित्व के प्रमाण प्राप्त हो सकते हैं, हम अपने पाठकों की सेवा में स्वर्गीय वैरनविनसन महोदय की क्रनोलोजी का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वे इस सृष्टि में मनुष्य के अस्तित्व को बाईस हज़ार वर्ष पुराना मानते हैं। और नेलोटिक की परीक्षा करने के पश्चात् विस्तार से नीचे लिखी तिथियां निश्चित् करते हैं—

वह समय जब मिस्र में प्रजातन्त्र राज्य-प्रणाली का प्रचलन था—ईसा से दस हज़ार वर्ष पूर्व।

बाइ-टिस्ट नामक प्रथम प्रीस्ट-राजा के राज्यारोहण का समय ईसा से नौ हज़ार पचासी वर्ष पूर्व।

मिस्र की निर्वाचित राज्य-व्यवस्था-ईसा से पांच हज़ार एक सौ तेतालीस वर्ष पूर्व।

[देखो इण्डियन विज़ेंस एलेनर पृष्ठ ५८७।]

[२७५२०] मिस्र देश के मिनथान नामक पवित्र-संस्थानों के संरक्षक और यूनानी विषयों के विशेषज्ञ ने टोलीमेफ्लीडल्फस के समय में जो इतिहास लिखा था, उस में यह उल्लेख है कि प्रथम देवताओं=विद्वानों का शासन और फिर शूरवीरों का शासन निरन्तर, अनुक्रमपूर्वक मिस्र देश में स्थिर रहा। शूरवीरों के पश्चात् जनसाधारण मिस्र के शासक बने। मिनथान नामक इतिहासकार ने उन की तीस पीढ़ियों का उल्लेख किया है। मर्क्युरिस के लेखों और सभी प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों से, जोकि मिस्र देश के प्राचीन-मन्दिरों के पवित्र-पुस्तकालयों में वर्तमान थे, यही निष्कर्ष निकलता है। यदि इन तीस पीढ़ियो को अनुक्रमपूर्वक माना जाये, तो उन से आरम्भ करके सिकन्दर महान तक पांच हज़ार तीन सौ वर्ष का समय होता है।

[देखो मिस्र का इतिहास पृष्ठ ७२ से ७५ तक, सन् १८७० में प्रकाशित।]

[३००००] एक विद्वान् ज्योतिषी ने बहुत प्रबल प्रमाणों और युक्तियों के द्वारा, उन लोगों के मत

*श्री करनल अल्काट महोदय भी थियासोफ़िकल सोसाइटी के संस्थापकों में से एक थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती को अपना गुरु स्वीकार करके ये भी मेडम ब्लेवेस्टकी के साथ ही अमेरिका से भारत में पधारे थे। जब काशी में धारा १४४ लगा कर महर्षि दयानन्द के व्याख्यान पर प्रतिबन्ध लगा था, तब उस सभा में इन करनल महोदय का भाषण मूर्तिपूजा खण्डन विषय पर हुआ था। —अनुवादक।

का खण्डन किया है, जोकि सृष्टि की उत्पत्ति का समय केवल छः हजार वर्ष ही मानते हैं। उन्हों ने अपनी खोज को तीस हजार वर्ष तक पहुँचा दिया है। और सभी प्रतिपक्षियों को चुनौती दी है कि यदि कोई उन की स्थापना का खण्डन करेगा, तो वे अपने पक्ष की पुष्टि के लिये और भी अधिक प्रमाण देंगे।
[देखो रिसाला थियोसोफिस्ट, मास अगस्त सन् १८८१ से फरवरी १८८२ तक, पृष्ठ १२५ से १२७ तक।]

[१५००००] कालडिया देश के निवासी इस बात पर गर्व करते हैं कि उन के पास डेढ़ लाख वर्ष से भी अधिक पुराना लेख मौजूद है।

[इतिहास वदीअ हिन्दुस्तान, पृष्ठ ७]

[१५००००] प्राचीनता का गर्व करने वाले केवल मात्र हिन्दू ही नहीं हैं। प्राचीन जातियों में से एथनी नगर के निवासी भी ऐसा ही कथन करते हैं। और बाबल वाले कसदी डेढ़ लाख वर्ष पूर्व तक अपने इतिहास की घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ते हैं। और चीन वाले भी इतनी प्राचीनता का अभिमान करते हैं।

[देखो हिन्दुस्तान का इतिहास, पृष्ठ ३, सन् १८५२ ई० का कलकत्ता संस्करण।]

[१५८०००] न्यू आयरलैण्ड में जो छः फुट गहरी खुदाइयां हुई हैं, तथा प्रदेश के विभिन्न भागों में जो अनुसन्धान हुए हैं, जहां पर कि पानी की गहराई न्यू आयरलैण्ड की अपेक्षा अधिक है, कम से कम दस जंगल सरू के, जोकि पानी के पौदों के खम्बों से पृथक्-पृथक् किये हुए हैं, प्रकट हुए हैं। जोकि एक दूसरे के ऊपर शीर्ष विन्दु में स्थिर हैं। इनसे और ऐसे ही अन्य प्रमाणों से श्री डाक्टर नटवूलर साहब ने यह अनुमान लगाया है, कि इस डेलटे की आयु कम से कम एक लाख, अठावन हजार वर्ष की है। इन खुदाइयों में मनुष्यों की हड्डियां जंगलों के स्तरों के नीचे प्राप्त हुई हैं। जिन से यह सिद्ध होता है कि मिसि-सिपी महानदी के डेल्टे में, जब मानव जाति जीवित जागृत अवस्था में निवास करती थी, उस समय को ५७००० वर्ष हो चुके हैं।

[देखो पुस्तक टाईप्स, पृष्ठ २३६ से ३६६ तक।]

[२४००००] भूगर्भ विद्या के विशेषज्ञ प्रो० ड्रेपर साहिब का कथन है कि स्काटलैण्ड में, बरफ के पुराने ढेरों के नीचे मनुष्यों और हाथियों की हड्डियां पाई जाती हैं। जिन के विषय में सूक्ष्म और प्रामाणिक गणित के आधार पर, उन के अस्तित्व की प्राचीनता का समय दो लाख चालीस हजार वर्ष निश्चित् होता है। यह मानव जाति के अस्तित्व का कम से कम समय है।

[देखो पत्रिका थियोसोफिस्ट, अक्तूबर सन् १८७९ पृष्ठ ६ कालम १।]

[३००००००] जब हम उस समय का हिसाब लगाते हैं, जब बड़े-बड़े भू-खण्ड बने और उन में पशु-पक्षियों के उत्पन्न होने, एवं वनस्पतियों के उगने के लक्षण पाये जाते हैं, और आगे पीछे उत्पन्न होकर नष्ट होते रहते हैं, और फिर उसी प्राचीन काल के साथ हम अपने समय को भी जोड़ लेते हैं, तब हम को विवश होकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस सृष्टि को उत्पन्न होकर, कम से कम तीस लाख वर्ष बीत चुके हैं।

[देखो पत्रिका बाग़वान, पंजाब जनवरी १८८७ ई० पृष्ठ ३३]

[४००००००] ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं, जो यह पक्ष रखते हैं कि इस सृष्टि की उत्पत्ति छः हजार वर्ष पहले हुई थी। यदि यह सत्य हो कि ईश्वर ने सब को छः दिन में बनाया और छठे दिन

आदम को बनाया, तो यह सृष्टि आदम से पाँच दिन बड़ी हुई। यह कथन कि ईश्वर ने छः दिन में सृष्टि को बनाया सर्वथा मिथ्या है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि भूमि की चट्टानों के बनने के लिये ही कम से कम चालीस लाख वर्ष का समय चाहिये।

[१५००००००] कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह सृष्टि एक करोड़ पचास लाख वर्ष पुरानी है। भारत की बड़ी-बड़ी नदियों के डेलटों से ही मनुष्य की प्राचीनता का प्रमाण बहुत उत्तम रूप में मिल जाता है। मिस्र देश में नील नदी का डेलटा जोकि निरन्तर ही मिट्टी आदि पदार्थों के एकत्रित होने से बहुत बड़ा रूप धारण कर चुका है। वह कभी बह भी जाता है और फिर एकत्रित हो जाता है। पिछले तीन हज़ार वर्ष के समय में वह कुछ भी नहीं बढ़ा है और ज्यों का त्यों ही प्रतीत होता है।

फिरोज शाह के समय में उस डेलटे पर बहुत बड़े-बड़े नगर बसाये गये थे, तब भी यह डेलटा ऐसा ही था। जैसा कि इस समय है। उन नगरों की विकसित सभ्यता के लिये कम से कम इतना समय अवश्य ही चाहिये जितना कि नूह के तूफान का अथवा कुछ लोगों के कथनानुसार इस सृष्टि की उत्पत्ति का बताया जाता है।

[देखो 'टाईप्स आफ मैन काईण्ड' श्री ग्लैडस्टोन द्वारा विरचित, पृष्ठ ३२५]

[१००००००००] प्रोफ़ेसर एस० न्यूकोम्ब महोदय का कथन है कि जब यह भूमि ठण्डी होकर बनस्पतियों के उगने के योग्य बनी थी, तब से अब तक एक करोड़ वर्ष बीत चुके हैं।

[देखो पापुलर इस्ट्रानौमी पृष्ठ ५०६]

[२०००००००] प्रोफ़ेसर हिलनार का कथन है कि जब ठण्डी होने पर यह भूमि बनस्पतियों को उगाने के योग्य हुई थी, उस समय को अब तक लगभग दो करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके होंगे।

[देखो सेक्रिट डाक्टर्न खण्ड २, पृष्ठ ६६४]

[७००००००००] प्रोफ़ेसर क्राल साहिब का कथन है कि इस भूमि को ठण्डी होकर वर्तमान रूपमें पहुँचने के लिए कम से कम सात करोड़ वर्ष चाहियें।

[देखो क्लाईमेट इन टाईम पृष्ठ ३३५]

[६६००२३६०] चीन देश निवासियों का विचार है कि सृष्टि के सर्वप्रथम राजा से कन्फ्यूशस तक जोकि बहुत प्रसिद्ध नीतिवान था और जिस का समय ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व है, नौ करोड़ साठ लाख दो हज़ार तीन सौ नव्वे वर्ष हो चुके हैं।

[देखो तारीख-बदी अ हिन्दुस्तान पृष्ठ ७ से १२ तक]

[८८८४००६०] तारीख़-ख़ताई में प्रसिद्ध इतिहासकारों के मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति का समय आठ करोड़, अट्ठासी लाख, चालीस हज़ार, साठ वर्ष निर्धारित किया गया है।

[देखो आईने अकबरी पृष्ठ २७२, कलकत्ता संस्करण सन् १८६७ ई० तथा तारीखे बदी-अ हिन्दुस्तान पृष्ठ ७ से १२ तक]

[१०००००००००] सर विलयम टामस महोदय का कथन है कि भूमि के ठण्डी होकर वनस्पतियों के उत्पन्न होने के योग्य बनने तक दस करोड़ वर्ष बीत चुके होंगे।

[देखो सेक्रिट डाक्टर्न, खण्ड २, पृष्ठ ६६४]

[३०००००००] एक और प्रसिद्ध इतिहासकार का कथन है सृष्टि के आरम्भ से वनस्पतियों के उत्पन्न होने तक और उस समय से मनुष्योत्पत्ति तक तीन करोड़ वर्ष होने चाहियें।

[देखो सेक्रिट डाक्टर्न सन् १८८८, लन्दन संकरण, पृष्ठ ६६]

[३५००००००] प्रोफ़ेसर लचाफ़ का कथन है कि भूमि को दो हजार डिगरी के तापमान से दो सौ डिगरी के तापमान तक पहुँचने में पैंतीस करोड़ वर्ष का समय लगा होगा। इस से कम नहीं।

[देखो सेक्रिट डाक्टर्न लन्दन संस्करण, खण्ड २, पृष्ठ ६६४]

[५०००००००] प्रोफ़ेसर रैड का कथन है कि जब से यूरोप में वनस्पतियां उगनी आरम्भ हुई हैं, उस को पचास करोड़ वर्ष बीत चुके होंगे।

[देखो श्री रैड साहिब का अभिभाषण, जो उन्होंने सन् १८७६ ई० में ज्योलोजिकल सोसाइटी में दिया था।]

[१०००००००००] सुप्रसिद्ध प्रोफ़ेसर हक्सले साहिब ने जोकि भूगर्भ विद्या के विशेषज्ञ थे, बहुत महत्वपूर्ण अनुसन्धान के द्वारा यह सिद्ध किया है कि जब से संसार में वनस्पतियों का उगना आरम्भ हुआ है, तब से अब तक एक अरब वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

[देखो वर्ल्ड लाईफ, पृष्ठ १८०]

बम्बई के भूत पूर्व राज्यपाल, सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री इनफनिस्टन महोदय का कथन है कि एक ब्राह्मदिवस का जो समय निश्चित् किया गया है, वह ज्योतिष-शास्त्र के प्रामाणिक सिद्धान्तों के अनुसार है। नोडज और इम्पायजर का एक पूरा चक्र, जो हिन्दुओं की गणना के अनुसार चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष में पूरा होता है, वह एक ब्राह्मदिवस है। नोड्ज सूर्य के वृत्त के उन बिन्दुओं या स्थानों को कहते हैं, जहां किसी भी ग्रह या उपग्रह की गति की परिधि का कटाव होता है। इन को ही रासवजनव भी कहते हैं।

इम्पायजर किसी भी ग्रह या उपग्रह के उन दो स्थानों को कहते हैं, जो कि प्राचीन काल में बहुत अधिक समीप और बहुत अधिक दूर समझे जाते थे और अब सूर्य के बहुत अधिक समीप तथा बहुत अधिक दूर समझे जाते हैं। अर्थात् शीर्षतल और पदतल।

[देखो तारीखे हिन्दुस्तान पृष्ठ २५६, बाब ३, सन् १८६६ ई० अलीगढ़—संस्करण]

मानव सृष्टि की प्राचीनता

इतिहासकार अबुल्कासिम फ़रिश्ता लिखता है :—

"ख़ता, ख़ुतन और चीन के नास्तिकों के समान ही भारत के नास्तिक भी यही कहते हैं कि हमारे देश में तूफान कभी आया ही नहीं। वे तो नूह के तूफान की घटना पर विश्वास ही नहीं रखते।"

[देखो तारीख़-ए-फ़रिश्ता, मुकद्दमा, पृष्ठ ६, सन् १२८१ ई०, नवलकिशोर प्रेस]

वही इतिहासकार फिर लिखता है :—

"मैं ने एक प्रामाणिक पुस्तक में पढ़ा है कि साहब सलोनी से किसी ने पूछा कि हे महामुनि! तीन हज़ार वर्ष पहले आदम और धरती एवं आकाश के अतिरिक्त और कौन था? उन्हों ने उत्तर दिया कि आदम। जब इस विषय में वादविवाद बहुत बढ़ गया और तीसरी बार भी श्री सलोनी ने

यही उत्तर दिया तब पूछने वाला बहुत लज्जित हुआ। तब शाह वलायत पनाह ने फरमाया कि यदि कोई तीस हज़ार बार यह पूछे कि आदम से पहले कौन था? तब भी मैं यही उत्तर दूंगा कि आदम। इस से भी मनुष्य की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। इस विषय में भारतवासियों का कथन सर्वथा ही निर्मूल नहीं है।

[देखो तारीख़े फ़रिश्ता, प्रथम खण्ड, मुकद्दमा, पृष्ठ ५, सन् १८८१ ई०]

डा० वेन्ट डालर साहिब का कथन है :—

"जो हड्डियां सन्टाज़ के समीप ब्राज़ील के किनारे तथा झील लेगो—असन्टा के किनारे पर कप्तान एलियट और डाक्टर लैण्ड साहिब ने प्राप्त की हैं, वे एक कठोर पत्थर के बीच में लिपटी हुई हैं। और वे हड्डियां स्वयं भी पत्थर बन गई हैं। उन से सिद्ध होता है कि अमेरिका में मिसिसिपी और कालदिया से पहले ही मनुष्य का अस्तित्व और इतिहास वर्तमान था क्योंकि बन-मानवों की असंख्यात नस्लें वर्तमान मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व ही अमेरिका में उत्पन्न होकर, विलुप्त हो चुकी थीं।

[देखो टाईम्स आफ़ मैन काईण्ड पृष्ठ ३५० से ३५७ तक]

युधिष्ठिरी—संवत्

युधिष्ठिरी-संवत् को ही पाण्डव-संवत् भी कहते हैं। इस के विषय में इतिहासकारों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। इंग्लैण्ड के पुराने ज्योतिषी वेन्टली महोदय ने लिखा है कि ईसा के जन्म से ११७६ वर्ष पूर्व युधिष्ठिरी-संवत् का आरम्भ हुआ था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार टाड ने भी राजस्थान के इतिहास में ऐसा ही लिखा है। इस के अनुसार १८६०+४*+११७६=३०७३ वर्ष होते हैं।

माननीय इन्फिस्टन महोदय ईसा से एक हज़ार चार सौ पचास वर्ष पूर्व युधिष्ठिर के होने का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार १४५०+४+१८६०=३३४४ वर्ष हुए।

कुछ प्रमाण

राजतरंगिणी का रचयिता लिखता है कि जब कलियुग के छः सौ तरेपन वर्ष गुज़र चुके थे, तब कौरवों और पाण्डवों का युद्ध हुआ। इस प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना महा पण्डित कल्हण ने राजा जय सिंह जी के समय शाका १०७१ शालिवाहन तदनुसार सन् ६६४ ई० में की थी। इस के अनुसार ४६६०—६५३=४३३७ वर्ष हुए। डाक्टर हंटर साहब युधिष्ठिर का होना मसीह से १२०० वर्ष पहले निश्चित् करते हैं। १६६०+१२००=३१६०।

परन्तु ये सभी संख्यायें आपस में विरुद्ध हैं, क्योंकि सन् ३०७३ व सन् ३३४० व सन् ४३३७ व सन् ३१६० इन के मिलाने से १२६४ बारह सौ चौसठ वर्षों का अन्तर पड़ता है। इस लिये हम इन को कुछ भी महत्व नहीं देते। हमारे मत से तो ये चारों ही विद्वान् भूल में हैं। बहुत पुष्ट प्रमाणों के आधार पर हमारा मत यही है कि इस समय युधिष्ठिर का संवत् ४६६० है। इस विषय में हमारे प्रमाण आगे लिखे अनुसार हैं :—

प्रथम प्रमाण

सम्राट् अकबर के समय जबकि सब प्रकार के विद्वान् और विशेषज्ञ मिल कर रहते थे, और

* ईस्वी संवत् की गणना ईसा के जन्म के चार वर्ष पश्चात् से आरम्भ होती है। —अनुवादक।

जब संस्कृत के पण्डितों का आदर-सम्मान विशेष रूप से होता था, तब संस्कृत के बड़े-बड़े विद्वानों ने परस्पर विचार-विमर्श और उहापोह करके, जो परिणाम निर्धारित किये तथा सर्वमान्य सिद्धान्तों के आधार पर लिखे, एवं जिन का लेखक स्वयं भी एक बहुत बड़े राज्य का प्रधान मन्त्री था, वे इस प्रकार हैं :—

"कलियुग के आरम्भ होते ही पहला राजा युधिष्ठिर हुआ। जिस को ४६६६ वर्ष हो चुके हैं। और विक्रम तक ३०४४ वर्ष हुए थे।

[देखो आईने अकबरी, कलकत्ता संस्करण, सन् १८६७ ई० पृष्ठ २६६]

इस के अनुसार ४६६६+२६४=४६६० वर्ष हुए। अथवा १६५२+३०४४=४६६६+२६४=४६६० या १६४६+३०४४=४६६० *

भूलसुधार

इस पुस्तक 'सृष्टि का इतिहास' के प्रथम भाग में हम से एक भूल हुई, जोकि युधिष्ठिरी संवत् के विषय में है। वह यह कि वहां हम ने इस 'कलियुग' का जो समय गुजरा है, उसको ही युधिष्ठिर का समय मान लिया है। वास्तव में ऐसा न होना चाहिये था 'राजतरंगिणी' के लेखक पण्डित कल्हण प्रभृति संस्कृत भाषा के सुयोग्य विद्वानों ने लिखा है कि जब कलियुग के ६६३ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, तब युधिष्ठिर जी राज्यासन पर बैठे थे। और उस समय सप्तऋषि मघा नक्षत्र में थे। इस प्रकार ४६६४—६६३=४३३१ वर्ष युधिष्ठिरी संवत् के होते हैं। श्री शंकराचार्य जी का समय २१५७ युधिष्ठिरी संवत् तदनुसार २८२० कलियुगी संवत् है।

—लेखक

इसके अनुसार—१६४६+३०४४=४६६० या ३१७६+१८११=४६६० वर्ष हुए। इस ग्रन्थ में सुयोग्य लेखक ने सब राजाओं की नामावलियों का उल्लेख भी विस्तार पूर्वक किया है।

दूसरा प्रमाण

राजावली नामक ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध ज्योतिष-शास्त्र-विशेषज्ञ पण्डित माधवाचार्य ने अपनी खोज के आधार पर बहुत महत्वपूर्ण तथ्यों का निरूपण किया है। इस राजावली नामक ग्रन्थ की रचना संवत् १८१६ में हुई थी। वे लिखते हैं कि कलियुग के आरम्भ से विक्रम तक ३०४४ वर्ष होते हैं। कलियुग संवत् ३०४४ में विक्रम का राज्य आरम्भ हुआ। और संवत् ३१७६ में शालिवाहन का राज आरम्भ हुआ।

[देखो हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, अगस्त १८७४, पृष्ठ ८७ से ६० तक]

तीसरा प्रमाण

सूरत के एक मन्दिर में दो शंकराचार्यों का आपस में शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थ में द्वारिका

* 'सृष्टि के इतिहास' का दूसरा भाग प्रथम भाग के प्रकाशन से पाँच वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुआ था। इन दोनों भागों का दूसरा संस्करण संयुक्त रूप में सन् १८९८ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके पृष्ठ ५५ पर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर का लेख युधिष्ठिरी संवत् के विषय में नीचे लिखे अनुसार है। —अनुवादक।

के मन्दिर से प्राप्त एक ताम्र-लेख दिखाया गया। उस लेख की तिथि संवत् २६६३ युधिष्ठिरी अंकित थी। वह लेख ईसा से ४३७ वर्ष पूर्व लिखा गया था। इस प्रकार उसका समय भारत पर सिकन्दर का आक्रमण होने से कुछ पहले का है। अर्थात् ११० वर्ष पहले। इस लेख के अनुसार २६६३+४२७+१८६०=४६६० वर्ष हुए।

चौथा प्रमाण

सर विलियम म्यूर साहिब ने बून्दी राज्य के सोरथ या स्तोर ग्राम में वर्तमान पाषाण-लेखों का जो परीक्षण करवाया है उससे भी इसी संवत्-गणना का प्रमाण मिला है।

[देखो पत्रिका देहली सोसाइटी, खण्ड १ संख्या २ सन् १८७३, पृष्ठ २८, २६]

पाँचवां प्रमाण

वराह मिहिर ने बृहत् संहिता में लिखा है—

आसन् मघासुमनयः शासति
पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड् द्विक पंच द्वियुतः
शक कालस्तस्य राज्ञश्च ॥

[बृहत् संहिता, अध्याय १३ श्लोक ३]

जब महाराजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर राज्य का शासन करते थे तब सप्तऋषि मघा-नक्षत्र में थे। शाक्यमुनि बुद्ध के समय तक २५२६ वर्ष हुए थे। बुद्ध का जन्म ईसा से ६२३ वर्ष पूर्व हुआ था। और ईसा से ५४३ वर्ष पूर्व बुद्ध की मृत्यु हुई थी। बुद्ध का संवत् उसकी आयु के पचासवें वर्ष से आरम्भ होता है। इसके अनुसार काल-गणना-२५२६+१८६०+५७४=४६६० होती है।

छठा प्रमाण

विदित हो कि भारत में सब से पहले राजा युधिष्ठिर का संवत् आरम्भ हुआ था, जोकि कलियुग के आरम्भ से बुद्ध तक रहा। उसके ४६२८ वर्ष हुए।

[देखो ग़यासुल्लुग़ात, वर्ग-फे, पृष्ठ ३२५, सन् १८७१ ई० इसके अनुसार भी ४६२८+६२=४६६० वर्ष हुए।]

बौद्ध–संवत्

इस संवत् के विषय में भी विद्वानों के विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ मत हम यहां दर्शाते हैं।

१—गौतम बुद्ध ईसा से ६२३ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ और ८० वर्ष की आयु में, ईसा से ५४३ वर्ष पूर्व, एक अंजीर के वृक्ष के नीचे उस का देहान्त हुआ था।

[देखो मिस्बाहुल तवारीख़, हण्टर खण्ड १, अध्याय ५, पृष्ठ २२-२३, सन् १८८६ ई०]

२—तारीख़ हिन्दुस्तान में लिखा है कि शाक्य मुनि बुद्ध ईसा से लग-भग ५५० वर्ष पूर्व हुए हैं।

[देखो तारीख़ हिन्दुस्तान, पृष्ठ २६०]

३—बुद्ध के जन्म की तिथि ठीक नहीं है;

[देखो मिस्बाहुल तवारीख़, पृष्ठ २४]

परन्तु यह बात सत्य है कि बुद्ध का जन्म शालिवाहन के साल से ७०१ साल पहले हुआ था और उस की मृत्यु ८० वर्ष की अवस्था में हुई थी। जिस को अब २४३३ वर्ष होते हैं। बुद्ध की आयु के ५०वें वर्ष से बौद्ध संवत् का आरम्भ हुआ था जो कि इस समय २३२४ है।

विक्रमी—संवत्

१—तारीख़ फ़रिश्ता में लिखा है कि संवत् विक्रम के इस समय तक १६६३ वर्ष गुज़रे हैं।

[देखो पृष्ठ १४; मक़ाला १]

१६६३+२८४=१६४७ या

१६६३+२६२=१६५५—८=१६४७

२—कर्नल टाड साहब का लेख है कि सोमनाथ में एक पत्थर पर संवत् १३२० विक्रम अंकित है जो कि सन् ६६२ हिज़री के अनुसार है। इस के आधार पर भली प्रकार से तुलना की जा सकती है।

[देखो इतिहास तिमिर नाशक भाग ३, पृष्ठ ५१ सन् १८७३, प्रथम संस्करण।]

१३०७—६६२=६४५ या

१३२०+६४५=१६६५—६८=१६४७ वि०

३—तारीख़े आलम में लिखा है कि विक्रम ईसा से ५६ वर्ष पूर्व हुआ है।

[देखो पृष्ठ ११, सन् १८५६ ई० भाग १]

४—इतिहासकार इन्फिन्स्टन साहब लिखते हैं कि मालवा प्रदेश के राजा विक्रमादित्य के विक्रम संवत् का आरम्भ ईसा से ५७ वर्ष पूर्व हुआ था। सम्पूर्ण भारत में उस का संवत् इस समय तक प्रचलित है।

[देखो तारीख़े हिन्दुस्तान अध्याय ३ पृष्ठ २७२ सन् १८६६ ई०]

तदनुसार इस समय विक्रम संवत् १८४७ है। यह संवत् चैत शुदि प्रतिपदा से आरम्भ होता है। यद्यपि इस की गणना चान्द्रवर्ष के अनुसार होती है, फिर भी इस में प्रत्येक तीन वर्ष के बाद लौन्द का एक महीना जोड़ा जाता है। इस प्रकार यह सौर वर्ष के समान ही हो जाता है।

शालिवाहन—संवत्

राजा शालिवाहन का संवत् जो ईसा के सन् ७८ × से आरम्भ होता है, सम्पूर्ण दक्षिण-भारत में प्रचलित है।

[देखो तारीख़ हिन्दुस्तान पृष्ठ ७२, सन् १८६६ ई०]

इस के अनुसार १८९० — ७८ = १८१२ संवत् शालिवाहन का है। * +

× कुलियात आर्य मुसाफ़िर में और तारीख-ए-दुनिया दूसरे संस्करण में सन् १८७८ मुद्रित है, जोकि अशुद्ध है। —अनुवादक।

* पाठक निरन्तर स्मरण रखें कि इस पुस्तक की रचना सन् १८९० ई० में हुई थी। —अनुवादक।

+ कुलियात और तारीख-ए-दुनिया में शालिवाहन का संवत् १८१४ छपा है जोकि स्पष्ट ही छपाई की भूल है। —अनुवादक।

ईस्वी—संवत्

इस संवत् का आरम्भ ईसा के जन्म से चार वर्ष पश्चात् हुआ था।
[देखो बाईबिल, मिर्ज़ापुर संस्करण, सन् १८८७ ई० में प्रकाशित।]

ईस्वी संवत् को ड्यूनीसीस अक्सीफस अतालवी ने पाएडोरस साहब, जोकि एक मिस्र देशवासी पादरी थे के कथनानुसार सन ५०७ ई० में या ५१६ ई० में अथवा ५२७ ई० में विभिन्न साक्षियों के आधार पर संशोधित किया था। इस का आरम्भ ईसा के जन्म से चार वर्ष बाद होता है। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार ईस्वी सन् के दिनों की संख्या भी भिन्न भिन्न है।

जूलियसक़ैसर का संवत्–सुधार

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार ईस्वी वर्ष के दिन

क्रम संख्या	नाम विद्वान्	दिन	घड़ी	पल	विपल	सालसा
१	तेमूख़ारस	३६५	५	५०	०	०
२	अबुरहसन	२६५	५	५०	०	०
३	जोन्यूसनक़ैसर	३६५	५	५०	०	०
४	ख़्वाजानसीरुद्दीन तूसी	३६५	५	४६	०	०
५	कासी की १४ रसदों के अनुसार	३५५	५	४८	५२	०
६	वेली लेएड	३६५	५	४८	४८	३६
७	विनस	३६५	५	४८	५८	३६
८	मिस्र के विद्वान्	३६५	०	०	०	०

ये विद्वान् अपनी गणना में दशमलव से कम संख्या को छोड़ देते थे।

ज्यूलिस क़ैसर ने सुप्रसिद्ध विद्वान् सूसी के परामर्श से ईस्वी सन से ४५ वर्ष पूर्व चान्द्र मास के स्थान पर सौर वर्ष का प्रचार किया था। वह चाहता था कि प्रति वर्ष जो ऋतुओं का परिभ्रमण होता है, अर्थात् वर्ष का जो महीना कभी किसी ऋतु में और कभी किसी ऋतु में आता है, वह बन्द हो जाये। और प्रति वर्ष प्रत्येक मास एक निश्चित् ऋतु में ही आये, और प्रत्येक वर्ष का नया दिन भी प्रति वर्ष एक ही निश्चित् मास और ऋतु में आरम्भ हो। इस के लिये उसने यह निश्चित् किया था कि लगातार तीन वर्ष तक ३६५ दिन का एक वर्ष माना जाये। और प्रति तीन वर्ष के पश्चात् फ़रवरी मास के अन्त में एक दिन बढ़ाकर, वर्ष के प्रतिमान को पूरा किया जाये। क्योंकि क़ैसर की गणना के अनुसार प्रत्येक वर्ष में छः घड़ी की कमी होती थी। अतः क़ैसर ने यह एक दिन बढ़ाने की व्यवस्था की थी।

ग्रेगरी का संवत्–सुधार

परन्तु जो अधिक पल हिसाब में छोड़ दिये गये थे, उन के कारण फिर भेद पड़ गया। सन् १५५५ ई० में ग्यारह मार्च को सूर्य-प्रकोप हुआ। अर्थात् सूर्य के गर्भ में तब्दील हुई। उस अवसर पर

तेरहवें पोप ग्रेगरी ने सन् १५५५ ई० में, वर्ष के दस दिन कम कर दिये। और अपने आदेश से ११ मार्च का इक्कीस मार्च निश्चित् कर दिया। और इस प्रकार उस वर्ष को ३५४ दिन में ही समाप्त कर दिया।

इस के बाद पोप ग्रेगरी ने यह नियम प्रचलित किया कि प्रत्येक शताब्दि के अन्तिम वर्ष को, जोकि ज्यूलस के मतानुसार थैली का वर्ष कहलाता है, तीन सौ पैंसठ दिनका माना जाये। और प्रत्येक चौथी शताब्दि के अन्तिम वर्ष में तीन दिन कम करके उसे ३६२ दिनका मानें। इस नियम के अनुसार, जो शताब्दि ४०० पर पूरी विभाजित हो जाये, वह लीप की शताब्दि मानी जाती है। और जो ४०० पर पूरी विभाजित न हो, वह लीप की शताब्दि नहीं मानी जाती। यथा १७००, १८००, १६०० ये शताब्दियां लीप की नहीं हैं। और इन में फ़रवरी मास २६ दिन का न होगा। परन्तु १६००, २०००, २४००, २८०० और ३२०० शताब्दियां लीप की मानी जायेंगी। और इन में फ़रवरी मास २६ दिन का होगा।

इस नियम को स्वीकार करने के विषय में भी विभिन्न देशों के ईसाइयों में मतभेद रहा। जर्मनी और स्विटजरलैंड के कैथोलिक ईसाइयों ने इसे शीघ्र ही स्वीकार कर लिया। परन्तु प्रोटेस्टेण्ट मतवालों ने इसे सन् १६६६ ई० तक न माना। स्वीडन में इस नियम का प्रचार सन् १७५३ ई० में हुआ। इंग्लैण्ड में सन् १७५२ ई० में यह माना गया। रूस और यूनान वालों ने इसे अभी तक भी नहीं माना।

चीनी-संवत्

चीन देश का सुप्रसिद्ध विद्वान् कनफ्यूशस सन् ईस्वी से ५०० वर्ष पूर्व हो गुजरा है। चीन के प्रथम महाराजा से कनफ्यूशस तक नौ करोड़, साठ लाख वर्ष व्यतीत हुए हैं।

[देखो तारीख बदी-अ-हिन्दुस्तान पृष्ठ ६, सन् १८७४ ई०]

६६०००००० + १८६० + ५०० = ६६००२३६० वर्ष हुए।

खताई-संवत्

मनुष्य की आरम्भिक उत्पत्ति से सन् ७३५ हिजरी तक आठ हजार, आठ सौ तिरासी दिन, तथा नौ हजार सात सौ नव्वे वर्ष हुए। यहां एक दिन का प्रतिमान दस हजार वर्ष है।

[देखो नफायसुल फनून, तारीखे खताई व आईने अकबरी, पृष्ठ २७२, कलकत्ता, सन् १८६७, बदी-अ-हिन्दुस्तान पृष्ठ १० सन् १८७४ ई०]

८८८३ × १०००० = ८८८३०००० ८८८३०००० + ६७६० + ५७२ = ८८८४०३६२ वर्ष हुए।

कालडिया-संवत्

कालडिया के निवासी कहते हैं कि हमारे सर्व प्रथम पूर्वज से ईसा तक डेढ़ लाख वर्ष का समय होता है।

[देखो बदी-अ-हिन्दुस्तान पृष्ठ ६]

* १८६० + १५०००० = १५१८६० वर्ष।

* कुलियात में १८९० संख्या अशुद्ध छपी है। —अनुवादक।

इबरानी-संवत्

उनके कथनानुसार सृष्टि की उत्पत्ति से ईसा तक ४००४ वर्ष होते हैं।
४००४+१८६०=५८६४ वर्ष।

फ़ारसी-संवत्

फ़ारस वाले अपने प्रथम राजा से ज़रदश्त तक एक लाख, चौरासी हज़ार नौ सौ, सत्तर वर्ष बताते हैं। ज़रदश्त का समय ईसा से तीन हज़ार वर्ष पूर्व है। इस हिसाब से १८४९७०+३००+१८६० =१८६८६० वर्ष होते हैं।

स्पार्टा-संवत्

यह संवत् स्पार्टा की स्थापना से आरम्भ होता है। जोकि ईसा से १७०४ वर्ष पूर्व हुई थी। सब मिलकर १७०४+१८६०=३५६४ वर्ष हुए।

यूनानी संवत्

यह संवत् ओलम्पिया के मैदानों में खेलों के प्रथम-प्रदर्शन से आरम्भ हुआ था। ये प्रदर्शन ईसा से ७७६ वर्ष पूर्व हुए थे। * इसके अनुसार ७७६+१८६०=२६६६ वर्ष हुए।

रूमी संवत्

रूम नामक नगर ईसा से ७५३ वर्ष पूर्व बसा था। रूम की स्थापना के समय से ही रूमी संवत् चला है। अतः ७५३+१८६०=२६४३ वर्ष होते हैं।

नाबूसारी संवत्

वावल नगर का प्रथम राजा ईसा से ७४७ वर्ष पूर्व हुआ। उस जलूस से इस संवत् का प्रचलन माना जाता है। इसके अनुसार ७४७+१८६०=२६३७ वर्ष हुए।

सिकन्दरी संवत्

इसका आरम्भ सिकन्दर के जन्म-काल से होता है। सिकन्दर का समय ईसा से ३५४ वर्ष पूर्व जौलाई मास में माना जाता है। अतः आज तक ३५४+१८६०=२२५४ वर्ष होते हैं

मिस्री संवत्

इसका आरम्भ मिस्र देश के प्रथम राजा मैनिस से माना जाता है। सिकन्दर के समय तक उसे पच्चीस हज़ार तीन सौ वर्ष बीते थे। अतः—
२५३००+२२४४=२७५४४ वर्ष हुए हैं।

मूसवी संवत्

मूसा को ईसाई, मूसाई और मुहम्मदी अपना पैग़म्बर मानते हैं। मूसा ईसा से १५७३ वर्ष पूर्व

* ओलम्पिक खेलों का आरम्भ भी इसी समय से होता है। अथवा इसके आधार पर ही ओलम्पिक खेलों का नामकरण किया गया है।
—अनुवादक।

पैदा हुआ था। इस हिसाब से १५७३+१८६०=३४६३ वर्ष हुए।

[देखो मूसा की किताब, मिर्ज़ापुर सन् १८६७ ई० ख़रूज का बयान।]

दाऊदी संवत्

दाऊद एक राजा और ईसाई, मूसाई व मुहम्मदी मतवालों का पैग़म्बर था। इसका राज्यारोहण काल ईसा से १०३५ वर्ष पूर्व माना जाता है। इस हिसाब से १०३५+१८६०=२६२५ वर्ष होते हैं।

इब्राहीमी संवत्

इब्राहीम ईसा से १६२१ वर्ष पूर्व पैदा हुआ (देखो तौरेत, उत्पत्ति की पुस्तक अध्याय १२) * इसके अनुसार १६२१+१८६०=३८११ वर्ष हुए।

संवतों का अनुक्रमिक चित्र

क्रम संख्या—नाम संवत्	—प्रचलन का समय	वर्तमान गणना
१—आर्य-संवत् +	सृष्टि-उत्पत्ति से	१६६०१५२६६०
२—चीनी-संवत्	चीन के प्रथम राजा से	६६००२३६०
३—ख़िताई-संवत्	ख़िता के बसने से	८८८४०२६३
४—पारसी-संवत्	ईरान के प्रथम राजा से	१८६८६०
५—कालडिया-संवत्	प्रथम पूर्वज से	१५१८६०
६—मिस्री-संवत्	मनीष राजा से	२७५४४
७—इबरानी-संवत्	आदम की उत्पत्ति, जगदुत्पत्ति से	५८६४
८—कलयुगी-संवत्	कलियुग के आरम्भ से	४६६०
९—युधिष्ठिरी-संवत्	युधिष्ठिर राजा के राज्यारोहण से	४६६०
१०—नूह का संवत्	नूह के समय से	४६६०
११—इब्राहीमी-संवत्	इब्राहीम से	३८११
१२—स्पार्टा-संवत्	स्पार्टा नगर की स्थापना से	३५६४
१३—मूसवी-संवत्	मूसा से	३४६३
१४—दाऊदी-संवत्	दाऊद से	२६२५
१५—यूनानी-संवत्	ओलम्पिया के खेल-प्रदर्शन से	२६६६
१६—रूमी-संवत्	रूम नगर की स्थापना से	२६४३
१७—नाबूसारी-संवत्	बाबुल के प्रथम राजा से	२६३७
१८—बौद्ध या शाक्यमुनि-संवत्	बुद्ध के ५०वें वर्ष से	६४६४
१९—सिकन्दरी-संवत्	सिकन्दर महान् से	२२४४
२०—विक्रमी-संवत्	विक्रमादित्य के राज्यारोहण से	१६४७
२१—ईस्वी-संवत्	ईसा के जन्म के चार वर्ष बाद से	१८६०

* इब्राहीम भी ईसाइयों, मूसाइयों और मुहम्मदियों का सम्मिलित पैगम्बर है। —अनुवादक।

+ सन्धि-काल के जोड़ने पर आर्य-संवत् १९७२९४८९९० वर्ष होगा। —अनुवादक।

२२—शालिवाहन-संवत्	राजा शालिवाहन से	१८१२
२३—मुहम्मदी-संवत् *	मुहम्मद साहब के मक्का छोड़ कर मदीने जाने से	१३०८+

—:०:—

लौन्द का महीना जानने की युक्ति

संवत् की जो संख्या हो, उस में चार जोड़ लें। फिर जो जोड़ आवे, उसे १६ पर विभाजित करें। जो अंक शेष रहे, उस के नीचे लिखे अनुसार विचार करके लौन्द का मास जान लेवें। यदि दो शेष रहें तो कंवार, तीन शेष रहें तो चैत, पाँच शेष बचें तो सावन, आठ बचें तो ज्येष्ठ, ग्यारह शेष रहें तो वैशाख, तेरह शेष रहें भादों और सोलह शेष रहें तो आषाढ़ लौन्द का महीना होगा। यदि कोई अंक शेष न रहे अथवा ऊपर लिखे हुए अंकों से भिन्न अंक शेष रहें, तो उस वर्ष में लौन्द का महीना न होगा। यथा—

संवत् १६४७+४=१६५१

१६५१÷१६

१३ शेष बचे। अतः संवत् १६४७ में लौन्द का महीना भादों होगा!

—:०:—

एक जनवरी का दिन जानने का उपाय

किसी हिन्दी के कवि का कथन है :—

जब लागे ईसा का सम्वत्।
ताते काढ़ो एह अनम्वत् ॥
अष्टादश शत ऊन पचासा।
शेष बचे ता धरो अकाशा ॥
ता पूरी चौथाई तासें।
जोड़ो, पुनि दो जोड़ो वामें ॥
कष्ट सात सौ रहें जो शेषा।
तिहि जानों इंगलिश वर्षेशा ॥

जैसे सन् १८६० ई० के विषय में यह जानना है कि १ जनवरी को क्या दिन था? तब—
१८६०—१८४६=४१, ४१+१०=५१+२=५३, ५३÷७=शेष रहे ४
सप्ताह में चौथा दिन बुधवार होता है। १ जनवरी सन् १८६० ई० को बुधवार ही था।

—:०:—

* मुहम्मदी-संवत् को ही हिजरी-संवत् भी कहते हैं। —अनुवादक।

+श्री पं० लेख राम जी ने 'तारीख-दुनिया' नामक पुस्तक सन् १८९० ई० में लिखी थी। उसी का अनुवाद यह 'सृष्टि का इतिहास' है। सब संवतों की जो गणना मूल पुस्तक में है, वह ७३ वर्ष पहले की है। —अनुवादक।

विशेष सूचना

प्रारम्भिक अंग्रेज इतिहासकारों ने अपने अनुसन्धानात्मक लेखों में प्रायः भयंकर भूलें की हैं। विशेष रूप से ऐसे प्रसंगों में जब कि किसी प्राचीन ग्रन्थ अथवा शिला लेख के विषय में उन्हें निज-मत प्रकाशित करने का अवसर मिला है। उनकी सभी भूलों का यह एक बड़ा कारण है कि वे अपने इस मिथ्या विश्वास को छोड़ना नहीं चाहते कि इस सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से चार हज़ार चार सौ वर्ष पूर्व हुई है। इस तथ्य को निष्पक्ष विदेशी विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।

श्री टामकारेट ने श्री एल. विक्टर के नाम अपने पत्र में फिरोज़शाह की लाट के विषय में लिखा है :—

"मैं ऐसे नगर देहली में हूँ, जहां सिकन्दर महान् की हिन्दुस्तान के राजा पोरस के साथ लड़ाई हुई थी और जहां सिकन्दर ने उसकी सेना को पराजित किया था। सिकन्दर ने यहां उसी विजय के स्मारक-स्वरूप पीतल का एक स्तम्भ बनवाया था, जोकि इस समय भी मौजूद है।"

[आरक्यालोजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया, खण्ड १. पृष्ठ १६२]

इसी उद्धरण को लेकर एडवर्ड टरी नामक एक पादरी ने लिखा है:—

"श्री टाम कारेट, जिसने देहली के समाचार लिखे हैं, उन्होंने मुझे बतलाया कि मैंने देहली में निवास के दिनों में संग मर-मर का एक बहुत बड़ा स्तम्भ देखा है, जिसके ऊपर यूनानी अक्षरों में एक लेख था। कालचक्र के प्रवाह ने उस लेख को जीर्ण-शीर्ण कर दिया है।"

प्रारम्भिक काल के अंग्रेज यात्रियों ने भी इसी टाम कारेट की मिथ्या धारणा के आधार पर बहुत ठोकरें खाईं थीं। इस विषय में श्री परचस का कथन है कि यह लेख यूनानी अथवा इबरानी भाषा में है। कई विद्वानों का यह भी मत है कि इसे महान् सिकन्दर ने स्थापित किया था।

श्री जेम्स प्रिंसिप का विचार भी यही था। एवं इसी प्रकार की भ्रान्ति बिशप हैबर को भी हुई थी। जोकि इस स्तम्भ को ढली हुई धात का एक काला स्तम्भ लिखते हैं। टाम कारेट की भूल का कारण तो यह प्रतीत होता है कि उसने पाली भाषा के थ, छ, ठ, क, र, ब, ज, ई, ण इन अक्षरों को यूनानी भाषा के अक्षर समझ लिया।

[देखो पृष्ठ १६४]

अन्त में लिखा है कि यह स्तम्भ राये पिथौरा अर्थात् सम्राट पृथिवी राज चौहान का है। यदि यह ढली हुई धातु से निर्मित न होता, तो मुसलमान आक्रमणकारी और विजेता इस को कभी के खा गये होते। धातु का होने के कारण, वे इसे तोड़ न सके।

एक इतिहास-लेखक लिखता है कि मैंने एक टुकड़े का टुकड़ा डाक्टर मेरी के पास रुड़की भेजा था। उन्होंने परीक्षा करके मुझे सूचित किया है कि यह बिलेबिल लोहे का है। जिस की गुरुता का मान अंक ७६६ है। अर्थात् वह पानी से इतना अधिक भारी है।

[आरक्यालोजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया, खण्ड १ पृष्ठ १७०]

[दूसरा-खण्ड]

आर्य ग्रन्थों का अनुसन्धान

दीर्घकाल तक अविद्या का अन्धकार फैलने के कारण सत्यविद्या का प्रचार बहुत कम हो चला था। आर्ष ग्रन्थों का स्थान पुराणों ने सम्भाल लिया था। घर-घर में पुराणों के उपदेश प्रवेश कर चुके थे। आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त में अनेक मत-मतान्तर फैल गये थे। विद्याविषयक उच्चवादों के स्थान पर कपोल-कल्पित कहानियां प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। मानव हृदय पारस्परिक राग-द्वेष और कामक्रोध एवं घृणा आदि से दूषित होकर, छल, प्रपंच और ढोंग के वशीभूत हो रहे थे। स्वार्थों की पूर्त्ति के लिये काल्पनिक और बनावटी श्लोक बना-बनाकर मूर्खों को येन-केन-प्रकारेण बहका-फुसलाकर और सब प्रकार से अपने वश में करके अपनी मतलब-सिद्धि शुरू कर रखी थी। जिस को जिधर, जैसे भी कोई अवसर मिलता था, वही मिथ्यावाद को फैलाना आरम्भ कर देता था। भारत के युद्ध और महाराजा युधिष्ठिर की मृत्यु के पश्चात् जिसको अभी केवल ४९९० वर्ष ही बीते हैं, लोगों ने सैंकड़ों छल-प्रपंच और मिथ्या बातों से परिपूर्ण ग्रन्थ बना, और शायरी का शरबत चखाकर सारे ही आर्यावर्त्त को अपने माया जाल में फंसा लिया। अपने तुच्छ स्वार्थों और विषय-वासनाओं को पूर्ण करने के लिये पूर्वज महात्माओं और ऋषि-मुनियों के नाम से ग्रन्थ बना बनाकर उन प्रपंची लोगों ने सर्वश्रेष्ठ और उत्तम धर्म को भी अधोगति में पहुँचा दिया था इस समय वेदों और सत्य शास्त्रों के अतिरिक्त और कोई भी ऐसा ग्रन्थ दिखाई नहीं देता, जिस में पोप लीला के लक्षण वर्तमान न हों। आजकल के तथाकथित धर्म ग्रन्थों में विद्या और बुद्धि से विपरीत कहानियों और बे सिर पैर की निराधार बातों की भरमार इतनी अधिक है कि उनकी सीमा बताना और हिसाब लगाना भी कठिन है। महान् शोक है कि ऐसी जड़ता फैली कि दस हज़ार या चौबीस हज़ार श्लोकों के स्थान पर एक लाख श्लोक रच डाले गये। और, लेखक की सत्यता पर न्याय के शत्रुओं ने धूल डाल दी।

हम दूर क्यों जायें ? और क्यों पाठकों को लम्बी चौड़ी तथा व्यर्थ बातों में उलझायें ? अभी सवंत् १६८० वि० की बात है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दी-भाषा में रामायण की रचना की थी। वह प्रतिदिन बढ़ते-बढ़ते केवल तीन सौ वर्ष में ही इतनी बढ़ गई है, कि सैंकड़ों चौपाइयों का भेद हो गया है। परन्तु, अब खोज करने पर असल पुस्तक भी मिल गई है। और, भली प्रकार यह पता चल गया है कि मूल लेखक का कथन क्या है ? और वर्तमान रामायण क्या राग आलापती है ?

महाभारत की कोई दो प्रतियां भी आर्यावर्त में ऐसी नहीं मिलतीं, जिन में सैंकड़ों श्लोकों के भेद-प्रभेद वर्तमान न हों। जब यहां तक प्रक्षेप होने लगे, तो तब स्वार्थ-लीला-ग्रस्त-पण्डित-मण्डल के कुछ पण्डितों को भी यह कहना ही पड़ा कि भारत ग्रन्थ में अवश्य ही कोई गड़बड़ हुई है।

अस्तु। पाठकवृन्द ! अन्य प्राचीन ग्रन्थों की अवस्था भी ऐसी ही है। मनुस्मृति में भी दो सौ श्लोकों

से अधिक की मिलावट मौजूद है। उसकी भी कोई दो प्राचीन प्रतियां ऐसी नहीं मिलतीं, जिन में एक रूपता हो। यही अवस्था वाल्मीकी रामायण की भी है। यहां हम अनुसन्धान पूर्वक कुछ ग्रन्थों के निर्माण-काल का निर्णय करते हैं। फिर भी कभी ऐसा ही करेंगे। क्योंकि हमारा विचार है कि प्राचीन आर्य साहित्य और विद्या-भण्डार के आस पास ज़ितना भी घास-फूंस और कूड़ा-करकट है, उसे सर्वथा दूर करदें।

मनु-स्मृति

डाक्टर हण्टर महोदय का कथन है कि ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व मनु ने एक शास्त्र उत्तर भारत के ब्राह्मणों के रीति-रिवाज के लिये बनाया।

[मिस्बाहुल तवारीख़, हण्टर, सन् १८८६ ई० पृ० १६]

अधिकांश पाश्चात्य विचारकों का कथन यह है कि :—

"यह पुस्तक ईसा से नौ सौ वर्ष पूर्व लिखी गई थी।"

[देखो तहकीक़ात एशिया, खण्ड २, पृष्ठ ११६]

महामान्यवर इन्फिस्टन साहिब भूतपूर्व राजपाल बम्बई का कथन है—"इस संग्रह का लेखक ईसा से नौ सौ वर्ष पूर्व हुआ होगा।"

[तारीख हिन्दुस्तान परिशिष्ट सं० १ पृष्ठ ४२५, सन् १८६६ ई०]

प्रतिवाद

डाक्टर हण्टर महोदय मनु को तो ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व बतलाते हैं; परन्तु महाभारत के विषय में कहते हैं कि व्यास जी, जिन्हों ने चौबीस हज़ार श्लोकों में भारत ग्रन्थ की रचना की थी, वे ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व हुए थे।

[संक्षिप्त तारीख़ हिन्द, खण्ड १ पृष्ठ ६०, सन् १८८४ ई०]

स्वयं व्यास जी भारत में लिखते हैं :—

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदचिकित्सितम् ।
आज्ञा सिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥

महाभारत

ब्राह्मण-ग्रन्थ, मनुस्मृति, वेद और वेदों के अंग, आयुर्वेद इन चारों के आदेशों को अवश्य ही मानना चाहिये। युक्तियों के द्वारा कोई इनका निरादर न करे।

हम सिद्ध कर चुके हैं कि भारत को बने ४९६० वर्ष हो चुके हैं। परन्तु केवल भारत की ही क्या कथा है, छान्दोग्य-ब्राह्मण में भी मनु का उल्लेख विद्यमान है। यथा :—

मनुर्वै यत्किचिदवदत्तद् भेषजं भेषजतायाः ।

मनु ने जो कुछ लिखा है, वह तो भेषजों का भी भेषज है। अवश्य ही मनु के आदेशों का पालन करना चाहिये। महात्मा बृहस्पति जी का कथन है :—

वेदार्थोपनिबन्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् ।
मन्वर्थ विपरीता तु या स्मृति सा न शस्यते ॥
तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्क-व्याकरणानि च ।
धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते ॥

वेदार्थ के अनुकूल होने के कारण स्मृतियों में मनुस्मृति ही प्रधान है। जो स्मृति मनुस्मृति के प्रतिकूल है, वह प्रशंसा के योग्य नहीं है। तर्क-शास्त्र और व्याकरण आदि शास्त्र तभी तक रुचिकर प्रतीत होते हैं, जब तक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश देने वाला मानव-धर्म-शास्त्र=मनुस्मृति न पढ़ा जाये।

महर्षि पाराशर, जिसे पाश्चात्य जगत् के विद्वान् विचारक प्राचीन काल का सर्वप्रथम ज्योतिषी कहते हैं, और जिसका समय वे ईसा से १२८१ और १३९१ वर्ष पूर्व कथन करते हैं, वे भी अपनी स्मृति में मनु का उल्लेख करते हैं। और उन्हें बहुत अधिक प्राचीन बताते हैं। *

अन्य ग्रन्थ तो मनुस्मृति की प्राचीनता को स्वीकार करते ही हैं, अब हमें यह भी देखना चाहिये कि अपनी प्राचीनता के विषय में स्वयं मनुस्मृति हमें क्या बताती है ? विदित हो कि मनुस्मृति के विवेचन से यह प्रगट हुआ है कि उस में वेदों का ही उल्लेख एवं प्रामाण्य पाया जाता है। अन्य किसी ग्रन्थ का लेख मनुस्मृति में नहीं है। और यदि कुछ थोड़ा सा है भी तो वह ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदांगों और उपनिषदों के ही विषय में है।

मनु ने जहां कहीं भी कोई उद्धरण वा प्रमाण दिया है, तो वह स्वयं वेद-संहिता का ही है। अन्य आर्ष-ग्रन्थों के विषय में बहुत कम उल्लेख है। राम, कृष्ण और देवी प्रभृति का कुछ भी उल्लेख मनुस्मृति में नहीं है। अब हमें देखना है कि मनु जी अपनी स्मृतिं की रचना के विषय में हमें क्या बताते हैं ? वे मौन हैं, या स्पष्टता का अनुसरण करते हैं ?

स्वायम्भवस्यास्यमनोः षड् वंश्या मनवोऽपरे ।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वाः महात्मानो महौजसः ॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महा तेजा विवस्वत सुत एवच ॥
स्वायम्भुवाद्यास्सप्त ते मनवो भूरितेजसः ।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यायुश्चराचरम् ॥

[मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ६१, ६२, ६३]

* इस सन्दर्भ के विषय में तारीख़-ए-दुनिया के दूसरे संस्करण में पृष्ठ ३२ पर नीचे लिखे अनुसार एक पाद—टिप्पणी मौजूद है, जोकि कुलियात में नहीं है। वह यह—देखो ड्यूज साहब की किताब 'तहक़ीक़ात एशिया' खण्ड २ पृष्ठ २६८, एवं खण्ड ५ पृष्ठ २८८ तथा काल ब्रुक साहब की तहक़ीक़ात हालात एशिया' खण्ड ९, पृष्ठ ३५६ व खण्ड ६, पृष्ठ ५८९, तथा ओरियण्टल मैगज़ीन खण्ड ५, पृष्ठ २४५ यह टिप्पणी आवश्यक थी। कुलियात में भूलवश छूट गई होगी। —अनुवादक।

स्वायम्भुवमनु से आरम्भ करके, अब से पहले छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। उन के समय में भी पृथक्-पृथक् स्वभाववाली सृष्टि उत्पन्न हुई थी।

जो मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं, उन के नाम इस प्रकार हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुप। अब यह सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है।

स्वायम्भुव आदि सभी मन्वन्तरों में यह विभिन्न प्रकार के स्वभाववाला चराचर जगत् ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार उत्पन्न होता है।

इस लेख से यह भली प्रकार प्रकट हो जाता है कि तब छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके थे। और सातवें मन्वन्तर में उन्हों ने इस स्मृति की रचना की थी। इस से आगे की काल-व्याख्या निम्नलिखित श्लोक से प्रकट होती है :—

अब्दानांदशकं सहस्रदशकं यातं च सत्ये युगे।
भाद्रं मासि कृतामया हि मनुना ब्रह्माज्ञया पूर्णिमा॥

वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम सत्ययुग के दस हजार दस वर्ष व्यतीत हो जाने पर, भादों के महीने में, पूर्णमाशी के दिन मैंने ज्ञानस्वरूप परमात्मा की आज्ञा से यह ग्रन्थ पूर्ण किया।

मन्वन्तर संख्या में चौदह होते हैं। परन्तु मनु ने अन्य मन्वन्तरों का नाम नहीं लिया। इस से स्पष्ट है कि मनु ने केवल अपनी स्मृति का रचना-काल ही सूचित किया है। मनु की इस सूचना का फलितार्थ इस प्रकार है :—

२७ चतुर्युगियां जो बीत चुकीं	११६६४०००० वर्ष
२८वीं चतुर्युगी के प्रथम तीन युग जो बीत चुके	३८८८००० वर्ष
कलियुग के जो वर्ष बीत गये	४९६० वर्ष
सर्व योग	१२०५३२९६० वर्ष

१२०५३२९६०—१००१०=१२०५२२९८० वर्ष

यही मनुस्मृति की रचना से अब तक का समय है।

प्रसिद्ध विचारक इन्फिस्टन साहब का कथन है कि मनु-स्मृति की रचना को, जो वास्तव में ईसा से नौ सौ वर्ष पूर्व रची गई थी, हिन्दू लोग चारों युगों में से गुजर कर, सात मन्वन्तर पूर्व की रचना बताते हैं। जोकि एक ऐसा समय है, जोकि ४३२०००० को ७१ चतुर्युगी से गुणा करने पर प्राप्त होता है।

[देखो तारीख़ हिन्दुस्तान पृष्ठ २५७ सन् १८६७ ई०]

प्रतिवाद

श्री इन्फिस्टन साहब का कथन असत्य है। वास्तव में ऐसा नहीं है। मनुस्मृति की रचना स्वायम्भव मन्वन्तर में नहीं हुई। अपितु वर्तमान् वैवस्वत् मन्वन्तर की ही यह रचना है। जैसा कि ऊपर सिद्ध किया गया है। मनुस्मृति की रचना को १२०५२२९८० वर्ष गुजरे हैं।

जो मूसा के दस आदेश प्रसिद्ध हैं, वे मनुस्मृति में से ही नकल किये गये हैं।

सर विलियम जोंस साहब का कथन है कि किसी समय यही मनुस्मृति यूनान और मिस्र देशों में भी प्रचलित थी। और इसी के अनुसार लोक-व्यवहारों की व्यवस्था होती थी।

[देखो अंग्रेज़ी भाषा में मनुस्मृति के अनुवाद की भूमिका]

मनु का क़ानून मूसा के क़ानून से बहुत अधिक प्राचीन है।

[देखो बाइबिल इन् इण्डिया, न्यूयार्क का संस्करण।]

यहां यह उचित प्रतीत होता है कि अन्य सात मन्वन्तरों के नाम भी लिख दिये जायें। लोग प्रायः वे नाम पूछा करते हैं। विदित हो कि छः मन्वन्तर तो गुज़र चुके हैं और सातवां अब गुज़र रहा है। इन सात मन्वन्तरों के नाम हम पहले लिख आये हैं। भविष्य में आने वाले सात मन्वन्तरों के नाम ये हैं :—

सावर्णिर्दक्षसा वर्णिर्ब्रह्मसा वर्णिकस्ततः ।
धर्म सावर्णिको रुद्रपुत्रो रोच्यश्च भौत्यकः ॥

सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रपुत्र, रोच्य और भौत्यक ये भावी मन्वन्तरों के नाम हैं।

सूर्य-सिद्धान्त

इस ग्रन्थ-रत्न के विषय में पाश्चात्य देशों के विचारक, अपने धर्म-ग्रन्थ बाइबिल के काल-गणना विषय विचारों के वश में होकर बहुत-सी अनाप-शनाप बातें हांकते है। और कहते हैं कि इस की रचना सन् ५०० ई० में हुई थी।

[तारीख़ हिन्दुस्तान, पृष्ठ २५७, सन् १८६६ ई०]

फिर एक अन्य विचारक लिखते हैं :—

"सूर्य-सिद्धान्त एक बहुत बड़े ज्योतिषी का लिखा हुआ ग्रन्थ है। इस की रचना ईसा की पांचवीं या छटी शताब्दि में हुई थी।"

[तहक़ीक़ात हालात एशिया, खण्ड ६, पृष्ठ ३२६ तथा खण्ड २, पृष्ठ ६२]

फिर लिखा है :—

गणित-विद्या की अन्य शाखाओं में जो उन्नति आर्यों ने की है, वह ज्योतिषविद्या की अपेक्षा बहुत अधिक है। और विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है। जैसे कि सूर्य-सिद्धान्त ग्रन्थ में त्रिभुज के विषय में ऐसा विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, जोकि यूनान देश-वासियों की जो उन्नति रेखा-गणित में हुई थी, उस से भी बहुत अधिक उन्नत तथा विकसित है। इतना ही नहीं उस में ऐसे-ऐसे गूढ़ प्रश्न और उन के समाधान वर्तमान हैं, जिन के विषय में योरूप वालों को सोलहवीं शताब्दि तक कुछ भी जानकारी न थी।

[देखो तहक़ीक़ात हालात एशिया खण्ड ४, पृष्ठ १५२]

प्रोफ़ैसर वाट्स साहब लिखते हैं :—

'सूर्य-सिद्धान्त' की रचना से बहुत पहले ही लोग अंक-गणित के विशेषज्ञ रहे होंगे। इस में

वतरों अर्थात् कर्णों का परिणाम जानने का ऐसा उत्तम नियम मौजूद है, जिस का प्रयोग आधुनिक युग में सर्व-प्रथम श्री बरगिज़ साहब ने सतरहवीं शती में किया है।

[देखो ब्रिटिश इण्डिया पृष्ठ ४०३]

परिधि और व्यास के विषय का भी पूर्णविवरण सूर्य सिद्धान्त में है।

[देखो तहक़ीक़ात हालात एशिया खण्ड २, पृष्ठ २५६]

अब हम यह बतायेंगे कि आर्यों के ज्योतिष-विज्ञान इत्यादि के विषय में योरूप के विद्वानों के विचार विशेषतया क्या हैं ?

पादरी बेण्टली साहब, जोकि आर्यों के महत्व की सूचक सभी बातों के विषय में विरुद्धमत रखते हैं, अपनी अन्तिम पुस्तक में लिखते हैं :—

"आर्यों ने जो तरीक़-उल्-शमश=चन्द्र ऋक्षों को सत्ताइस भागों में विभक्त किया है, उस से अपने समय के गणित-विद्या के बहुत बड़े विशेषज्ञ सिद्ध होते हैं। उन का यह विभाजक नियम ईसा १४४२-वर्ष पूर्व व्यवहार में आया था।

[तारीख़ हिन्दुस्तान, पृष्ठ २४०, सन् १८६६ ई० तथा तहक़ीक़ात हालात एशिया खण्ड ४, पृष्ठ १५२]

श्री कलसेनी, श्री बेली और श्री प्लेफवटर इन तीनों विचारकों का कथन है कि आर्यों ने ईसा तीन हज़ार वर्ष पूर्व ऐसे महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये थे जोकि इस समय भी वर्तमान हैं। और उन से ी प्रकार यह सिद्ध होता है कि उस प्राचीन-काल में आर्य जाति की उन्नति बहुत अधिक हो ी थी।

[तारीख़ हिन्दुस्तान अध्याय १ भाग ३ पृष्ठ २३६]

इस मत के आधार पर एक बहुत उत्तम अनुमान तर्क-शास्त्र के आधार पर यह भी स्थिर किया ा है कि सुदीर्घ-प्राचीन काल में ही बहुत अधिक महत्वपूर्ण उन्नति हो चुकी थी।

[तारीख़ हिन्दुस्तान पृष्ठ २४४]

सभी ज्योतिष-विद्या-विशारद विद्वान् इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि प्राचीन काल में आर्यों ो खोजें की थीं वे बहुत महत्वपूर्ण एवं उन्नति की सूचक थीं। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि न आर्यों ने सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में जो कुछ लिखा है, और जो सिद्धान्त स्थिर किये े शुद्ध और सत्य हैं। उन को यह सब महत्वपूर्ण जानकारी अपने अनुसन्धानों के परिणामों की न परिणामों से तुलना करके ही प्राप्त हुई होगी।

[देखो श्री पौण्ड साहब की लापलेस वाली पुस्तक इन्तज़ाम-दुनिया]

जिस नियम के आधार पर पंचांग की रचना की गई है, और जिस का उल्लेख वेद में भी ता है, उस के लिखे जाने का समय हज़रत ईसा से चौदह सौ वर्ष पूर्व है।

[देखो तहक़ीक़ात हालात एशिया, खण्ड ८, पृष्ठ ४८६, तथा खण्ड ७, पृष्ठ ३८२]

सिद्धान्त शिरोमणि

श्री बेण्टली साहब ने जिस प्रकार यह भूल की है उसी प्रकार 'सिद्धान्त-शिरोमणि' ग्रन्थ ाल-निर्णय करने में भी भूल की है। क्योंकि वे अपनी अन्तिम पुस्तक में यह सिद्ध करना

चाहते हैं कि भास्कराचार्य ने सम्राट् अकबर के शासनकाल में सन् १५५६ ई० में अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्त-शिरोमणि की रचना की है। पाठकगण! कुछ विचार तो कीजिये कि उनकी यह भ्रान्ति कितनी बड़ी है? इस लिये विचारक इन्फिस्टन साहब लिखते हैं कि उस प्रसिद्ध ग्रन्थकार 'भास्कराचार्य' की एक पुस्तक के विषय में मूल-लेख के लिखे जाने के विषय में सुप्रसिद्ध विद्वान् फ़ैज़ी ने निर्माण काल निर्धारित किया है। और इस विषय में अपने प्रमाण लिखे हैं। विदित हो कि श्री फ़ैज़ी ने सिद्धान्त-शिरोमणि का प्रामाणिक फारसी अनुवाद करके उसे सम्राट् अकबर की सेवा में प्रस्तुत किया था। श्री फ़ैज़ी ने सिद्धान्त-शिरोमणि के निर्माण का जो काल निर्धारित किया है, श्री बएटली उसे स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। और भी बहुत से लेखकों ने, जोकि अकबर से पहले हो गुज़रे हैं, अपने ग्रन्थों में 'भास्कराचार्य' और सिद्धान्त-शिरोमणि का उल्लेख किया है। परन्तु बेएटली साहेब यह सब स्वीकार नहीं करते। [देखो तारीख़ हिन्दुस्तान, पृष्ठ २४६ सन् १८६६ ई०]

अस्तु। पाश्चात्य विद्वानों के उद्घोषित सभी काल-निर्णय, जोकि बाईबिल के भ्रान्तिजाल के वश में होकर दुराग्रह एवं विरुद्धभावना के आधार पर किये गये हैं, किसी भी अवस्था में मानने के योग्य नहीं हैं। वे तो बाइबिल के वश में होकर सत्य के मुख पर परदा डालने के समान हैं।

आर्यों ने अंक-गणित-विज्ञान में जो उन्नति की थी अब हम उसके विषय में और भी कुछ उल्लेख करते हैं।

प्रोफेसर आलस साहब ने लिखा है कि ज्योतिष-विद्या के अनुसन्धान और अंक-गणित के प्रमाणों में आर्यों ने जो बीज गणित का उपयोग किया है, वह भी उनका ही आविष्कार है। जिस रूप में वे अब भी उसका व्यवहार करते हैं, वह सब प्रकार से प्रशंसा के योग्य है।

[कालब्रुक का इण्डियन अलजब्रा, पृष्ठ ४०८, ४०६ तथा एडनब्रा रिव्यू खण्ड २६ पृष्ठ १५८]

गणित-विद्या में दशमलव-प्रणाली के आविष्कार के कारण, जिसके आविष्कारक सभी विद्वान् आर्यों को स्वीकार करते हैं, आर्य-गण बहुत अधिक सन्मानित हैं। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि इस आविष्कार के कारण ही आर्य लोगों ने यूनानियों की तुलना में बहुत अधिक उन्नति की थी। और, बहुत बड़ी-बड़ी सफलतायें प्राप्त की थीं।

[तारीख़ हिन्दुस्तान, पृष्ठ २४६]

बीज-गणित के विषय में आर्यों के विरुद्ध अरबवासियों का दावा भी प्रस्तुत किया गया है। परन्तु श्री कालब्रुक साहब ने भली प्रकार यह सिद्ध कर दिया है कि अरबवासियों को बीज-गणित की जानकारी प्राप्त होने, और इन सूक्ष्म विद्याओं में उनके प्रविष्ट होने से बहुत समय पूर्व ही आर्यों ने हिन्दुस्तान में इन विद्याओं को उन्नति की चरमसीमा पर पहुँचा दिया था।

[एडनब्रा रिव्यू पृष्ठ १५१ तथा तारीख़ हिन्दुस्तान पृष्ठ २४२ व पृष्ठ २५१, सन् १८६६ ई०]

वे ही विद्वान् फिर आगे लिखते हैं :—

"आर्यों के उन्नति-काल के आरम्भ में संसार की अन्य सब जातियां, आर्यों की तुलना में बहुत अधिक अवनत-अवस्था में थीं। और जब आर्यों की उन्नति भली प्रकार हो चुकी थी, एवं जब यह भी सम्भावना थी कि अन्य जातियां भी आर्यों से कुछ सीख लें और उन्नति पथ पर बढ़ें, तब भी अन्य जातियों की स्थिति अच्छी न थी। जहां तक इस बात का संबन्ध है कि अपनी उन्नति के समय में

आर्य लोग भी दूसरी जातियों से कुछ उत्तम बातें सीख लें, तो इसकी कोई सूरत ही न थी। आर्यों में जो विद्या-प्रेम, अनुसन्धान एवं नये-नये आविष्कार करने का उत्साह और संचित ज्ञान को सुरक्षित रखने का प्रकार था, वह केवल किसी विशेष व्यक्ति के आधार पर प्रचलित, प्रतिष्ठित या जीवित न था। अपितु उस का आधार विद्या और विज्ञान के बहुत ऊँचे सिद्धान्त थे। और उन सिद्धान्तों से, तब आर्यों से भिन्न संसार की कोई भी दूसरी जाति परिचित ही न थी। यही नहीं, जो उन्नति आर्यों ने बहुत प्राचीन काल में कर ली थी, उस के आधार भूत सिद्धान्तों से योरूप के लोग तो अभी दो सौ वर्ष पहले तक भी परिचित न थे। इस सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि उन के ज्योतिष-विज्ञान के परिणाम जितने उन की सूक्ष्म विद्याओं की जानकारी के आधार पर प्रतिष्ठित थे, उतने ही वे किसी अन्य जाति से प्राप्त भी न हो सकते थे। यह भी स्पष्ट है कि वे किसी अन्य जाति से किसी भी अवस्था में प्राप्त न हो सकते थे। आर्यों के सिद्धान्त और विद्या-विज्ञान विषयक नियम किसी अन्य जाति की खोज या अनुभूतियों का परिणाम नहीं हैं। न ही ऐसा होना, वा कहना सम्भव है। जो लोग अनेकविध सूक्ष्म-विद्याओं में भली प्रकार पारंगत हों, उन को भला किसी अवनत तथा अविद्या-अन्धकार-ग्रस्त किसी जाति से कुछ भी सीखने की जरूरत ही क्या है? वह तो अपने विज्ञान एवं सामर्थ्य के द्वारा ही अज्ञात को ज्ञात बना सकती है। और अप्राप्त को प्राप्त कर सकती है। कोई भी मनुष्य न्यायपूर्वक यह कथन नहीं कर सकता कि जिन की अपनी विद्या, बुद्धि और शक्ति सब प्रकार से बढ़ी चढ़ी हो। उन को भी उन लोगों से सहारा लेना पड़ा होगा, जिन की विद्या, बुद्धि और शक्ति कुछ भी नहीं है।

[तारीख हिन्दुस्तान, पृष्ठ २४६, सन् १८६६ ई०]

अन्त में ये ही महामान्यवर इन्फिस्टन साहब लिखते हैं :—

"भारत के ज्योतिष-विज्ञान की प्राचीनता और सत्यता एक बहुत ही मनोरंजक विषय है। इन में से प्राचीनता के विषय में मैंने योरूप के बहुत से बड़े-बड़े विद्वानों से वार्तालाप किया है। तथापि इस विषय में कोई अन्तिम निर्णय न हो सका।"

[तारीख हिन्दुस्तान, पृष्ठ २४६, सन् १८६६ ई०]

जब हम 'सूर्य सिद्धान्त' के विषय में विचार करते हैं, तब वह हमें बहुत अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। क्योंकि इस का लेखक वेद आदि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों को छोड़कर, अन्य ग्रन्थों के प्रमाण देता ही नहीं है। यह प्रसिद्ध ज्योतिषी, नक्षत्रविद्या और सामुद्रिक विद्या का महाविद्वान् अपने प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना का जो समय सूचित करता है, उस की जानकारी नीचे लिखे श्लोकों से होती है। इन से स्वयं रचनाकार के समय का ज्ञान भी हो जाता है।

कल्पपादस्माच्च मनवः षड् व्यतीताः ससन्ध्यः।
वैवस्वतस्य च त्रयी युगानां त्रिघनो गतः॥
अष्टाविंशद् युगादस्माद् यातमेतत्कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत्॥

[सूर्य सिद्धान्त, ब्रह्म अध्याय, श्लोक २२, २३]

इस कल्प के आरम्भ के छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। सातवां वैवस्वत् मन्वन्तर बीत रहा

है। इस के भी सत्ताईस महायुग बीत चुके। जो अठाईसवीं चतुर्युगी चल रही है उस का भी सतयुग व्यतीत हो गया है। इसी समय मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है। इस सम्पूर्ण गणना के आधार पर इस ग्रन्थ के रचना-काल को समझ लेना चाहिये।

इन श्लोकों का फलितार्थ इस प्रकार है :—

त्रेता-युग सम्पूर्ण	१२९६०००
द्वापर-युग सम्पूर्ण	८६४०००
कलियुग के गतवर्ष	४९९०
सर्वयोग	२१६४९९० वर्ष

यही सूर्य-सिद्धान्त की रचना का समय है।

वेदान्त-शास्त्र

हम सिद्ध कर चुके हैं कि श्री व्यास जी को हुए ४९९० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, क्योंकि वे कलियुग के आरम्भ में वर्तमान थे। उन्होंने ही यह ग्रन्थ रचा है। अतः इसकी रचना को अब तक ४९९० वर्ष हो चुके हैं। इस से कम किसी प्रकार भी नहीं। इसके अतिरिक्त व्यास जी ने ही मीमांसा-शास्त्र पर, जोकि जैमिनी मुनि की रचना है, विस्तृत व्याख्या भी लिखी थी। एवं महामुनि पतंजलि-कृत योग-दर्शन का भाष्य भी व्यास जी ने ही रचा था। महाभारत तो व्यास जी का ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है।

अष्टाध्यायी

एक विचारक लिखता है :—

"ईसा से ३५० वर्ष पूर्व संस्कृत-भाषा के व्याकरण के नियम पाणिनि नाम के ब्राह्मण ने बनाये थे। जोकि अब तक भी प्रचलित हैं। महाभाष्य के मूल नियम भी पाणिनि की ही रचना हैं। उस समय साधारण जनता तो प्राकृत-भाषा बोलती थी। परन्तु विद्वान् लोग सदैव लिखने और बोलने में संस्कृत का ही व्यवहार किया करते थे।

[मिरबाह-उल-तवारीख़, हण्टर, पृष्ठ १८]

संस्कृत भाषा के विषय में सर विलियम जोंस साहब का लेख है कि संस्कृत भाषा यूनानी बोली से अधिक उत्तम तथा रूमी-भाषा से अधिक विस्तृत है। एवं इन दोनों से ही सुन्दर और मनोहर है।

[तहक़ीक़ात हालत एशिया, खण्ड १, पृष्ठ४२२]

महामान्यवर इन्फिस्टन साहब भूतपूर्व राज्यपाल बम्बई प्रान्त लिखते हैं:—"इस संस्कृत-भाषा का व्याकरण ऐसा उत्तम और पूर्ण है कि यदि मानवी-भाषा के कोई नियम संसार में कहीं पर बने भी हैं, तो वे इस संस्कृत-भाषा के नियमों से अधिक उत्तम नहीं हैं।"

[तारीख़ हिन्दुस्तान, पाँचवां अध्याय, पृष्ठ २७७, सन् १८६६ ई०]

अब हम उन आक्षेपों पर विचार करते हैं, जोकि विरोधी संस्कृत भाषा के विषय में किया करते हैं। राजा शिवप्रसाद जी सी० एस० आई० अपने इतिहास में लिखते हैं कि कात्यायन के

ग्रन्थ की टीका पतंजलि ने लिखी। और पतंजलि के ग्रन्थ की टीका व्यास ने लिखी। अब हेमचन्द अपने प्रसिद्ध कोष में लिखता है कि कात्यायन का ही दूसरा नाम वररुचि है। काश्मीर देश का पण्डित सोम देव भट्ट अपने संसार-प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कथा सरित सागर' में लिखता है कि कात्यायन वररुचि कौशाम्बी नगर में पैदा हुआ था। और, पाणिनि से उसने व्याकरण के विषय में शास्त्रार्थ किया था। और वह प्रसिद्ध राजा नन्द का मन्त्री था। मुद्राराक्षस प्रभृति बहुत से ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि नन्द के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य्य राज्य सिंहासन पर बैठा था। और, चन्द्रगुप्त का शासनकाल तो सर्व विदित ही है। अब बतायें कि हम पाणिनि का समय अढ़ाई हज़ार वर्ष से इधर मानें, या लाखों वर्ष उधर? पतंजली तो चन्द्रगुप्त के भी बाद हुआ है इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। क्योंकि उसने अपने भाष्य में "सभा राजा मनुष्य पुर्वा" इस सूत्र पर "चन्द्रगुप्त सभम्" यह उदाहरण दिया है।

[देखो इतिहास तिमिर नाशक, भाग ३ पृष्ठ १० सन् १८७३ ई०]

खण्डन

विदित हो कि सर्वप्रथम हमें यह देखना आवश्यक है कि महाभाष्य में यह उदाहरण है या नहीं? हम ने इस की बहुत खोज की है। हम ने सभी प्रामाणिक प्रतियों को देखा है। परन्तु उन में से किसी एक में भी हमें यह उदाहरण नहीं मिला। इस विषय को हम केवलमात्र अपनी खोज के आधार पर ही समाप्त करना नहीं चाहते। अपितु दक्षिण कालिज के प्रिंसिपल श्रीयुत् केलहारन साहब ने इस विषय में जो खोज की है और बहुत सावधानता से व्याकरण-महाभाष्य का जो संस्करण प्रकाशित करवाया है, वे भी लिखते हैं कि महाभाष्य की किसी भी शुद्ध पुस्तक में यह "चन्द्रगुप्तसभम्" पाठ नहीं है। जो पाठ वहां पर है वह नीचे लिखे अनुसार है। देखो, व्याकरण महाभाष्य के पहले अध्याय के पाद के ६८वें सूत्र के भाष्य-प्रसंग में श्री पतंजलि जी महाराज लिखते हैं:—

सभा राजा मनुष्य पूर्वा। जित्पर्यायवचनस्यैव राजाद्यर्थम् ॥ ७ ॥ जिन्निर्देशः कर्तव्यः ततो वक्तव्यं पर्याय वचनस्यैव ग्रहणं भवति किंप्रसयोजनम् ॥ राजाद्यर्थम् ॥ इनसभम् ॥ ईश्वर सभम् ॥ तस्येव न भवति। राजा सभा तद्विशेषणानांच न भवति पुष्यमित्र सभम् ॥

जब सभा शब्द का मनुष्य और राजा को छोड़ कर और किसी शब्द के साथ समास हो, तब ऐसा रूप होगा, यथा—"इनसभम्" तथा "ईश्वरसभम्" परन्तु जब 'राजा' शब्द के साथ 'सभा' शब्द का समास होगा, तब यह रूप न होगा। यथा—"राज सभा" एवं यदि किसी विशेष का संयोग 'सभा' शब्द के साथ होगा, तब भी 'सभम' रूप न होगा यथा—"पुष्यमित्र सभा"

[देखो महाभाष्य, सन् १६८३ ई० का संस्करण, बम्बई में मुद्रित, पृष्ठ १७७, पंक्ति १०]

अब कोई बतलाये कि इस पाठ में "चन्द्रगुप्तसभम्" पाठ कहां लिखा है? यह भी बताया जाये कि 'चन्द्रगुप्त' जैसी सभा बनाने का सूचक इस में कौनसा शब्द है? इस महाभाष्य के संस्करण के सम्पादक श्रीयुत् केल हारन महोदय प्रिंसिपल ओरियन्टल कालिज दक्षिण लिखते हैं कि ककार-अंक

से सूचित महाभाष्य की प्रति में "चन्द्रगुप्त सभा" पाठ भी है, परन्तु इस प्रति में महाभाष्य का मूल-पाठ छटे अध्याय तक ही है। इस प्रति के दो भाग हैं। पहला भाग लग-भग १२० वर्ष पुराना है। दूसरा भाग ८० या एक सौ वर्ष पुराना होगा। पहला भाग पृष्ठ २ से १२० पृष्ठ तक का है। और मूल प्रथम पुस्तक के प्रथम पाद के पृष्ठ १३ से १६६ पृष्ठ तक का है। दूसरा भाग १२१ पृष्ठ से ३६४ पृष्ठ तक का है। मूल पहला भाग १६६ पृष्ठ पंक्ति २० तक का है। यह पुस्तक सारे का सारा ही बहुत बे-परवाही (प्रमाद) से लिखा हुआ है। इस पुस्तक के पाठों में बीच-बीच के छोटे-छोटे टुकड़े प्रायः छोड़ दिये गये हैं। दूसरे भाग में नीचे लिखे अनुसार पृष्ठ ख़ाली हैं। २२६—अ, १—१८ से २२१—अ तक। संस्करण पहला पृष्ठ ४६२—१ से ४६४ पंक्ति २६ तक, २४६—अ १—२२ से २४७—अ तक। संस्करण दूसरा पृष्ठ १६—१२ से १८—२० तक। एवं इसी प्रकार मैं निश्चय करता हूँ कि ये दोनों प्रतियां किसी और प्रति से नकल की गई हैं। और वह असल प्रति सुरक्षित थी। परन्तु जब प्रति "क" अंकित तैयार हो रही थी, तब वह सुरक्षित प्रति कुछ स्थल में दूषित और विकार युक्त हो गई थी। यह काश्मीर की प्रति है। इस "क" अंकित प्रति में कुछ सन्दर्भों में बहुत अधिक पृष्ठ ख़ाली छोड़ दिये गये हैं। ये पृष्ठ यह सोच कर ही ख़ाली छोड़े गये होंगे कि "क" अंकित प्रति दूषित है। किसी पाठ का न होना, या पाठ भेद होना तो किसी भूलचूक विशेष घटना का परिणाम हो सकता है। परन्तु बीच में ख़ाली पृष्ठों को छोड़ कर लिखना तो कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह तो सोची-समझी हुई बात है। हमारी कामना है कि भारत में कोई अधिक प्रामाणिक प्रति व्याकरण महाभाष्य की प्राप्त हो सके।

[देखो उपोद्घात पृष्ठ ६ से ११ तक]

फिर यह प्रिंसिपल महोदय ही लिखते हैं :—

"मैं अपनी पुस्तक में "पुष्यमित्र सभा" शब्दों को छापता हूँ। "चन्द्रगुप्त सभा" जो दो प्रतियों में मिलता है, उसे मैं नहीं छापता। केवल "पुष्यमित्र सभा" शब्दों को ही छापने के विषय में मेरा हेतु यह है कि मुझे जो प्रति मिली है; उन में जी, डी, और ए प्रतियां ही अन्य प्रतियों से उत्तम और प्रामाणिक हैं। और उन में ये ही शब्द मिलते हैं।

[देखो दूसरा खण्ड, भूमिका पृष्ठ ८, पृष्ठ ४००, ४०१]

अस्तु, यह तो स्पष्ट हो गया कि पतंजलि जी के महाभाष्य में 'चन्द्रगुप्त' का उल्लेख नहीं है। और चन्द्रगुप्त के पश्चात् पतंजलि जी के होने की कथा भी अयुक्त है। कथा-सरित-सागर तथा मुद्रा राक्षस के आधार पर आप ने जो अन्य हेतु दर्शाये हैं, वे भी वैसे ही हैं, जैसे अलिफलैला, फ़िसाना अजायब और अलादीन, एवं अजीबो-ग़रीब चिराग़ या अमीर हमज़ा की दास्तान आदि कपोल कल्पित ग्रन्थ के आधार पर हो सकते हैं। वे भी प्रामाणिक नहीं हैं। भला ऐसी कहानियों की पुस्तकों के आधार पर इतिहास वा धर्म का निर्णय किस प्रकार हो सकता है? ये तो नवीन पुस्तकें हैं। हां कुछ धार्मिक पुस्तकें तो ऐसी भी हैं, जिन के आधार पर इतिहास की बातों का निर्णय हो सकता है। जैसे योगवशिष्ठ, जो किसी नवीन वेदान्ती ने बाल्मीकि जी के नाम से बना दी है। इस में कवों और हंसों के परस्पर विवाह, काक भुषण्डि की उत्पत्ति और उस के करोड़ों वर्षों तक जीवित रहने की गप्पें हांकी गई हैं। ऐसे ही एक और गप्प है कि महादेव जी ने डमरू बजाया। और सारी अष्टाध्यायी बन गई। या तीतर ने वमन की हुई विद्या को खा लिया और उस से तैत्तिरीय ब्राह्मण बन गया।

राजा जी ! ऐसी कपोल-कल्पित कहानियों के साथ ऋषियों, मुनियों और उनके ग्रन्थों का सम्बन्ध ही क्या हो सकता है ? और उनके आधार पर इतिहास का निश्चय कैसे किया जा सकता है ? अस्तु ! हम आपको बताते हैं कि पतंजलि जी के योग-दर्शन का भाष्य श्री व्यास जी ने लिखा है। जिससे सिद्ध होता है कि पतंजलि जी व्यास जी से पहले हुए हैं। व्यास जी के विषय में हम पहले इसी पुस्तक में यह सिद्ध कर आये हैं कि ४६६० वर्ष पहले हुए हैं। अतः पतंजलि जी का समय पाँच हजार वर्ष से भी अधिक है। और पाणिनि जी तो उनसे भी पहले के हैं। वे किसी प्रकार भी अढ़ाई हजार वर्ष से इधर के नहीं हैं। अपितु वे पाँच हजार वर्ष पूर्व के हैं।

महाभारत

प्रसिद्ध विचार इन्फिसटन साहब लिखते हैं कि महाभारत की रचना का काल ईसा से चौदह सौ वर्ष पूर्व का अनुमान किया जाता है।

[तारीख़ हिन्दुस्तान पृष्ठ ३६१ सन् १८६६ ई०]

फिर लिखते हैं :—

"महाभारत के रचनाकाल के विषय में पहले विवेचन हो चुका है। अनुमान है कि यह ग्रन्थ ईसा से चौदह सौ वर्ष पूर्व लिखा गया था।"

[तारीख़ हिन्दुस्तान, १८६६ ई०, चौथा भाग, पृष्ठ ३६१]

डाक्टर हण्टर साहब लिखते हैं :—

"व्यास, जिन्होंने २४ हजार श्लोकों का ग्रन्थ महाभारत बनाया था, वे ईसा से बारह सौ वर्ष पहले हुए थे।

[मुख़तसिर तारीख़ हिन्द, प्रथम भाग, पृष्ठ ६० सन् १८८४ ई०]

उत्तर

निसन्देह यह तो ठीक है कि महाभारत की रचना २४ हजार श्लोकों में ही की गई थी। परन्तु यह ठीक नहीं है कि महाभारत की रचना ईसा से बारह सौ या चौदह सौ वर्ष पूर्व हुई थी। वास्तव में महाभारत की रचना ईसा से ३१ सौ वर्ष पूर्व हुई थी। और उसमें २४ हजार श्लोक थे। परन्तु वर्तमान् महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक हैं। भारत के कलकत्ता-संस्करण में, जोकि १८०६ शालिवाहन शाका में प्रकाशित हुआ था, यह श्लोक मौजूद है :—

चतुर्विंशति साहिस्रो चक्रे भारत संहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतः प्रोच्यते बुधैः॥

[म० भा० पर्व १ अध्याय १ श्लोक १०१]

भारत नामक ग्रन्थ उपाख्यानों के बिना ही बनाया गया। और वह चौबीस हजार श्लोकों का है। एक अन्य श्लोक इसी अध्याय में है :—

अष्टौ श्लोक सहस्राणि अष्टौ श्लोक शतानिच।
अहमवेदिम्, शुकोवेत्ति, संजयो वेत्ति वा न वा॥

[म० भा० पर्व १ अध्याव १ श्लोक ८१]

अर्थात् मैं आठ हज़ार आठ सौ श्लोक जानता हूं। शुकदेव भी आठ हज़ार आठ सौ श्लोक जानता है। संजय भी जानता है, या नहीं; यह मालूम नहीं।

एक प्रसिद्ध विचारक ने बहुत खोज करके लिखा है कि आरम्भ में महाभारत में केवल चौबीस हज़ार श्लोक ही थे। मूल लेखक ने इतने ही श्लोक रचे थे।

[ओरियण्टल मैगज़ीन खण्ड ३, पृष्ठ १३३]

विचारक इन्फिस्टन साहब ने एक स्थान पर लिखा है :—

"मूल लेखक ने तो २४ हज़ार श्लोकों का ग्रन्थ लिखा था। वास्तविक लेखक के तो २४ हज़ार श्लोक ही हैं।"

[तारीख़ हिन्दुस्तान पृष्ठ २६२, सन् १८६६ ई०]

इस में इसका नाम महाभारत नहीं; अपितु भारत है। जिसमें भारत का विस्तार हो, उसे भारत कहते हैं। तारीख़ फरिश्ता के लेखक ने भी यही लिखा है। यथा—जिस पुस्तक में भारत की औलाद का विस्तार हो उसे भारत कहते हैं।

[तारीख़ फ़रिश्ता का मुकाबला पृष्ठ ६]

इस विषय में संस्कृत के कुछ माननीय पण्डितों की यह सम्मति है कि व्यास जी ने तो चार हज़ार, चार सौ श्लोक ही बनाये। शेष पाँच हज़ार छः सौ श्लोक व्यास जी के शिष्यों ने बनाये थे। इस प्रकार आरम्भ में यह भारत नामक ग्रन्थ दस हज़ार श्लोकों का ही बना था। राजा विक्रमादित्य के समय बीस हज़ार श्लोक भारत के थे। भोज के समय तीस हज़ार श्लोक बन चुके थे। बढ़ते-बढ़ते वही ग्रन्थ अब एक लाख श्लोकों का बन चुका है। इस प्रकार समय-समय पर यह ग्रन्थ बढ़ता रहा है।

छः दर्शन

संस्कृत-साहित्य में दर्शन-शास्त्र के छः ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं जिन की रचना आर्य ऋषियों ने की है। उनके नाम और लेखक इस प्रकार हैं —

१—श्री कपिल ऋषि कृत सांख्य-दर्शन।
२—श्री कणाद ऋषि कृत वैशेषिक-दर्शन।
३—श्री गौतम ऋषि कृत न्याय-दर्शन।
४—श्री पतंजलि ऋषि कृत योग-दर्शन।
५—जैमिनी ऋषि कृत मीमांसा-दर्शन।
६—श्री व्यास ऋषि कृत वेदान्त-दर्शन।

श्री लेथब्रिज साहब लिखते हैं कि आर्य लोग प्राचीन काल से ही दार्शनिकता के प्रेमी रहे हैं। दर्शन, अंक-गणित और रसायण-शास्त्र के सर्व प्रधान आचार्य ये प्राचीन आर्यगण ही हैं। छः दर्शनों के रचना काल भी भिन्न-भिन्न ही हैं।

[तवारीख़ हिन्द, अंग्रेज़ी, लाहौर संस्करण, सन् १८८० ई०]

ये छः दर्शन जो विभिन्न कालों में विभिन्न ऋषियों ने रचे हैं, इन पर प्रसिद्ध भाष्य हैं। यथा—

१—सांख्य पर भागुरिकृत भाष्य।

२—वैशेषिक पर गौतम मुनि कृत भाष्य।

३—न्याय पर वात्सायन कृत भाष्य।

४—योग पर व्यास कृत भाष्य।

५—मीमांसा पर भी व्यास भाष्य,

६—वेदान्त पर वात्स्यायन और बौद्धायन कृत भाष्य।

जैमिनि और व्यास तथा वात्स्यायन और बौद्धायन के काल एक ही हैं।

सब से अधिक प्राचीन दर्शन सांख्य-शास्त्र है। रचना-क्रम में सब से अन्तिम वेदान्त-दर्शन है। कपिल और कणाद काल-निर्णय करने के लिये आवश्यक सामग्री अभी तक भी अप्राप्त होने के कारण हम किसी निश्चय पर पहुँचने में असमर्थ हैं। महर्षि गौतम का समय तो प्रकट ही है। क्योंकि गौतम जी के पुत्र सदानन्द जी महाराजा जनक के मन्त्री थे। और गौतम जी के साथ श्री रामचन्द्र जी का संवाद भी हुआ था। इस प्रकार गौतम जी और श्री रामचन्द्र जी का समय एक ही था। अथवा गौतम जी और महाराजा दशरथ का समय भी एक ही था।

इस विषय का अधिक विस्तृत-उल्लेख हम फिर कभी करेंगे।

चाणक्य-नीति

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जिन के पुरुषार्थ और बुद्धिचातुर्य्य से राज्य सिंहासन प्राप्त किया, वे श्री चाणक्य महामुनि सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध ही हैं। और यह भी सभी जानते हैं कि उन का और सिकन्दर महान् का समय एक ही था।

सर जौंस लिखते हैं कि यूनानी विद्वानों ने लिखा है कि सन्द्रा गपट्स ने सैल्यूकस के साथ सन्धि की।

[देखो किताब हालात-एशिया, भाग ४ भूमिका पृष्ठ २७]

श्री एल्फोर्ड साहब की सम्मति के अनुसार वे ईसा से ३५० वर्ष पूर्व तथा श्री विलसन साहब के मतानुसार ३१५ वर्ष पूर्व वर्तमान थे। आवा और लंका के मानचित्रों से यह भली प्रकार प्रकट हो चुका है कि क्राफोर्ड साहब के प्रथम मानचित्र के अनुसार, जोकि 'पत्रिका आवा' में प्रकाशित हुआ है, चन्द्रगुप्त के राज्य का समय ईसा से तीन सौ बानवे और तीन सौ पचत्तर वर्ष पूर्व है।

[देखो प्रिंसिपल साहब के मुफ़ीद मानचित्रों का पृष्ठ १३२]

दूसरा मान-चित्र जो श्री टर्नर साहब के अनुवाद महारनस में शामिल है, चन्द्रगुप्त का काल ईसा से तीन सौ और तीन सौ सैंतालीस वर्षों के मध्य सिद्ध होता है।

[देखो पृष्ठ—४७]

यूनानियों के कथनानुसार उन का समय सैल्यूकस के राज्यारोहण काल से, जोकि ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व है, और जिस की मृत्यु का समय २८० वर्ष ईसा पूर्व है, चन्द्रगुप्त का काल सिद्ध होता है।

[देखो कलटस साहब की पुस्तक।]

इन सभी प्रमाणों पर विचार करने से भली प्रकार विदित होता है कि सैल्यूक्स सिकन्दर

की सेना का एक सेनापति था। और वह चन्द्रगुप्त का समकालीन ही नहीं, सम्बन्धी भी था। सभी जानते हैं कि सैल्यूकस ने अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया था। सिकन्दर ने ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व में भारत पर आक्रमण किया था। उस के मरने पर सैल्यूकस राजा बना था। चाहे जिस प्रकार से भी देखें, चन्द्रगुप्त का राज्यारोहणकाल ३२५—३—२६ वर्ष ईसा पूर्व ही था। इस प्रकार यह ग्रन्थ भी ३२५+१८६०=२२१५ वर्ष पुराना है।

योरुप के ईसाई और पादरी लेखक, जोकि किसी भी प्राचीन काल-निर्णय में प्रायः भूल किया करते हैं, उन का खण्डन करते हुए एक न्यायप्रिय विचारक ने बहुत ठीक लिखा है :—

"योरुप देश निवासी विचारकों और लेखकों का यह दस्तूर है कि वे प्राचीन नामों, वस्तुओं और घटनाओं का काल-निर्णय करते समय पच्चीस या तीस वर्ष के माध्यमिक-काल का एक सर्वथा काल्पनिक समय निर्धारित करके, अपना निर्णय घोषित कर देते हैं। वे किसी भी काल-निर्णय को नूह के तूफान से अधिक उधर जाने ही नहीं देते। उन के मन में नूह के तूफान का पूर्व आग्रह जमकर बैठा रहता है। उन के मतानुसार नूह के तूफान का समय चार हजार वर्ष है।

* [देखो पृष्ठ ६, तारीख़ बर्दी-अ-हिन्दुस्तान, सन् १८७४ ई०]

पाठक वृन्द ! अवकाश थोड़ा होने के कारण यह छोटा-सा लेख आप लोगों की सेवा में अर्पण करता हूँ। यदि स्वीकृत हो तो मेरा अहोभाग्य है। यदि आयु शेष है, तो फिर कभी सविस्तार निवेदन करूंगा।

१६, अक्तूबर, सन् १८६० ई० प्रेरक लेखराम शर्मा आर्य पथिक सभासद आर्य समाज पेशावर।

सेवक इस पुस्तक को अपने प्रतिष्ठित विद्वान् आर्य भाई पण्डित गुरुदत्त जी की सेवा में समर्पित करता है। पादरज लेखराम आर्यपथिक।

---

* इस लेख से आगे श्री ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक द्वारा अनूदित "सृष्ठि के इतिहास" में नीचे यह शब्द लिखे हैं, जोकि कुलियात में और 'तारीख दुनिया' के दूसरे संस्करण में नहीं हैं। इस से यह भी सिद्ध होता है कि यह शब्द 'तारीख़-ए-दुनिया' के प्रथम-संस्करण में होंगे। —अनुवादक।

❁ ओ३म् ❁

सृष्टि का इतिहास

दूसरा—भाग

तीसरा—खण्ड

श्री स्वामी शंकराचार्य जी

श्री स्वामी शंकराचार्य जी के समय के विषय में भी विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद पाया जाता है। न तो विदेशी विद्वान् इस विषय में एकमत हैं, और न ही भारत के संस्कृत निष्ठ पण्डित। हम हैरान हैं कि एक ऐसी सुप्रसिद्ध और महान क्रान्तिकारी घटना के सम्बन्ध में इतने अधिक भ्रान्त विचार कैसे फैल गये? सन् १८८३ ई० के "थ्योसोफ़िस्ट" नामक मासिक-पत्र के एक अंक के एक लेख में छपा है:—

"बहुत खेद का विषय है कि हमें इन महात्मा (शंकराचार्य) के समय के विषय में कोई ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त नहीं होती कि ये किस समय हुए थे? कुछ विद्वानों का कथन है कि ये दो सौ ईसापूर्व में उत्पन्न हुए थे। कुछ विद्वानों का मत है कि ये सन् १००० ई० में हुए। कोई-कोई सन् ८०० ई० में इन का होना कथन करते हैं। इस विषय में विलसन, कोलब्रुक, राममोहन राय, याज्ञनेश्वर शास्त्री और प्रोफ़ेसर जयनारायण तर्क-पंचानन, इन सब का मत यही है कि श्री शंकराचार्य जी ईसा की आठवीं शती में हुए थे। कुछ विद्वान् उनका ग्यारहवीं वा चौदहवीं शती ईस्वी में होना भी बताते ही हैं। इसी चाल से श्री आर० सी० दत्त * ने भी उनका समय लगभग ग्यारहवीं शती ही निश्चित् किया है।

मान्यवर डाक्टर हण्टर साहब लिखते हैं:—

उस समय में जो नेता उत्पन्न हुए, उनमें सर्वप्रथम कुमारिल भट्ट था, जोकि बिहार प्रदेश का निवासी एवं एक उत्तम विद्वान् ब्राह्मण था। उसका बहुत अधिक प्रसिद्ध चेला शंकराचार्य था। ×

---

*भारत के एक प्रसिद्ध विचारक और ग्रन्थकार श्रीयुत् रमेशचन्द्र दत्त। —अनुवादक

× डाक्टर साहब का यह विचार ठीक नहीं है। श्री शंकराचार्य जी कुमारिल के शिष्य नहीं, अपितु श्री स्वामी गौड़पादाचार्य जी के शिष्य थे। जैसा कि वे स्वयं भी अपने भाष्य की समाप्ति पर लिखते हैं,

"भगवद्गोविन्द गौड़पादाचार्य की चरणवन्दना करने वाला शंकराचार्य। यह भी विदित हो कि कुमारिल भट्ट का दार्शनिक सिद्धान्त भी शंकराचार्य से भिन्न और सर्वथा प्रतिकूल था। परन्तु गोविन्द गौड़ का सिद्धान्त शंकराचार्य जी के समान था। जोकि उनकी रची हुई कारिकाओं में इस समय भी सुरक्षित और विद्वानों को विदित है। —लेखक।

भारत का प्रामाणिक इतिहास शंकराचार्य के समय से ही आरम्भ अथवा उपलब्ध होता है। शंकराचार्य का जन्म मालाबार प्रदेश में हुआ था। उन्होंने सम्पूर्ण भारत की यात्रा करके धर्म प्रचार किया था। धर्म प्रचार के लिये वे कश्मीर में भी गये थे। उनका देहावसान हिमालय पर्वत पर स्थित केदारनाथ नामक स्थान में हुआ था। मृत्यु के समय उनकी आयु केवल ४८ वर्ष की ही थी।

वेदान्तियों के दार्शनिक सिद्धान्तों को श्री शंकराचार्य जी ने ही वर्तमान स्वरूप प्रदान किया था। और इन्हों ने ही उस सिद्धान्त को जनता के सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन में प्रविष्ट किया था। यह लिखना अनुचित न होगा कि उस समय के बाद जोकि ईसा की आठवीं या नौवीं शती कहलाती है, हिन्दुओं में धार्मिकता का भाव और एक-ईश्वर- वाद का प्रचार शंकराचार्य ने ही किया था। वह छोटे-बड़े, छूत-अच्छूत सभी को अपनी शिक्षा देता था। भारत में एक राष्ट्रीय धर्म और ब्राह्मण वर्ग की उन्नति उसके प्रचार और पुरुषार्थ का ही प्रमाण थे।

[भारत का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ १५३]

श्री शंकराचार्य जी का वास्तविक परिचय इस प्रकार है :—

श्री शंकराचार्य जी द्रविड़ देश अर्थात् मालावार प्रदेश* में उत्पन्न हुए और गोविन्द गौड़ पादाचार्य के शिष्य हुए। उनके शास्त्रार्थ अधिकतया बौद्धमत वालों के साथ हुए। उनकी सम्पूर्ण आयु बौद्धमत के खण्डन में ही बीती। उनके उपदेश से ही शिवमत का आरम्भ हुआ। और भारत में बौद्धमत का ह्रास भी शंकराचार्य जी के प्रचार से ही हो सका। सम्पूर्ण भारत में यात्रा करके वे अपने मत का प्रचार करते रहे। दक्षिण भारत के मालाबार-प्रदेश से कश्मीर व नैपाल तक धर्म प्रचार करने के लिए उन्हों ने कष्ट-साध्य यात्रायें की थीं। उनके प्रचार के परिणाम स्वरूप बौद्धों में बहुत अधिक हलचल मच गई थी। और लोगों ने बहुत उत्साह के साथ बहुत बड़ी संख्या में उन के मत को स्वीकार करना एवं बौद्ध-मत को छोड़ना आरम्भ कर दिया था।

अन्ततोगत्वा उन्होंने बहुत से राजाओं को भी अपने मत का अनुयायी बना लिया। और आर्यावर्त के चार कोनों में चार मठ (केन्द्र) स्थापित किये। उत्तर में जोशी-मठ। दक्षिण में शृंगेरी-मठ। पूर्व में भूगोवर्धन-मठ और पश्चिम में शारदा-मठ। अन्त में जब उनकी आयु केवल ३२ वर्ष की ही थी और, उनका निवास केदार नाथ में था, दो बौद्धोंने उनको किसी प्रकार का विष खिला दिया। उन दोनों हत्यारों के नाम अभिनवगुप्त और अभिनिवेश थे। वे दोनों कुछ समय पूर्व श्री शंकराचार्य जी के शिष्यमण्डल में आ मिले, और उनके साथ ही रहने लगे थे। विष के प्रभाव से श्री शंकराचार्य जी की भूख बन्द हो गई। और, छः मास तक रुग्ण रहकर उन्होंने इस नश्वर-देह को त्याग दिया। जिस प्रकार सिकन्दर, नीरो, अपालोनीस और ईसा के जीवन-चरित्र लेखकों ने, उनको ईश्वर बताया है, उसी प्रकार श्री शंकराचार्य जी के जीवन चरित्र निर्माताओं ने भी उनको शिव का अवतार लिखा है। उनके जन्म स्थान के विषय में भी बहुत अधिक विवाद पाया जाता है। श्री आनन्द गिरि जी चिदाम्बरपुर को, श्री माधव जी केलती को, और श्री विजयेश्वर शास्त्री कालपी को उनका जन्म-स्थान बतलाते हैं। कुछ लोग, यथा

* वर्तमान् केरल राज्य में।

—अनुवादक।

श्री सालिग राम जी केरल-प्रदेश में उनके जन्म-स्थान का कथन करते हैं। परन्तु ठीक वही है, जो श्री माधव जी का पक्ष है। वह यह कि श्री शंकराचार्य जी केलती के निवासी थे क्यों कि अन्यलोग अनुसन्धान करने वाले नहीं हैं। वे तो केवल कल्पनाओं के घोड़े दौड़ाने वाले ही हैं।

श्री शंकराचार्य जी का समय

अब हम श्री शंकराचार्य जी के समय-निर्णय में सहायक कुछ सामग्री प्रस्तुत करके, यथोचित निर्णय करने का प्रयत्न करते हैं।

प्रथम हेतु

बौद्ध-मत का प्रारम्भ ईसा से ५५० वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ, और ईसा से दो वर्ष पूर्व मौर्य्यवंश के ह्रास के साथी ही बौद्ध-मत का ह्रास भी होने लगा। मौर्य्य-वंश का ह्रास होते ही सम्पूर्ण भारत के ब्राह्मणों में पुनरपि नव-जीवन का संचार होने लगा। क़नौज महानगर के नागरिक तो कभी भी ब्राह्मण-धर्म से विमुख न हुए थे। अब एक-एक करके अन्य नगर भी अपने उसी पहले धर्म की तरफ़ वापिस लौटने लगे, जिस का रूप काल-प्रवाहवश कुछ बदल-सा गया था।

[भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ३७]

इस से सिद्ध होता है कि ब्राह्मण-धर्म के पुनरुत्थान का समय ही शंकराचार्य जी का समय है। क्योंकि यह बात तो भारत के घर-घर में प्रसिद्ध है कि बौद्धों के ह्रास का कारण श्री शंकराचार्य जी का प्रचार ही है।

द्वितीय हेतु

श्री शंकराचार्य जी द्वारा विरचित तीन पुस्तकों अर्थात् दस उपनिषदों के भाष्य, शारीरिक-भाष्य * और गीता-भाष्य में मुसलमानों और उन के मत के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं है। यद्यपि सन् ६३६ ई० में, संवत् ६६३ विक्रमी में और सन् १५ हिजरी में ही मुसलमानों के आक्रमण भारत के ऊपर आरम्भ हो गये थे। और शान्ति एवं व्यवस्था को भारी आघात पहुँचाया जा रहा था। अस्तु, इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि मुसलमानों के आक्रमणों से बहुत पहले श्री शंकराचार्य जी हुए थे। मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ होने के बाद शंकराचार्य जी नहीं हुए। मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ होने पर, किसी हिन्दू सुधारक या धर्म-प्रचारक का इतना अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक प्रचार करने का विचार ही असम्भव और असंगत है।

तृतीय हेतु

आठवीं या नौवीं एवं ग्यारहवीं या चौदहवीं शताब्दियों में नीचे लिखे ऐतिहासिक पुरुष हो गुजरे हैं :—

* वेदान्त-दर्शन के भाष्य को ही शारीरिक भाष्य, या शारीरिक-सूत्र-भाष्य भी कहते हैं। —अनुवादक।

महमूद ग़ज़नवी, अबुरीहान, भास्कराचार्य, आनन्द पाल, राजा हर्ष, सायण, पृथ्वी राज, कवि चन्द्र बरदई, जयदेव, बोपदेव, रामानुज, तैमूर, कल्हण पण्डित, इत्यादि। परन्तु इन में से किसी एक ने भी शंकराचार्य को अपना समकालीन नहीं माना है। और न ही शंकराचार्य ने इन में से किसी को अपना समकालीन माना है। इस से सिद्ध है कि शंकराचार्य जी का जन्म इन शताब्दियों में नहीं, इन से बहुत पूर्व हुआ था। क्योंकि सभी हिन्दू लेखक और विचारक तो उन को एक स्वर से बौद्धों का विनाश-कर्त्ता उद्घोषित करते हैं और उन का बहुत पहले होना बताते हैं।

चतुर्थ हेतु

पारसियों की धर्म-पुस्तकों में, पारसीमत के पैग़म्बर सिकन्दर यूनानी का जो उल्लेख पाया जाता है, उस में हम पढ़ते हैं कि जब वह भारतवर्ष में आया तब यहां शंकराचार्य नाम का एक साधु आर्यमत का उपदेशक इस देश में अपने धर्मोपदेश में संलग्न था। यह सिकन्दर, इतिहास प्रसिद्ध सिकन्दर महान् ही है। और उसका समय भी प्रसिद्ध ही है।

पंचम् हेतु

सूरत में दो शंकराचार्यों का आपस में शास्त्रार्थ हुआ। जिस में एक ताम्र-लेख भी प्रस्तुत किया गया, जोकि द्वारिका के एक मन्दिर से प्राप्त हुआ था। उस ताम्र-लेख में संवत् २६६३ कलियुगी अंकित था अर्थात् वह ताम्र-पत्र ईसा से ४४३ वर्ष पूर्व लिखा गया था। इस प्रकार यह समय भारत पर सिकन्दर के आक्रमण से कुछ पूर्व का समय सिद्ध होता है।

[अमेरिकन-मिशन का समाचार-पत्र नूर-अफ़शां पृष्ठ ६ कालम ४, ता० मई १८८८ ई०]

इस के अनुसार १८९४+४४३ वर्ष=२३३७ वर्ष ४६६४—२६६३=२001 वर्ष।

षष्टम् हेतु

श्री शंकराचार्य जी के समय के विषय में उन के एक शिष्य ने नीचे लिखे श्लोकों की रचना की है :—

> ऋषि वीरास्तथा भूमिर्मर्त्याक्षौ वाममेलनात् ।
> एकत्वेन लभेदंकस्ताम्राक्षस्तर्हिवत्सरः ॥ १ ॥
> विश्वजिच्च पिता यस्य निर्यातश्च चिदंबरे ।
> तस्य भार्याम्बिका देवी शंकरं लोक शंकरम् ॥ २ ॥
> प्रसूता सर्व लोकस्य तारणाय जगद्गुरुम् ॥

भावार्थ :— संवत् २१५७ युधिष्ठिरी में विश्वजित् पिता और अम्बिका देवी माता के घर में सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने वाले श्री शंकराचार्य जी का जन्म हुआ था, जोकि संसार में जगद्गुरु प्रसिद्ध हुए।

क्योंकि इस समय युधिष्ठरी संवत् ४३३१ है, इस में से २१५७ वर्ष कम करने से २१७४ शेष रहते हैं। इस से सिद्ध है कि शंकराचार्य जी संवत् २१५७ युधिष्ठिरी में उत्पन्न हुए, और ३२ वर्ष जीवित रह कर संवत् २१८९ में उन का देहान्त हुआ।

इस के अनुसार वर्तमान् समय के सुप्रसिद्ध सत्यान्वेषक स्वामी दयानन्द जी सरस्वती लिखते हैं :—

"बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़ देशोत्पन्न, ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य से व्याकरण आदि सत्य-शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे।"

[सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २८८]

फिर दूसरे स्थान में लिखते हैं :—

"शंकराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ। जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटा कर शान्ति स्थापित की।.................... महाराजा विक्रमादित्य से लेकर शैवों का बल बढ़ता आया। लोगों ने शंकराचार्य को शिव का अवतार ठहराया।"

[सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २९८]

याद रखने की बात

शंकराचार्य के चार मठ स्थापित होने के पश्चात् जो कोई उन मठों की गद्दियों पर बैठा, वह भी शंकराचार्य ही कहलाया। यही कारण है कि उसी अनुक्रम में चार शंकराचार्य इस समय भी वर्तमान हैं। जिस प्रकार बाबा नानक के गद्दी नशीन अन्त तक अपने भजनों में नानक जी का नाम डालते रहे, अपना नहीं। परन्तु विद्वान् लोग जानते हैं कि कौनसा वाक्य बाबा नानक जी का है? और कौनसा उन के बाद होने वाले गुरुओं का है? उसी प्रकार उन मठाधीशों में से विभिन्न कालों में विभिन्न शंकराचार्य बौद्ध-मत का विरोध करते रहे। इस प्रकार अन्तिम शंकराचार्य वह हुआ, जिस ने मुसलमानों के आगमन से एक सौ वर्ष पूर्व बौद्धों को भारत वर्ष से सर्वथा ही निर्वासित कर दिया।

अब हम पाठकों की जानकारी के लिये यह भी सूचित करते हैं कि प्रथम शंकराचार्य ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ। अर्थात् विक्रम से २२३ वर्ष पूर्व।

दूसरा शंकराचार्य ईसा से ५७ वर्ष पूर्व हुआ। जिस का शिष्य भर्तृहरि हुआ जोकि विक्रमादित्य-का भाई था। और जोकि नीत-शतक, वैराग्य-शतक और श्रृंगार-शतक का रचयिता है। भर्तृहरि संवत् २२ वि० तक जीवित रहा।

तीसरा शंकराचार्य संवत् ४५७ वि० में हुआ। अर्थात् सन् ४०० ई० में।

चौथा शंकराचार्य संवत् ५२५ वि० तदनुसार सन् ४३८ ई० में हुआ, जोकि संवत् ५९० वि० तदनुसार सन् ५३३ ई० में मरा।

भूल—सुधार

इस पुस्तक "सृष्टि का इतिहास" के प्रथम भाग में हम से एक भूल हुई, जोकि युधिष्ठिरी संवत् के विषय में है। वह यह कि वहां हम ने इस 'कलियुग' का जो समय बतलाया है, उस को ही युधिष्ठिर का समय मान लिया है। वास्तव में ऐसा न होना चाहिये था। 'राज तरंगिणी' के लेखक पण्डित कल्हण प्रभृति संस्कृत-भाषा के सुयोग्य विद्वानों ने लिखा है कि जब कलियुग के ६६३ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, तब युधिष्ठिर जी राज्यासन पर बैठे थे। और उस समय सप्तऋषि मघा नक्षत्र में थे। इस

प्रकार ४६६४—६६३=४३३१ वर्ष युधिष्ठिरी संवत् के होते हैं। श्री शंकराचार्य जी का समय २१५७ युधिष्ठिरी संवत् तदनुसार २८२० कलियुगी संवत् है।

सप्तम् हेतु

सुप्रसिद्ध विद्वान् सेंट साहब समुचित अनुसन्धान के पश्चात् लिखते हैं कि शंकराचार्य जी गौतम बुद्ध की मृत्यु के साठ वर्ष पश्चात् भारतवर्ष में उत्पन्न हुए थे।

[ए. बी. सेंट साहब की पुस्तक बुद्ध-धर्म पृष्ठ १४६.]

बुद्ध-धर्म ईसा से ५५० वर्ष पूर्व चला था। ५५०—७०=४८०—६०=४२०+१८६५=२२८५।

महाराजा विक्रमादित्य

के संवत् का अनुसन्धान

महाराजा विक्रम, या विक्रम या विक्रमादित्य अथवा विक्रमाजीत भारत वर्ष के एक परम प्रतापी और सुप्रसिद्ध सम्राट् थे। उज्जैन नगरी में उन की राजधानी थी। उन के अधीन छः सौ राजा व रईस थे। वास्तव में विक्रमादित्य सम्पूर्ण आर्यावर्त्त के एक छत्र सम्राट्, बहुत अधिक दयावान् और बहुत ही न्यायप्रिय सम्राट् थे। वे बहुत बड़े परोपकारी भी थे। उन्हों ने एक बार अपने राज्य के सभी कर्जदारों का कर्ज अपनी ओर से चुकाया था। और उसी अवसर पर अपना संवत् प्रचलित किया था। जोकि इस समय १६५२ है। वे इतने बड़े सम्राट् होने पर भी एक साधारण चटाई पर सोते थे। और अपने स्नान के लिये स्वयं ही नदी से जल भर कर लाया करते थे। राज्य के कोष से अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिये वे कभी एक कौड़ी भी न लेते थे। वे अपना सारा समय प्रजा-पालन तथा दीन दुखियों की सेवा में ही व्यतीत किया करते थे।

आजकल के कुछ विद्वान् अपने अनोखे अनुसन्धान के आधार पर, उन के अस्तित्व और उनके संवत् दोनों से ही इन्कार करते हैं। और कहते हैं कि छः सौ वर्ष गुजरने के बाद किसी ने, किसी आधार के बिना ही यह संवत् प्रचलित कर दिया है। और एक के स्थान पर छ सौ लिखना आरम्भ कर दिया है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि राजा भोज ही राजा विक्रम था। जोकि संवत् ५४१ वि० में हुआ था। उसने झूठ-मूठ में ही संवत् को ५४१ वर्ष पहले लिखना आरम्भ कर दिया था।

कुछ विद्वानों का कथन है कि कालिदास की कविता की रचना शैली सन् ६०० ई० से पूर्वकाल की नहीं है। इन लोगों के अनुमान के अनुसार सम्राट् विक्रमादित्य, जिनके आश्रय में कालिदास और त्रिशंकु जैसे सुयोग्य विद्वान् वर्तमान थे, ईसा की छटी शती में ही हुए थे। श्री रमेशचन्द्र दत्त का पक्ष भी यही है। क्योंकि उन्होंने लिखा है कि विक्रमादित्य का संवत् सन् ५४४ ई० में प्रचलित हुआ था।

परन्तु श्री देवकृत विक्रम चरित में लिखा है कि विक्रमादित्य, तीरथंकर वर्धमान् के मरने से ४७० वर्ष पूर्व उज्जैन में राज्य करते थे। और उन्हों ने ही विक्रमी संवत् की प्रवर्त्तना की है।

प्रोफ़ेसर ग्रिफ़थ साहब कहते हैं कि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व विक्रमादित्य का संवत् चला है।

[देखो रामायण की भूमिका।]

सुप्रसिद्ध विद्वान् लैथ्रज साहब का कथन है कि विक्रमादित्य का संवत् जोकि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व चला था, भारत में अब भी दूर-दूर तक प्रचलित है।

[तारीख़ हिन्द पृष्ठ ४१]

श्री मार्शमैन नामक विद्वान् लिखते हैं कि उज्जैन के सम्राट् विक्रमादित्य का संवत् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था।

[मार्शमैन कृत इतिहास, पृष्ठ २०]

महामान्यवर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर साहब लिखते हैं कि उज्जैन नगर, जो मालवा प्रदेश में है, वहां का राजा विक्रमादित्य बहुत प्रसिद्ध है। उसने जो बड़ी-बड़ी सफलतायें युद्ध-क्षेत्र में प्राप्त की थीं, उनके स्मारक रूप में ही हिन्दी में तारीख़ गिनने का एक प्रकार प्रचलित किया गया था, जोकि संवत् कहलाता है। उसकी गणना ईसा के सन् से ५७ वर्ष पूर्व से आरम्भ होती है।

[पृष्ठ १३७]

अब हम अपनी नई खोज भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हैं। यह कथन सर्वथा ही मिथ्या और निराधार है कि ईसा की चौथी वा पाँचवीं शती में विक्रम संवत् का आरम्भ हुआ था।

प्रथम प्रमाण

प्रसिद्ध ज्योतिषी कालीदास अपने ग्रन्थ ज्योतिर्विदाभरण में लिखता है, देखो अध्याय २२, श्लोक २१, बनारस-संस्करण :—

> वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बर गुणैर्याते कलौ संमिते।
> मासे माधवसंमिते ऽत्र विहितो ग्रन्थः क्रियोपक्रमः॥

अर्थात् कलियुगी संवत् ३०६८ में और सम्राट् विक्रमादित्य के शासन काल में मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसी ग्रन्थ के एक दूसरे प्रकरण से ज्ञात होता है कि उस समय विक्रम का संवत् २७ था। ४६६५ में से ३०६८ कम करने पर १८६७ शेष बचते हैं। इतने ही वर्ष आज तक इस ग्रन्थ की रचना होकर बीत चुके हैं।

श्री पण्डित तारानाथ तर्क-वाचस्पति ने भी लिखा है कि कलियुगी संवत् ३०४२ में विक्रम का संवत् शुरू हुआ था। अतः इस पुस्तक को बने हुए इस समय तक १६२७ वर्ष बीत चुके हैं।

द्वितीय प्रमाण

काठियावाड़ के जूनागढ़ प्रदेश में एक पुराने तालाब की खुदाई करते समय एक शिला-लेख प्राप्त हुआ है। जिसको राजा रुद्रवर्मा ने 'सुदर्शन' नामक तालाब को बनवा कर लगवाया था। उस शिला-लेख में संवत् ७२ वि० अंकित है। यह शिला-लेख राजकोट के अजायब-घर में सुरक्षित है।

तृतीय प्रमाण

इसी विक्रमादित्य ने रूम देश के तत्कालीन राजा आगस्तस के पास एक मित्रता पूर्ण पत्र भेजा था। उस में लिखा था कि यद्यपि मैं छः सौ सूबों का सम्राट् हूँ; तथापि मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मैं

आप के दर्शन प्राप्त करूँ। आप परस्पर मिलने के लिये कोई स्थान एवं समय निश्चित करके सूचित कीजिये, जिस से कि मैं आप से मिल कर आनन्द प्राप्त कर सकूं। और यदि कोई कार्य मेरे योग्य हो तो वह भी सूचित कीजिये। जिससे मैं भी आपकी कुछ सेवा कर सकूं।

इस पत्र के लिफ़ाफ़े पर पत्र प्रेषक ने अपना नाम 'पुरुष भारत-सम्राट्' लिखा है।

'दी अनुवल' नामक इतिहासकार लिखता है कि यह पत्र यूनानी अक्षरों में लिखा हुआ था। इस पत्र को दमिश्क देश के निवासी ओन्यूकोलस ने अपनी आँखों से देखा है। उस में पत्र लेखक राजा की राजधानी का नाम उनरेन लिखा हुआ है। यह स्थान उज्जैन के पश्चिम में है। एवं यह भी वास्तविकता है कि विक्रमादित्य के वंश में छः सौ राजा थे और उनके राज्य प्रदेश सूबे समझे जाते थे। पत्र-लेखक ने अपने लिये जो 'पुरुष' शब्द प्रयुक्त किया है, वह राजा की जाति का सूचक शब्द है। यह निपुरा, प्रमार, पुराया या पवारायश शब्द का यूनानी उच्चारण प्रतीत होता है। जो संवत् पत्र में लिखा है, उसकी तुलना से भी विक्रमादित्य के पत्र-लेखन की ही पुष्टि होती है। यूनान का राजा आगस्तस सन् २७ ई० में शासनारूढ़ था।

[सैरउल्मुल्कद्मीन नामक पुस्तक के चहल जवाब तारीख़ी पृष्ठ ६३ के आधार पर]

ऐसा ही श्री कालिदास द्वारा विरचित ग्रन्थ ज्योतिर्विदाभरण में भी लिखा है। यथा—

यो रूम देशाधिपतिं शकेश्वरं जित्वा गृहीत्वोज्जयनीं सभायाम्।
सर्वं प्रजामंगलसौख्यसंपद् बभूव सर्वत्र च वेदकर्म ॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय २२, श्लोक १८

जिसने रूप देश के शकों के राजा को जीत कर उज्जयनी का गौरव बढ़ाया था, जिसने प्रजा को सब प्रकार के आनन्द, मंगल और सुख, सुविधा से पूर्ण करके सर्वत्र वेद विहित कर्मों का प्रचलन किया था। यह तो सभी जानते हैं कि विक्रमादित्य का एक बहुत प्रसिद्ध नाम शकारि=शक+अरि भी है। अर्थात् शकों का शत्रु।

चतुर्थ प्रमाण

एक और पत्थर जाम नगर काठियावाड़ प्रदेश के खमालिया नगर के समीप बसे हुए गोन्दा नामक गांव से मिला है। जिसको राजा रुद्रसिंह ने एक तालाब बनवाने के स्मारक-स्वरूप लगवाया था। उस में संवत् १०३ विक्रमी खुदा हुआ है।

पंचम प्रमाण

इसी प्रकार का एक अन्य पत्थर राजकोट-प्रदेश के 'जसरण' नामक गांव से निकला है। यह गांव भी काठियावाड़ में ही है। वहां से दो कोस दूर एक धार है। उस पर एक बहुत बड़ी शिला पड़ी हुई है। जोकि एक तालाब या बावड़ी के बनने पर, एक बड़ा उत्सव होने के उपलक्ष में खुदवाई गई थी। उस में लिखा है कि यह राजा रुद्रसैन के राज्यकाल में संवत् १२७ वि० में खुदवाया गया था।

षष्ठ प्रमाण

द्वारिका नगर में पुस्तकालय के समीप एक बड़ा शिला-खण्ड है। जिस पर संवत् १३२ वि० और राजा रुद्रसैन का नाम खुदा हुआ है। यह भी किसी उत्सव या स्मारक का सूचक शिला-लेख है।

सप्तम् प्रमाण

राजा विक्रमादित्य से १३५ वर्ष पश्चात् शालिवाहन हुआ, जिसने अपना सिक्का चलाया।

अष्टम् प्रमाण

रियासत जामनगर में 'वाकोडी' नाम का एक ग्राम है। उसके समीप खुदाई होने पर एक शिला-लेख मिला है। उस पर संवत् २६१ वि० खुदा हुआ है। यह शिला लेख भी किसी धर्मार्थ कार्य के स्मारक में ही तैयार किया गया था। ये सभी शिला-लेख गुजरात काठियावाड़ प्रदेश के राजकोट नगर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। जिसका जी चाहे, जांच करले।

नवम् प्रमाण

एक और शिला-लेख का उल्लेख सर विलियम जोंस ने अपनी पुस्तक* खण्ड ६, पृष्ठ ३५० लन्दन संस्करण, सन् १८०७ ई०, में किया है। यह लेख देहली में एक स्तम्भ पर अंकित है। जोकि इस प्रकार है :—

आविन्ध्यादाहिमाद्रे व्विंष्वन विजय आर्यावर्त यथार्थं पुनरपि कृतवानृत
संप्रति वाह्मान तिलकः शाकं अस्माभिः करदं व्यधायिहिमवद्विन्ध्या संवत्
श्री विक्रमादित्य १२३ वैशाख शुदिच्चमाय महामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक ॥

यह शिलालेख वैशाख शुदि संवत् १२३ वि० का है।

अनुसन्धाताओं का कथन है कि यह शिला लेख राजा विशाल देव शाकम्भरी ने वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन लगवाया था। राजा विशाल देव अमल देव का पुत्र था।

ऊपर उद्धृत लेख का अनुवाद इस प्रकार है :—

"विन्ध्य और हिमाद्रि तक प्रसिद्धि में वह कम नहीं था। आर्यावर्त को उसने फिर वैसा ही बनाया जैसा कि उसके नाम से प्रकट होता है। उसके मरने के बाद 'वाहमान तिलक' शाकम्भरी का राजा है। हम से हिम्वत् और विन्ध्य का प्रदेश अपने आधीन बनाया गया है। श्री विक्रमादित्य संवत् में, वैशाख शुक्ल पक्ष में, महामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक।"

दशम्–प्रमाण

शाहजहांपुर से २५ मील दूर 'बांस-खेड़ा' नामक ग्राम में एक किसान को उस के खेत में से एक ताम्र-लेख मिला है। उस पर संस्कृत अक्षरों में एक मुद्रा अंकित है। जोकि महाराजा हर्षवर्धन की मुद्रा है। उस से सिद्ध होता है कि वह ताम्र-लेख महाराज हर्षवर्धन ने प्रदान किया था। पाठकों को स्मरण होना चाहिये कि महाराजा हर्षवर्धन की राजधानी थानेश्वर में थी। महाराजा हर्ष का शासन-काल ६६१ वि० से ६६७ वि० तक है। उस ताम्र-लेख से यह भी प्रकट होता है कि महाराजा हर्षवर्धन ने अपने देहावसान से दो वर्ष पहले, दो विद्वान् ब्राह्मणों को रुहेलखण्ड के आंवला नगर के समीप राम नगर की जागीर संवत ६६५ वि० में दान में दी थी।

---

* पुस्तक के लिये मूल पुस्तक में 'वर्क्स' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसे हमने "वर्क्स आफ सर विलियम जोंस" समझा है।

—अनुवादक।

संवत् विषयक एक लेख

पण्डित ज्वाला सहाय साहब एम० ए० ने पंजाब के लुधियाना नगर से जो लेख सन् १८६१ ई० में लन्दन की नौवीं कांग्रेस में भेजा था, उस का विषय 'संवत्' ही था। उस लेख में यह भली प्रकार सिद्ध किया गया है कि विक्रमी संवत् ठीक है। अपने विरोधियों की युक्तियों का खण्डन उन्हों ने बड़ी उत्तमता से किया है। इस लिये हम वह लेख अविकल रूप में यहां उद्धृत करते हैं।

इस लेख के आरम्भ में कांग्रेस के मन्त्री ने अपनी ओर से सूचनार्थ लिखा है कि दो लेख जो पूर्वी भाषाओं के विद्वानों की सहयोगी जातियों की नौवीं कांग्रेस के लन्दन-अधिवेशन में सन् १८६१ ई० में पढ़े गये थे।

१—संवत्-लेखक-लुधियाना निवासी पण्डित ज्वाला सहाय।

२—भारत-नाटक-शास्त्र अर्थात् इण्डियन ड्रामाट्रैक्स-लेखक-बड़ौदा निवासी श्री एच० एच० ध्रुव।

ये दोनों लेख जो भारत के सुप्रसिद्ध विद्वानों के लिखे हुए हैं, भारतवर्ष के इतिहास के विषय में एक विशेष-काल की सूचना देते हैं। इन से प्रोफेसर ह्विटनी के कथन की पुष्टि भी-भली प्रकार से होती है कि भारतवर्ष के विद्या-विकास व इतिहास के विषय में योरूप के विद्वानों ने अपने अनुमान बल से जो-जो तिथियां निर्धारित की हैं, वे पुनरपि विचार करने के योग्य हैं।

विक्रमादित्य के इतिहास के विषय में यह एक लोक प्रसिद्ध वार्ता है कि उस के दरबार के नौ रत्नों में से एक कालीदास भी था, जोकि 'शकुन्तला' नामक नाटक का रचनाकार और बहुत प्रसिद्ध कवि एवं विद्वान् था। कालीदास का समय एक शती ईसापूर्व माना जाता है। तथा इस संवत् का प्रथम वर्ष जूलियस कैसर के बरतानिया देश पर आक्रमण-काल से भी सुसंगत ठहरता है।

कुछ वर्ष पूर्व योरूप के पूर्वी भाषाओं के विद्वानों की एक सभा ने लौकिक किंवदन्तियों को एक ओर रखकर, बुद्धिपूर्ण-परिणामों और अनुमान-बल के आधार पर इस बात को सिद्ध करने का यत्न किया है कि विक्रमादित्य वास्तव में ईसा की छटी या सातवीं शती में हुआ है। इस निष्कर्ष की पुष्टि में जो तर्क प्रस्तुत किया गया वह न तो कभी सन्तोष-जनक था, न ही अब सन्तोष-प्रद है। वह तर्क इस भ्रान्त विचार पर आधारित है कि किसी भी पुस्तक का रचनाकाल इसी बात से जाना जा सकता है कि उस में नये विचारों का उल्लेख है, अथवा प्राचीन विचारों का।

उपनिषदों के काल-निर्णय-प्रसंग में प्रोफेसर मैक्समूलर ने लिखा था :—

"यह एक बड़ा भयंकर सिद्धान्त है कि विचारों की नवीनता और प्राचीनता के आधार पर किसी ग्रन्थ की नवीनता वा प्राचीनता का निर्णय किया जाये।" उन्हों ने यह भी लिखा—

"जब तक आरम्भिक और अन्तिम काल की पुस्तकों के रचना-काल के विषय में कुछ अधिक ज्ञात न हो, तब तक हम यह नहीं कह सकते कि उन-उन पुस्तकों की रचना करने वाले विद्वानों के विचार किस प्रकार के थे ? नूतन या पुरातन। निःसन्देह, असम्भव बातों के विषय में कोई प्रयत्न करना भी बहुत बड़े साहस की बात है। परन्तु ऐसा करना विद्वानों का काम नहीं है।

वह तर्क जो विक्रमादित्य के ईसा से ६०० वर्ष पश्चात् होने के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया जाता है, यह है कि क्योंकि कालिदास विक्रमादित्य का समकालीन था, और कालिदास की लेखन-शैली में बहुत

अधिक कृत्रिमता पाई जाती है, इस लिये उसकी रचनायें कुछ-कुछ आधुनिक-काल जैसी ही हैं। वे ईसा की सातवीं शती से अधिक पुरानी नहीं हैं। इस लिये कालिदास और उसके साथ ही उसके समकालीन विक्रमादित्य भी, ये दोनों ही लगभग सातवीं शती में ही हुए हैं।

इस तर्क की निस्सारता दर्शाने के लिये कुछ अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अब तो इस प्रकार के तर्कों और अनुमानों की प्रथा को ही तिलांजली दी जा रही है। अब विद्वानों का यह निश्चित् मत है, जैसा कि पहले भी डा० बोहलर और डा० पीटरसन ने लिखा है कि भारतवर्ष की जनता की विक्रमादित्य और उसके संवत् के विषय में जो धारणा है, वह प्रायः सत्य है।

दूसरे-यह मत भी प्रकट किया गया है, और प्रोफेसर वेबर साहब ने इसका समर्थन भी किया है कि विक्रम संवत् की वर्ष गणना का भी वही हाल है, जो जूलियस और ग्रगरी की जन्तरी का है। विक्रमादित्य का उसके संवत् के प्रथम वर्ष में होना ऐसा ही निराधार है, जैसा कि जूलियस केसर और पोप ग्रेगरी का उनकी जन्तरी के प्रथम वर्ष में होना।

परन्तु उनका यह मत सत्य नहीं है। विक्रम संवत् की अवस्था जूलियस कैसर या पोप ग्रेगरी की जन्तरी के समान नहीं है। अपितु संवत् की स्थिति उनकी जन्तरी से सर्वथा प्रतिकूल है। न तो कोई ग्रेगरी का सन कहीं प्रचलित है। और न ही कहीं विक्रमादित्य की जन्तरी का प्रचलन है। इस लिये यह तुलना सर्वथा ही असंगत है। इस असंगत आधार पर प्रस्तुत किया जाने वाला तर्क भी असंगत है। और उस से निकलने वाला परिणाम भी असंगत है।

प्रोफ़ेसर वेबर ने प्रकट किया है कि हम को यह ज्ञात नहीं है कि विक्रम संवत् की गणना के आरम्भ होने का कारण क्या है ? इस कारण से भारतीयों की किंवदन्तियों को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। परन्तु ईस्वी सन् का हाल भी तो यही है। पादरियों ने ईसा की उत्पत्ति के चार वर्ष पश्चात् से ईस्वी सन् की गणना का आरम्भ किया है। परन्तु इसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि जूलियस कैसर, एगब्रेट का अथवा शार्लमैन का समकालीन था। विक्रमादित्य को ईसा से एक शती पूर्व से उठा कर, उसके छटी शती ईस्वी में होने का कथन करना ऐसा ही है।

—:०:—

संवत्

अब हम वह लेख यहां अविकल रूप में उद्धृत करते हैं, जो श्री पण्डित ज्वाला सहाय जी ने लन्दन-कांग्रेस में भेजा था :—

पिछले कुछ वर्षों में पूर्वी विद्याओं और इतिहास के विद्वानों ने सम्राट् विक्रमादित्य और उनके संवत् के विषय में बहुत कुछ लिखा है। सम्राट् विक्रमादित्य एक परम प्रतापी, विद्या प्रेमी और न्याय-निष्ठ सम्राट् थे। उनका दरबार सुप्रसिद्ध विद्वानों=नवरत्नों से सुशोभित रहता था। कुछ विद्वानों का कथन है कि विक्रमादित्य ईसा से ५७ वर्ष पूर्व राज्य करता था। कुछ विद्वान् इस बात को नहीं मानते। उनका कहना है कि कालिदास का जो काव्य उपलब्ध होता है, उसकी लेखन-शैली ईसा की छटी शती जैसी है। ईसा की छटी शती संस्कृत भाषा के पुनर्जीवन का काल प्रसिद्ध ही है। इस से पहले का वह काव्य नहीं है।

इन लोगों के अनुमानों के अनुसार विक्रमादित्य, जिसके आश्रय में कालिदास और शंकर जैसे उत्तम कवि रहते थे, का उत्कर्ष ईसा की छटी शती में स्थापित हुआ था। इस धारणा के प्रचारक-मण्डल के प्रधान डाक्टर फर्ग्युसन साहब हैं। उनका दावा है कि विक्रमादित्य का शासन-काल ५४४ ईस्वी से आरम्भ हुआ था। यद्यपि हिन्दुओं की गणना के अनुसार विक्रम-संवत् ईस्वी-संवत् से ५७ वर्ष पूर्व आरम्भ होता है।

प्रोफ़ेसर मैक्स मूलर प्रथम धारणा का समर्थन करता हुआ लिखता है कि यदि कोई एक शिला लेख वा सिक्का ऐसा मिल जाये, जिस पर सन् ५४३ ईस्वी में विक्रमादित्य का संवत् लिखा हो, तब ये सभी अनुमान स्वतः ही व्यर्थ हो जायेंगे।

डाक्टर वेबर श्री होल्टज़मन से सहमत हैं। श्री होल्ज़मन का मत यह है :—

"विक्रमादित्य के उत्कर्ष का सम्बन्ध विक्रम की प्रथम शताब्दि से जोड़ने में हम वही भूल करेंगे, जोकि पोप ग्रेगरी तेरहवें को ग्रेग्योरियन संवत् या जन्तरी के प्रथम वर्ष से, अथवा जूलियस सीज़र को जूलियन-काल के प्रथम वर्ष से, जोकि उसके नाम से प्रसिद्ध है, अर्थात् ईसा से ४७१३ वर्ष पूर्व गणना करते हैं।"

प्रोफ़ेसर टिपरसन का कथन है :—

"यह मत अब स्थिर नहीं रह सकता।" एक लेख जो उसने रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई की एक बैठक में पढ़ा था, वे लिखते हैं :—

"कालिदास के ग्रन्थों में जिस प्रकार का काव्य प्राप्त होता है, वह ईसा की प्रथम शती में भी प्राचीन काव्य-कला के रूप में प्रतिष्ठित था। कविता का प्रचार, कम से कम ईसा के ७८वें सन् में, जबकि कनिश्क के समय में अश्व-घोष नामी ब्राह्मण ने बौद्ध-मत स्वीकार किया और बुद्ध का जीवन-चरित्र अपने उत्कृष्ट काव्य के रूप में प्रस्तुत किया था, बहुत अधिक था।

प्रोफ़ेसर पैटर्सन के मतानुसार तीन बड़े व्याकरणकार पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि सबके सब कवि भी थे।* इसी लिये उनका मत है कि इन किंवदन्तियों को जो यह प्रकट करती हैं कि विक्रमादित्य और उसका दरबार ईसा से ५७ वर्ष पूर्व वर्तमान था, और उसके समय में श्रेष्ठ कवि भी थे, अविश्वास की दृष्टि से देखना उचित नहीं है।

डाक्टर बूलर इस परिणाम पर पहुँचा है कि संवत् ५४४ ई० से पूर्व भी विक्रम संवत प्रचलित था। डाक्टर किहार्न भी इस मत से सहमत है। मैं भी इन तीन अन्तिम विचारकों के विचारों से सहमत हूं। इस विषय में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। इसी पक्ष के समर्थन में मैं आगे कुछ प्रमाण और भी प्रस्तुत करता हूं, जिस से कि यह पक्ष भली प्रकार पुष्ट हो जाये।

ज्योतिर्विदाभरण की एक कथा से ज्ञात होता है कि कालिदास विक्रमादित्य के दरबार का एक प्रसिद्ध कवि था। उसकी कविता और उसके नाटकों से प्रतीत होता है कि वह संस्कृत-भाषा

* कुलियात आर्य मुसाफ़िर और तारीख-ए-दुनिया द्वितीय संस्करण में "तीन बड़े व्याकरणकार-पाणिनि कात्यायन और" यह वाक्यांश नहीं है। हम ने यह श्री ठाकुर अमर सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक में देखकर दूषित वाक्य को शुद्ध करने के लिये लिखा है।

—अनुवादक।

का एक पूर्ण विद्वान् था। और शब्दों एवं भावों के विज्ञान एवं उनके प्रयोग में भी वह बहुत अधिक कुशल था। उसकी रचनाओं में वैदिक-ईश्वरवाद, हिन्दू-दर्शन, पौराणिक गाथाओं, ज्योतिष-शास्त्र अर्थात् ग्रह-उपग्रह-विज्ञान इत्यादि विषयों का उल्लेख इतना अधिक है कि उनको छन्द-शास्त्र में श्रुत-बोध और ज्योतिष-शास्त्र में ज्योतिर्विदाभरण जैसे ग्रन्थों की रचना करने के विषय में सन्देह का कुछ थोड़ा-सा भी स्थान नहीं है। वे लिखते हैं :—

शंकवादि पण्डितवरा कवयस्त्वनेके।
ज्योतिर्विदास भवनाश्च वराहपूर्वाः ॥
श्री विक्रमस्य बुध संसदि प्राज्ञ बुद्धैः।
तैरप्यहं यो सखा किल कालिदासः ॥

उन श्लोकों में अन्तिम श्लोक से सुस्पष्ट है कि कलियुग के ३०६८वें वर्ष में यह पुस्तक रची गई थी। अब तक कलियुग संवत के अनुसार ४९९३ वर्ष बीत चुके हैं। इस गणना के अनुसार इस पुस्तक की रचना होकर १९२५ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ज्योतिष-विद्या के बहुत से ग्रन्थों को देखने से विदित होता है कि कलियुग के संवत् ३०४४ में विक्रमादित्य राज्यासन पर बैठा था। तथा कालिदास ने विक्रमादित्य के राज्यासन पर बैठने के २४ वर्ष पश्चात् अपने 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

ऊपर लिखे विवरण के अनुसार गणना करने से यह सुस्पष्ट विदित होता है। कि विक्रमादित्य का संवत् उस के राज्यारोहण-काल से ही आरम्भ हुआ था।

गुर्जरदेश भूपावलि

कुछ काल पूर्व मुझे संस्कृत की एक हस्त-लिखित पुस्तक प्राप्त हुई है। उस का नाम 'गुर्जर-देश-भूपावलि' है। उस के उल्लेखों से इस प्रकार के सन्देहों के निवारण में बहुत सहायता मिलती है। इस पुस्तक में एक सौ श्लोक हैं। इस की रचना 'रंगविजय' नामक एक जैन विद्वान् ने संवत् १८६५ वि० में की थी।

संस्कृत-विद्या-भण्डार का इतना थोड़ा-सा अंश हम तक पहुँचा है कि इतिहास का कुछ थोड़ा-सा उल्लेख भी वर्तमान् काल के अनुसन्धाताओं के लिये बहुत महत्व रखता है।

इस 'गुर्जर-देश-भूपावलि' का लेखक गुजरात देश के राजाओं का जैन-मत के गुरु महावीर स्वामी के मृत्यु-समय से लेकर भारतवर्ष में मुग़ल-साम्राज्य के अन्त तक का पूर्ण विवरण विस्तार पूर्वक लिखता है।

हिन्दू राजाओं के विषय में उस ने जो कुछ लिखा है, उस का संक्षिप्त-सा उल्लेख मैं यहां उद्धृत करता हूँ। जिस रात्रि को श्री महावीर स्वामी तीरथंकर की मृत्यु हुई थी, उसी रात्रि में पालक राज्य सिंहासन पर बैठा। उस ने साठ वर्ष तक राज्य किया। उस के उत्तराधिकारी नोनन्द हुए। जिन का राज्य १५५ वर्ष तक रहा। उसके पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य्य के वंश का काल आरम्भ हुआ। मौर्य्य-वंश के अधिकार में गुजरात-प्रदेश १०८ वर्ष तक रहा। इस के पश्चात् पुष्पमित्र, बालमित्र और विर्वाहन के नामों का उल्लेख है। इन सब का राज्य-काल १३० वर्ष के लगभग है।

गिर्दभील, जिस ने केवल १३ वर्ष तक ही राज्य किया, उस के विषय में यह प्रकट किया गया

है कि श्यामाचार्य सरस्वती के षड्यन्त्र के कारण उस का पतन हो गया था। इस के पश्चात् चार वर्ष तक गुजरात सीथियन लोगों अर्थात् शकों के अधिकार में रहा। जिन को बाद में उज्जैन के अधिपति विक्रमादित्य ने वहां से निकाल दिया। और महावीर की मृत्यु से ४७० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य राज्य-गद्दी पर बैठा। उस की स्वतन्त्र विचार-धारा, न्याय-निष्ठा, दयापरता की बहुत ही प्रशंसा की गई है। उस ने एक नया संवत् चलाया। और ८६ वर्ष तक राज्य किया। उस के बाद उस का बेटा गद्दी पर बैठा। परन्तु उस के संवत् के १३५ वर्ष पश्चात् एक और राजा शालिवाहन का बल बहुत अधिक बढ़ा, तथा उस ने शक-संवत् प्रचलित किया।

मैं उचित समझता हूँ कि विक्रमादित्य के विषय में 'गुर्जर-देश-भूपावलि' में जो कुछ लिखा है, उस का उल्लेख यहां पर ज्यों का त्यों कर दूं। यथा :—

वीरमोक्षाच्च सप्तत्यायुते वर्ष चतुःशते ।
व्यतीते विक्रमादित्य उज्जयिन्यामभूदितः ॥
सत्व सिध्यग्नि वेताल प्रमुखानेक देवता ।
विद्यासिद्धो मन्त्रसिद्धः सिद्धः सौवर्णपूरुषः ॥
धैर्यादि गुणविख्यातः स्थाने स्थाने नराः परैः ।
परीक्षकश्च पाषाणनिघृष्ट सत्व कांचनः ॥
ससन्माना इह श्रीयां दानाग्र नृणामखिलाम् ।
कृत्वा संवत्सराणां सः आसीत् कर्त्ता महितले ॥
षड्शीतिमितं राज्यं वर्षाणां तस्य भूपतेः ।
विक्रमादित्य पुत्रस्य ततो राज्यं प्रवर्त्तितम् ॥
पंचत्रिंशद्युते भूपाद् वत्सराणां शते गते ।
शालिवाहन भूपोऽभूद् वत्सरे शक कारकः ॥

शालिवाहन के राज्य शासन के ५० वर्ष पश्चात् श्रेष्ठ बालमित्र राज्य गद्दी पर बैठा। उस ने एक सौ वर्ष तक राज्य किया। संवत् २८५ वि० में न्यायप्रिय राजा हरिमित्र, प्रिय मित्र, भानुमित्र राजा हुए, जिन्होंने संवत् ५५७ तक राज्य किया। इस के पश्चात् आमा और भूजा का राज्य रहा। उन के पीछे पाँच राजा और हुए जिन्हों ने २४५ वर्ष तक राज्य किया। चोर-वंश का प्रथम राजा बनराज़ था जिस ने गुजरात पर ६० वर्ष तक शासन किया। अपने समय में उस ने 'पट्टन' नामक प्रसिद्ध नगर बसाया। चोरवंश के अन्य राजा इस प्रकार हुए हैं :—

योगराज २५ वर्ष तक, क्षेमराज २६ वर्ष तक, भादोराज २६ वर्ष तक, भद्रसिंह २५ वर्ष तक, रत्नादित्य १५ वर्ष तक, सामन्त सिंह ७ वर्ष तक। चोरवंश के राजाओं ने कुल १९६ वर्ष तक राज्य किया।

इस के पश्चात् संवत् ९९८ वि० का आरम्भ हुआ, जबकि मूलराज ने गुजरात का राज्य प्राप्त कर लिया। उस ने ५५ वर्ष तक राज्य किया। इस में सन्देह नहीं कि वह चालूक्य वंश का प्रथम राजा था। उस के बाद राज्य गद्दी उस के ही वंश में रही। इस वंश ने कुल २४५ वर्ष तक राज्य किया।

इस वंश का सब से अधिक प्रसिद्ध राजा कुमार पाल था। जिस का शासन-काल संवत् ११६६ वि० से १२३० वि० तक है। इस के सुयोग्य मन्त्री दाहर ने ही भृगुपुर में जैनपति का प्रसिद्ध मन्दिर निर्मित करवाया था। संवत् १२६८ वि० में बृहद्बल राज्यासन पर बैठा और दस वर्ष बाद मर गया। उस के पश्चात् चार राजाओं ने ६३ वर्ष तक गुजरात पर शासन किया। इन में सब से अन्तिम कर्णदेव था। जिस का राज्य संवत् १३६१ वि० से १३६८ वि० तक रहा। इस का उत्तराधिकारी खिजरखां खिलजी हुआ। उसी समय से गुजरात मुसलमानों के शासन में चला गया।

आगे 'गुर्जर-देश-भूपावलि' का लेखक मुग़ल-काल के बादशाहों का विवरण देता है। और शाह आलम तक का उल्लेख करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने इतिहास में से चुन-चुन कर यह सब विवरण लिखा है। यद्यपि ब्राह्मणों की लिखी हुई पुस्तकों में इतिहास का बहुत ही थोड़ा-सा उल्लेख मिलता है, तथापि कुछ ही वर्षों की खोज से ज्ञात हुआ है कि जैन-मत के साहित्य में प्राचीन इतिहास विषयक सामग्री पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। वर्तमान काल के अनुसन्धाताओं ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जैन-मत और बौद्ध-मत इन दोनों का प्रचलन-काल एक ही है। ये दोनों ही मत अपना-अपना पृथक् अस्तित्व रखकर एक ही से संन्यास-मार्ग का प्रचार करते रहे। संन्यास-मार्ग की यह परम्परा ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व भी पाई गई है।

'गुर्जर-देश-भूपावलि' के अनुसार जैन-मत का चौबीसवें तीर्थ करने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व देह त्याग दिया था। जैन-मत के एक विद्वान् ने मुझे बतलाया है कि महावीर स्वामी की मृत्यु बौद्ध-मत के प्रवर्त्तक से १६ वर्ष पश्चात् हुई थी। इस समय बौद्ध-मत का जो इतिहास प्रचलित है, और जिसे बौद्ध-विद्वान् भी स्वीकार करते हैं, यदि उस की प्रामाणिकता मान ली जाये, तो बुद्ध की मृत्यु को अब तक २४३४ वर्ष गुज़रे हैं।

पालक नामक राजा, जिस का इस भूपावलि में उल्लेख है, यह सम्भवतः वही है जिस का वर्णन "शूद्रक की खोज" नाम के नाटक में मिलता है। इस का देहान्त ईसा से ४६७ वर्ष पूर्व हुआ था। नौ नन्दों ने ३१२ वर्ष ईसा पूर्व में शासन किया था। मौर्य्य-वंश का अधिकार गुजरात पर ईसा से पूर्व ३१२ से ३५४ वर्ष तक रहा था। इस के पश्चात् पुष्य मित्र का समय है। यह राजा सम्भवतः वही है, जिस का उल्लेख महर्षि पतंजलि ने व्याकरण महाभाष्य में किया है।* इस के कुछ काल पश्चात् महाराजा विक्रमादित्य के पिता का पता मिलता है। जिस महाराजा के अधिकार में गुजरात का राज्य चार वर्ष तक रहा था, उसे निकालकर विक्रमादित्य ने मालवा और उस के आस पास के प्रदेशों पर गुजरात सहित अपना अधिकार कर लिया। विक्रमादित्य को इसी लिये अब तक भी 'शकारी' अर्थात् शकों का शत्रु कहा जाता है। विक्रमादित्य ने सम्भवतः अपनी उस बड़ी विजय के स्मारक रूप में ही अपना संवत् चलाया था।

विक्रमादित्य के राज्यारोहण काल से १२५ वर्ष पश्चात् शालिवाहन एक दूसरा शक्तिशाली राजा हुआ। और उस ने भी अपना नया संवत् प्रचलित किया। यहां यह बात विशेष रूप से ध्यान

* यहाँ पर भूल है। यह पतंजलि के महाभाष्य वाला पुष्यमित्र नहीं है। क्योंकि महाभाष्य तो "भारत" से भी पहले का ग्रन्थ है। [विशेष देखो 'सृष्टि का इतिहास' प्रथम भाग।] यह टिप्पणी कुलियात आर्य मुसाफ़िर में तथा 'सृष्टि का इतिहास' दूसरे संस्करण में है, जोकि श्री लाला मुन्शी राम जिज्ञासु ने लिखी होगी। —अनुवादक।

... की है कि विक्रम-संवत् तथा शालिवाहन-संवत् ये दोनों ही संवत् सीथिय लोगों अर्थात् शकों को पराजित करके, विजय के स्मारक रूप में ही प्रचलित किये गये थे।

गुर्जर-देश-भूपावलि में विक्रमादित्य से पहले और उस के पश्चात् गुजरात देश में होने वाले हिन्दू राजाओं का जो हाल लिखा है, वह क्रमबद्ध है, और विश्वास करने योग्य भी है।

यदि डाक्टर फर्ग्यूसन का मत ही मान लिया जाये कि विक्रमादित्य ईसा की छटी शती में हुआ था, तब वे राजा कहाँ से आयेंगे, जिन्होंने ईसा से ५७ वर्ष पूर्व से लेकर ८६ वर्ष तक राज्य किया ? और शकों पर एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त की। सम्भवतः कुछ विचारक यह अनुमान कर लेंगे कि एक ही विक्रमादित्य नाम वाले कई राजा हुए होंगे। और वे सभी प्रतापी एवं शक्तिशाली भी होंगे। परन्तु इस हस्तलिखित पुस्तक में तो एक ही राजा का उल्लेख है, जिस का नाम विक्रमादित्य है। और उसी का दूसरा नाम शकारि है।

इस के साथ ही अब यह भी सिद्ध हो चुका है कि शालिवाहन का शक संवत् सन् ७८ ई० में चला था। 'रंग विजय' का कथन है कि यह विक्रमादित्य से १३५ वर्ष पश्चात् चला था। यह घटना केवल-मात्र इस हस्त-लिखित पुस्तक के आधार पर ही निर्णीत नहीं हो सकती। यहां हमें उन प्राचीन पंक्तियों का भी विचार करना होगा, जोकि विक्रम संवत् के विषय में ज्योतिष के प्रत्येक ग्रन्थ में लिखी हुई मिलती हैं। और संस्कृत के सभी पत्रों में जिन का उल्लेख प्रायः किया जाता है। इस से भी विक्रम-संवत् की शुद्धता और प्रामाणिकता सिद्ध होती है। ज्योतिष-शास्त्र की परम्परा से तथा जैन-ग्रन्थों से भी विक्रम तथा शक शालिवाहन दोनों ही संवतों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। ऐसे पुष्ट प्रमाणों की उपेक्षा करने का मैं कोई उचित कारण नहीं देखता।

इस विषय में कि विक्रम-संवत् का आरम्भ भी ग्रेग्योरियन और जूलिसियन संवतों के समान ही हुआ होगा, भारत-वर्ष के प्राचीन इतिहास में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में एक निराधार मौखिक अनुमान ही शेष रह जाता है। इसके साथ ही आम और भूजा तथा पांच राजाओं का जिन्होंने संवत् ५५७ से ८०२ तक शासन किया, उनका भी उल्लेख इस 'भूपावलि' में मौजूद है। यदि आमा के शासनकाल को १५ वर्ष माना जाये, तो भूजा का राज्यारोहण संवत् ५४२ में हुआ होगा। यह गणना राजा भोज के राज्यारोहण काल से पूरी-पूरी मिल जाती है। एक हिन्दू विचारक का कथन है कि राजा भोज विक्रमादित्य से ५४२ वर्ष बाद हुआ था। यह वर्णन निस्सन्देह उसी राजा भोज का है, जिसने ईसा की छटी शती के आरम्भ में राज्य किया था। ईसा से ५७ वर्ष पूर्व से गणना करने से उस समय तक ५४२ वर्ष ही होते हैं।

ऊपर लिखे पुष्ट प्रमाणों के आधार पर मैं यह बल पूर्वक कह सकता हूं कि विक्रमादित्य के संवत् के विषय में किसी और नये प्रमाण, शिलालेख या सिक्के की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। तथापि मैं इतना लिख देता हूं कि डाक्टर ह्विटनी ने पृष्ठ ३१ से ३९ तक ऐसे शिला-लेख का उल्लेख किया है कि जिसमें संवत् ५ वि. के साथ ही साथ ईस्वी सन् ५२ का भी उल्लेख है।

उज्जैन

फिर एक अन्य विद्वान् लिखता है :—

उज्जैन एक बहुत पुराना शहर है। प्रचीन ग्रन्थों में इस का नाम उज्जयिनी और अवन्ती लिखा हुआ मिलता है। यह शहर समुद्र तल से एक हज़ार सात सौ फुट ऊँचा है। तथा यह १३ दरजा ११ अंश उत्तर चौड़ाई और ७६ दरजा ३५ अंश पूर्व लम्बाई में सप्रानदी के दक्षिण भाग में बसा हुआ है। यह ग्वालियर से २६० मील है। यह पश्चिम और दक्षिण के कोने में, कुछ दक्षिण की ओर झुका हुआ-सा बसा है। वहां भूमि के खोदने से दूर-दूर तक प्राचीनकाल की आबादियों के निशान प्राप्त हुए हैं। महाराजा विक्रमादित्य के समय में यह शहर अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था।

ज्योतिष-शास्त्र के पण्डितगण ज्योतिषशास्त्र के नियमानुसार अपने 'लम्ब' की गणना इसी नगर को आधार मानकर किया करते हैं। यहां पर एक ऐसा मकान भी है, जोकि राजा भर्तृहरि का 'उपासना-घर' कहलाता है। वह किसी बड़े मकान का एक भाग प्रतीत होता है। कालचक्र के थपेड़ों से वह बड़ा घर मिट्टी का ढेर बना पड़ा है। पहले यह मकान भी दबा पड़ा था। महाकाल महादेव का मन्दिर यहां पर बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु जो मन्दिर महाराजा विक्रमादित्य ने बनवाया था, वह सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश ने तोड़ डाला था। अल्तमश सन् १२१० ई० में राज्यगद्दी पर बैठा था। विक्रमादित्य सन् ईस्वी से ५६ वर्ष पूर्व राज्य सिंहासन पर बैठा था। वह प्रमार वा पंवार वंश में उत्पन्न हुआ था।

[जामे जहां नुमा जिल्द २०, पृष्ठ ८२-८३, सन् १८६१, लाहौर]

भर्तृहरि

क्योंकि श्री शंकराचार्य जी शिव के अवतार प्रसिद्ध हैं, और वे शैव-मत के प्रवर्तक भी थे। अतः उनके समय से शैव-मत का आरम्भ हुआ। और वह दिन प्रतिदिन बढ़ता-फैलता गया। उनके समय से रामानुज के समय तक भारत में प्रायः सर्वत्र शैव-मत का ही प्रसार था। इस बीच में यहां विभिन्न प्रदेशों में जो राजा हुए, वे सभी शैव-मत के ही अनुयाई थे। महाराजा विक्रमादित्य और उनके बड़े भाई भर्तृहरि भी शैव-मत के मानने वाले ही थे। यह भी प्रसिद्ध है कि भर्तृहरि ने शंकराचार्य जी के किसी शिष्य से ही उपदेश लिया था। और संन्यासी हो गये थे। क्योंकि शंकराचार्य जी ने बौद्ध-मत को एक भारी धक्का लगाया था, इसी लिये लोग शंकराचार्य को शंकर का अवतार बताते हैं। भर्तृहरि के शतकों से भी यही बात कुछ-कुछ झलकती है।

कुछ लोग जो संस्कृत-साहित्य से अपरिचित हैं, वे कहते हैं कि भर्तृहरि का देहान्त सन् ६५० ई० में हुआ था। और विक्रमादित्य का देहावसान उनके बाद हुआ था। परन्तु यह एक भ्रान्त बात है। यह बात वैसी ही है, जैसे कोई न्याय-दर्शन के रचनाकार गौतम को गौतम बुद्ध समझ बैठे। और धोका खा जाये। क्योंकि जिस भर्तृ का देहान्त सन् ६५० ई० में हुआ था, वह तो बौद्ध-मतानुयाई और नास्तिक था। और पहला वेदवादी आस्तिक। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

तत्रा नेहस्युज्जयिन्यां श्री मान् हर्ष पराभिधः।
एकछत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः।
शकान् विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघु कृतः॥

अर्थ—वहां उज्जयिनी नगरी में श्रीमान्, सबको हर्षित करने वाला, एक-छत्र सम्राट् परम प्रतापी चक्रवर्ती विक्रमादित्य था। मानो म्लेछों को नष्ट करने के लिये ही उसने अवतार धारण किया था। उसने शकों का नाश किया और दुष्टों को मार कर पृथ्वी का बोझ हलका किया।

यह भी लिखा है कि विक्रमादित्य ने काश्मीर के राज्यसिंहासन पर अपने शरणागत मात्रगुप्त को बैठाया था।

—:o:—

पुस्तकों के विषय में अनुसन्धान

वेद

वेद चार हैं, जिन्हें ऋग्, यजु, साम और अथर्व कहते हैं। जैसे बीज, वृक्ष, फूल और फल अथवा कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान। बीज और ज्ञान की चार अवस्थायें हैं। जैसे शरीयत, तरीक़त, इक़ीकत और मारफ़त, या ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। मानव जीवन की चार अवस्थायें हैं। इसी प्रकार वेद भी चार हैं। ज्ञान की दृष्टि से तो वेद एक ही है। अर्थात् चारों वेदों का एक नाम तो वेद ही है। परन्तु श्रेणियों और उपयोगिता की दृष्टि से एक ही वेद के चार भाग हैं।

वेद संसार में सब से पुराना धर्म-ग्रन्थ है। ज्ञान की दृष्टि से और रचना-शैली की दृष्टि से भी वेदों से अधिक पुरानी और कोई भी पुस्तक संसार में नहीं है। आर्यों के धर्म ग्रन्थ ये वेद ही हैं। और वैदिक-धर्म ही संसार में अन्य सब मत-मतान्तरों से अधिक प्राचीन एवं बुद्धि-संगत है। सृष्टिक्रम और विज्ञान से वैदिक-धर्म का विशेष सम्बंध है। सभी विद्वान् विचार से इस विषयमें एकमत हैं कि आर्य लोग प्राचीन-काल से ही दर्शन-शास्त्र के बहुत अधिक प्रेमी रहे हैं। अंक-गणित, भौतिक-विज्ञान, दर्शन-शास्त्र और अध्यात्मवाद के प्राचीनतम आचार्य ये ही हैं।

वेद में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन बहुत उत्तमरूप में किया गया है। मूर्तिपूजा, मनुष्य वा पशु-पक्षिपूजा, अथवा किसी प्रकार की जड़-पूजा का वेद में कुछ भी उल्लेख नहीं है। वेद में चरित्र निर्माण और सदाचार का उपदेश सर्वश्रेष्ठ रूप में पाया जाता है।

वेद की प्रेरणाएं सम्पूर्ण संसार के लिये एक ही जैसी प्रेरणा-प्रद, अमोघ और उपयोगी हैं। अवतारवाद, या तथाकथित देव पूजावाद का वेदों में साधारण-सा संकेत भी कहीं नहीं है। राम, कृष्ण, वामन, परसुराम, व्यास, नरसिंह, या किसी अन्य अवतार अथवा किसी राजा वा किसी ऋषि-मुनि की कोई कथा-कहानी भी वेद में नहीं है। नवीन-वेदान्त अर्थात् जीव और ब्रह्म की एकता का सिद्धान्त भी वेद विरुद्ध है। सती होने का विधान भी वेद में नहीं है। मांस, मद्य, व्यभिचार, और जुआ आदि को वेद ने एक समान ही दोष और त्याज्य माना है। वाम-मार्ग-मत वेद विरोधी है। ब्रह्मा, विष्णु और

महेश को वेद तीन पृथक् देवता नहीं बताता। अपितु वेद में यह स्पष्ट उल्लेख है कि ये तीनों गुण-कर्म और स्वभाव भेद से एक ही ईश्वर के तीन नाम हैं। ब्रह्मा अर्थात् सबसे बड़ा। विष्णु अर्थात् सर्व-व्यापक। और महादेव सब का प्रकाशक। ऐसे ही परमात्मा के और भी सहस्रों नाम गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार हैं।

आर्य लोग वेदों को ईश्वरीय-ज्ञान मानते हैं। सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों=अग्नि, वायु आदित्य और अंगिरा के हृदय में वेदों का प्रकाश हुआ था। व्यास, जैमिनी, गौतम, कणाद, पतंजलि और कपिल छः बड़े दर्शनकारों ने भी, जोकि छः विभिन्न कालों में हुए हैं, वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने, एवं वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार किया है। और इस विषय का विवेचन बहुत अधिक विस्तार के साथ किया है। वेद स्वयं भी अपने ईश्वरीय-ज्ञान होने का कथन करते हैं। उपनिषद्कार तत्त्ववेत्ताओं ने भी वेदों की प्रामाणिकता और ईश्वरी-ज्ञान होने को स्वीकार किया है। अर्थात् जो सब का सर्वोपरि स्वामी है, वही ईश्वर है। उसी से चारों वेदों का प्रकाश हुआ है। और ईश्वर-प्राप्ति ही चारों का मुख्य तात्पर्य है।

सुप्रसिद्ध विद्वान् मार्षमैन साहब लिखते हैं :—

"वेदों का विशेष प्रतिपाद्य एकेश्वरवाद ही है। वेदों में पंच महा भूतों, जड़ पदार्थों और गौण देवों के उल्लेख अलंकारिक रूप में ईश्वर की महिमा को दर्शाने के लिये ही किये गये हैं। यह तो सत्य है कि पौराणिक देवताओं के नाम वेदों में मिलते हैं; परन्तु किसी देवता की कोई अतिरिक्त विशेषता नहीं है। और यह तो कहीं भी नहीं है कि अमुक देवता की उपासना करो। कृष्ण और शिव की कहानियों का वेदों में लवलेश मात्र भी नहीं है। वास्तविकता यह है कि उस सुदीर्घ प्राचीन काल में न तो कोई मूर्ति प्रतीत होती है, और न ही कोई ऐसी वस्तु वा मन्त्र है, जिस से पूजा करें। (अर्थात् प्राचीन काल में मूर्त्तिपूजा किसी भी रूप में न थी।) यद्यपि यह कहा जाता है कि हिन्दू लोग अपने रीति-रिवाजों को बहुत कम बदलते हैं, तथापि यह बात बड़े आश्चर्य की है कि इस देश में जो लोग वेदों को बड़े सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। एवं उनको धर्म का आदिस्रोत मानते हैं। वे भी वैदिक सिद्धान्तों से बहुत दूर हो गए हैं। यदि कोई वेदों की रीति से उपासना करना चाहे, तो आजकल के लोगों की विचारधारा के अनुसार तो उसे नास्तिक ही समझा जायेगा।"

[मार्षमैन का इतिहास, अध्याय १, पृष्ठ ५, सन् १८६३ ई०]

अनुसन्धानकार कालब्रुक साहब लिखते हैं :—

"उन शूरवीर और पराक्रमी पुरुषों का जिनका नाम वेदों में तो नहीं है; परन्तु जिन्हें आज कल के हिन्दुओं के देवताओं में बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है, यथा राम और कृष्ण, प्रभृति, इनमें से किसी के भी देवता या पूज्य होने का उल्लेख वेदों में नहीं है। यही नहीं, उन देवताओं का भी उल्लेख वेदों में नहीं है, जिन का अवतार इन राम, कृष्ण आदि को माना जाता है।"

[किताब तहक़ीकात हालात-एशिया, खण्ड ८, पृष्ठ ३९५—३९७]

प्रोफ़ेसर विलसन महोदय लिखते हैं :—

"वेदों में से मूर्तिपूजा का विधान अथवा प्रचलित उपासना पद्धतियों में प्रयुक्त होने वाले

उपकरणों के स्थूल प्रमाण वेदों में से दिखाना-निकालना असम्भव है।

[देखो उनका व्याख्या पृष्ठ १२ आक्सफोर्ड-संस्करण]

इस प्रकार माननीय श्री एल्फिन्स्टन साहब, सर विलियम जोंस साहब और मौलवी ज़काउल्ला साहब ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में इन ही तथ्यों का उल्लेख किया है। उन सब कुरीतियों और रूढ़ियों, जिन का खण्डन आर्य समाज इस समय करता है, का कुछ भी उल्लेख वेदों में नहीं है। इस विषय में आधुनिक काल के सभी वेदज्ञ एक मत हैं। चारों वेद छन्दों में आबद्ध हैं। और उनको उत्तम रूपमें स्वर-साधना करके, गाया जा सकता है। वेद की संस्कृत भाषा बहुत उच्चकोटि की तथा निर्दोष है। किसी बड़े से बड़े ऋषि की रचना भी वेद रचना के तुल्य नहीं हो सकती। सामवेद विशेष रूप से गेय-वेद है। यह गानविद्या की कान कहलाता है। विविध प्रकार की विद्याओं और कलाओं का उल्लेख वेदों में बहुत उत्तम रूप में वर्तमान है। ऋषि, मुनि महात्मा विद्वानों ने वेदों को सभी सत्य विद्याओं का आदि-स्रोत कहा है। मण्डलों, अध्यायों और काण्डों के आधार पर वेदों का विभाजन-क्रम इस प्रकार से है :—

ऋग्वेद

क्रम संख्या मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र
१	२४	१९१	१९७६
२	४	४३	४२९
३	५	६२	६१७
४	५	५८	५८९
५	६	८७	७२७
६	६	७५	७६५
७	६	१०४	८४१
८	१०	१०३	१७२३
९	७	११४	११०८
१०	१२	१९१	१७५४
सर्वयोग	८५	१०२८	१०५१८

दूसरा विभाजन प्रकार

क्रम संख्या अष्टक	अध्याय	वर्ग	मन्त्र
१	८	२६५	१३०५
२	८	२२१	११७२
३	८	२२५	१२०९
४	८	२५०	१२८८
५	८	२३८	१२६३
६	८	३३१	१७४४

७	८	२४८	१२५१
८	८	२४६	१२८१
सर्वयोग	६४	२०२४	१०५१८

ऋग्वेद में कुल दस मण्डल, आठ अष्टक, चौंसठ अध्याय, पचासी अनुवाक, एक हज़ार अट्ठाईस सूक्त, दो हज़ार चौबीस वर्ग और दस हज़ार, पांच सौ, अट्ठारह मन्त्र हैं। एवं एक लाख, तरेपन हज़ार सात सौ बानवे शब्द और चार लाख बत्तीस हज़ार अक्षर हैं।

ऋग्वेद का छन्द-विभाग

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद का छन्द-विभाजन इस प्रकार है :—

१—त्रिष्टुप	४३०३	११—ककुभ	५५
२—गायत्री	२५०१	१२—शाकरी	२६
३—जगती	१३६३	१३—अतिजगती	१७
४—अनुष्टुप	८५५	१४—द्विपदा	१७
५—उष्णिक्	३४१	१५—अनाधृष्टि	८
६—पंक्ति	३१२	१६—अतिशकरी	८
७—महाव्याहृति	२५१	१७—एकपदा	६
८—प्रगार्थवार्ता	१८४	१८—अष्टि	६
६—बृहती	१८१	१६—धृति	२
१०—अत्यष्टि	८४	२०—अतिधृति	२

सब छन्द बीस प्रकार के हैं।*

सब मन्त्रों की संख्या १०५२२ है।×

यजुर्वेद के अध्याय और मन्त्र

अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र
१	३१	२१	६१
२	३४	२२	३४
३	६३	२३	६५
४	३७	२४	४०

* यह छन्दों की संख्या अभी विचारणीय है। सृष्टि का इतिहास तीसरे भाग में पर्याप्त प्रमाण दिये जायेंगे।*

× यह संख्या अशुद्ध है। ठीक संख्या १०५१८ है। जैसा कि लेखक ने मण्डलों और अष्टकों के विवरण में लिखी भी हैं। —अनुवादक।

* 'सृष्टि का इतिहास' तीसरा भाग लिखने से पूर्व ही श्री पण्डित लेख राम जी की हत्या कर दी गई थी। —अनुवादक।

५	४३	२५	४७
६	३७	२६	२६
७	४८	२७	४५
८	६३	२८	४६
९	४०	२९	६०
१०	३४	३०	२२
११	८३	३१	२२
१२	११७	३२	१६
१३	५८	३३	६७
१४	३१	३४	५८
१५	६५	३५	२२
१६	६६	३६	२४
१७	९९	३७	२१
१८	७७	३८	२८
१९	९५	३९	१३
२०	९०	४०	१७
		सर्वयोग	१९७५

यजुर्वेद में कुल अध्याय चालीस, काण्ड-चौदह, मन्त्र एक हज़ार, नौ सौ, पचत्तर हैं। जिन में नब्वे हज़ार, पाँच सौ पच्चीस शब्द और बारह सौ, तीस ग्वंग [ॐ] हैं।*

सन्मूलो यजुराख्य वेदविटपी जीयात्समाध्यन्दिनिः।
शाखा यत्र युगेन्दु काण्ड [१४] सहिता यत्रास्ति सा संहिता॥
यत्राब्धि [४०] लता विभान्ति शरशैलांकेन्दुभि [१९७५] ऋग्दलैः।
पंच द्वीषु नभोङ्क वर्ण मधुपैः, खऽन्त्यर्क ॐ गुंजितैः॥ [१२३०]

सामवेद

पूर्वार्द्ध

अध्याय	साम	मन्त्र
१	१२	११४
२	१२	११८
३	१२	११९
४	१२	११५

* ग्वंग एक प्रकार का सानुनासिक उच्चारण या ध्वनि है। ग्वंग का चिह्न ॐ या ॐ है।

—अनुवादक।

	५	११	११६
	६	५	५५
सर्वयोग	६	६४	६४०

उत्तरार्द्ध

१	१	१०
२ से २३ तक	२२	४१४
सर्वयोग २३	२३	४२४*

सामवेद में कुल २६ अध्याय, ८७ साम और १०६४ मन्त्र हैं।

पूर्वोत्तरौ विभजतेऽखिलसाम भागौ,
सामानि यत्र नगनाग [८७] मितानि सन्ति।
अध्यायका नवकराः [२६] श्रुतिगायकास्ते,
गायन्ति वेदरसयंक [१०६४] मितांश्चमन्त्रान् ॥

अर्थ—सामवेद के दो भाग हैं, पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। इन में ८७ साम, २६ अध्याय और १०६४ मन्त्र हैं। ×

अथर्ववेद के मन्त्रों का विवरण

काण्ड संख्या	प्रपाठक	अनुवाक्	वर्ग	मन्त्र
१	२	६	३५	१५३
२	२	६	३६	२०७
३	२	६	३१	२३१
४	३	८	४०	३२४
५	३	६	३१	३७६
६	३	१३	१४२	४५४
७	२	१०	११८	२८६
८	२	५	१०	२५६
६	२	५	१०	३०२

* यह संख्या अशुद्ध है। उत्तरार्द्ध की मन्त्र संख्या १२२३ है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के मध्य में १० मन्त्र हैं, जोकि महानाम्न्यार्चिक कहलाते हैं। —अनुवादक।

× ये संख्यायें अशुद्ध हैं। सामवेद की मन्त्र संख्या नीचे लिखे अनुसार है :—

पूर्वार्चिक या पूर्वार्द्ध ६ अध्याय ६४० मन्त्र।
मध्यार्चिक या महानाम्न्यार्चिक १ अध्याय १० मन्त्र।
उत्तरार्चिक या उत्तरार्द्ध २२ अध्याय १२२३ मन्त्र।
सर्वयोग २९ अध्याय १८७३ मन्त्र। —अनुवादक।

१०	२	५	१०	३५०
११	२	५	१०	३१३
१२	२	५	५	३०४
१३	१	४	४	१८८
१४	१	२	२	१३९
१५	१	२	१८	१४१
१६	१	२	६	६३
१७	१	१	१	३०
१८	२	४	४	२८३
१९	०	७	७२	४५६
२०	०	६	१४३	९६०
सर्वयोग २०	३४	१११	७३१	५८४७

अथ नख [२०] मितकाण्डैराजते ऽथर्व संसद्,
युग गुण [३४] वितता प्रपाठकाश्चानुवाकाः ।
अवनिविधुधरणयो [१११] भूगुणागास्तु [७३१] वर्गा,
नगयुगवसुवाणां [५८४७] स्तत्रमन्त्रान् भजन्ते ॥

अर्थः—अथर्ववेद के २० काण्ड, ३४ प्रपाठक, १११ अनुवाक, ७३१ वर्ग और ५८४७ मन्त्र हैं।

चारों वेदों की मन्त्र संख्या

ऋग्वेद जो अग्नि ऋषि पर प्रकट हुआ	१०५१८
यजुर्वेद जो वायु ऋषि पर प्रकट हुआ	१९७५
सामवेद जो आदित्य ऋषि पर प्रकट हुआ	१०६४*
अथर्ववेद जो अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुआ	५८४७
सर्वयोग	१९४०४

केवल मात्र मन्त्र संहिता का नाम ही वेद है। किसी भाष्य या अन्य ग्रन्थ की वेद संज्ञा नहीं है। संस्कृत भाषा में ऐसे कई शब्द हैं, जो वेद के पर्यायवाची माने जाते हैं। यथा—श्रुति, मन्त्र, ईश्वरीय ज्ञान, छन्द, ऋचा, निगम, यजु, साम, अथर्व, ब्रह्म, आगम, आम्नाय, त्रयीविद्या, शास्त्र।

आर्य लोग वेदों को सृष्टि के आरम्भ से ही कण्ठस्थ करते रहे हैं। ऐसे विद्वानों को, जिन्हें वेद कण्ठस्थ होते हैं संस्कृत भाषा में श्रोत्रिय एवं वेदपाठी कहा जाता है। ऐसे विद्वान् प्रत्येक काल में लाखों होते हैं, और आगे भी होते रहेंगे। यही कारण है कि आरम्भ से अब तक वेद सब प्रकार की मिलावट और न्यूनता तथा अधिकता से सुरक्षित रहे हैं। यज्ञ आदि शुभ कर्मों में वेदपाठी विद्वानों का बहुत

* ये संख्यायें अशुद्ध हैं। सामवेद की मन्त्र संख्या वास्तव में १८७३ है। अतः चारों वेदों की सम्पूर्ण मन्त्र संख्या २०२१३ है। विद्वानों में वेद मन्त्रों की गणना के प्रकार में कई भेद प्रभेद पाये जाते हैं। अतः संख्याभेद पाया जाता है। इस विषय का अन्तिम और प्रामाणिक निर्णय शीघ्र वांछनीय है।
—अनुवादक।

अधिक आदर-सम्मान होता है। और उनकी आजीविका के लिये सनातनकाल से दक्षिणा का एक बहुत उत्तम नियम भी प्रचलित चला आ रहा है। सोलह संस्कार जो प्रत्येक आर्य द्विज को विशेष रूप से और साधारणतया शूद्र तक को भी अवश्य ही करने पड़ते हैं, उनमें ऐसे वेदपाठियों की बहुत आवश्यकता होती है। गर्भाधान से मृतक-संस्कार तक वे सोलह संस्कार, "संस्कार विधि" नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक में लिखे हुए हैं। विद्वान् लोग उनका अनुष्ठान विशेष रूप से किया करते हैं।

— :o: —

आर्यावर्त में लिखना कब से चला ?

यह एक विद्या-विषयक एवं ऐतिहासिक प्रश्न है। जहां तक हमें ज्ञात हो सका है, इस प्रश्न को उठानेवाले मैक्समूलर साहब हैं। वे "एशियाटिक सीरीज़" में लिखते हैं :—

"वैदिक-काल में कोई भी लिखना न जानता था। यही नहीं; अपितु पाणिनि के समय तक भी ये लोग इस कला से अनभिज्ञ थे।"

उन्होंने वैदिक-काल को चार भागों में बांटा है—

१—वेदों की ऋचाओं की रचना का युग अर्थात् छन्दोयुग।

२—ऋचाओं के याज्ञिक-मन्त्र-स्वरूप में प्रकट होने का समय अर्थात मन्त्र-युग।

३—ब्राह्मणों, अर्थात वेद की टीका रूप ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना का समय अर्थात् ब्राह्म-युग।

४—कात्यायन प्रभृति ऋषियों के सूत्र रचने का समय अर्थात् सूत्र-युग।

वे फिर लिखते हैं :—

"पुरानी 'बाईबिल' पुस्तक की रचना के समय यहूदियों में लेखन-कला का प्रचलन था।"

अब हम यह देखना चाहते हैं कि प्रोफ़ेसर साहब के कथन में कितनी सत्यता है ? और उनकी खोज में कितना औचित्य है ?

विदित हो कि पाणिनि का समय यह प्रोफेसर साहब ईसा से ३५० वर्ष पूर्व मानते हैं। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। पाणिनि का समय वास्तव में इस से बहुत अधिक पहले है। क्योंकि पाणिनि ने "अष्टाध्यायी" बनाई है। और उस पर पतंजलि ने महाभाष्य की रचना की है। एवं, उसी महात्मा ने योग-शास्त्र भी बनाया है। जिस पर व्यास जी ने योग-भाष्य लिखा है। अस्तु पाणिनि जी अवश्य ही व्यास से बहुत पहले हुए हैं।

हम ने विस्तार पूर्वक विवेचन और अनुसन्धान पूर्वक 'सृष्टि का इतिहास' प्रथम भाग में एवं "आर्य समाज के सिद्धान्तों की सत्यता" प्रथम भाग में यह तथ्य भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि पाणिनि और पतंजलि व्यास जी से बहुत पहले हुए हैं। एवं व्यास जी युधिष्ठिर जी के समकालीन थे, जिन्हों ने 'वेदान्त-शास्त्र' और 'भारत' की रचना की है। आज तक उस समय को ४३०० वर्ष हो चुके हैं। व्यास जी के समय लोग लेखन-कला और लिखने के उपकरणों से पूर्णतया परिचित थे। उस समय लेखन-कला का व्यवहार व्यापक रूप में होता था। पाठशालाओं का भी प्रचलन था। राज्य सभाओं में प्रार्थना-पत्र और आदेश-पत्र लिखे जाते थे। राजाओं में पारस्परिक प्रेम की वृद्धि और लोक व्यवहार की सिद्धि के लिये पत्र-व्यवहार भी होता था। शिला-लेख और सार्वजनिक सूचनायें लिखने-लिखवाने

के व्यवहार प्रायः होते थे। जब इन सभी बातों के प्रमाण मिलते हैं, तब कौन कह सकता है, कि लेखन-विद्या न थी ? या लोग लिखना नहीं जानते थे ?

महाभारत के आरम्भ में ही उल्लेख है कि जब श्री व्यास जी महाभारत की रचना करने लगे, तब उन्हों ने एक शुद्ध, सुन्दर और शीघ्र लिखने वाले लेखन-कला-विशारद की खोज की। उन्हें एक ब्राह्मण मिला, जिस का नाम गणपति था। वह इस कला में विशेष दक्ष था। श्री व्यास जी श्लोक रचकर बोलते जाते थे। और वह लिखता जाता था। अस्तु भारत के ६ श्लोक ये हैं :—

काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्य्यतां मुने ।
एवमाभास्य तं ब्रह्मा जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ७४ ॥
ततः सस्मार हेरम्ब व्यासः सत्यवती सुतः ।
स्मृत मात्र गणेशानो भक्त चिन्तित पूरकः ॥ ७५ ॥
तत्राजगाम विक्षेपो वेद व्यासो यतः स्थितः ।
पूजितश्चोपविष्टश्च व्यासेनोक्तस्तदानघ ॥ ७६ ॥
लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक ।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥ ७७ ॥
श्रुत्वैतत्प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम् ।
लिखितो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखकोह्यहम् ॥ ७८ ॥
व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित् ।
ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपिबभूव किल लेखकः ॥ ७९ ॥
ग्रन्थ ग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिगूढ़ कुतूहलात् ।
यस्मि प्रतिज्ञया प्राह मुनि द्वैपायनस्त्विदम् ॥ ८० ॥

[महा भारत, आदि पर्व, अध्याय १]

इस के अतिरिक्त महाभारत में और भी सैंकड़ों सन्दर्भों में 'लिख' धातु का प्रयोग होता है। इस से स्पष्ट है कि लोग व्यास जी के समय में लिखना जानते थे, और लेखन-कला का सर्वत्र प्रचार था।

महात्मा कात्यायन के समय में भी लेखन-कला का प्रचलन था। यथा :—

यत्र पंचत्वमापन्नो लेखकः सह साक्षिभिः ।

अर्थ—जहां लिखने वाला और सब गवाह भी मर गये हों।

पाणिनि जी महाराज ने अपने धातु पाठ में स्पष्ट लिखा है :—

लिख् अक्षर विन्यासे ॥

लिप् उपदेहे ॥

कृते ग्रन्थे ॥

[अष्टाध्यायी अध्याय ४ पाद ३ सूत्र ११६]

इसी प्रकार अध्याय ४ पाद १ सूत्र ५० में यूनानियों के अक्षरों और उन की लेखन-शैली का वर्णन करते हैं।

परन्तु जब मैक्समूलर साहब को यह पूर्ण निश्चय हो गया कि अष्टाध्यायी के अध्याय ४ पाद ३ सूत्र ११६ से पाणिनि के समय में लेखन-कला का होना सिद्ध होता है, तब वे एक बहुत ही दुर्बल-युक्ति पेश करते हैं। कहते हैं कि यह तो सूत्र ही पाणिनि का नहीं है। परन्तु वे नहीं जानते कि इस से इन्कार करना, मानो पाणिनि और पतंजलि के अस्तित्व से ही इन्कार करना है। कारण यह कि पतंजलि जी महाराज ने इस सूत्र पर वार्तिक और भाष्य लिखा है। फिर व्याकरणकारों और वैयाकरणों की परम्परा में आरम्भ से अब तक जितने विचारक और ग्रन्थ लेखक हुए हैं, सभी ने इस सूत्र को स्वीकार किया है। इस के न होने से तो आगे का प्रतिपादन-क्रम ही टूट जाता है। जब एक मैक्समूलर साहब के सिवा सभी विद्वान् इस विषय में एक मत हैं, तब हम उन के मत को कुछ भी महत्व नहीं दे सकते। और वह भी पतंजलि जी के मत के सामने।

एक और भी सूत्र पाणिनि जी के व्याकरण में है :—

परः सन्निकर्षः संहिता।

इस का अर्थ यह है कि जिस में भले प्रकार से वर्णों अर्थात् अक्षरों की समीपता या मिलाप हो, उसे संहिता कहते हैं। समझने की बात है कि जब तक वर्णों अर्थात् अक्षरों को लिखा न जाये, तब तक वे न तो मिलते हैं और न ही संहिता कहला सकते हैं।

न धातुलोप आर्द्धातुके ॥

अष्टाध्यायी, अध्याय १, पाद १, सूत्र ५

अदर्शनं लोपः ॥

अष्टाध्यायी, अध्याय १, पाद १, सूत्र ६२

सिद्ध शब्दो ग्रन्थान्ते मंगलार्थम् ॥

इस का अर्थ यह है कि दिखाई न देने वाले का नाम 'लोप' है। वर्णों को 'वर्ण' भी इसी लिये कहा जाता है कि वे दिखाई देते हैं। ग्रन्थ के अन्त में सिद्ध शब्द लिखो। क्योंकि यह मंगल के हेतु है।

मनुस्मृति में लिखा है :—

बलाद्दत्तं बलादभुक्तं बलात् यच्चापि लेखितम्।
सर्वान् बलकृतानर्थानृऽकृतान् मनुरब्रवीत् ॥

[मनुस्मृति अध्याय ८, श्लोक १६८[

बलपूर्वक दिया गया, बलसे खिलाया गया, और बलपूर्वक लिखवाया गया, ऐसा बलपूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य हो, ऐसे सभी कार्य व्यवहार में प्रमाण नहीं हैं। वे न किये हुए कार्यों के ही समान हैं। यह मनु जी का मत है।

'लेखितम्' शब्द पर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं :—

यल्लेखितं चक्रवृद्धि चक्रवृद्धि पत्रादि।

फिर लिखते हैं :—

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः, ग्रन्थिभ्यो धारिणो पराः ।

धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥

[मनुस्मृति, अध्याय १२, श्लोक १०३]

पुस्तकोंवाला अज्ञानियों से श्रेष्ठ है । विद्या को जीवन में धारण करने वाला पुस्तक वालों से उत्तम है ।

ज्ञानी विद्याधारियों से भी श्रेष्ठ है । विद्याव्यवसायी ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है । कुल्लूक भट्ट ने भी ऐसा ही अर्थ लिखा है ।

लेखन—कला के आविष्कार का क्या कारण है ?

इस विषय में महात्मा बृहस्पति लिखते हैं:—

षण्मासिकापि समये भ्रान्तिः संजायते यतः ।

धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढान्यतः पुरा: ॥

क्योंकि छः महीने पूर्व की बातें भी याद नहीं रहती हैं । इसलिये ब्रह्मा जी ने प्राचीन काल में पत्रों पर अक्षर लिखने की कला का आविष्कार किया है ।

लिखने का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी है :—

ये लिखन्ति हि च नरास्तेषाँ वासस्त्रिविष्टपे ।

[रामायण युद्ध० सर्ग १३० श्लोक १२०]

अर्थात् जो इसको पढ़ता, सुनता वा लिखता है, उसकी उत्तम गति होती है । आशय यह है कि उत्तम उपदेशों और इतिहासों के सुनने से उनका आचरण शुद्ध हो जाता है । और आचरण के सुधरने से परमात्मा अवश्य ही उत्तम फल देता है ।

महात्मा याज्ञवल्क्य जी के ग्रन्थ में भी लिखने का प्रमाण मिलता है :—

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्त्तितम् ।

एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥

[याज्ञवल्क्य स्मृ० अध्याय० २]

लिखित पत्र, भोग, साक्षी ये तीन प्रमाण हैं । यदि इन तीनों में से एक भी प्रमाण न हो, तब शपथ पूर्वक कथन करना भी प्रमाण है ।

बुद्ध के समय में भी लोग लिखना जानते थे । अस्तु, 'ललित-विस्तार' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि बुद्धदेव ने चन्दन की लेखनी से, आचार्य के उपदेश के अनुसार अ, आ, इत्यादि वर्णमाला के अक्षरों को लिखना आरम्भ किया ।

सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा* एम० ए० बैरिस्टर एट ला० ने भी एक

* श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा महर्षिदयानन्द के शिष्य और सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विनायक दामोदर सावरकर के गुरु थे ।

—अनुवादक ।

विद्वत्तापूर्ण भाषण इसी विषय पर विलायत में दिया था, जोकि सन् १८८४ ई० में 'लैंडस्टन' नामक पुस्तक में छपा था। वह बहुत उत्तम और दर्शनीय पुस्तक है। उसमें वेदों में से भी इस विषय के प्रमाण दिये गये हैं कि वेदों में लेखन-कला विषयक आदेश वर्तमान हैं।

"रक" यह शब्द अरबी भाषा का है। हिरण की जो खाल लिखने के काम में आती है, उसे "रक" कहते हैं।

"वरक़" वृक्ष के पत्ते या कटे हुए काग़ज को "वरक़" कहते हैं।

[ग्यासुल्लुग़ात]

"वराक़" भूमि के ऊपर घास तथा वनस्पतियों के योग से जो हरयाली फैल जाती है, उसे "वराक़" कहते हैं।

[करीमुल्लुग़ात]

"क़र्तास" और "काग़ज" शब्दों का भी यही अर्थ है।

अफ़ग़ानों की भाषा में 'काग़ज' तथा 'वरक़' के लिये 'पाएडी' शब्द प्रचलित है। वे वृक्ष के पत्ते को भी पाएडी ही कहते हैं।

विलायती नोटों का काग़ज़ बड़ा ही मजबूत होता है। यह नई रूई और अलसी की छाल से बनता है। यदि कोई मनुष्य उसके एक पूरे काग़ज को तानकर अपने परिवार सहित उस पर बैठ जाये, तब भी वह नहीं फटेगा।

[हिन्दुस्तान ७, सितम्बर, सन् १८६४ ई०]

पुराने जमाने में लाल या किसी अन्य रंग का मोमरोग़न सफेद कपड़े पर चढ़ा कर पुस्तकें लिखने का प्रचलन था। बीकानेर में अभी तक भी मोमी कपड़ों पर ही पत्र लिखने की प्रथा है।

प्राचीन पुस्तकें

ब्रिटिश-अजायब-घर में इस समय ईंटों, खपरैलों, कछवे की खाल, हड्डियों, चपटे पत्थरों, वृक्षों की छाल, पत्तों, हाथीदान्त, चमड़े, झिल्ली, भोजपत्र, जिस्त, लोहे, तांबे के पतरों और लकड़ी के तख़्तों पर लिखी हुई बहुत-सी पुस्तकें और अन्य मूल्यवान् लेख मौजूद हैं।

[पैसा अख़बार १ जून सन् १८६४ ई०]

प्राचीन काल में मिस्र-देश निवासियों ने लिखने के लिए 'पीपरुस' के काग़ज़ का आविष्कार किया था। वास्तव में यह काग़ज़ एक वृक्ष के पत्तों से बनाया जाता था। वह वृक्ष पायर कहलाता था। इसी लिये यूनान वालों ने उस वृक्ष के पत्तों से बने हुए काग़ज़ को "पीपरुस" कहना आरम्भ किया था।

अरबी-भाषा में उसे "गोमी" कहते थे। सम्भवतः यह शब्द क़ुबती-भाषा से ग्रहण किया गया है। क्योंकि वे लोग पुस्तक की जिल्द को गोम कहते हैं। आधुनिक अरबी-भाषा में इसे बिरदी कहते हैं। पहले सभी देशों में इसी काग़ज़ पर पुस्तकें लिखी जाती थीं। परन्तु जब मिस्र के दूसरे राजा येमीनूस ने अन्य देशों में 'पीपरुस' का भेजना बन्द कर दिया, तब एशिया-ए-कोचक के एक नगर 'परगमूस' के चमड़े का काग़ज़ बनने लगा। वह काग़ज़ नगर के नाम पर ही 'परगमूस' कहलाने लगा। 'परगमूस' को ही अंग्रेजी में कुछ बिगाड़ कर बोलते थे और 'पारचमेन्ट' कहते थे। ईसा से एक शती पूर्व इस चमड़े के काग़ज का प्रचार खूब हो गया था।

'हिरोडेस' ने अपने समय में चमड़े के काग़ज़ का व्यवहार बहुत अधिक होने, और चमड़े की पुस्तकों का उल्लेख किया है। यह विद्वान ईसा से पाँच शती पूर्व हुआ है। परन्तु प्लेनी ने इस चमड़े के काग़ज़ के आविष्कार का समय १६६ वर्ष ईसा पूर्व निश्चित् किया है।

[तहज़ीब, जिल्द ६, नवम्बर १४ सन् १२६२ हिजरी]

लेखन-कला-विज्ञान की दृष्टि से भी वेद संसार का प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थ है। जिस समय यूनान, ईरान, अरब, रूम, मिस्र, चीन,अपितु सारा ही योरुप और अमेरिका विद्या और विज्ञान के रहस्यों से सर्वथा कोरे थे, उन दिनों विद्या और विज्ञान का मार्तण्ड यहां पर अपने पूर्ण तेज के साथ जगमगा रहा था। मानो विद्या-भानु अपने प्रकाश की चरम-सीमा पर पहुँच चुका था। इबरानियों में बाईबिल से अधिक प्राचीन और कोई पुस्तक नहीं है। परन्तु वह तो मूसा और ईसा के समय की रचना है। ईसा से चौदस सौ या एक हज़ार वर्ष पूर्व मूसा का समय है। परन्तु वह बाईबिल आजकल जैसी कोई बड़ी पोथी न थी। जैसा कि स्वयं बाईबिल से ही प्रमाणित होता है, तूर के पहाड़ पर केवल दस आदेश ही लिखे गये थे। लेखनी या पत्ती के परसे नहीं। स्याही से भी नहीं। केवल मात्र ईश्वर की उंगलियों से पत्थर की तख़्तियों पर जिन को एक बार ईसा ने तोड़ भी दिया था। ईश्वर ने फिर दूसरी बार, उसी प्रकार शिलाओं पर लिखा। इसके बाद कहीं हिरण या बकरी के चमड़े पर लिखने का उल्लेख है। परन्तु काग़ज़ का वहां कोई उल्लेख नहीं है। दानयाल नबी की पुस्तक, जो ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व लिखी गई थी, उस में भी लिखने का उल्लेख तो है, परन्तु वही, ,चमड़े पर, या दीवार पर, ऐसा प्रतीत होता है।

इंजील में भी लेखन-विद्या का लेख है। परन्तु किसी प्रकार के काग़ज का उल्लेख वहां नहीं है। यह लेख चमड़े पर ही होगा।

[देखो मरक़स की इंजील के आरम्भ में। और योहन्ना की इंजील के अन्त में।]

प्राचीनकाल में यूनानी और मिस्त्री लोग 'पीयरुस' वृक्ष की छाल पर लिखा करते थे। फिर उसी वृक्ष की छाल और पत्तों से काग़ज़ बनाकर लिखने लगे। उसी के आधार पर आज तक भी काग़ज़ को पेपरस कहा जाता है। मिस्त्र के प्राचीन स्तम्भों पर भी कुछ उल्लेख हैं। यह भली प्रकार सिद्ध हो गया है कि ये स्तम्भ ईसा से चार-पाँच हज़ार वर्ष पूर्व के हैं।

कर्नल अल्काट साहब ने अपने प्रसिद्ध भाषणों के द्वारा यह उत्तमतया सिद्ध कर दिया है कि मिस्र देश को बसाने वाले लोग आर्यावर्त्त से ही वहां जाकर बसे थे।

अंग्रेज़ी में पेपर, पारचमेन्ट, शीट, बोर्ड, बुक, लैटर, राईट, पैन, इंक ये नाम इन अर्थों में आते हैं। परन्तु इन सब के अर्थ वे ही हैं—वृक्षों की छाल, हिरणों की खाल, लकड़ी के तख़्ते, आदि। हम इन सब का थोड़ा-सा विवरण प्रस्तुत करते हैं।

पेपर

फ्रेंच-भाषा में पेपर, इटली की भाषा में पेपरू, लातीनी में पे-पेपरस, इन सभी शब्दों का एक ही अर्थ है। और ध्वनि भी एक सी ही है। यूनानी के पेपुरुस शब्द का अर्थ एक मिस्री वृक्ष है, जिसके छिलके से लिखने का काग़ज़ बनाया जाता था। हिन्दवी में पपरा का अर्थ तह करना है एक वस्तु जो बारीक तख़्तों से बनी है, जिस पर अक्षर और अंक लिखे जाते हैं, अथवा छापे जाते हैं। पेपर का टुकड़ा भी पेपर ही कहलाता है। कोई तख़्ता लिखा हुआ, या छपा

हुआ, अथवा लिखी हुई कोई वस्तु, कमरे की दीवारों को ढांकने वाली वस्तु, कोमल, हल्का, तह करना।

[डिक्शनरी श्री जान आगल दी, एल. एल. डी. द्वारा विरचित, पृष्ठ ४६३, लन्दन-संस्करण]

पार्चमेन्ट

यह शब्द लातीनी-भाषा का है। रूम में एक स्थान पर्गेमिस नाम का है वहां पर ही 'पार्च मेन्ट' का आविष्कार हुआ था। भेड़ या बकरी का जो साफ किया हुआ चमड़ा लिखने के काम आता है। वह 'पार्चमेन्ट' कहलाता है, [पृष्ठ ४६५]

पार्च

सर्वथा सुखा देना, जला देना. खुरचना, पूर्णतया सूख जाना, इस का मूल रूप संस्कृत-भाषा के शब्द 'परिशुष्क' में वर्तमान है। जिस का अर्थ पूर्णतया सूखी वस्तु होता है। 'परि' का अर्थ आस-पास होता है। परन्तु विशेषण के साथ जब इसका प्रयोग होता है, तब इस का अर्थ अधिक होता है। 'शुष्क' शब्द वही है, जोकि लातीनी-भाषा में 'ससक' बोला जाता है। इस का अर्थ भी सूखा हुआ ही होता है। इस का मूल भी शिश है। इस का अर्थ 'सूखा' होता है। [पृष्ठ ४६५]

शीट

यह शब्द सैक्सन-भाषा के 'सट' शब्द से निकला है, जिस का अर्थ ढकने का होता है। फिर यह साईट हो गया। स्वीडन-देश वालों ने इसे 'अस्कूट' कर लिया। डेनिश लोगों ने इसे 'अस्क्याड' बना लिया। आईस लैण्ड वालों ने इसे 'अस्काट' कर लिया। गाथिक भाषाओं में यही 'अस्काटस' है, जिस का अर्थ किनारा होता है। संस्कृत में 'अस्को' ढकने को कहते हैं। अर्थात् फैला हुआ ढकना। रूई के कपड़े का लम्बा चौड़ा टुकड़ा जो विस्तर पर बिछाया जाता है, चादर। काग़ज़ का छोटा टुकड़ा, जो शिल्पकारों के पास से आता है। काग़ज़ का टुकड़ा छपा, तह किया, या बन्धा हुआ, या किताब के रूप में बना हुआ, पुस्तक, लघु पुस्तक चौड़ी और पतली वस्तु। [पृष्ठ ६३८]

बोर्ड

सैक्सन-भाषा में 'बोर्ड' शब्द ही 'बिरुड' बना है। इस का अर्थ चौड़ाई होता है। मेज़ के लिये भी इस शब्द का व्यवहार होता है। क्योंकि वह भी चौड़ी और फैली हुई होती है। लकड़ी का चौड़ा, पतला टुकड़ा, मेज़, भोजन, भोज, मेज़ के आस पास बैठे हुए लोग, कौंसिल, अदालत, जहाज़ का तख़्ता, तख़्तों से ढकना। [पृष्ठ ६०]

बुक

बुक शब्द सैक्सन-भाषा के 'बाक' शब्द से बना है। जोकि 'बोगिन' शब्द से बना प्रतीत होता है। उस का अर्थ झुकना; व तह करना है। प्राचीनकाल में भेड़ या बकरी के चमड़े के पृष्ठ बना कर लिखा करते थे। कोई छपी हुई या लिखी हुई विद्या-विषयक पुस्तक, या पृष्ठ-संग्रह। एक जिल्द। एक भाग। या लिखने के तख़्तों वाली लकड़ी की पुस्तक। [पृष्ठ ६१]

लैटर

लैटर को फ्रेंच भाषा में लटर और लेटिन में लैटरा कहते हैं। यह शब्द लेनू या लैटम शब्दों

से निकला है। जिन के अर्थ तह करना या लगाना होता है। क्योंकि प्राचीन काल में मेज़ पर मोम लगा कर अक्षर लिखने का नियम था। संस्कृत-भाषा में 'लिप्' शब्द है। इस का अर्थ है मिलना, एक निशान, लिखा हुआ, छपा हुआ, खुदा हुआ। या चित्रवत् बना हुआ। यह मनुष्य-भाषा को प्रकट करने के लिये भी प्रयोग में आता है। लिखी हुई या छपी हुई वस्तु, टाईप, हाथीदान्त या लकड़ी के छापे, जो पुस्तकें आदि छापने के काम आते हैं। [पृष्ठ ४०७]

राइट

वास्तव में यह शब्द सैक्सन-भाषा में 'रेटन' था। गाथिक-भाषा में 'रहतिलिस' शब्द का प्रयोग ख़त के अर्थ में होता है। संस्कृत में रीद=रेद शब्द है। इस का अर्थ काटना, या खोदना है। लेखनी से काग़ज़ या दूसरी वस्तुओं पर कुछ लिखना या चित्र बनाना, या लकड़ी आदि पर खोदना। अक्षरों या शब्दों को काग़ज़ या पत्थर पर बना कर प्रकट करना, उत्पन्न करना, लिखना, मौलिक रचना करना, प्रतिलिपि करना। [पृष्ठ ८१२]

पैन

सैक्सन-भाषा में 'पन्न' डेनिश-भाषा में 'पन' आईस-लैण्ड की भाषा में 'पननी' इटैलियन और लेटिन में 'पीना'। ये सब शब्द समानार्थक हैं। इस का प्राचीन रूप 'पटना' है। यूनानी में प्ले-उने, संस्कृत में 'पत' जिसका अर्थ उड़ना है। पंखों के बल से हवा में उड़ना। इस का वास्तविक अर्थ है पर=पंख=बाज़ू, एक पर या कोंपल जो लिखने के लिये उपकरण के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। ये लोहे या सोने के भी होते हैं। [पृष्ठ ५०३]

इंक

डच लोगों में 'इन्किट'। जर्मन लोगों में 'काटेएट' प्राचीन जर्मनों में 'काटंकट'। स्पेनवासियों में 'काटएटा' यह शब्द लेटिन भाषा के 'टेएटा' शब्द के आधार पर बना है, जोकि टंगू से बना है। 'टंगू' का अर्थ रंगना है। 'टंगूचरा' और टिंकचर' शब्द भी इसी से बने हैं। काला अर्क या पतला रस जो लिखने के काम में आता है। पहले केवल काली स्याही के लिये ही इस 'इंक' शब्द का प्रयोग होता था। अब सभी रंगों की स्याही के लिये इसका प्रयोग होने लगा है। [पृष्ठ ३७०]

चीन देश में काग़ज़ का निर्माण रूई से किया जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि काग़ज़ का आविष्कार सर्वप्रथम चीन में ही हुआ था। चमड़े का काग़ज़ पांच छः सौ वर्ष तक सुरक्षित रह सकता है।

अरबी में रक़्क़, वरक़, वराक़, अवराक़, क़रतास, किताब, कुतुब, मकतूब, लोह, असातीर, तस्तीर, मरासला, रुकआ, तहरीर, ख़त, जिल्द, सहीफ़ समान अर्थों में आते हैं।

फारसी में बन्द, काग़ज़, नामा, उस्ता, दसातीर, पोस्त, और चरम शब्द भी समान अर्थों के वाचक होते हैं।

अब हम आर्यावर्त्त के विषय में विचार करते हैं। इस देश के निवासी ईश्वरीय-ज्ञान के प्राप्त होने, अर्थात वेदों के प्रकाशित होने के समय से ही, अथवा उसके कुछ समय बाद से ही

लिखना-पढ़ना जानते थे! परन्तु यहां भी लिखने-पढ़ने के उपकरणों का वही विवरण पाया जाता है, जोकि दूसरे देशों में है।

भोज-पत्र, ताड़-पत्र, छद, पर्ण, पत्र, वर्ग, पलाश, छदन, दल, प्रड़, पल्लव, किसलय, विस्तार विटप, ये सभी नाम पत्र, शाखा और छाल के ही हैं। पक्षी के पंख=पर की गणना भी इनमें होती है। [देखो—मेदिनी-कोष, हेमचन्द्र कोष, अमर-कोष काण्ड २ श्लोक १४]

ताम्र-पत्र, शिला-लेख, क़ग़ल, चर्म, कर्पास, वस्त्र, पुस्तक, ग्रन्थ, ये सब नाम उन वस्तुओं को प्रकट करते हैं, जिन पर लिखा जाता है।

स्यालकोटी और काश्मीरी काग़ज तो प्रसिद्ध ही हैं। इनके अतिरिक्त भारत के और भी कई नगरों में प्राचीनकाल से ही काग़ज़ बनाने की कला प्रचलित है। स्यालकोटी, काश्मीरी और किशनगढ़ी काग़ज़ बहुत प्रसिद्ध होते हैं।

भोज-पत्र और ताड़-पत्र पर लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें तो इस समय भी उपलब्ध होती हैं।

वर्तमान् ऋग्वेद के वर्गीकरण में 'वर्ग' शब्द का प्रयोग वर्तमान् है। इस 'वर्ग' से ही फ़ारसी-भाषा का 'वर्ग' बना है। क्योंकि फ़ारसी में 'क' और 'ग' के अक्षरों अर्थात् 'काफ़' और 'गाफ़' का आकार एक ही जैसा है, इस लिये फारसी का 'वर्ग' ही अरबी का 'वर्क़' बन गया है। जब प्राकृतिक पत्तों से काग़ज़ बना, तब उसे 'क़रतास' कहने लगे। यह शब्द संस्कृत के 'कर्तास' वा 'कर्पास' शब्दों का ही भ्रष्ट रूप है। संस्कृत में 'क़ग़ल' शब्द का प्रयोग काग़ज़ के लिये होता है। इसी से फ़ारसी का काग़ज़ बना है। फ़ारसी के दस्ता और दस्तावेज़ शब्दों से ही फ़ारसी के 'तस्तीर' और 'असातीर' शब्द बने हैं। फ़ारसी का 'ओस्ता' शब्द भी 'अवस्था' या 'व्यवस्था' इन संस्कृत शब्दों का ही बिगाड़ है। 'फ़तवा' शब्द 'व्यवस्था' के ही अर्थों में प्रचलन पा गया है। संस्कृत के कथा, कविता और कहत एवं कवि शब्दों से मिस्री-भाषा का कुब्ती और अरबी-भाषा के 'कुतब' 'कातिब' आदि शब्द बने हैं।

रामायण के किस्कन्धा काण्ड में १३वें सर्ग के २२वें श्लोक में 'कल्म' अर्थात् 'जोंधरी' के खेत का उल्लेख है। कोष में—

लेखनी कलम इत्यपि

ये शब्द लिखे हैं। इस से प्रमाणित होता है कि संस्कृत में लिखने के उपकरण को 'कल्म' कहते हैं। वह 'कल्म' कई वस्तुओं से बनाया जाता है। और 'जोंधरी*' से भी बनता है। इसी से यह भी प्रकट होता है कि तब ताड़-पत्र के अतिरिक्त काग़ज़ का भी व्यवहार लिखने के लिये होता था।

यहां हम बाईबिल के एक वाक्य की ओर पाठकों का ध्यान विशेष रूप से दिलाना चाहते हैं। वहां लिखा है कि जब 'आदम' और 'हव्वा' को बुद्धि आई, और उन्हों ने जाना कि हम नंगे हैं। तब वे नंगेपन के कारण लज्जित हुए। और अंजील के पत्तों से उन्होंने अपने लिये लुंगियां बनाईं।

[पैदाईश ३—७]

आजकल के आदमी यह पढ़कर हंसेंगे। और विचार करेंगे कि अंजील के पत्तों से लुंगियां

* बच्चों के कलम=नेज़े इस समय भी 'जोंधरी' के ही होते हैं, जो कि चाकू से छील कर बनाये जाते हैं। कलम के लिये बांस और बांस की नली का प्रयोग भी होता है। अनुवादक।

कैसे बन गईं ? परन्तु भाइयो ! आरम्भ में यह आविष्कार वृक्षों के पत्तों की सहायता से ही हुआ था । आज भी तो कीड़ों के थूक+ या वृक्षों के पत्तों से ही लुंगियां बनती हैं ।

— :o: —

वैदिक-काल का अनुसन्धान

एक हज़ार वर्ष

श्री रामानुज जी वैरागियों के धर्मगुरु थे । वे चैत्र शुक्ला पंचमी, संवत् १०१० वि० को जन्मे थे । उन्होंने वेदादि शास्त्रों को अपने समय में प्रचलित-पद्धति के अनुसार पढ़ा था । गुरु से शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने उपनिषदों, गीता और वेदान्त-दर्शन के भाष्य भी रचे थे । उन्हों ने अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर वेदों के प्रमाण उद्धृत किये हैं । इस से वेदों की प्राचीनता एक हज़ार वर्ष सिद्ध होती है ।

दो हज़ार वर्ष

सम्राट् विक्रमादित्य वैदिक-धर्म के अनुयायी थे । उनके समय के ग्रन्थों में वेदों के उद्धरण बहुत हैं । उस समय आयुर्वेद अर्थात् उपवेद चरक, आदि वैद्यक के ग्रन्थ भी वर्तमान थे । ज्योतिष विद्या जिस की गणना वेदों के उपांगों में होती है, वह भी उन्नत रूप में मौजूद थी । अब संवत् १९५२ वि० है । दो हज़ार वर्ष के लगभग हो चुके हैं ।

राजा शालिवाहन का शक-संवत इस समय १८१५ है । उनके समय में भी वेदों का प्रचुर प्रचार था । वे स्वयं भी वैदिक-धर्म के अनुयायी थे ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त और उनके प्रधान मन्त्री चाणक्य भी वेदों को मानने वाले थे । उनको हुए इस समय २२०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ।

[देखो चाणक्य-नीति]

तीन हज़ार वर्ष

बुद्ध जो ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व जन्मा था, उसने भी अपने सूत्रों में वेदों का उल्लेख किया है ।

[देखो बुद्ध-सूत्र, अध्याय १]

उस समय वाम मार्ग अर्थात् शराब, मांस, व्यभिचार आदि का प्रचार आरम्भ हो गया था । लोग देवी देवताओं के नाम पर इन निषिद्ध कर्मों को करने लगे थे । किसी ने ठीक कहा है—"जैसी रूह, वैसे फ़रिश्ते ।" इस विषय में लिखा है—

"बुद्ध ने जब ब्राह्मणों को पशुओं के मांस से हवन-यज्ञ करते हुए देखा, तब उन से कहा कि तुम यह दुष्ट कर्म क्यों करते हो ? इसे छोड़ दो । ब्राह्मण बोले-'हमारे बड़े भी ऐसा ही करते थे । और शास्त्र भी हमारे अनुकूल है ।"

तब बुद्ध ने कहा—"वेदों में तो जीव हिंसा का निषेध है । पुराने आर्य=ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि लोग मांस-भक्षण न करते थे । जब से क्षत्रिय राजा लोग भोग-विलास-परायण बने हैं, तभी से मांस-भक्षण और मांस-हवन का प्रचलन हुआ है ।

[देखो-बुद्ध का अंग्रेज़ी जीवन-चरित्र]

+कीड़ों के थूक से रेशमी कपड़े बनते हैं ।

अनुवादक ।

'धावा' नाम का एक प्रसिद्ध राजा वेदों का परम अनुयायी था। वह बहुत धर्मात्मा और नियम से हवन यज्ञ करने वाला था। उस ने ईसा से ८६५ वर्ष पूर्व लोहे का एक स्तम्भ बनवा कर "कीर्ति-भुज" के रूप में स्थापित किया था, जोकि इस समय भी देहली में राये पथौरा के मन्दिर=बुतख़ाने में मौजूद है।*

[देखो एशियाटिक जरनल, बंगाक पृ० ६३०]

राजा खेमक का समय बुद्ध से पाँच—छः सौ वर्ष पूर्व है। राजा विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि से एक हज़ार पूर्व यह समय है। वह वेदों को ईश्वरीय-ज्ञान मानता था। और वैदिक-धर्म का अनुयायी था।

सुमित्र जिसे श्री जोन्स साहब के मतानुसार २६०६ वर्ष हो चुके हैं, उस के शासन-काल में भी वेदों के अनुसार सब कार्य होते थे।

मूसा-नबी से पहले भी भारत में वेदों का प्रचलन था। लोग यथाशक्ति वैदिक आदेशों का पालन करते थे।

[देखो—अंग्रेज़ी मनुस्मृति की भूमिका]

चार हज़ार वर्ष

पारसियों का धर्म-ग्रन्थ 'ज़िन्दावस्ता' चार हज़ार वर्ष पुराना है। उस में भी वेदों का उल्लेख है।+ 'होमयष्ट' के अध्याय में 'अथर्ववेद' नाम भी है। अनेक सन्दर्भों में अंगिरा ऋषि का उल्लेख है। लिखा है—"कृस्नानु ने शासन के मद में अपने राज्य में अथर्ववेद का प्रचार बन्द कर दिया था।"

अथर्ववेद का यह मन्त्र भी लिखा है—

शन्नो देवीरभिष्टये, आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

अथर्ववेद का प्रचार बन्द करने के कारण 'होमयष्ट' ने कृस्नानु का राज्य-भ्रष्ट कर दिया था।

[देखो=होम यष्ट की १८वीं कण्डिका, ज़िन्दावस्ता में]

इस पर प्रोफ़ेसर हाग साहब ने भी वेद का समर्थन करके लिखा है :—

"कृस्नानु का ऐसा ही उल्लेख भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में भी है।"

[देखो—ब्राह्मण ३—२६]

---

* यह लोहे का 'कीर्ति-स्तम्भ' या 'कीर्ति-भुज' देहली में प्रसिद्ध कुतब की लाट=यमुना-स्तम्भ के समीप वर्तमान है। यमुना-स्तम्भ का निर्माता प्रसिद्ध सम्राट् पृथ्वीराज चौहान था। यह स्थान पहले पृथ्वीराज चौहान देव-मन्दिर था, जिसे मुसलमान बादशाहों ने तोड़ा और मस्जिद बना दिया। —अनुवादक।

+आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने तुलना करके दर्शाया है कि वेदों के क्रमबद्ध-पाठ भाषा के अक्षर-भेद, व उच्चारण भेद रूप किंचित परिवर्त्तित रूप में, ज्यों के त्यों ज़िन्दावस्ता=छन्दावस्था=छन्द-व्यवस्था में मौजूद हैं। —अनुवादक।

ऐतरेय-ब्राह्मण के विषय में श्री मार्टिन हाग का कथन है—

"यह ग्रन्थ ईसा पूर्व २००० वा २४०० वर्ष में वर्तमान था।"

[देखो मैडम ब्लैवेटस्कीकृत 'गुफ व बन' नामक पुस्तक, लन्दन-संस्करण, पृष्ठ २१४]

व्यास और जैमिनी, जिन के समय को लगभग चार हज़ार वर्ष बीत चुके हैं, वे भी वेदों को ईश्वर-प्रदत्त-ज्ञान मानते थे। अपने ग्रन्थों में भी उन्होंने ऐसा ही लिखा है। श्री व्यास जी के वेदान्त-दर्शन के ३ सूत्र में है—"वेदों का आदि कारण होना भी 'ब्रह्म' के अस्तित्व का प्रमाण है। क्योंकि ऐसा पूर्ण और निर्दोष, सम्पूर्ण सत्यविद्याओं का भण्डार ग्रन्थ किसी मनुष्य की रचना नहीं हो सकती। क्योंकि मनुष्य तो अल्पज्ञ है।

इस पर भाष्य-रचना-प्रसंग में श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं :—"जो विविध प्रकार की विद्याओं के भण्डार, सब अर्थों का प्रकाश करने वाले, सर्वज्ञ ईश्वर का ज्ञान ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद हैं, उन का कारण ब्रह्म है। क्योंकि ऐसी सर्व गुणागार और निर्दोष रचना ईश्वर से भिन्न और किसी की भी नहीं हो सकती। क्योंकि वेद सब पदार्थों को सूर्यवत् प्रकाशित करते हैं, इस लिये वे सब विद्याओं के मूल हैं।"

महाभारत में वेदों, रामायण और मनुस्मृति का उल्लेख है। परन्तु वेदों में या रामायण और मनुस्मृति में महाभारत की गन्ध भी नहीं है।

[देखो महाभारत आदि पर्व, अध्याय १७ श्लोक २२]

रामायण जो महाभारत से बहुत अधिक प्राचीन ग्रन्थ है, उस में वेदों का उल्लेख है।

[देखो बाल्मीकी रामायण बाल काण्ड सर्ग श्लोक १४]

हम विस्तार पूर्वक स्पष्ट प्रमाणों द्वारा पहले यह सिद्ध कर आये हैं कि रामायण आठ लाख वर्ष पुराना ग्रन्थ है। वेद तो रामायण की अपेक्षा बहुत अधिक पुराने हैं।

'सूर्य-सिद्धान्त' नामक प्रसिद्ध ज्योतिष-ग्रन्थ में न तो मनु का कुछ उल्लेख है, न रामायण का, न किसी और का। अपना निर्माण-काल 'सूर्य-सिद्धान्त' ने लिखा है। वेदों का उल्लेख उस में भी मौजूद है। यहां तक हम ने कुछ ग्रन्थों के प्रमाण इस विषय में दिये हैं कि रचना शैली और शिक्षा की दृष्टि से भी वेद प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थ हैं।

स्मरणीय

वरामिहिर, वराही संहिता में और कालिदास ज्योतिर्विदाभरण में, एवं कल्हण राजतरंगिणी में लिखते हैं कि युधिष्ठिर के समय में 'सप्त ऋषि मण्डल' 'मघा-नक्षत्र' में था। हमने इस विषय के श्लोक 'सृष्टि का इतिहास' प्रथम भाग में लिख दिये हैं।

सप्त ऋषियों की चाल-गणना का नियम यह है :—

सप्तर्षीणां च पूर्वे यौ दृश्येते उदितौ दिवि।
तयोस्तु मधु नक्षत्रं दृश्यते यत् मम
निपोतित सप्तर्षयोयुक्तास्तिष्ठन्त्यब्द शतं नृणाम्।
हेतु पारीक्षिते काले मघास्वासन दितीतम्॥

सप्त-मण्डल ऋषि के पूर्व की ओर जो दो नक्षत्र दीख पड़ते हैं, इनको 'प्लत' तथा 'क्रतु' कहते हैं। इन दो नक्षत्रों में अश्विनी आदि जो नक्षत्र दीख पड़ते हैं, उस नक्षत्र में सप्त ऋषि सौ वर्ष तक रहते हैं।

रामायण

'रामायण' संस्कृत-भाषा की कविता का एक प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ है। इसमें, इसके रचनाकार श्री बाल्मीकि जी ने अयोध्या के महाराजा रामचन्द्र जी का जीवन-वृत्त बहुत विस्तार पूर्वक लिखा है। यह ग्रन्थ कई स्थानों से छपकर प्रकाशित हो चुका है। इसकी हस्त-लिखित प्रतियां भी बहुत-सी मिलती हैं। परन्तु विभिन्न स्थानों से मिलने वाली विभिन्न प्रतियों में बहुत से पाठभेद भी पाये जाते हैं। शैव-मत वालों और वैष्णव-मतवादियों का जो पारस्परिक रगड़ा-झगड़ा बहुत समय तक भारतवर्ष में चलता रहा, और चलता चला आ रहा है, उसके कारण इस ग्रन्थ में बहुत-सी गड़बड़ हुई है। परन्तु जहां तक श्री रामचन्द्र जी के जीवन की मौलिक-गाथा का सम्बन्ध है, उसमें कोई गड़बड़ प्रतीत नहीं होती है। रामायण के भाषा-भेद अथवा लेखक-भेद से कई प्रकार के ग्रन्थ इस समय वर्तमान हैं। यथा :—

बाल्मीकी-रामायण, आदि-रामायण, मूल रामायण, हनुमान-नाटक, तुलसी-रामायण, अद्भुत रामायण, योगवाशिष्ठ-महा-रामायण। परन्तु इन सब का मूल-स्रोत बाल्मीकि-रामायण ही है। उससे पहिले की कोई रामायण नहीं है। सब से पहिले की बाल्मीकि-रामायण है। और सब से अन्त की तुल्सीकृत-रामायण है, जोकि सम्राट् अकबर के समय में रची गई थी। श्री बाल्मीकी जी ने अपने ग्रन्थ में जिस वीर पुरुष का जीवन चित्रित किया है, वह एक महापुरुष और राजा है। श्री तुलसी दास जी ने जिस रामचन्द्र का वर्णन अपने काव्य में किया है, वह राजा या मनुष्य नहीं, उसे ईश्वर बताया=ठहराया गया है।

अद्भुत-रामायण तो बस अद्भुत ही है। इसका तो नाम भी अद्भुत है। इसमें चमत्कार-भरी कहानियों की भरमार है। "योग-वाशिष्ठ" सात-आठ सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। वस्तुतः यह श्री स्वामी शंकराचार्य जी महाराज के चेले की रचना है। यह वैसी ही नई रचना है, जैसी 'राम-तापिनी' और 'गोपाल-तापिनी' उपनिषदें हैं, जिनका फ़ारसी-भाषा में दारा शिकोह* ने अनुवाद भी कर दिया है।

प्रचलित रामायण में सात काण्ड हैं। यद्यपि इस की प्रवर्त्तना में यह साफ लिखा है कि इस ग्रन्थ में छः काण्ड हैं। तथापि किसी ने सातवां काण्ड अर्थात् 'उत्तर-काण्ड' जोड़कर एक परिशिष्ट इसमें बढ़ा दिया है। एक सुयोग्य विद्वान् का कथन है कि उत्तर-काण्ड तो बस उत्तर-काण्ड ही है। रामायण से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

स्वर्गवासी श्री बाबू हरिश्चन्द्र+ जी बनारसी भी लिखते हैं :—

---

* दारा शिकोह बादशाह शाह जहां का बड़ा पुत्र और बादशाह औरंगजेब का बड़ा भाई था। राज्य-लोभ-वश औरंगज़ेब ने दाराशिकोह का वध करवा दिया था। दाराशिकोह ने फ़ारसी-भाषा में उपनिषदों का अनुवाद किया था। वह वैदिक अध्यात्मवाद का प्रेमी विद्वान् था। अनुवादक।

+ ये हिन्दी-साहित्य के युग-प्रवर्तक लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ही हैं।

"उत्तर-काण्ड के ६४वें सर्ग में लिखा है कि उत्तर-काण्ड की रचना भार्गव ऋषि ने की है। यह एक आश्चर्य की बात है। इस वाक्य से तो अंग्रेज़ी विद्वानों का सन्देह ही प्रमाणित होता है।

[पृष्ठ १० बांकिपुर संस्करण]

रामायण छः काण्डों में पूर्ण हो गई है। आदि काण्ड में रामचन्द्र जी का जन्म है। और अन्त के युद्ध-काण्ड में उनकी मृत्यु का उल्लेख है। सम्पूर्ण विषय का चित्रण बड़ी उत्तमता से किया गया है। फिर भी न जाने किसी ने क्यों? उत्तर-काण्ड इसमें जोड़ दिया है।

श्री ग्रिफ़थ साहब लिखते हैं :—

रामायण का वर्गिकरण काण्डों के रूपमें किया गया है। परन्तु कविता का एक समान शैली-प्रवाह छः काण्डों में ही समाप्त हो जाता है। और यही इस बात का विश्वस्त प्रमाण है कि किसी ने सातवां काण्ड बाद में इसमें जोड़ दिया है।

[देखो उनकी अंग्रेज़ी रामायण की भूमिका]

रामायण के छः काण्ड ही मानने योग्य हैं। उनका विवरण इस प्रकार है :—

क्रम संख्या	नाम काण्ड	सर्ग संख्या	श्लोक	प्रक्षिप्त श्लोक
	१—बालकाण्ड	×	२२५०	१५०
	२—अयोध्या काण्ड	×	४३५०	५०
	३—आरण्य काण्ड	×	२३५०	५०
	४—किस्कन्धा काण्ड	×	२३५०	५०
	५—सुन्दर काण्ड	×	२७५०	१५०
	६—युद्ध काण्ड	×	५७३२	१३२
सर्वयोग	छः काण्ड	×	१६७८२	५८२

सुप्रसिद्ध विद्वानों का कथन है कि रामायण की सम्पूर्ण श्लोक-संख्या (१८) अठारह हज़ार है। इस हिसाब से रामायण में १७८२ श्लोक अधिक हैं।

रामायण के रचना-काल का उल्लेख रामायण में नहीं है। श्री रामचन्द्र जी के जन्म के विषय में यह लिखा है कि चैत शुक्ला नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र, पाँच ग्रह अपने उच्च स्थान में, अश्वत्थ कर्क लग्न में, बृहस्पति और चन्द्रमा के लग्न में जन्मे थे। अस्तु' इसके अनुसार ही आर्यावर्त्त में रामचन्द्र ज़ी का जन्मोत्सव प्रति वर्ष मनाया जाता है। और हिन्दू लोग राम नवमी दिन को बहुत शुभ मानते हैं। परन्तु महाभारत में लिखा है :—

त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥

महाभारत प० १ अध्याय २ श्लोक ३

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्री राम जी त्रेता और द्वापर के सन्धिन्काल में पैदा हुए। उन्होंने कर्तव्य भाव से प्रेरित होकर दुष्ट राजाओं को मारा। और सत्य का प्रसार किया।

कुछ पाश्चात्य विचारकों ने रामायण-काल को इतना अधिक कम कर दिया है कि वे इसे महाभारत से भी बाद की रचना बताते हैं। इसे हम पक्षपात और दुराग्रह के अतिरिक्त और क्या

समझें ? स्वयं महाभारत राम का समय द्वापर और त्रेता का सन्धि काल बताता है। इस के साथ ही दिग्दर्शन के रूप में रामायण का कथा-सार भी महाभारत में लिखा है। इतना ही नहीं, जहां पर निरामिष-भोजी भूतकालीन राजाओं की नामावलि लिखी है, वहां भी महाराजा रामचन्द्र जी का शुभ नाम वर्तमान है। अस्तु, किसी भी दृष्टि से रामायण और महाभारत ये दोनों समकालीन नहीं हैं। और न ही रामायण का समय महाभारत के बाद है। पाठक वृन्द ! पाश्चात्य विद्वानों के इस पक्षपात-पूर्ण कृत्य पर विचार करें।

पादरी वेएटली साहब का कथन है कि रामायण और रामचन्द्र जी का काल ६५० वर्ष ईसा पूर्व है।

कर्नल टाड साहब का कथन है कि रामचन्द्र जी ११०० वर्ष ईसा पूर्व में हुए हैं।

श्री ग्रौस महोदय, जोकि रामायण के अनुवादक भी हैं, लिखते हैं—मेरे विचार से रामायण १३ सौ वर्ष ईसापूर्व की रचना है। [भूमिका प्रथम खण्ड]

श्री वेल्फर्ड महोदय का भी यही कथन है कि रामायण १३०० वर्ष ईसा पूर्व की रचना है।

एक अन्य विद्वान् का कथन है कि श्री रामचन्द्र जी का समय १८०० वर्ष ईसा पूर्व है।

सर विलियम जोंस महोदय का कथन है कि रामायण २०२९ वर्ष ईसा पूर्व की रचना है।

हम इस पुस्तक 'सृष्टि का इतिहास' के प्रथम भाग में सिद्ध कर चुके हैं कि भारत का समय ४३३३ वर्ष के लग-भग है। रामायण का काल उस से बहुत पहले है। अर्थात् रामचन्द्र जी द्वापर और त्रेता के सन्धिकाल में उत्पन्न हुए थे। इस हिसाब से द्वापर के ८६४००० वर्ष और कलियुग के इस समय तक के ४९६४ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ये सब ८६८९६४ वर्ष होते हैं।*

आर्यावर्त्त के सभी ज्योतिषी एक स्वर से कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी को हुए आठ लाख वर्ष हो चुके हैं। यह केवल मात्र ज्योतिषियों का ही विचार नहीं है। वर्तमान् काल के विचारक और रामायण के अंग्रेजी अनुवादक श्री ग्रिफ्थ महोदय प्रिंसिपल बनारस कालिज लिखते हैं :—

"रामायण और इलियड् जैसे ग्रन्थों में हमें अपने विचारानुसार प्रतीत होता है कि वे सुदीर्घ प्राचीनकाल से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे हम बम्बई महा नगर के किसी मकान में प्रवेश करते हैं, वैसे ही हम रामायण और इलियड् में भी प्रवेश करते हैं। यद्यपि बहुत से रंग अभी तक भी नये दिखाई देते हैं, विनाश का कोई एक निशान भी हमें दिखाई नहीं देता, जोकि हमें उस समय का स्मरण करावे। परन्तु हमें ज्ञात होता है कि वे ग्रन्थ न तो हमारे समय के हैं, और न ही हमारे बाप-दादों के समय के। हमारे और उन के बीच में काल प्रवाह का एक समुद्र=एक अनन्त, असंख्येय-काल पड़ा हुआ है।

[भूमिका अंग्रेज़ी अनुवाद]

—: o :—

* हमने 'सृष्टि का इतिहास' भाग १ में पृष्ठ १० पर युधिष्ठिर का संवत् लिखा है। —लेखक

इस पुस्तक में यह संवत् भाग १ पृष्ठ १० पर है। —अनु०।

अष्टाध्यायी

अष्टाध्यायी संस्कृत-व्याकरण का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। जोकि सुप्रसिद्ध विद्वान् पाणिनि जी की रचना है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ सूत्रों में है। इस का समय बहुत अधिक प्राचीन है। इस के नाम से ही प्रकट होता है कि इस में आठ अध्याय हैं। इस का विवरण यह है :—

अध्याय	पाद १	पाद २	पाद ३	पाद ४	सूत्रों का योग
१	८८	७४	६३	११०	३६४
२	७२	३८	७३	८५	२६८
३	१५०	१८८	१७६	११७	६३१
४	१७८	१४५	१६८	१४४	६३५
५	१३६	१४०	११९	१६०	५५५
६	२२३	१९९	१३९	१७५	७३६
७	१०३	११८	१२०	९७	४३८
८	७४	१०८	११९	६८	३६९

अष्टाध्यायी में कुल आठ अध्याय, बत्तीस पाद, और तीन हज़ार, नौ सौ, छियानवे सूत्र हैं।

त्रिणि सूत्र सहस्राणि, तथा नवशतानि च।
षण्णवति सूत्राणि पाणिनिः कृतवान् स्वयम्॥

अर्थात् श्री पाणिनि जी ने ३९९६ सूत्र स्वयं रचे हैं।

[देखो बोटलिंग की अष्टाध्यायी (पाणिनि संस्करण) खण्ड २, पृष्ठ १९]

श्री लेथरज साहब का कथन है :—

"पाणिनि, जो संस्कृत व्याकरण का एक बड़ा विद्वान् हो चुका है, उस का व्याकरण बहुत प्रसिद्ध है। कुछ लोगों का अनुमान है कि पाणिनि बौद्ध-मत के प्रवर्त्तक बुद्ध से कुछ समय पूर्व हुआ है।"

[संक्षिप्त तारीख़ हिन्द पृष्ठ २३७]

हम इस आक्षेप का उत्तर इसी पुस्तक के प्रथम भाग में दे चुके हैं। यह आक्षेप सर्वथा निराधार और व्यर्थ है।

—:०:—

हकीम भास्कराचार्य का समय

इस सुप्रसिद्ध विद्वान् के रचे हुए ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

"सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय, बीज गणित, कर्ण कुतूहल और लीलावती।"

यह नामी विद्वान् संवत् १०६० के लगभग दक्षिण-प्रदेश के बीदर नामक नगर में महेश्वर नामक ब्राह्मण के घर में जन्मा था। इस के विषय में श्री लेथ्रज महोदय लिखते हैं :—

"ज्योतिष शास्त्र का एक और प्रसिद्ध आचार्य जिस ने कई उत्तम ग्रन्थ रचे, सन् ११०० ई० के

* फारसी-भाषा में तथा अरबी-भाषा में उच्च कोटि के विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य को आदर के लिये 'हकीम' कहते हैं।

—अनुवादक।

लग भग बीदर नगर दक्षिण प्रदेश में जन्मा। कहते हैं कि उस ने गणित-शास्त्र के ऐसे श्रेष्ठ सिद्धान्तों को अवगत किया था, जोकि आधुनिक योरुप के गणित-शास्त्र के उच्च कोटि के विद्वानों के सिद्धान्तों से बहुत अधिक समानता रखते हैं।"

[परिशिष्ट प्रथम पृष्ठ २३४]

श्री भास्कराचार्य विरचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीलावती' का अनुवाद सुप्रसिद्ध विद्वान् 'फैज़ी' ने सम्राट् अकबर के समय में किया था। उसकी भूमिका में वह लिखता है :—

"इस ग्रन्थ के रचनाकार सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री भास्कराचार्य जी हैं, जो कि अपने समय में ज्योतिष-विद्या और गणित शास्त्र के बहुत उच्चकोटि के विद्वान् थे। उनकी जन्मभूमि दक्षिण-प्रदेश के बीदर नामक नगर में है। यद्यपि इस पुस्तक 'लीलावती' का रचनाकाल ज्ञात नहीं है, परन्तु एक दूसरी पुस्तक इसी लेखक की है। जिस में नक्षत्र-विद्या का वर्णन है। उसमें, उसका रचना-काल संवत् ११०५ शक-शालीवाहन लिखा है। उस समय भारतवर्ष में शालिवाहन संवत् का ही अधिक प्रचलन था। इस समय दीन-इलाही संवत् ३२ है। जोकि कुमरी वर्ष ६६५ के बराबर है। व ३७३ वर्ष बीते हैं।*

'कर्ण कुतूहल' पुस्तक में भास्कराचार्य ने अपने पिता का नाम महेश्वर लिखा है। और पुस्तक का रचना-काल संवत् ११०५ शालिवाहन लिखा है।

'लीलावती' ग्रन्थ की रचना उसने अपनी प्यारी पुत्री के नाम पर की थी। कुछ लोगों का यह भी मत है कि उसकी पुत्री लीलावती ने ही यह ग्रन्थ रचा था।"

पंचतन्त्र और हितोपदेश

यह राजनीति का ग्रन्थ है। इसमें अरजानन्द राजा का उल्लेख है, जिस का मन्त्री वर रुचि था।

[देखो तन्त्र ४ कथा ७ पृष्ठ ४६२ कलकत्ता-संस्करण]

इस में महाराजा चन्द्रगुप्त और चाणक्य-नीति का भी उल्लेख है। देखो आरम्भ पृष्ठ ५]

चाणक्य और चन्द्र गुप्त के नामोल्लेख से प्रकट है कि यह ग्रन्थ उनके बाद बना है। विक्रम का इसमें कुछ भी उल्लेख नहीं है। और न ही उसके नवरत्नों में से किसी का वर्णन है। अतः यह विक्रम पूर्व की रचना है।+ ईरान के बादशाह न्यायप्रिय नौशेरवां के आदेशानुसार सन् ५३१ ई० या ५६६ ई० में जो कि संवत् ५८८ वि० या ६५६ वि० के बराबर है, 'बज़विया' नामक विद्वान् ने इसका अनुवाद फारसी-भाषा में किया था। तत्पश्चात् संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं।

इसके रचयिता का नाम विष्णु शर्मा है। जोकि राजा अमर शक्ति, अपर नाम सुदर्शन के समय में हुआ है। यह राजा दक्षिण-प्रदेश के महिलारोप्य नामक नगर में राज्य करता था। 'पंचतन्त्र' का ही संक्षेप 'हितोपदेश' है जिस का उल्लेख फ़िरदोसी ने अपने ग्रन्थ 'शाहनामा' में भी किया है।

* श्री फ़ैज़ीकृत फ़ारसी अनुवाद आर्यसमाज मुज़फ्फर गढ़ के पुस्तकालय में मौजूद है। लेखक।

+ यहां 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' का उल्लेख एक ही ग्रन्थ के रूपमें है। इस समय ये दो पृथक ग्रन्थ प्रचलित हैं। पंचतन्त्र का रचनाकार विष्णु शर्मा प्रसिद्ध है। 'हितोपदेश' पंचतन्त्र का ही कुछ संक्षिप्त, कुछ परि-वर्तित रूप है। इसका रचनाकार नारायण प्रसिद्ध है। दोनों उत्तम नीति-ग्रन्थ हैं। अनुवादक।

मुद्रा राक्षस नाटक

इस नाटक में उस राज्य-क्रान्ति का वर्णन है जिसमें मगध देश के राजा नन्द का सर्वनाश हो गया और उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त ने राज्य प्राप्त किया। पहला प्रधान मन्त्री, जो राजा नन्द के साथ षड्यन्त्र करके स्वयं राजा बनने के लिये प्रयत्नशील था, उसे महापण्डित चाणक्य के नीति-बलके द्वारा पूर्ण पराजित होना पड़ा। चन्द्रगुप्त ने शासन-सूत्र संभाला। सुप्रसिद्ध विद्वान् वैशाखदत्त ने चाणक्य की कीर्ति-रक्षा के लिये इसे रचा था। इसका रचना-काल ३०० वर्ष ईसा पूर्व है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण और इस नाटक की रचना का समय एक-सा ही है।

[देखो तारीख हिन्द, परिशिष्ट १ पृष्ठ २३७]

चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष तक अर्थात् ३१५ वर्ष ईसा पूर्व से २०१ वर्ष ईसा पूर्व तक बहुत उत्तम रूप में राज्य किया था।

[संक्षिप्त तारीख हिन्द पृष्ठ ३६]

गृहलाघव

यह ग्रन्थ ज्योतिष विषय का है। इसकी रचना संवत् १४४२ शक शालिवाहन में हुई थी। यथा—

द्वयब्धीन्द्रमित शकेशहृत्फल

[१४४२ शक]

ताजक

यह ग्रन्थ श्री पण्डित नीलकण्ठ ज्योतिषी ने रचा था। इसका सम्बन्ध फलित-ज्योतिष से है। इसका रचना काल संवत् १५०६ शक शालिवाहन है।

मुहूर्त चिन्तामणि

यह ग्रन्थ और 'जातकालंकार' तथा 'जातका-भरण' ये ग्रन्थ पण्डित गणेश देव जी के रचे हुए और नये काल के हैं। पण्डित गणेश देव पण्डित नीलकण्ठ का ही छोटा भाई था। मुहूर्तचिन्तामणि संवत् १५२२ शक शालिवाहन में, और जातकालंकार संवत् १५३५ शक शालिवाहन में बने हैं।

—:o:—

दिन व रात का मान जानने का नियम

जिस समय सूर्योदय हो, उसको यदि दुगना किया जाये तो वह रात के मान का प्रमाण है। जिस समय सूर्यास्त हो, यदि उसे दुगना किया जाये, तो वह दिनके मानका प्रमाण है। यदि ५ वजे सूर्योदय हुआ है तो रात्रि का मान १० घंटे का होगा। और यदि सूर्यास्त साढ़े छः बजे हुआ है तो दिन का मान तेरह घंटे का होगा।

—:o:—

पुराण किस ने बनाये ?

हमारे भोले-भाले हिन्दू भाई यह समझे बैठे हैं कि अट्ठारह पुराण * और अट्ठारह उपपुराण व्यास जी ने बनाये हैं। जोकि पाराशर जी के पुत्र थे और युधिष्ठिर के समय में मौजूद थे। जिन को अब तक ४३३१ वर्ष हो चुके हैं। वे प्रमाण दिया करते हैं :—

अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः।

अर्थात् अट्ठारह पुराणों का रचयिता सत्यवती का बेटा व्यास है। परन्तु पुराणों के पाठ से प्रतीत होता है कि न तो उनका ऐसा सोचना उचित है, और न ही इस वाक्य में कुछ सत्यता है।

इस विषय में बहुत वर्षों तक अनुसन्धान करके, जो प्रमाण-संग्रह किया है, उस में से कुछ प्रमाण हम यहां प्रस्तुत करते हैं। आशा है कि धर्म के जिज्ञासु और इतिहास के प्रेमी पक्षपात रहित हो कर इन पर विचार करेंगे।

पहला प्रमाण

इस विषय में सभी विद्वान् एक मत हैं कि अट्ठारह पुराण महाभारत के बाद बने हैं। और यह भी सभी जानते हैं कि शुकदेव जी ने भागवत की कथा राजा परीक्षित को सुनाई थी। यह इतिहास से ज्ञात होता है कि कौरवों और पाण्डवों के युद्ध के पश्चात् युद्ध-विजयी महाराजा युधिष्ठिर राज्यारूढ़ हुए। उन्हों ने ३६ वर्ष और २५ दिन तक राज्य किया। उन के बाद परीक्षित राजा हुआ। उस ने साठ वर्ष तक राज्य किया। भागवत में लिखा है कि राजा परीक्षित को अन्तिम दिनों में जब सांप ने काटा, तब शुकदेव ने उसे भागवत सुनाया। [देखो भागवत]

परन्तु महाभारत के शान्तिपर्व, अध्याय ३२२—३२३ से सिद्ध है कि जब युद्ध समाप्त हो गया और भीष्म के अन्तिम समय में युधिष्ठिर जी उन से उपदेश सुनने गये, तब शुकदेव जी का वर्णन ऐसे रूप में किया गया है कि मानों उन को मरे बहुत वर्ष हो चुके हैं। वे मर गये। वे योगी पुरुष और व्यास जी के पुत्र थे। उन के मरने पर व्यास जी का शोकातुर होना भी स्वाभाविक है। और व्यास जी के शोकातुर होने का उल्लेख भी वहाँ है।

युधिष्ठिर जी इस प्रकार से पूछते हैं कि मानो उन्होंने कभी शुकदेव को देखा भी नहीं। उस समय राजा परीक्षित तो गर्भ में ही थे। यहां विचारणीय यह है कि जब परीक्षित के जन्म से पहले ही शुकदेव जी मर चुके थे, तब उन का ९६ वर्ष पश्चात् आकर भागवत सुनाना सत्य किस प्रकार हो

* १८ पुराणों के नाम :—१–मारकण्डेय, २–भविष्य, ३–भागवत, ४–ब्रह्मवैवर्त, ५–ब्रह्माण्ड, ६–शिव, ७–वराह, ८–विष्णु, ९–लिंग, १०–पद्म, ११–नारद, १२–कूर्म, १३–अग्नि, १४–मत्स्य, १५–ब्रह्म, १६–वामन, १७–स्कन्ध, १८–गरुड़।

१८ उपपुराणों के नाम :—१–आदि, २–नृसिंह, ३–वायु, ४–शिवधर्म, ५–दुर्वासा, ६–कपिल, ७–नारद, ८–नन्दकेश्वर, ९–शुक्र या उशनस, १०–वरुण, ११–साम्ब, १२–कल्कि, १३–महेश्वर, १४–पद्म, १५–देव, १६–पाराशर, १७–मरीचि, १८–भास्कर। —लेखक।

सकता है ? इस विषय में देवी भागवत के अनुवादक का उल्लेख ही सत्य है कि यह भागवत पुराण जयदेव के भाई बोप देव ने रचा है।

[देवी भागवत की भूमिका]

बोपदेव महाराजा भोज के समय अर्थात् संवत् ५४१ वि० में हुआ था। जिन लोगों ने बोपदेव का रचा हुआ व्याकरण 'मुग्ध-बोध' पढ़ा है, वे स्पष्ट साक्षी देते हैं कि 'श्रीमद्भागवत पुराण' और 'मुग्ध-बोध' का रचने वाला एक ही है।

दूसरा प्रमाण

अट्ठारह पुराणों में बुद्ध को भी विष्णु का अवतार माना गया है। जहां यह उल्लेख है, वह भूतकाल का वर्णन है, भविष्य का नहीं। वहां बुद्ध का जो भी जीवनवृत्त है, वह सब गौतम बुद्ध के जीवन से सुसंगत है। अतः बुद्ध के बाद की रचना है।

[देखो शिवपुराण पूर्वार्द्ध, खण्ड ५ अध्याय ३ से ६ और भागवत]

श्री रमेशचन्द्रदत्त अपने इतिहास में लिखते हैं :—

"विष्णु पुराण के तीसरे भाग के अन्त में बौद्धों और जैनियों के मत का खण्डन है।"

[भाग ३, पृष्ठ २६६]

पद्म पुराण में भी बुद्ध का उल्लेख है :—

दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा ।
बौद्धशास्त्रमतं प्रोक्तं नग्न नीलपटादिकम् ॥*

परन्तु विद्वानों ने पुराने निशानों, यादगारों, स्तम्भों, बुद्ध मन्दिरों, शिलालेखों, और आर्यावर्त्त, लंका, बर्मा, चीन, तिब्बत के ग्रन्थागारों और अजायब-घर की मूर्तियों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि बुद्ध विक्रमादित्य से ६१४ वर्ष पूर्व जन्मा और ८० वर्ष की आयु में उसका शरीरान्त हुआ। इसे अब तक दो हज़ार पाँच सौ वर्ष हुए हैं। और व्यास जी को चार हज़ार तीन सौ वर्ष हो चुके हैं। इस प्रकार बुद्ध का जन्म व्यास जी से लगभग दो हज़ार वर्ष बाद हुआ है। अतः पुराण व्यास जी के रचे हुए नहीं हैं।

तीसरा प्रमाण

श्री स्वामी शंकराचार्य जी सुप्रसिद्ध दक्षिणी ब्राह्मण रामानुज से बहुत काल पूर्व हो चुके हैं। क्योंकि रामानुज ने शंकर भाष्य और शंकरमत का खण्डन भली प्रकार से किया है। और यह भी लिखा है कि शंकराचार्य जी को गुज़रे बहुत समय हो चुका है। और उनका मत अद्वैतवाद प्रबल रूपमें फैला हुआ है। हम इसी पुस्तक में सिद्ध कर चुके हैं कि शंकराचार्य को दो हज़ार वर्ष हो चुके हैं। यह भी प्रकट है कि प्रायः हिंन्दू शंकराचार्य को शिव का अवतार मानते हैं। उनका समय किसी प्रकार भी बुद्ध मत से पहले नहीं है। क्योंकि उन्हों ने बुद्धमत का खण्डन किया है। यह भी सर्वविदित है कि

* बुद्ध रूपी विष्णु ने ही दैत्यों का विनाश करने के लिये बौद्ध-मत का यह सिद्धान्त बताया है कि नंगे रहना और नीले वस्त्र पहनने चाहियें।

—अनुवादक।

शंकराचार्य के मत में सारा ही जगत् माया माना जाता है, और वे अपने आप को ब्रह्म कहते थे। अब देखो, पद्मपुराण में महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं :—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रछन्नं बौद्धमेव च।
मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मण रूपिणा॥
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम्।
कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते॥
सर्वकर्म परिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते।
परात्म जीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते॥
ब्राह्मणो ऽस्य परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया।
सर्वस्य जगतो ऽपि-अस्य नाशानार्थं कलौ युगे॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव कथितं देवि! जगतां नाश कारणात॥

[पद्म पुराण अध्याय २०७]

[देखो सांख्य शास्त्र विज्ञानभिक्षु की टीका भूमिका पृ० ७-८]

अर्थ—जिसमें मायावाद का विशेष रूप से प्रतिपादन है, ऐसा सर्वथा मिथ्या शास्त्र मैंने कलियुग में ब्राह्मण का रूप धारण करके रचा है, वह गुप्त रूपमें बौद्ध-मत का ही प्रतिपादन है। उसमें श्रुतियों का उल्टा और मिथ्या-अर्थ इसलिये किया गया है, जिससे कि वेदों की निन्दा हो। उसमें सभी शुभ कर्मों को छोड़ने का उपदेश है। उसमें सभी कर्मों का त्याग करने वाले मनुष्य को निष्कर्म कहा गया है। इसके साथ ही उसमें जीव और ब्रह्म को सभी गुणों से रहित लिखा है। वह मैंने ही संसार का नाश करने के लिए ऐसा रचा है कि लोग उसे वेदार्थ के समान सत्य समझते हैं। यह मायावाद रूपी अवैदिक शास्त्र जगत् के विनाश के लिये, हे देवि! मैंने ही बनाया है।

इससे स्पष्ट है कि पद्मपुराण बुद्धमत के, और शंकराचार्य के भी, पीछे बना है। वह दो हजार वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। और वह व्यास जी का रचा हुआ कभी भी नहीं हो सकता क्योंकि शंकराचार्य जी के रचे हुए किसी भी ग्रन्थ में किसी भी पुराण का कुछ भी उल्लेख नहीं है। परन्तु कूर्म पुराण के अध्याय ३० में भी शंकर स्वामी का वर्णन है।

[देखो प्रशस्तपाद भाष्य, बनारस संस्करण सन् १८८५, पृष्ठ २३, पाद टिप्पणी]

चौथा प्रमाण

मत्स्य-पुराण में राजा नरवाहन दत्त का वर्णन है। यह सम्राट् विक्रमादित्य का ही वर्णन है। एवं उनके परोपकारभाव का भी उल्लेख है। अस्तु, यह पुराण १६५० वर्ष से इधर की ही रचना है।

पाँचवां प्रमाण

श्री रामानुज, जिन्होंने वैष्णव-मत चलाया, और जो वैष्णव-मतके प्रसिद्ध आचार्य थे संवत् १०१० विक्रमी के शुक्ल-पक्ष में केशव के घर जन्मे थे। उन्हों ने अपने अनुयाइयों को आदेश दिया है

कि वे अपने शरीर पर शंख, चक्र, गदा और पद्म के निशान अंकित करवायें। इनसे पूर्व इस प्रकार का आदेश और कहीं भी नहीं है। इस मत का खण्डन लिंग पुराण में है। यथा—

शंख चक्रे तापयित्वा, यस्य देह प्रदह्यते ।
स जीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्म बहिष्कृतः ॥

जिसके शरीर पर तपा कर शंख और चक्र आदि के निशान बनाये गये हों, वह तो जीवित होने पर भी मृतक के समान है। उसे सभी धर्म-कार्यों से पृथक्=बहिष्कृत कर देना चाहिये।

श्री रमेशचन्द्र दत्त अपने इतिहास में लिखते हैं :—

"पद्म पुराण में शंख, चक्र, गदा और पद्म लगाने का उल्लेख है। ये सब बातें भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद की हैं।"

श्री डा० विल्सन महोदय का कथन है :—

"इस पुराण के अन्तिम भाग ईसा की १५वीं या १६वीं शती में लिखे गये हैं।

[खण्ड ३ पृष्ठ २६६]

क्योंकि अठारह पुराणों में लिंग-पुराण और पद्म-पुराण भी गिने जाते हैं, अतः ये ११वीं शती ईस्वी से इधर की ही रचनायें हैं। व्यास के बनाये हुए तो ये कभी हो ही नहीं सकते।

छठा प्रमाण

वायु-पुराण के एकलिंग महात्म्य में बापा रावल नामक चित्तौड़ के राजा का नाम है। यह भी प्रकट है कि बापा सन् ७०० ई० में जन्मा और मुसलमान हो गया था। अतः वायुपुराण आठवीं शती ईस्वी से अधिक पुराना नहीं।

सातवाँ प्रमाण

जगन्नाथ का प्रसिद्ध मन्दिर संवत् १२३१ वि० में उड़ीसा के राजा अनंग भीम देव ने बनवाया था। इससे पहले वह न था। निर्माण का संवत् मन्दिर पर भी लिखा है। सभी विचारकों का इस विषय में एक मत है। परन्तु इस मन्दिर का विवरण स्कन्ध पुराण में है।

[देखो स्कन्ध पुराण, उगल-काण्ड]

श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं :—

"ब्रह्म पुराण में भी जगन्नाथ के मन्दिर का वर्णन है।"

[देखो उन का इतिहास एनिशीयेंट इण्डिया खण्ड ३, पृष्ठ २६५ से ३०१]

अतः स्कन्ध-पुराण और ब्रह्म-पुराण संवत् १२३१ वि० के पश्चात बने हैं, व्यासकृत नहीं हैं।

आठवां प्रमाण

तुज़क जहांगीरी में, जहांगीर बादशाह ने लिखा है :—

"मेरे पिता के समय में एक पादरी अमेरिका से भारत में आया था। वह अपने साथ आलू, तम्बाकू और गोभी लाया था। इस से पूर्व ये वस्तुएं इस देश में नहीं थीं।

[देखो तुज़क जहांगीरी]

इस विषय में सभी विद्वान् सहमत हैं। परन्तु ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है :—

प्राप्ते कलियुगे घोरे, सर्ववर्णाश्रमेतराः।
तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे॥

अर्थात् कलियुग में जो भी तम्बाकू पीता है, वह घोर-नरक में जाता है।

पद्मपुराण अध्याय २२ में लिखा है :—

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

अर्थात् तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को जो दान देता है, वह दानदाता नरक में जाता है। और दान लेने वाला वह ब्राह्मण मर कर ग्राम का सूअर बनता है।

'तम्बाकू' शब्द अमेरिका की भाषा का है। हिन्दुओं के किसी भी ग्रन्थ में तम्बाकू का निषेध नहीं है। श्री बाबा नानक जी से लेकर आठवें; अपितु नौवें गुरु-गद्दी-प्राप्त गुरुओं में से किसी ने भी तम्बाकू पीने का खण्डन नहीं किया है। क्योंकि उनके समय में यह नया ही भारत में आया था। और तब तक इस का अधिक प्रचार न हो सका था। जब दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी ने इस का अधिक प्रचार होता हुआ देखा, तब उन्हों ने इस का निषेध कर दिया। यह बादशाह औरंगजेब के समय की बात है। उस समय के अन्य मतवादियों ने भी इस का निषेध किया है, जैसे उधो जी ने।

अतः पद्म-पुराण और ब्रह्माण्ड-पुराण दोनों ही जहाँगीर के पिता अकबर ने संवत् १६१३ वि० से १६६३ वि० तक शासन किया था। अतः ये पुराण व्यासकृत न हो कर, तीन सौ वर्ष से इधर के ही हैं।

नौवां प्रमाण

पद्म-पुराण के भागवत् माहात्म्य में लिखा है :—

"नारद जी व्याकुल होकर सनकादि से मिले। और कहा कि म्लेछों ने सोमनाथ, बनारस, रामेश्वर, मथुरा इत्यादि तीर्थों को तोड़ डाला और आश्रमों पर अधिकार कर लिया है। ब्राह्मण तथा पुजारी लोग बहुत अधिक दुःखी हैं।

[देखो उत्तर खण्ड, अध्याय १, श्लोक २७ से ३३ तक, बम्बई-संस्करण]

जानने वाले जानते हैं कि यह हाल महमूद से आरम्भ करके औरंगजेब तक होता रहा है। अर्थात् सन् १००० से १७०७ ई० तक यह अन्धकार तथा अत्याचारों का युग भारत में बीता है। अतः पद्म-पुराण व्यास जी की रचना नहीं।

दसवां प्रमाण

देवी भागवत में लिखा है :—

"एक राजा का बेटा किसी मुसलमान वेश्या पर मोहित होकर मुसलमान बन गया। सभी जानते हैं कि भारत में मुसलमानों के आने के बाद ही मुसलमान वेश्याओं का प्रसार बढ़ा था। जब

मुलमान वेश्यायें न थीं, तब उन पर कोई मोहित ही कैसे हो सकता था ? तब लोगों के दीन्
पर वेश्याओं के द्वारा डाके भी न डाले जाते थे। इससे प्रकट है कि देवी भागवत की रचन
पश्चात् हुई है। व्यास जी से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

ग्यारहवां प्रमाण

व्यास जी के रचे हुए ग्रन्थ वेदान्त-दर्शन, मीमांसा-दर्शन का भाष्य, योग-दर्शन
सम्पूर्ण संसार के सामने है। उनका सिद्धान्त भी किसी से छिपा हुआ नहीं है। परन्तु ये १८ पु
१८ उपपुराण इन दर्शन-ग्रन्थों से सर्वथा विपरीत बातों से भरे पड़े हैं। पुराणों के सिद्धान्त
कृत ग्रन्थों से नहीं मिलते। इस से भी प्रकट है कि पुराणों के रचनाकार व्यास जी नहीं

बारहवां प्रमाण

अठारह पुराणों में ऋषि, मुनि और देवताओं की निन्दा लिखी है। और उन पर
लगाये गये हैं। यथा—ब्रह्मा जी पर अपनी पुत्री से व्यभिचार का कलंक। कृष्ण जी पर कुब्ज
तथा अन्य गोपियों से व्यभिचार करने का कलंक। महादेव जी पर ऋषियों की पत्नियों से
करने का कलंक। विष्णु पर जलन्धर की स्त्री वृन्दा से, इन्द्र पर गौतम की स्त्री अहल्या
कुन्ती से, चन्द्रमा पर अपने गुरू बृहस्पति की स्त्री तारा से, वायु और महादेव पर केसरी की
से वरुण पर अगस्त की माता उर्वशी से, बृहस्पति पर अपनी भावज उतथ्या से, विश्वामित्र पर
से, पाराशर पर मत्स्योदरी से, व्यास पर दासी से, द्रौपदी पर पाँच पतियों से, व्यभिचार करने
लगाये गये हैं। देवों को मांस, शराब, वामन अवतार को छल-कपट, बलदेव पर शराब व
के, रामचन्द्र पर नारद के शाप से उत्पन्न होने और निर्दोष सीता को घर से निकाल देने के दो
गये हैं।

सभी ऋषियों, मुनियों, देवताओं पर कलंक लगाये गये हैं, परन्तु बुद्ध पर कोई भी क
लगा। जिसने नास्तिक-मत का प्रचार किया। पुराणों की रचा शिक्षा का परिणाम भी नास्ति
प्रसार ही है। यही कारण है कि सैंकड़ों ब्राह्मण इस समय भी जैनियों के मन्दिरों में पुजा
बैठे हैं।

अतः प्रकट है, और बुद्धि भी इसका समर्थन करती है कि पुराणों के वास्तविक निर्मा
गण हैं, व्यास जी नहीं।

वेद त्याग का दुष्परिणाम

मनुस्मृति में लिखा है :—

> यो ऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
> स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥
>
> मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १६८

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेदों को नहीं पढ़ते, और अन्य ग्रन्थों को पढ़ने में व्यस्त
हैं, वे इस जीवन में ही अपनी सन्तान सहित शूद्र हो जाते हैं। जब बौद्धों ने पुराण बना दिये

इ उन्हें अपना धर्म ग्रन्थ न माना तब ऐतरेय स्मृति की रचना हुई। और उसमें लिखा गया :—

पुराण-पाठी

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं,
शास्त्रेण हीनाश्च पुराण पाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति,
भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥

अर्थ— वेद से रहित लोग शास्त्र को पढ़ते हैं। शास्त्र-शून्य लोग पुराण-पाठी होते हैं। पुराणों ...सान बनते हैं। कृषिकर्म से भी जो भ्रष्ट होते हैं, वे भागवत-पुराणवादी बन जाते हैं।

पुराण किस के लिये ?

...र हमें पुराणों की रचना का कारण ज्ञात होता है, तब उस से भी यही प्रेरणा मिलती है कि ...था उन की शिक्षा से बचें। यथा :—

स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयो न श्रुतिगोचराः।
कर्म श्रेयसि मूढ़ानां श्रेय एवं भवेदिह ॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥
[भागवत, स्कन्ध १]

...र्थात् स्त्रियों, शूद्रों और द्विजों के नौकरों को वेद पढ़ने का निषेध है। इसी लिये उन के ... बनाये गये हैं।

विद्वानों के मत

पुराणों के विषय में अन्य विद्वानों का मत क्या है। यह भी यहां दर्शाना उचित समझते हैं। ...में स्वार्थियों ने जो मिलावट की है, वह किसी प्रकार भी विश्वास करने योग्य नहीं है। अस्तु ...राण में. आठवें अध्याय के पूर्व भाग के श्लोक ३४ व ३६ में श्री नानक जी का अवतार होना लिखमारा है। यह राजा रणजीत सिंह के समय की करतूत है।

श्री मारिशमैन महोदय अपने इतिहास में लिखते हैं :—

"तैंतीस करोड़ देवता बुद्ध-मत का ह्रास होने के पश्चात् पुराणों के आदेशानुसार हिन्दुओं के ...-पात्र बने हैं। इन पुराणों में पुराने पुराण एक हजार वर्ष के तथा नये पुराण साढ़े चार सौ वर्ष ...हैं।"

[पृष्ठ ६, सन् १८६३ ई०]

क्योंकि मुसलमानों की विजयों के पश्चात् पुराणों में बहुत से परिवर्तन किये गये हैं, अतः वे ...नों-विजय से पूर्व के हिन्दुओं की जीवन-चर्या को जानने के लिये विश्वास करने योग्य नहीं हैं।

[एनिशियंट हिस्टरी आफ इण्डिया खण्ड ४, पृष्ठ ३०५]

फिर यही लेखक (श्री रमेशचन्द्रदत्त) पुराणों और उपपुराणों का उल्लेख करके, खेद करते हुए लिखता है :—

"उन महा मनुष्यों की सन्तान, जो वेदों की ऋचाओं के गायक थे, और उपनिषदों के तत्त्वज्ञान के आविष्कारक थे, इस समय ऐसी-ऐसी मिथ्या और पागलपन की बातों पर विश्वास है और ऐसी धार्मिक रूढ़ियों का अनुष्ठान करती है।"

[खण्ड ३, पृष्ठ ३०५]

"राजा-महाराजाओं के कुछ न कुछ विवरण पहले भी वर्तमान थे, उन की संज्ञा पुराण यदि वे ब्राह्मण-ग्रन्थों से भिन्न कोई अन्य ग्रन्थ थे, तब तो वे नष्ट हो चुके हैं। अथवा किम्वदन्तियों में ही उन का अस्तित्व है। उन में कालक्रम वशात् परिवर्तन भी बहुत कर दिये समय-समय पर झूठे किस्से भी बहुत मिला दिये गये हैं। लगभग दो हज़ार वर्ष के परिवर्तनों के वे अपने नये रूप में हमारे सामने हैं, अर्थात् हमारे ये नये पुराण। क्योंकि यह बात प्रम चुकी है कि जो पुराण इस समय वर्तमान हैं, ये पौराणिक काल में ही बने हैं। मुसलमानों की विजय के पश्चात् की बहुत-सी शतियों में इन पुराणों में बहुत-से परिवर्तन किये गये हैं विषय में बहुत से बलात्कार भी हुए हैं।"

[खण्ड ३, पृष्ठ ३०५]

फिर यही लेखक प्राचीन पुराणों और तन्त्रों का उल्लेख करके लिखता है :—

"मूर्खता प्रत्येक बात पर विश्वास कर लेती है। दुर्बलता शक्ति की कामना करती है। जब विदेशी शक्ति की शताब्दियों की दासता ने ऐसी मूर्खता और पराकाष्ठा की दुर्बलता पैदा कर दी तब मनुष्य ने अनुचित और अपवित्र उपायों से उस शक्ति को प्राप्त करना चाहा, जोकि ईश्वरीय नियमों के अनुसार केवल मात्र नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों के स्वतन्त्र, खुले और उचित प्रयोग द्वारा ही प्राप्त हो सकती थी। विचारकों के लिये तन्त्र-साहित्य, जोकि विचार-धारा का कोई निश्चित् रूप प्रकट नहीं करता, अपितु मानव-हृदय के एक रोग-पूर्ण चित्रण करता है, जोकि केवल ऐसे समय पर ही सम्भव है, जब कि जातीय-जीवन कूच कर चुका सम्पूर्ण राजनैतिक चेतनता लुप्त हो चुकी हो, और विद्या का दीपक भी बुझ चुका हो।"

[खण्ड ३, पृष्ठ ३०६]

"सर्व प्रथम इतिहासकार अबुरीहां अर्थात् अल्बरौनी ने, जोकि महमूद के समय सन् ११० में भारत आया था, अपनी पुस्तक में अट्ठारह पुराणों का उल्लेख किया है।"

[श्री रमेश चन्द्रदत्त हिस्टरी आफ़ एनिशियंट इण्डिया]

'पृथिवी राज रासो' के पंजाबी रचयिता तथा इतिहासकार चान्द बृहद=चन्द्र बरदाई जोकि सन् ११९३ में हुआ है, भी अट्ठारह पुराणों का उल्लेख किया है।"

श्री बाबा नानक जी ने भी १८ पुराणों का उल्लेख किया है। बाबा जी सन् १४८३ ई० अर्थात् बादशाह बाबर के समय में गुज़रे हैं।

अतः प्रकट है कि वर्तमान पुराण न्यूनाधिक किसी न किसी रूप में सन् ११०० ई० तदनुर संवत् ११५७ विक्रमी में मौजूद थे।

एशियाटिक सोसाइटी के सूची पत्र में पृष्ठ ५४ पर वेदान्त के ग्रन्थों में एक 'आत्म-पुराण'

उल्लेख है। उस का कर्त्ता वहां शंकराचार्य लिखा है। परन्तु अट्ठारह पुराणों में इस 'आत्म-पुराण' गणना नहीं है।

मुन्शी इन्द्रमणि साहब मुरादाबादी भी व्यास को अट्ठारह पुराणों का रचनाकार न मानते थे। का मत था कि ये विभिन्न विद्वानों की रचनायें हैं। चार पाँच लेखकों के नाम भी उन्हों ने थे।

राजा भोज संवत् ५४१ वि० में एक बड़ा प्रतापी और संस्कृत का प्रेमी राजा गुज़रा है। उस के संस्कृत का प्रेमी कोई राजा अब तक भी नहीं हुआ। उस ने पण्डितों को एक-एक श्लोक की रचना -एक लाख रुपये पुरस्कार में दिये थे। उस के समय की बनी हुई बहुत-सी पोथियां इस समय मान हैं। उस की राजधानी धारा नगरी थी। (वर्तमान धार) उस नगरी में ऐसे लोग बहुत कम क संस्कृत न जानते हों।"

[देखो जाम-ए-जहांनुमा भाग ३, सन् १८६१ ई० पृष्ठ ८६]

इस राजा के समय में बने हुए एक 'संजीवनी' नामक ग्रन्थ में लिखा है :—

"राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से किसी ने मारकण्डेय पुराण और शिवपुराण जब राजा भोज को यह समाचार मिला, तब उस ने उस पण्डित के हाथ कटवा कर उसे दण्ड और कहा कि जो कोई भी ग्रन्थ रचे वह अपने ही नाम से रचे। ऋषि-मुनियों के नाम से कोई न बनावे।

[सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २६६]

वास्तव में राजा के विद्या-प्रेम से अनुचित प्रोत्साहन पाकर ही उन जालसाज पण्डितों ने झूठे ऋषि-मुनियों के नाम से रचकर प्रस्तुत किये थे। जैसा कि पुराणों की रचना का यह प्रकरण है। इस में कवियों और भोग-विलास-परायण पण्डितों का ही दोष है। राजा का दोष नहीं है।

—: ० :—

विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं का अनुक्रम विक्रम संवत् के अनुसार

संख्या	घटना	विक्रम संवत् से पूर्व	विवरण
१	पाराशर सूत्र का समय	२४५० वर्ष	विक्रम से पूव
२	महाराजा युधिष्ठिर का समय	२३८०	"
३	व्यास मुनि का समय	२३८०	"
४	श्री कृष्ण जी का समय	२३८०	"
५	राजा परीक्षित के पुत्र राजा जन्मेजय का समय	२३४३	"
६	ज़ुरदुश्त नबी का समय	२३४४	"
७	काश्मीर का प्रथम राजा गोनरजू*	२३२०	"
८	नेनोस की महाराणी का भारत पर आक्रमण	२०००	"
९	मिस्र के राजा स्टाटरस का आक्रमण, गंगा तक	१३०८	"
१०	चौहानों के पूर्वज अहल का जन्म	६५०	"

* इसके साथ श्री कृष्ण जी के भाई बलदेव का युद्ध हुआ था।

११—रोमक-सिद्धान्त की रचना	६५२	„
१२—दारा का युद्ध	५००	„
१३—बुद्ध अर्थात् शक्य सिंह का जन्म	५००	„
१४—नन्द राजाओं का आरम्भ	४७५	„
१५—महाराजा गोहा का विवाह	४७५	„
१६—सम्राट् सिकन्दर का आक्रमण	२७५	„
१७—महाराजा चन्द्रगुप्त	२६८	„
१८—महाराजा अशोक+	२६३	„
१९—शंकराचार्य का आगमन बौद्ध-मत का पतन	२२३	„
२०—भर्तृहरि	५०	„

विक्रम के बाद के समाचार

क्रम संख्या घटना	वर्ष संख्या	विवरण
१—विक्रमादित्य का राज्यारोहण	१	३०४४ कलि
२—दूसरे शंकराचार्य का जन्म	२२	संन्यास ग्रह
३—ईसा का जन्म योरोशलम में	५३	„
४—शालिवाहन शक संवत् चला	१३५	„
५—वल्लभ राज्य का आरम्भ	२०१	„
६—अर्देश्वर ईरान का राजा बना	२८३	„
७—आन्ध्र का राज्य	३२६	„
८—राजा विक्रम पाल	४४७	„
९—तीसरा शंकराचार्य	४५७	„
१०—आर्य भट्ट	५००	„
११—राजा मिल्खचन्द	५१९	„
१२—राजा भोज	५४७	„
१३—वल्लभी राजाओं का अन्त	५६१	„
१४—चौथा शंकराचार्य	५८२	„
१५—नौशेरवां-जिस के समय में पंचतन्त्र का अनुवाद हुआ	५८८	„
१६—ब्रह्मगुप्त	६०७	„
१७—पाँचवां शंकराचार्य	६४०	„
१८—आन्धरों का अन्त	७८६	„
१९—जावर राजा का समय	८०१	„

+राजा अशोक का स्तम्भ जो करण्ड-पाषाण का ढला हुआ है, और अब फिरोज़ शाह की लाठ के नाम से प्रसिद्ध है, वह ईसा से २५८ वर्ष पूर्व राजा अशोक ने बनवाया था। [बंगाल एशियाटिक जनरल संख्या ७ पृष्ठ ६३०]

२०—छठा शंकराचार्य	८४५	"
२१—रेतल भट्ट	८४७	"
२२—जनिसाल	६०७	"
२३—सौलंकियों का समय	६८८	"
२४—रामानुज का समय	१०१०	"
२५—आनन्दपाल	१०६५	"
२६—महमूद ग़ज़नवी का आक्रमण	१०५६	"
२७—महमूद ग़ज़नवी की मौत	१०८७	"
२८—अलबरूनी या अबुरीहां	११००	"
२९—भास्कराचाय	११००	"
३०—राजा हर्ष काश्मीर का राजा	१११३	"
३१—महाराजा पृथ्वी राज का समय	११९१	"
३२—राजा हरिहर राय व सायणाचार्य	१४००	"
३३—चैतन्य का समय	१४८५	"
३४—रामानन्द स्वामी, वैरागियों के आचार्य का समय	१५००	"
३५—कवीर जी का समय	१५४०	"
३६—वल्लभ स्वामी का समय	१५४०	"
३७—बाबा नानक का समय	१५४०	"
३८—दादू जी का समय	१६५७	"
३९—गो स्वामी तुलसी दास का समय	१६८०	"
४०—औरंगज़ेब का समय १६५७ से १७०७ सन् तक	१७०० ई०	"
४१—गुरु गोविन्द सिंह का समय	सन् १७०० ई०	"
४२—महाराजा छत्रपति शिवा जी का जन्म समय	सन् १६२७ ई०	"
४३—महाराजा रणजीत सिंह जन्म २ नवम्बर सन् १७८० ई०	सन् १७८० ई०	"
४४—राजा राम मोहन राय, ब्रह्म समाज के प्रवर्त्तक	सन् १८३२ ई०	"
४५—स्वामी नारायण या सहजानन्द	१८८६	"
४६—ब्रह्मचारी बाबा का समय	१६००	"
४७—स्वामी दयानन्द का समय व आर्य समाज की स्थापना	१६३२	"

—: समाप्त :—

श्री कृष्ण जी का जीवन-चरित्र

संसार के धार्मिक इतिहास पर विचार करने वाले अन्वेषक और प्रसिद्ध कार्यों पर विचार कर वाले इतिहासज्ञ तो किसी प्रकार से भी सम्भव नहीं कि वे कृष्ण महाराज को भूल जाएं। भार की सफल क्रान्ति विशेषतः आप के कारण हुई। महाभारत के प्रसिद्ध इतिहास में स्यात् कोई ऐसा नहीं कि जिसमें आप का नाम न हो। वास्तव में सच पूछो तो आप भारत के हीरो थे कारावास-जनित दुःखावस्था में उत्पन्न होना, रात्रि जागरण, कर्मानुसार क्षत्रिय से ग्वाल कहला और पुनः उस वैश्यपन से निकल कर क्षत्रिय बन जाना, समस्त शुभगुण-युक्त होना, दीन दुखि की सहायता और अत्याचारी को दण्ड देना प्रत्युत विनष्ट कर देना, क्षत्रियधर्म का पूर्ण रूपेण पाल करना, वचन का दृढ़ होना, मातापिता को कारावास से मुक्त कराना, शूरवीरता में अद्वितीय होन मनुष्यता का पूर्ण आदर्श दिखाना यह समस्त शुभगुण हैं जिन के कारण हम उस पवित्र मनुष्य सच्चे देवता और बल की साक्षात् मूर्ति के जीवन चरित्र की ओर ध्यान दे रहे हैं।

हम उस महापुरुष का जीवन-चरित्र ऐतिहासिक रूप से पाठकों के सम्मुख रखेंगे। और बताएं कि उन की पवित्र और निर्मल जीवनी से मनुष्य क्या २ शिक्षा ग्रहण कर सकता है। उपनिषद्, मह भारत, गीता, भागवत का कृष्ण जन्मखण्ड, रुक्मणि मंगल, प्रेमसागर इत्यादि संस्कृत ग्रन्थ औ करनल टाड आदि अंग्रेज़ी इतिहासज्ञों की खोज हमारे अन्वेषण की सामग्री होगी।

अंग्रेज़ी इतिहासज्ञ कहते हैं कि आर्यावर्त के इतिहास पर एक ऐसा धुन्धला आवरण पड़ा हु है कि कोई वृत्त यथार्थ रूपेण ज्ञात नहीं होता, और न संस्कृतज्ञ पंडित ध्यान देकर वास्तविकता जान का विचार करते हैं। भ्रमों और कल्पनाओं की भरमार, जहां तक अत्युक्ति से हो सकती है, वह तो स कुछ विद्यमान है। किन्तु सत्यस्वीकरण और योग्य मानवों का यथार्थ चित्रण, जैसे कि वे थे, कहीं नहीं। कुछ लोगों ने मनुष्य को पंख लगा कर वायु में उड़ाया। कुछ ने उन के अस्तित्व को ही भ्रमित औ मिथ्या कर दिया। किसी ने जहां तक उन से बन पड़ा समस्त विशेषताओं से उन्हें सुसज्जित कर दिया कुछ चमगादड़ स्वभाव अन्धकार-प्रिय लोगों को किसी की ज्योति अनुकूल न बैठी। उन्हों ने स कलंक लगा कालिमा फेर दी। यदि सच्चे इतिहास हैं तो वह बहुत ही थोड़े हैं। और अतिशयोक्ति को चाहने वाले स्वभाव युक्त मनुष्य उन्हें पढ़ कर कदापि शान्त नहीं होते। प्रोफ़ेसर हकसले सा एक लेख में लिखते हैं कि "मुझे भय है कि कोई ऐसा मनुष्य जीवित नहीं जिस की गवाही स्वीकार की जाए कि उसने कोई कहानी नहीं बनाई। और न ही प्रसिद्ध की है। हम सब के हृदयों में ऐसे छोटे स्थान विद्यमान हैं जैसाकि एक चट्टान पर छोटे धब्बे होते हैं। जिस प्रकार छोटी हरी घास

न होती है उसी प्रकार जहां पर कोई खाने का बीज पड़ जाए वहां हमारी पवित्रता या सत्यता ... विषयों में कुछ भी प्रभाव डाले बिना अवश्य कुछ न कुछ निश्चय से फल निकलेगा।"
...ल्टर स्काट को ज्ञात था कि वह एक कहानी भी ऐसी वर्णित नहीं कर सकता बिना इस के, जैसा ... ने स्वयं कहा, कि जब तक मैं उन को नई टोपी और नई सोटी न दे दूं। हम से बहुतों का ...ल्टर से यही अन्तर है "कि हम परिचित नहीं हैं कि यह कहानी घड़ने वाली शक्ति बिना हमारे ...के अपना प्रभाव प्रकट कर देती है। परन्तु यह भी तथ्य है कि यह कथा कहानी घड़ने वाली शक्ति ... व्यक्ति में समानता से तीव्र नहीं होती न ही एक हृदय की प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक भाग में।"

डेविट होम वास्तव में इस कहानी बनाने वाली शक्ति से इस प्रकार विजित न था। जिस ...कि वे-रे-मिल बीडिया के कुछ एक नए इतिहास लेखक जिन का कि नाम लिया जा सकता है।"

[नाईन टैन्थ सैन्चुरीपत्र फ़र्वरी १८८९ ईस्वी पृ० १७१ से १७८ तक]

यही नहीं। प्रत्युत इस से कुछ बढ़ कर ही स्थिति अपने देसी इतिहास लेखकों की है। ...क हम ऐसे बुद्धि युक्त विद्वत्तापूर्ण "इतिहासज्ञ" शब्द को ऐसे लोगों के सम्बन्ध में प्रयुक्त करते हैं। ...क्या करें फ़ारसी की कहावत है कि "इन मनुष्यों के साथ ही बनानी चाहिये। और क्या कर सकते ...ंकि मनुष्य ही ऐसे हैं" संस्कृत में भी एक कहावत है कि—

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।

जैसे अन्धे के पीछे दूसरा अन्धा बिना देखे चलता है। इसी प्रकार कुछ लोग सत्य बात विशेषतः ...स जैसे गर्व पूर्ण कार्य में भी ऐसी कारवाई करते हैं। क्या अन्धा अन्धे को मार्ग दिखा सकता ...क्या वह दोनों गढ़े में न गिरेंगे ?

पाठकवृन्द ! जब इतिहासज्ञों और अन्वेषकों की यह अवस्था हो तो अनुकरण करने वालों की ...अवस्था होगी ? यही बड़ा भारी कारण है कि जिस से कई शतियों से आर्यावर्त के सत्य ...स पर आवरण पड़ा हुआ है। "अकेला चना भाड़ को नहीं फोड़ सकता।" अतः हम अकेले ही ...र्त का पूर्ण और यथार्थ इतिहास किस प्रकार एकत्र कर सकते हैं ? हां यह महान् कार्य बहुत से ... का है। परन्तु हमारे विद्वान् सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वे आशिरःपाद आशा के खलिहान को आग ...हे हैं। उन के हृदय से देश और धर्म की हितैषी जाति से सहानुभूति सर्वथा लुप्त हो गई है। ... कि हमारे देश के बुद्धिमान् और विद्वान लोग ध्यान देते और सत्य की सहायता पर धीरता से ...द्ध होते।

पहला अध्याय

वंशावलि और उत्पत्ति वृत्तान्त

कृष्ण जी महाराज प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजकुल में से थे। उन की वंशावलि यह है :—

१ चन्द्र, २ बुध, ३ पुरुरवा, ४ आयु, ५ नहुष, ६ ययाति, ७ यदु, ८ क्रथु, ९ वृजिनवान, १० स्वाहि, ११ रुशेकु, १२ चित्ररथ, १३ शशबिन्दु, १४ पृथुश्रवा, १५ रूचक, १६ ज्यामघ, १७ विदर्भ, १८ क्रथ, १९ कुन्ति, २० धृष्ठि, २१ निवृत्ति, २२ दशार्ह, २३ व्योम, २४ जीमूत, २५ विकृति, २६ भीमरथ, २७ नवरथ, २८ दशरथ, २९ करंभि, ३० देवरात, ३१ देवक्षत्र, ३२ मधु, ३३ अनु, ३४ पुरुहोत्र, ३५ आयु, ३६ सात्वत, ३७ वृष्णि, ३८ चित्ररथ, ३९ विदूरथ, ४० शूरसेन, ४१ वसुदेव, ४२ कृष्ण। अर्थात् चन्द्र से पृथु श्रवा तक १४ वंश और रूचक से दशरथ तक चौदह पुश्त तथा करंभि से कृष्ण तक चौदह पीढ़ी हुई।

इस वंशावली को ठीक २ लिख कर अब उन की उत्पत्ति का वृत्तान्त लिखा जाता है :—

यमुना तट पर मथुरा एक प्रसिद्ध नगर है, पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत हुए कि उसमें राजा उग्रसेन जी राज्य करते थे। विद्या और कला कौशल में अति प्रसिद्ध थे। और श्रेष्ठता उदारता में बहुत बढ़े हुए थे। जहां तक उस काल के वृत्तान्त पुस्तकों से ज्ञात होते हैं, प्रजा प्रसन्न और खुशहाल थी। मानो कि समय के उद्यान को पतझड़ के वायु का स्मरण तक न था। चिरकाल तक राज्य में शान्ति रही। परन्तु जब से उन की रानी पवन रेखा के गर्भ से कंसदेव नाम का लड़का उत्पन्न हुआ तब से ख़राबी के चिह्न दिखाई देने लगे। राजा ने उसकी शिक्षा दीक्षा के लिये बहुत यत्न किया। परन्तु वह ख़राबी और शरारत में बढ़ता गया। दुराचारी और अधर्मी सरदारों की सम्मति से उसने पूर्ण युवा अवस्था में पहुँच कर अपने पिता को क़ैद कर लिया। और स्वयं अत्याचार से राज्य करने लगा। उसने राजा बरद्वान के साथ मगध देश से जाकर युद्ध किया। और उसको पराजित करके उसकी दो पुत्रियों से विवाह कर लिया। परन्तु विवाह के उपरान्त उसका राज्य उसे लौटा दिया। और स्वयं मथुरा को चला आया। इसके अत्याचारों की प्रसिद्धि दिन प्रति दिन बढ़ती चली गई। किसी अत्याचार करने में उस ने कोई न्यूनता न की। इसी बीच में इस की एक रूपवती बहिन विवाह के योग्य हो गई। जिसका नाम देवकी था। इसे उसके विवाह की चिन्ता हुई। अन्ततः बहुत खोज करने पर राजा शूरसेन, जिस की राजधानी वह पहले बरबाद कर चुका था और जिनका कुल बहुत प्रसिद्ध था, का उसे ध्यान आया। वह वृद्धावस्था में थे। केवल उनका एक नवयुवक लड़का वसुदेव नाम का विद्यमान था। देवकी १६ वर्ष की हो चुकी थी और वसुदेव की आयु २५ वर्ष से कुछ ऊपर थी। इससे बढ़कर विवाह का समय और क्या हो सकता है?

अन्ततः एक शुभ लग्न नियत करके वसुदेव और देवकी का वेदोक्त पद्धति से पाणि-ग्रहण संस्कार किया गया। तथा दहेज में बहुत सामान दिया गया। एक कवि ने उस समय के अनुसार क्या ही अच्छा कहा है कि :—

*बहिन थी जो उस देव की देवकी, हुई बारे हम-अक़्द वसुदेव की।
कहते हैं कि जब बरात जाने लगी तो आकाश वाणी हुई। कवि के वचनानुसार :—
+अयां क़ुदरते आसमानी हुई, पए कंस आकाश वाणी हुई।
फ़ना हश्तम औलादे ख्वाहिर करे, सब असरार मख़्फ़ी को ज़ाहिर करे॥
करे यक क़लम ताख्तो ताराज राज, तेरा दम अदम, सर हो मोहताज ताज।

कंस ने उस बहिन के वध का विचार किया। परन्तु मंत्रियों के समझाने से अपने इस विचार को तो समाप्त कर दिया। परन्तु दोनों पति पत्नी राजकीय कारागार में डाल दिये गये। आकाश वाणी का होना कुछ व्यर्थ सा प्रतीत होता है। परन्तु बहुत पुस्तकों में इस का वर्णन पाया जाता है। शाहे फरीदूं के द्वार गिरते समय आकाशवाणी हुई थी। मसीह के ढूंढने के लिए ईरान से ज्योतिषी अर्थात् पारसी नजूसी गए थे। मसीह के खोजने के लिये कई बार आकाशवाणी हुई कि यह मेरा प्यारा पुत्र है। हीरो डीस राजा पर भी, जब उसने लड़कों के वध की आज्ञा दी थी, ऐसी आकाशवाणी हुई थी। हमने मिश्र के इतिहास में भी एक स्थान पर ऐसी ही आकाशवाणी का वर्णन पढ़ा है। मैस्मरेज़म वाले भी ऐसी ही आकाशवाणी बाजे आदि के द्वारा करते हैं। जिनकी बहुत सी वास्तविकता मद्रास के एक इंगलिश पत्र ने प्रकट की थी। यह सब कपट है। मुसलमानों की पुस्तकों में भी ऐसी बहुत सी ग़ैब (परोक्ष) की आवाज़ों (ध्वनियों) का वर्णन मिलता है। सब स्थानों पर इस का एक ही कारण प्रतीत होता है अर्थात् किसी व्यक्ति को प्रसिद्धि देने के लिये एक विचित्र ढंग बरता जाता था। स्यात् कंसदेव के अंदर के आकाश (हृदयाकाश) से ही यह आशंका उदित हुई हो। चाहे कुछ हो। कंस को विचार आया कि ऐसा न हो कि यह वसुदेव ही, जिसके पिता का राज्य मैंने बिगाड़ा है, मेरी हानि का कारण हो। ऐसा कुछ सोच कर उसने उन्हें क़ैद कर लिया। और उन के नवजात शिशुओं को मारने की आज्ञा देदी।

पाठक वृन्द! जब बुरे दिन आते हैं तब भाग्यहीन मनुष्य ऐसी कल्पना कर लिया करते हैं। परन्तु क्या होता है? मृत्यु से बचना तो सर्वथा असंभव है। क्योंकि काल से अकाल परमेश्वर के अतिरिक्त और किसी का छुटकारा नहीं। मसीह की उत्पत्ति के समय भी इंजील में लिखा है कि हीरोडीस ने सहस्रों लड़कों का वध कराया। यद्यपि इसका किसी विश्वस्त इतिहास में उल्लेख नहीं है। और न हीरोडीस के समय के किसी इतिहासज्ञ की गवाही मिलती है। परन्तु इंजील में अवश्य लिखा है। और ईसाई व पादरी अवश्य हृदय से विश्वास रखते हैं। इसी प्रकार शाहनामा में लिखा है कि फ़रीदों के उत्पन्न होते समय ज़हाक ने बहुत लड़कों का वध करा दिया था। और ऐसा ही मूसा की उत्पत्ति के समय भी हुआ। संक्षेपतः कई वर्ष तक वसुदेव और देवकी कारावास गृह में रहे और उसी स्थान पर आठ लड़के हुए। पहले छः लड़के कंस ने अपने हाथ से मार डाले और सातवां बच्चा उत्पन्न होने के समाचार से पूर्व ही रोहिणी के पास पहुँचाया गया। जो यदुवंश की एक सदाचारिणी श्रेष्ठ स्त्री कंस के अत्याचारों से भाग कर गोकुल में नन्द के घर रहा करती थी। उसने उसे

*कंस की बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से हो गया। हम-अकद-धर्मपत्नी।

+भगवान् की लीला ऐसी हुई कि उस समय कंस के लिए आकाशवाणी हुई कि तुझे अपनी बहिन की आठवीं सन्तान मारेगी। सभी गुप्त भेदों को वह प्रकट करेगी। तेरा राज्य और शासन वही समाप्त करेगी। तेरा दम निकलेगा और तेरे सिर पर ताज नहीं रहेगा। (अनुवादक)

पाला और उसका नाम बलराम रखा। वहां यह बहाना किया गया कि गर्भ गिर गया है। आठवें गर्भ में महाराज कृष्ण जी की उत्पति हुई। जिसको एक भावुक कवि इन शब्दों में लिखता है :—

†शमीमे मक़दमे गुल से बयकबार, हुए मादर पिदर शादाबो सरशार।
बरोज़े अष्टमी व चारशंबा, बमाहे नेक भादों साले ज़ेबा॥
बवक़्ते नीम शब बा रुए रौशन, हुआ वह ग़ैरते मह जल्वा अफ़गन।

एक दूसरा कवि इसी अभिप्राय को इन शब्दों में लिखता है कि :—

*चली बादे हश्तुम चूं बादे बहार, तो फिर नख़्ले उम्मीद में आया बार।
अजब माह भादों की तारीक शब, अयां जल्वाए बर्के तावां ग़ज़ब॥
वह तारीख़ हश्तुम वह अब्रे बहार, वह कैफ़ीयते मौसुमे खुशगवार।
गई ता कमर जुल्फ़ लैलाएशब, हुए कृष्ण जी रौनक-आराए शब॥

उनका सुन्दर मुखड़ा और गोल गाल देख कर माता पिता हृदय से बलि २ होने लगे। तथा अपने कारावास सम्बन्धी कष्टों को भूल कर उनके बचाने की चिन्ता करने लगे। अन्त में निश्चय किया कि यमुना पार गोकुल में जाकर नन्द जी को सोंप दें। लड़के ने भी अपनी न बोल सकने वाली जिह्वा से मानो इसका समर्थन किया कि :—

सूए गोकुल मुझे ले चल शिताबी, न दे कुछ अपने दिल को पेचो-ताबी॥

जिन को परमेश्वर बचाता है, सहस्रों सामान उसके लिये प्राप्त हो जाते हैं। सौभाग्यवश दरबान सिपाही सोगए। और वसुदेव जी लड़के को लेकर चल दिये। यमुना से पार हो नन्द जी के घर पहुँचे। अकस्मात् उसी रात्रि नन्द जी की रानी यशोधा के भी लड़की उत्पन्न हुई थी। वसुदेव जी लड़के को उस की गोद में डाल कर लड़की लेकर मथुरा में पहुँच गए। उनके वापिस आने पर जब लड़की रोई तब प्रहरियों की आँख खुली और कंस देव को सूचना दी गई।

दरबानों के सोने और वसुदेव के कारावास गृह से निकल जाने तथा यमुना से पार होने के बारे में बहुत से लिखने वालों ने चमत्कारों के रंग चढ़ा कर लिखा है कि कृष्ण जी की चरण वन्दना के लिये यमुना नदी बढ़ी और उन के चरणों का चुम्बन करके पुनः पांव डूबने जितनी हो गई। किसी ने कहा है कि—

+जो चूमा आब ने पाए गरामी।
हुआ पा-याब वह दर्या तमामी॥

परन्तु यह केवल हमारे ही लिखने वालों का दोष नहीं। प्रत्युत प्रत्येक देश में महापुरुषों के

†फूल की सुगन्धि के आने से एक दम माता पिता प्रसन्न और मस्त हो उठे। अष्टमी के दिन और बुद्धवार, भादों के पवित्र मास और सुन्दर वर्ष आधी रात के समय वह चांद से भी सुन्दर कृष्ण उत्पन्न हुआ।

*बहार की हवा के समान आठवीं हवा चली (आठवीं सन्तान उत्पन्न हुई) जिससे आशा के वृक्ष में फल लगा। भादों मास की आधी रात बड़ी विचित्र थी। चमकती हुई बिजली के समान वह प्रकाश मुख कृष्ण उत्पन्न हुआ। वह आठवीं तिथि, वह बहार का बादल, वह सुहावने मौसम की स्थिति। रात रूपी लैला की जुल्फ़ें जब कमर तक जा पहुंचीं अर्थात् जब आधी रात हुई तो श्री कृष्ण महाराज ने रात की रौनक को अपने पवित्र आगमन से बढ़ाया।

+जब पानी ने आप के महान् चरणों को छुआ तो उस नदी का पानी पांव तक पहुंच गया। (अनुवादक)

इतिहास लिखने वालों की ऐसी पद्धति है। ह० मुहम्मद साहब की शबे मेराज (आकाश यात्रा) की कथा, मूसा की कुल्जुम नदी की चमत्कार पूर्ण कथा। कीखुसरो बादशाह का अम्मां नदी से पार जाना, महाराज रंजीतसिंह का अटक से पार होना, ईसा की उत्पत्ति के समय की चमत्कार पूर्ण घटनाएं, इब्राहीम जरदुष्त और जैनी लोगों के वृत्तान्त सारे के सारे एक दूसरे से बढ़ कर हैं। किस ने कमी की जो हम इतिहास लेखकों को बुरा कहें। नानक जी और कबीर जी के वृत्तान्तों पर लोगों ने ऐसी ही अतिशयोक्तियों से काम लिया है। सहजानन्द संन्यासी के मत वालों ने भी ऐसे ही करामाती तूफ़ान बांधे हैं। जब कंसदेव को सूचना मिली तो निर्दयी जल्लाद ने इस पर दया न की और इस निष्पाप बेचारी को पत्थर की शिला पर अपने हाथों से पटखा और मार डाला। उधर नन्द और यशोदा कृष्णदेव के पालन पोषण में तन्मय होगए। इधर भविष्य में सन्तान उत्पन्न न होने के विचार से अथवा निराशा का सामना देख कर कंस देव ने दोनों को कारागार गृह में कष्ट देना छोड़ दिया।

उधर बलराम और कृष्ण जी प्रथमा के चन्द्रमां की भाँति बढ़ने लगे। उनके बाह्य तथा आन्तरिक श्रेष्ठ गुणों में दिन प्रति दिन उन्नति होती गई। कभी २ वसुदेव और देवकी भी छिपकर आँखों को ठंडा कर लेते थे। परन्तु यह बात देर तक छिपी न रह सकी। कंस को भी लोगों ने इसकी सूचना दे दी। जिस पर उसने कुछ शरारती गुंडे नियत किये जो किसी ढंग से जा कर कृष्ण जी के जीवन का अन्त कर दें। जिनमें से कुछ के नाम यह हैं:—पूतना, बकासुर, अघासुर, केशी, बूमासुर, कागासुर, शंक-चूड़ आदि। इन को भिन्न २ समयों में राजा कंस ने कृष्ण महाराज के वध के लिये भेजा, जो सब के सब अपनी दुष्टता का दंड पाते रहे।

यद्यपि इन सब को राक्षस या दैत्य लिखा है। परन्तु यह सारे न तो राक्षस थे और न दैत्य प्रत्युत मनुष्य थे। इन चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में से थे। केवल बुरे कर्मों के कारण से लोग उन्हें राक्षस और दैत्य पुकारते हैं। राजा कंस वास्तव में कृष्ण देव जी का मामा था। उसे भी दैत्य लिखा है। बुद्धिमान् मनुष्य भली प्रकार समझ सकते हैं कि राक्षस वही है जो भले लोगों को कष्ट दे, मांसाहार करे, मद्यपान करे, दुराचारी हो। देवता वही है जो भले लोगों की सहायता करे, मांस न खाता हो, मद्य न पीता हो और चाल चलन का अच्छा हो।

"सत्येन पन्था विततो देवयानः"

देवता सच्चे सीधे मार्ग पर चला करते हैं।

मनुस्मृति ११/६ में यज्ञ अर्थात् अग्नि-होत्र करने वालों का नाम देवता लिखा है और दूसरे लोगों का असुर। महाभाष्य में विद्वान् का नाम देवता लिखा है:—

"देवा इति पंडिता इत्यर्थः"

कृष्ण जी की इन कथाओं के साथ भी इसी दिव्य शक्ति का वर्णन है। हमें इससे इनकार नहीं कि वह एक असाधारण महापुरुष थे। वह यादव वंश के चांद क्या सूर्य थे। निःसन्देह वह अपने समय के देवता थे। राजर्षि थे। किन्तु यह कथाएं सत्य से सर्वथा दूर हैं। अवश्य उन्हों ने अपने शत्रुओं को मार डाला और बलराम जी ने बहुतों को पछाड़ा परन्तु बुद्धि और बल से न कि अप्राकृतिक चमत्कारों से।

कृष्ण जी की गोकुल और वृन्दावन की घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाली केवल तीन बातें प्रसिद्ध हैं। अतः आवश्यक है कि हम उन का स्पष्ट वर्णन करें।

गोपियों के साथ व्यभिचार, रास विलास तथा मक्खन चुराना

महाभारत (जो आर्यावर्त वासियों का प्रामाणिक ग्रन्थ है) के १८ अठारह पर्वों में जहां तक हम ने स्वयं देखा और योग्य कथावाचक विद्वान् पण्डितों से पूछा, कहीं भी इन बातों का चिह्न तक नहीं है। इस के विरुद्ध जितनी चाहें गवाहियां मिल सकती हैं। यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है, कि अल्पायु में व्यभिचार करने वाले लोग बहुत शीघ्र निर्बल हो जाते हैं तथा शक्ति शाली शक्तिहीन हो जाते हैं। वह युद्ध के योग्य कदापि नहीं रहते, न वीर कहला सकते हैं। तथा अल्पायु में व्यभिचार में फंस जाने वाले मनुष्य न योग जानते और न कर सकते हैं। परन्तु कृष्ण जी की प्रसिद्ध गीता में बीसियों स्थानों पर गवाही मिलती है। स्वयं व्यास जी लिखते हैं कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धरः।

और सब से बढ़ कर एक और प्रमाण है अर्थात् उपनिषदों की प्रामाणिकता का अनुमान करने के लिये बड़े विद्वान् की आवश्यकता है।

प्रतीत होता है कि यह उपनिषद् कृष्ण जी के समय में पूर्णता को पहुँचे। जिन में बहुत अच्छी प्रकार से उन के ब्रह्मचर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उपनिषद् के मूलशब्द इस प्रकार हैं:—

स घोषाङ्गिरसः कृष्णाय देवकी पुत्राय प्राह स अपिपास अभवत्। (छान्दोग्य)

अर्थ—घोषाङ्गिरस कुल के ऋषि ने देवकी के पुत्र कृष्ण को यह विद्या पढ़ाई जिस से उन्हों ने (ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण करके) पूर्ण विद्वान् हो कर शान्ति प्राप्त की और समावृत्त हुए।

इस से स्पष्ट प्रकट है कि उन्हों ने ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या प्राप्त की थी तथा योगाभ्यास किया था। तो हम केवल बृजविलास के कहने पर किस प्रकार विश्वास करें कि वह अवश्य इन (अश्लील) बातों को करते थे। बृजविलास पृ० ५०३ से आगे रास लीला और महारासलीला का आरम्भ है। जिस में आचार, सभ्यता और वेद मर्यादा के विरुद्ध बहुत सी बातें लिखी हैं। परन्तु यह केवल महात्मा लोगों को कलंक लगाने की इच्छा से ही लिखी गई हैं। जब लोगों का मन व्यभिचार को चाहता है तो महापुरुषों पर कलंक लगाते हैं। बृजविलास संवत् १८२७ माघ शुक्ल पंचमी सोमवार को बननी शुरू हुई जैसाकि उस में स्वयं लिखा है कि—

संवत् शुद्ध पुराण सत जानो।
ता पर और नक्षत्रन आनो॥

अर्थात् १८ सौ २७ में यह पुस्तक लिखनी प्रारंभ हुई। इसका कुछ वर्णन भक्तमाल अध्याय ८१ में भी लिखा है। वास्तविक नाम त्रिपुरदास था। ऐसे ही विचार प्रेमसागर में हैं। परन्तु वह भी अप्रमाणिक हैं। क्योंकि पुष्टि मार्ग के चलने के पश्चात् बहुत से ऐसे कलंक महाराज जीके जीवन पर लगा लिये गये हैं।

डाक्टर डब्ल्यू-डब्ल्यू-हंटर लिखते हैं कि:—

"चैतन्य के मरणोपरान्त विष्णु की आत्मिक पूजा में कमी आई। लगभग १५२० ईस्वी में

वल्लभ-स्वामी ने उत्तर भारत में उपदेश दिया कि जीवात्मा की स्वतंत्रता शरीर के कष्टों पर आधारित नहीं। और ईश्वर की खोज नग्नता, उपवास तथा एकान्त वास में नहीं। प्रत्युत इस जीवन के भोग विलास में करनी चाहिये। एक धनी सम्प्रदाय बहुत काल से कृष्ण और राधा की पूजा पर विश्वास रखता था हिन्दू कृष्ण और राधा के कृत्रिम प्रेम को आध्यात्मिक रहस्यमय समझते हैं।" (संक्षिप्त भारतीय इतिहास उर्दू पृ० १६५) पुनः लिखते हैं कि "वल्लभ स्वामी को विष्णु के भोग विलास वाले संप्रदाय का संस्थापक कहना चाहिये। वह विष्णु की पूजा विशेषतः कृष्ण के अवतार में करता था। जब कि उसके शिष्यों ने सुन्दर युवकों का रूप लिया, वन और ग्रामों में भोग विलास का जीवन व्यतीत किया। उसकी पूजा के साथ छाया युक्त कुंज' सुन्दर स्त्रियां, बढ़िया भोजन आदि पदार्थ, जो गरम देश वासियों की मनचाही वस्तु हैं, सन शामिल थीं। (पृ० १६६)

भक्तमाल में भी ऐसी बहुत सी कथाएं भरी पड़ी हैं। तीन सौ वर्ष हुए कि इसको नाभा जी ने लिखा था। (मुख़्तसर तारीख़े हिन्द पृ० १५२)

यह भी एक स्मरण रखने की बात है कि कृष्ण जी का कन्हैया नाम भागवत में नहीं, और न राधा का उसमें वर्णन है। परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि भागवत में उन सब कथाओं का वर्णन है जो इन पुस्तकों में विस्तार से लिखी गई हैं। भागवत न तो व्यास जी की बनाई पुस्तक है और न इतनी पुरानी है जितनी कि लोग समझते हैं। हमने जहां तक खोज की है ११०० ईस्वी पूर्व की पुस्तकों में उसका कोई वर्णन नहीं मिलता है और चौदह सौ १४०० वर्ष से अर्थात् राजा भोज के समय से पूर्व किसी भी पुराण का नाम और चिह्न तक नहीं मिलता। स्वयं देवी भागवत संस्कृत भूमिका में योग्य टीकाकार ने अकाट्य युक्तियों से सिद्ध किया है कि भागवत वोपदेव का बनाया हुआ है। जिसके भाई जयदेव ने गीत गोविन्द बनाया। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि भागवत के पश्चात् एक हज़ार वर्ष से इधर यह सब कथाएं कृष्ण जी के सम्बन्ध में घड़ी गईं। और रासलीला खेलने वाले लोगों अर्थात् कथक लोगों के द्वारा इन आचार बिगाड़ने वाले कथानकों का उपक्रम हुआ, जो अब संप्रदाय का रूप धारण कर गया है। हमें महाभारत, गीता और उपनिषदों से कृष्ण जी का जीवन एक योगेश्वर, महात्मा, और उच्च विचारों वाले राज कुमार का जीवन प्रतीत होता है। परन्तु प्रेम सागर, भागवत, वृज विलास और सूर सागर सर्वथा इन आर्ष ग्रन्थों के विपरीत हैं।

हमें सदाचार और अध्यात्मवाद सिखाता है कि हम महाभारत गीता और उपनिषदों का समादर करें जैसा कि स्वयं एक विद्वान ने लिखा है कि :—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

अर्थात् सब उपनिषदों को विचार करके और उनका गहरा अध्ययन करके कृष्ण जी ने गीता को निकाला है। उपनिषद् गौ हैं। कृष्ण जी गवाल है। अर्जुन बछड़ा है और गीता दूध है।

पुनः हम गीता के ऐसे अच्छे वचन को छोड़कर किस प्रकार सत्यान्वेषण न करने वाले रंगीन स्वभाव कवियों के वचन पर विश्वास करके एक महापुरुष के जीवन पर कलंक लगावें। सत्य तो यह है कि कृष्ण जी के जीवन के, ज्यों २ समय बीतता गया, लोगों ने बहुत ही गन्दे कथानक बनाने आरम्भ

कर दिये। अतः प्रत्येक देश हितैषी तथा जाति के शुभचिन्तक का कर्तव्य है कि इनके पवित्र जीवन पर जो गन्दी और व्यर्थ कथाओं के द्वारा अथवा व्यर्थ और गन्दे नावलों के प्रमाणों से कलंक लगाए गए हैं, उनको दूर करके उनकी वास्तविक जीवनी, जैसी कि उनके वचनों और उनके समकालीन महापुरुषों के वचनों से सिद्ध होती है, जनता के सम्मुख समुपस्थित करें। हमारी वर्तमान खोज से, जो हमें वर्षों कृष्ण-मत में रह कर और दीर्घ काल तक नवीन वेदान्त के महा वाक्य पढ़कर तथा गीता के पाठ करने से प्रकट हुआ है, वह यही है कि महात्मा कृष्ण चन्द्र से उस चाल चलन का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है जो भागवतादि में लिखा है और न प्रेम-सागर से इनका कुछ सम्बन्ध है। इतिहासज्ञ आनरेबल मौंट स्टुअर्ट अलफ़निस्टन भूत पूर्व गवर्नर बम्बई अपने भारत वर्ष के इतिहास में लिखते हैं कि:—

मथुरा के वृजवंश में कृष्ण उत्पन्न हुए। किन्तु एक गवाले ने जो उसी के पास रहता था। एक अत्याचारी राजा कंस के चंगुल से बचा कर उन का पालन पोषण किया।

[तारीख़े हिन्दुस्तान अ० ४ पृ० १७३]

इसी प्रकार का वर्णन करनल टाड ने अपनी पुस्तक राजस्थान प्रथम भाग के पृ० ५२३ पर किया है।

सर जौन्स अपनी "एशिया के हालात" की पुस्तक प्रथम भाग में लिखते हैं कि :—

"कृष्ण के इस काल अर्थात् बालपन के समय का हिन्दुओं के मन पर बहुत ही प्रभाव पड़ा है। कृष्ण के बालपन की गतिविधि जैसे दूध चुराने और सांपों के मारने के पर्व मनाने से कभी भी उन का मन नहीं भरता। और हिन्दुओं में एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय कृष्ण को सृष्टि रचयिता समझ कर बालपन के रूप में उन की पूजा करता है। इसी प्रकार कृष्ण की यौवनावस्था, जो उन्हों ने गोपियों के साथ नाचरंग, खेल-कूद, बाँसुरी बजाने में व्यतीत की, उन की पूजा करने वाली स्त्रियों में एक जोश उत्पन्न करती है। कृष्ण पर कुछ गोपियां ही आसक्त न थीं प्रत्युत समस्त भारत की धनिकों की स्त्रियां और रानियां जो उन का सौन्दर्य और चमक देखती थीं उन पर बलि २ जाती थीं।" [पृ० २५६]

इसी प्रकार भाग ३ पृ० १८५ में भी जो जय देव के गीत के अनुवाद के सम्बन्ध में है। इसी प्रकार का वर्णन है। और तारीख़े हिन्दुस्तान के पृ० १७३ पर इसी का वर्णन है।

जयदेव कृत गीतगोविन्द तथा और इसी प्रकार की कविताओं को योरुपीयन इतिहासकार तथा संस्कृत के विद्वान् केवल "ग्रामीण काव्य" का नाम देते हैं। जैसा कि उस के सम्बन्ध में एशिया वृत्तान्तान्वेषण में लिखा है कि—

जयदेव के ग्रामीण काव्य "गीत गोविन्द" के प्रायः गीत ग्रामीण गीतों का ही रूप उपस्थित करते हैं। जिन से मैं परिचित हूँ। इन गीतों में उत्तम प्रकार का विवरण तथा भावुकता है। परन्तु स्वाभाविकता और उत्साह का अभाव है, जो हिन्दु कवियों के विशेष गुण समझे जाते हैं। इन गीतों में चुटकले और उपहास भी हैं। उन का लेखक चौदहवीं शती ईस्वी में हुआ है। अतः प्रतीत होता है कि व्यंग्यात्मक गीतों का ढंग उस ने मुसलमानों से लिया होगा।

[भाग ३ पृ० १८५) तारीख़े हिन्दुस्तान भाग १ पृ० २६५]

लिथबर्ज, प्रसिद्ध इतिहासकार, लिखते हैं कि "गीत गोविन्द एक ऐसी कविता है जो कुछ कुछ नानक जी की पद्धति पर है। इस में कृष्णचन्द्र गवाले और राधिका उसकी गवालिन के प्रेम

की कथा है। जो जय देव ने बारहवीं शती ईस्वी में लिखी थी। इस कवि की कविता रसीली है।"
(तारीख़े हिन्द पृ० २४२)

देवी भागवत के टीकाकार के कथनानुसार तथा उसकी कविता की पद्धति के अनुमान से भागवत पुराण का कर्ता बोपदेव सिद्ध हो चुका है। और जयदेव तथा बोपदेव दोनों सगे भाई थे। परन्तु गीत गोविन्द कुछ वर्ष पश्चात् लिखा गया प्रतीत होता है। कुछ भी हो ऐसे दोष लगाना किसी भी अवस्था में उपयुक्त नहीं। भागवत के कथनानुसार उन की आयु जब तक वह गोकुल और वृन्दावन में रहे केवल आठ अथवा दस वर्ष की थी और किसी प्रकार इस अनुमान से अधिक नहीं पाई जाती। अतः ऐसी अवस्था में लड़कियों के साथ खेलना, फिरना; हंसना तो सम्भव है। परन्तु ऐसे अन्धेर की बातें करना सर्वथा असम्भव है। इस के अतिरिक्त इस आयु में व्यभिचार का विचार तक भी नहीं किया जा सकता। पुनः अनुमान से दूर ऐसे कथानक कभी स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं। इस आधार पर हमें इनके मानने में हिचकचाहट ही नहीं प्रत्युत सर्वथा इनकार है। प्रोफ़ेसर विल्सन का लेख भी हमारी धारणा का समर्थक है। जिन्हों ने अच्छी प्रकार विचार और अनुभव करके लिखा है कि "ऐसे विचार और काम-वर्द्धक कथानक कामी लोगों को प्रसन्न करने के लिये लिखे गये हैं। (कृष्ण की पूजा करने वालों के सम्प्रदाय के सम्बन्ध में) इस संप्रदाय में समस्त धनी वर्ग और कामी स्त्री पुरुषों के प्रत्येक श्रेणी के वर्ग सम्मिलित हैं।"

[तहक़ीक़ाते एशिया भाग ६ पृ० ६५, ६६ तारीख़े हिन्दुस्तान पृ० १७५]

दूसरा अध्याय

श्री कृष्ण जी महाराज की ब्रह्मचर्यावस्था का वृत्तान्त बहुत सा हम पहले अध्याय में वर्णन कर चुके हैं। इस के अतिरिक्त इन की अपूर्व शूरवीरता का वर्णन करना भी यहां अभीष्ट है। इस समय के लोग प्रायः वृष्टि का देवता राजा इन्द्र को समझते थे और विचार करते थे कि उस की कृपा के बिना वर्षा नहीं होती। इसी विचार के अनुसार गवालों में (जिन्हें सदा घास चारे की चिन्ता अधिक रहती थी) कार्तिक मास में राजा इन्द्र के नाम पर कई प्रकार की पूजा होती थी। चाहे उस के नाम पर ब्राह्मणों को खिलाते थे। चाहे गौओं को खिलाते थे। यद्यपि यह प्रतीत नहीं होता कि किस प्रकार पूजा करते थे। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि किसी प्रकार अवश्य किया करते थे। जिन का अभिप्राय इस से केवल यह था कि वर्षा समय पर बरसे और अन्न की बहुतात हो। गौएं भैंसें बहुत दूध देवें। तथा खेती बाड़ी भी अच्छी प्रकार हो। यद्यपि यह स्वाभाविक है और प्रत्येक सभ्य, असभ्य का हार्दिक उल्लास है कि ऐसा हो क्योंकि हमें "तोरैत" से भी ऐसा ही ज्ञात होता है कि "तुम खुदावन्द अपने खुदा की पूजा करो वह तुम्हारी रोटी और पानी में बरकत देगा।" खरूज $\frac{२३}{२५}$ में अच्छी भूमि का केवल यही परिचय दिया कि उस में दूध और शहद बहता है अर्थात् बहुत है। अतः दूध की अधिकता वास्तव में ईश्वरीय दया का चिह्न है और यही गोकुल और वृन्दावन के गवाले लोग भी ईश्वर से मांगते थे। भूल केवल यह थी कि वह राजा इन्द्र को इस का दाता समझते थे। अन्ततो गत्वा जब श्री कृष्ण जी ने होश संभाला तथा युवावस्था को पहुँचे तो एक बार उन की उपस्थिति में कार्तिक मास का वह दिन आया जब कि सब गोकुल वासियों ने इन्द्र की पूजा का विचार किया। उन की अवस्था का चित्रण करते हुए एक कवि कहता है कि :—

सल्फ़[१] से ब्रज में ऐ नेक इक़बाल, परस्तिश[२] इन्द्र की होती थी हर साल।
मुबारक माहे कातिक रोज़ पड़वा, ज़हूर नूरे माहे आलम[३] आरा॥
तमामी ब्रज में उस रोज़ शाहा, सरोदो रक्स[४] होता था हर इक जा।
लिबासे नौ[५] बदल कर हर ज़नो मर्द,[६] तराने ऐश के गाते थे पुर दर्द॥
जो आई माह कातिक की वह पड़वा, हुए खुश मर्दोज़न आला व अदना[७]।
सभों ने अपने अपने क़स्रो ईवां[८] किये आरास्ता[९] मानिन्दे बुस्तां[१०]॥
निगारो नक़्श से हर बाम संगीं,[११] बनाए गुल्शने जन्नत से रंगीं।
हर इक ने नौ बनौ पोशाक बदली, कि हो हर रंग की जिस तरह बदली॥
तुआमे[१२] मुशक बूए, मेवाए तर, मुअत्तर नूरो हलवाए मुअत्तर।
बनाए सब ने बअनवाए[१३] ईजाद, शहे रूहानियां ता होवे दिलशाद[१४]॥
शहे गोकुल ने बा शानेमवाही,[१५] किया तरतीब जशने बादशाही।
मुग़न्नी[१६] मुतरिबो[१७] बर्गे गुलो[१८] शमअ, सर अंजामे परस्तिश[१९] सब किया जमअ॥

१–पुराने समय से २–पूजा ३–संसार को सजाने वाला चन्द्र ४–गाना व नाच ५–नये कपड़े ६–स्त्री पुरुष ७–छोटे बड़े ८–महल ९–सजाये १०–बाग़ ११–पत्थर या सीमेंट का महल १२–खाना १३–कई प्रकार के १४–प्रसन्न १५–शाही शान १६–गाने वाले १७–बजाने वाले १८–फूलों के पत्ते १९–पूजा के समय।

चुने मेवा वह तश्ते ज़रफ़िशां[1] में, जो उम्दा मिल सके बाग़ो जहां में।
लिबासे फ़ाख़िरा[2] पहिने जसोधा, खुशी से करती थी सामाने पूजा॥
ज़ुबाने ब्रज थी रश्के लाला[3] व गुल, ज़र अफ़्शां पैरहन[4] पहिने ज़ुज़ो कुल[5]।
हर एक बार वे रश्के नारो नारंज,[6] बरंगे[7] कोयले तूती नवा-संज[8]॥
जो देखा कृष्ण ने यह साज़ो सामां, पिदर मादर से पूछा बनके नादां।
यह मेवा यह हल्वाए मुअत्तर, यह रग़्सेदिल-नवाज़ो नग़मा-ए-तर॥
यह रंग-आमेज़ीये[9] सक़्फ़ो दरो बाम,[10] यह मुश्को ऊदो अंबर नूरो बादाम।
यह फ़र्शे क़ाक़मो संजाबो दीबा,[11] नहीं है जो वज़ुज़[12] शाहों के ज़ेबा[13]॥
मुरतब किस लिये है ब्रज में आज, मगर आएगा कोई साहिबे-ताज[14]।
तवाज़ो आज है किस बादशाह की, नवेदे[15] जल्वा है किस रश्केमाह[16] की॥
शहे गोकुल ने फ़रमाया ख़लफ़ से,[17] कि है यह रस्म गोकुल में सलफ़[18] से।
शहे रूहानियां की आज के दिन, परस्तिश होती है बा सिदक़े बातिन[19]॥
उसी के वास्ते है सब यह सामां, शबिस्तां में वह होगा आज मेहमां।
जो हक़्क़ पाता है वह शाहा निको फ़ाल,[20] तो रहमत ख़ल्क़ पर करता है हर साल॥
ज़ेरूए लुत्फ़ बरसाता है पानी, कि जिस से ख़ल्क़ की है ज़िन्दगानी।
करम से उस के ऐ माहे जहां-ताब, दरख़्तो किश्त[21] सब होते हैं सेराब॥
कहा मोहन* ने मैं आगाह हुआ आज, कि राजा इन्द्र है खाने को मोहताज।
जो रिश्वत ख़ल्क़ से पाता है हर साल, तो बरसाता है पानी हो के ख़ुशहाल॥
जहां वह हक़्क़ न पाता होगा इस हक़, वहां बारिश न होती होगी मुतलक़।
वले[22] बावर[23] नहीं है मुझ को यह बात, कि होवे इन्द्र के क़ाबू में बरसात॥
† फ़िज़ाओ बादो आबो आतिशो ख़ाक, किये हैं जिसने पैदा सबसे है पाक॥
यह पाँचों हैं उसी यकता[24] के महकूम,[25] करे मौजूद[26] पल में चाहे मादूम[27]+॥
परस्तिश नारवा[28] है उस की शाहा, न दुनिया जिससे हासिल हो न उक़बा[29]।
जो है यकताए आलम वह निरंकार, जिसे कहते हैं चारों वेद करतार॥
करो उसकी परस्तिश बादिलो जां, खिलाओ राह में उसके यह सामां।
जो मांगोगे मिलेगा सबको बेरंज, ज़नो फ़रज़न्दो मालो दौलतो गंज[30]॥

---

* प्रेम व प्यार के कारण पिता ने उसे मोहन कहा। और भोलेभाले रूप के कारण भी मोहन कहा।

† आकाश +मादूम का अभिप्राय अत्यंताभाव नहीं है। केवल अदृश्य अर्थात् दृष्टिगत न होना है। क्योंकि अत्यंताभाव किसी वस्तु का नहीं होता। (अनुवादक)

१—सोने से चमकते थाल में। २-गर्व करने योग्य। ३-जिस पर लाला के फूल रश्क करें ४—सुनहरी कपड़े ५—सब के सब। ६--अत्यन्त सुन्दर जिन पर अग्नि और नारंगी भी रश्क करें। ७—के रूप में। ८—गाते थे। ९—रंग रौग़न। १०—छत, द्वार तथा महल। ११—रेशमीशाल। १२—सिवाय। १३—सुन्दर। १४--राजा। १५—शुभ सूचना। १६—चांद जिसपर रश्क करे। १७—लड़के। १८—पूर्वजों से। १९—सच्चे हृदय के साथ। २०—उत्तमभविष्य वाला। २१—खेतियां। २२—किन्तु। २३—विश्वास करने योग्य। २४—अद्वितीय। २५—आधीन। २६—अस्तित्व। २७—नष्ट। २८—अनुचित। २९—स्वर्ग। ३०—स्त्री, बच्चे, धनदौलत।

फ़जूं[३१] हर साल से बरसेगा पानी, ज़राअत होगी सब बे जां फ़िशानी[३२]।
यह सुनकर थे जो दानिशमन्द ज़ीहोश,[३३] रहे वह सूरते तसवीर ख़ामोश ॥
बुज़ुर्गों से किया दिल में तअम्मुल,[३४] किया इक्बाल बेउज़रो तअम्मुल[३५]।
जो थे दो चार ग्वाले गोप नादां, हुए वह सुनके नादानी से हैरां ॥
कहा शाहे मलायक[३६] की सलफ़ से, परस्तिश होती है इज्ज़ो शरफ़[३७] से।
उसे मौक़ूफ़ करके पूजिये कोह, नहीं कुछ इसमें हासिल ग़ैर अन्दोह[३८] ॥
यह दानाई नहीं ऐ शाहे ज़ीहोश,[३९] कि कीजे तिफ़्ले नादां का सुख़न गोश[४०]।
शाहे रूहानियां की क़दर शाहा. भला क्या जाने यह नादान लड़का ॥
कृष्ण ने जबकि देखा ऐ शाहन्शाह, मेरे कहने से हैं सब गोप गुमराह।
रहे ख़ूबी[४१] से की मअक़ूल तक़रीर,[४२] हुए क़ायल जवानो कोदको पीर[४३] ॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः, यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्, तस्मात्सर्वं गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते, आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
वेद प्रमाणकं कर्म पूर्वस्योत्पादकं भवेत्, न तु पाखंड संसिद्धि धर्मस्योत्पादकं भवेत् ।

अन्न के खाने से निज भौतिक शरीर उत्पन्न होता है। अन्न मेघ बरसने से होता है। मेघ यज्ञों से होते हैं' यज्ञ आहूतियों से परन्तु आहूति कर्म से और कर्म वेद से उत्पन्न होते हैं। वेद अविनाशी परमात्मा से प्रकट होते हैं। अतः सर्व व्यापक ब्रह्म के निमित्त प्रति दिन यज्ञ करना चाहिये।

क्योंकि अग्नि में आहुति डालने से वायु वाष्पद्वारा सूर्य को जाता है। और सूर्य से वृष्टि होती है। उससे अन्न और अन्न से प्रजापालन होता है। अतः वेद से प्रमाणित जो अग्नि होत्र कर्म है, इसके करने से आनन्द पूर्वक वृष्टि होती है। और स्वास्थ्य लाभ होता है। इस ईश्वराज्ञा के विरुद्ध जो इन्द्र-पूजारूपी पाखंड है उससे धर्म की कभी वृद्धि नहीं हो सकती।

ख़लायक[४४] व्रजो गोकुल की तमामी,[४५] हुई राही बसूये कोह नामी।
तमामी औरतें अशराफ़ो अर्ज़ल,[४६] कोई चंडौल में और कोई पैदल ॥
चुने हर तश्त में मेवे तरो ख़ुश्क, कि थी परवुरदा जिनकी निगहते मुश्क।
सुपारी नारियलो बर्गो तंबोल, लिये सब थालियों में ग़ौल दर ग़ौल[४७] ॥
घृत लोबान अगर गुगुलो ऊद, शकर काफ़ूरो मांसी लेलिये ज़ूद[४८]।
शाहे गोकुल हुए सवार रथ पर, बिठाए गोद में पूरे दिलावर ॥
जसोधा पालकी में थी बसद शान, परस्तारें[४९] लिये पूजा का सामान।

३१—अधिक। ३२—विना परिश्रम के। ३३—समझदार। ३४—विचार। ३५—बिना हिचकचाहट। ३६—देवताओं का सम्राट। ३७—शानोशौकत से। ३८—दुःख। ३९—बुद्धिमान सम्राट। ४०—बात सुनें। ४१—सुन्दर ढंग से। ४२—बुद्धिमत्तापूर्ण भाषण। ४३—बच्चे और बूढ़े। ४४—प्रजा। ४५—सारी। ४६—उंची और नीची जाति की। ४७—झुंड के झुंड। ४८—शीघ्र। ४९—पूजा करने वाली दासियां।

* गोवधन पर जाकर श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने बलराम जी सहित हवन कुंड बनाया। और एक बहुत बड़ा यज्ञ रचा। समस्त गोकुल व वृन्दावन के लोग जो यज्ञ की सामग्री लाए थे, उससे हवन किया गया। सब लोगों ने बारी २ से आहुतियां डालीं। सब देश उस हवन की सुगन्धि से सुगन्धित हो गये। ब्राह्मणों, साधुओं और अभ्यागतों के लिये भोजन यज्ञ भी किया गया। उनका प्रत्येक प्रकार से आतिथ्य सत्कार हुआ। आकाश में वाष्प एकत्र हुई। तथा बड़ी मूसलाधार वृष्टि हुई। कृष्ण जी की इस पवित्र शुभ प्रस्तावना से इन्द्र की पूजा गोकुल से बन्द हो कर वेदोक्त पूजा प्रचलित हुई। ब्रजविलास में एक बात लिखी है। जिससे यह परिणाम निकलता है। वह तो पाठक स्वयं समझ लेंगे। हम उसको किसी परिणाम के बिना लिखते हैं।

लतीफ़ा—१

यह बातें नन्द जी और कृष्ण जी के मध्य हुई हैं :—

कर स्नान नन्दगृह आए, पूजाहित यमुनाजल लाए।
तुलसी दल और कमल पुनीता, प्रभु निमित्त आने अति प्रीता॥
पांऊ धोए प्रभु मन्दिर आए, करत दण्डवत् प्रेम बढ़ाए।
स्थल लेप, पाए सब धोए, पूजा के सब साज संजोए॥
छाप तिलक सब अंग संवारी, प्रभु पूजाविधि करत संभारी।
कुंवर कान्ह खेलत थान आए, देखत पूजा बुध चित लाए॥
विधिवत नन्द देव अनहवाए, चंदन तुलसी फूल चढ़ाए।
भूषण-वसन अंगीकृत लीने, धूप दीप इत हुत कर दीने॥
पट अन्तर दे भोग लगायो, आर्ति कर चरनन सर नायो।
तब हीं श्याम भसन हंस बोले, कहत तातसों बचन अमोले॥
बाबा तुम जो भोग लगायो, सो तो देव कछु न खायो॥
सुन हर वचन सर्वन सुखदाई। चिंते रहे मुख हंस नंद राई॥

दोहा

कहत नंद सुख पायके यूं कहिये नहीं बात।
देवन को कर जोड़िये कुशल रहे जेह गात॥

लतीफ़ा—२

देखा जननी तहां दरि ठाड़ी, मगन प्रेम इस आनंद बाढ़ी॥
बैठे नंद समाध लगाई, तब यह लीला रची कंहनाई॥
सालगराम मेल मुख माहीं, बैठ रहे हर बोलत नाहीं॥

* गोवर्धन दो शब्दों से संयुक्त है गोबर+धन। गोकुल के सब जमीन्दार लोग उस ढेरी पर गोबर के स्तूप लगाया करते थे। जिससे आवश्यकतानुसार काम आवें। इसी से इस ढेरी का नाम गोबरधन हुआ। अन्यथा वास्तव में गोबरधन कोई पर्वत नहीं है। और न भूगोल में कहीं इसका वर्णन है। यह एक टीला गोकुल से कुछ दूरी पर है। जहां आजकल मेला लगता है। जो थोड़े वर्षों से प्रचलित हुआ। (अनुवादक)

ध्यान विसर्जन को नंद जागे, सालगराम न देखे आगे ॥
खोजत चकित चित नन्द राई, इष्ट देव किन लिये चुराई ॥
इत उत खोजत पावत नाहीं, भयो बड़ी अचरज मन माहीं ॥
भणत हर के मुख में जाने, दीखत मुहुर मुहुर मुसकाने ॥
सुनो तात जननी बल जाई, उगलो सालगराम कहनाई ॥
मुखते तब हैं काढ बृजनाथा, देव देवता नंद के हाथा ॥
(बृज विलास पृ० ८०,८१ नवल किशोर १६२३ विक्रमी)

इसी प्रकार अच्छे २ उपदेश गोकुल व वृन्दावन वालों को श्री कृष्ण जी देते रहे। उनके उपदेशों से बड़ा लाभ पहुँचा। और लोगों को उन से बहुत प्रेम हो गया। जब यह युवावस्था में पहुँचे ? तो माता पिता के दुःख का बदला लेने पर कटिबद्ध हुए। इतने में कंस ने यह मन्त्रणा की कि किसी बहाने कृष्ण को मथुरा में बुलवा कर वध करा दूं। इसके लिये एक बुद्धिमान् पुरुष को जिसकी नंद जी से भी कुछ पहुँच थी, चार घोड़ों का रथ देकर गोकुल भेजा। कि मथुरा में यज्ञ है। नंदराओ जी को कृष्ण बलराम सहित इस बहाने मथुरा ले आओ। अ-क्रूर इस रहस्य को जानता था कि इन का वध करा दिया जायगा। इस लिये वह शोकातुर होकर गोकुल गया। एक दो दिन गोकुल ठहर कर सब को मथुरा आने के लिये तय्यार किया।

मथुरा उस समय बहुत महत्ता प्राप्त कर चुकी थी। उस की जनसंख्या, उस का धनवैभव और उस के भवन मनुष्यों को आश्चर्य-चकित करते थे। गोल्डन इंडिया अर्थात् स्वर्णमय भारत के लूटने के लोभ पर सिकन्दर आया। दारा को इसी स्वर्णमय भारत के एक प्रान्त पंजाब के कुछ भागों ने शाहन्शाह दारा बना दिया। महमूद के समय जो मथुरा की अवस्था थी उस का अनुमान हम इस्लामी इतिहास के अतिरिक्त और किसी प्रकार यथार्थ नहीं लगा सकते। महमूद ने मथुरा से ग़ज़नी के हाकिम को एक पत्र लिखा था कि "यहां अगणित मन्दिरों के अतिरिक्त और भी सहस्रों भवन हैं। जो कि इसलाम के अनुसार सुदृढ़ हैं और जिन में प्रायः संगमरमर के हैं। यह नगर सहस्रों दीनार खर्च करके निर्मित हुआ होगा। ऐसा नगर दो सौ वर्षों से कम में नहीं बन सकता है।"

[तारीखे हिन्द १८५२ ईस्वी पृ० १११]

"लूट में पाँच सोने की मूर्तियां आईं जिन की आँखें मणि जटित थीं। एक अन्य मूर्ति में अमूल्य रत्न थे। इस के अतिरिक्त चांदी की एक सौ मूर्तियां लूट में आईं। जो कि एक सौ ऊंटों पर लादी गईं।

[तारीखे हिन्द पृ० ११२ कलकत्ता]

"२०-२६ दिन महमूद मथुरा में रह कर इस को बरबाद करता रहा और मूर्तियों को तुड़वा कर मन्दिरों में बुरे २ कार्य किये। तोड़ी हुई चान्दी की मूर्तियों से एक सौ ऊंट भर कर ले गया। पाँच मूर्तियां सोने की थीं। उन में से एक का वज़न हमारे अब के ४ मन से ऊपर था।"

[इतिहास तिमिरनाशक भाग १ पृ० १४ १८८३ ईस्वी]

पाठक वृन्द ! हम आप को कहां तक बताएं, सोमनाथ आदि की लूट का वृत्तान्त, देहली की लूट, कांगड़ा और क़न्नौज की तबाही व बरबादी का वृत्तान्त पढ़ कर आप समझ सकते हैं कि आर्यावर्त साधारणतः और मथुरा विशेषतः उस समय किस उच्च पद में अवस्थित होगा।

श्री कृष्ण जी ने बड़े उत्साह से मथुरा को देखा और सारे बाज़ार में सैर करते हुए स्वर्णिम गढ़ (किला) (राजा कंस) के द्वारा पर पहुँचे। उस गढ़ के चारों ओर एक गहरी खाई थी। जब उस से पार हुए। प्रथम एक सुदृढ़ धनुष्कमान मार्ग में उन को दी गई। जिस पर बहुत लोग जोर करते थे परन्तु तोड़ नहीं सकते थे। श्री कृष्ण जी (जो बल और शक्ति के पुंज थे) ने उस कमान को तोड़ डाला और सब पहलवानों को लज्जित किया। राजा कंस ने जब कमान की बात सुनी तो दुःखी हुए। पुनः कंस ने सलु, वत्सल, चांणूर, मुष्टक चार प्रसिद्ध पहलवानों को कुश्ती के लिये भेजा। जिस मैदान में यह पहलवान कुश्ती के लिये समुद्यत थे, उस के द्वार पर एक मस्त हाथी भी कृष्ण जी और बलराम जी के वधार्थ छोड़ रखा था। इन दोनों शूरवीरों ने हाथी को मार गिराया। जब पहलवानों के अखाड़े में पहुँचे तो उन में से दो नामी योद्धा मुष्टक और चांणूर इन दोनों के सम्मुख हुए। श्री कृष्ण जी से चांणूर की कुश्ती हुई और बलदेव जी से मुष्टक का सामना हुआ। अन्ततः दोनों वीरों ने कंस के दोनों पहलवानों को मारा और अखाड़े में पछाड़ दिया। सल और वत्सल ने जब यह अवस्था अपनी आँखों से देखी तो मृत्यु को सम्मुख देख कर भागे। कवि के वचनानुसार :—

अखाड़ा छोड़ के बेदीन भागे, दलेरोमर्द कुश्तीगीर भागे।
रहे उस जा फ़क़त दोनों बिरादर, न आया सामने कोई दिलावर ॥

इसके पश्चात् राजा कंस ने देखा कि अब इनका साम्मुख्य कोई नहीं कर सकता। स्वयं तलवार लेकर उठा परन्तु कुछ न कर सका। उसका प्रभाव उस पर छा गया। वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। श्री कृष्ण जी ने उसकी तलवार छीन ली और उसकी छाती पर चढ़ कर उसे मार डाला। नगर में ऊधम मच गया। कंस के भवनों में चीत्कार पूर्ण रुदन हुआ। राजा कंस का शरीर यमुना के तट पर जलाया गया। और श्री कृष्ण जी ने उसके सब सम्बन्धियों को आश्वासन दिया। इसके पश्चात् वह कारागार में माता पिता के दर्शनों को गए। उर्दू कवि के कथनानुसार :—

अदु[1] को फ़तह करके कृष्ण बलदेव, वहां आए जहां थे क़ैद वसुदेव।
जो देखा बाप मां ने रूए फ़र्ज़न्द,[2] हुई जाने हज़ीं[3] दोनों की ख़ुर्सन्द[4] ॥
नज़र आए जो दोनों नूर दीदे, हुए दीदार से मसरूर[5] दीदे।
निकल कर ख़ानाए ज़न्दां[6] से फ़िलहाल, सुए काशाना आए फ़ारिगुल्बाल[7] ॥
शबिस्ताने पिदर[8] में शादो ख़ुश्तर, हुए रौनक़ फ़ज़ा[9] दोनों बिरादर।

नए सिरे से खुशी के तराने और प्रसन्नता के शादियाने मथुरा में बज उठे। घर २ आनन्द विभोर हुआ। आत्याचारी का अत्याचार समाप्त और न्याय युग का प्रारम्भ हुआ। मथुरा के उद्यान ने अपना पुराना बाग़बान पाया अर्थात् कृष्ण जी और बलराम जी ने दूसरे दिन राजा उग्रसेन को ढूंढा। ज्ञात हुआ कि वह एक अंधेरी काल-कोठड़ी में क़ैद हैं और अपने जीवन से निराश हैं। दोनों भाई वहां पधारे और अपने हाथ से उनके बन्द तोड़ कर राजगद्दी पर जा बिठाया। ताज उनके सिर पर रखा। उनके नाम की मनादी (घोषणा) हुई। घर २ में आनन्द की वर्षा हुई। राजनैतिक बन्दी स्वतन्त्र कर दिये गए। दुष्ट जनों को दण्ड मिला। सज्जनों का साहस बढ़ा। देश में शान्ति स्थापित हुई। नन्द जी गोकुल लौट गए। वहां एक और दिग्गज विद्वान् सांदीपिन जी से दोनों भाई भिन्न २ विद्याओं को पढ़ते रहे और वर्षों तक शिक्षा प्राप्त करके अति प्रसिद्ध हुए।

जो सफलता श्री कृष्ण जी और बलदेव जी को कंस के मुक़ाबला और प्रसिद्ध पहलवानों से

१—शत्रु। २—पुत्र का मुख। ३—दुखी जान। ४—प्रसन्न। ५—प्रसन्न। ६—कैदखाना। ७—प्रसन्न ८—पिता के महल। ९—रौनक बढ़ाने वाले।

युद्ध करने में हुई, उससे कुछ लोगों का यह विचार है कि यह बात चमत्कार के बिना कैसे संभव हो सकती है। इस लिये हम उनकी सेवा में निवेदन करते हैं कि वह कृपा पूर्वक रुस्तुम, बर्जी, सोहराब, फ़ीबर्ज़, असफ़ंदयार, साम व नरीमान की घटनाओं को पढ़ें। तब कदापि ऐसा झूठा विचार उनके मनमें न आवेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह बड़े प्रसिद्ध निरामिषभोजी योद्धा थे। दूध मक्खन, जो सबसे श्रेष्ठ और शक्तिवर्धक भोजन है, वह उन्होंने बहुतात से खाया था और बहुत व्यायाम किया था। रात दिन खेल कूद के अतिरिक्त जो ब्रह्मचर्य के लिये आवश्यक है उनका कोई कार्य न था। ४८ वर्ष तक उन्हों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया। धर्म शिक्षा, विद्या प्राप्ति, सैर, स्वतन्त्रता के अतिरिक्त दुष्ट कर्मों से सदा पृथक् रहे। यही सब से उत्तम साधन उनकी वीरता के हैं। २५ वर्ष की अवस्था में वह मथुरा पहुँचे। उसके पश्चात् मगध के राजा जरासंध से १८ बार युद्ध हुआ जिसमें किसी अवस्था में भी २३ वर्ष से न्यून व्यतीत नहीं हुए होंगे। उपनिषद् से ज्ञात होता है जैसा कि हम प्रथमाध्याय में सिद्ध कर चुके हैं कि वह पूर्ण ब्रह्मचारी रहे। अतः अवश्य ४८ वर्ष तक उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा।

स्त्री-शिक्षा

भूमिका

नमस्कार करता हूँ जगदीश को।
निराकार दाता महान् ईश को ॥
प्रभो मिथ्या बातों से चित्त को हटा।
कहूँ स्त्री शिक्षा की पुस्तक बना ॥

*आजकल आर्यावत में जो दुर्दशा स्त्री जाति की हो रही है, उस से कोई मनुष्य भी अपरिचित नहीं। विद्याहीन पशु की भाँति न उन को गृहस्थाश्रम के धर्म का ज्ञान और न हमारे देश के भाइयों को उन के सिखाने का प्रयोजन। स्वार्थी लोगों ने उन को शूद्रों में गिन रखा है। उन को अपने अधिकारों की सुध नहीं। क्योंकि शिक्षा में कमी है। अतः इस शुभ भावना के साथ भाषासम्बन्धी सभा के अलीगढ़ आर्य दर्पण १५ मई १८८२ ईस्वी में इस की आवश्यकता जान कर इस विषय पर लिखने का निश्चय किया।

इस के ५ अध्याय हैं। पहले में विद्या-प्राप्ति का वर्णन है।

अथर्ववेद के ११वें कांड में परमेश्वर आज्ञा देता है कि जब कन्या, ब्रह्मचर्याश्रम से पूर्ण विद्या पढ़ चुके और युवावस्था को प्राप्त हो तब उस का विवाह करना चाहिए। प्रयोजन यह है कि सात आठ वर्ष की अवस्था में कन्या को पाठशाला में भेज देना चाहिये। पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था तक वहां सब शुभ विद्याओं की उन्नति करके पूर्ण विदुषी हो जाए। सब से बड़ा कार्य स्त्री के लिये शिक्षा और विद्या का होता है। क्योंकि प्रथम तो स्त्री पुरुष का स्वाभाविक सम्बन्ध ही कुछ कम नहीं। बहुत अधिक है। दूसरा यह न्याय युक्त नहीं कि जिस बात से एक लाभ उठाए उस से दूसरा वंचित रह जाए। तीसरा, मनुष्यता की दृष्टि से जो पद पुरुषों को प्राप्त है वही स्त्रियों को भी है। वही बुद्धिविस्तार, वही ऐन्द्रियक शक्ति, वही स्मृति शक्ति की पहुँच, वही देखने की शक्ति। परन्तु शोक कि हमारे भाइयों को शिक्षा पद्धति स्मरण नहीं। अन्यथा और कोई रुकावट नहीं है जो स्त्री शिक्षा निषेधक हो। उचित प्रतीत होता है कि इस स्थान पर स्त्रियों की शिक्षा-पद्धति को लेखबद्ध करूं, जिस से सब व्यवस्था विद्या प्राप्ति की प्रकट हो।

स्मरण रहे कि प्रत्येक नारी पाठशाला में छः श्रेणियां स्थापित की जाएं और निम्न पुस्तकें पढ़ाई जाएं:—

प्रथम श्रेणी :—(१) वर्ण माला और बारहखड़ी, (२) स्त्री-शिक्षा प्रथम भाग (३) द्वितीय भाग (४) स्त्री शिक्षा तृतीय भाग (५) नाम लिखना (६) एक से सौ तक गिनती।

द्वितीय श्रेणी :—(१) स्त्री-शिक्षा सम्बोधिनी भाग दो (२) हितोपदेश (३) स्त्री-शिक्षा चतुर्थ

*यह लेखक महोदय ने अपने काल की बात लिखी है। (अनुवादक)

भाग (४) पहाड़े याद करना और लिखना (५) बोधोदय (६) मन बहलावनी (७) संगीत माला के भजन स्मरण करना (८) पत्र लिखना।

तृतीय श्रेणी :—(१) स्त्री शिक्षा संबोधिनी तृतीय भाग (२) मानव धर्म सार (३) भूगोल दर्पण (४) भारतीय भूगोल (५) गणित प्रकाश प्रथम भाग (६) पत्र लिखना (७) शीतल रत्नागर (८) लक्ष्मण विनय।

चतुर्थ श्रेणी :—(१) हित पत्रिका (२) वामा मनोरंजन (३) स्त्री गृहस्थ रक्षक (४) भूगोल चन्द्रिका (५) गणित प्रकाश भाग २ (६) आर्य इतिहास (७) भोजन बनाने की पुस्तक (८) पुस्तक चेचक (९) पुस्तक भाषा चन्द्रोदय (१०) पंच महायज्ञ विधि (११) स्त्री शिक्षा (१२) संबोधिनी चतुर्थ भाग (१३) अनुवाद क्रिया।

पंचम श्रेणी :—(१) तत्वबोधिनी (२) कीमिया की पुस्तक (३) गणित प्रकाश भाग ३, ४ (४) संस्कृत वाक्य प्रबोध (५) संस्कारविधि (६) वैदिक पुस्तक (७) देश की उन्नति।

षष्ठ श्रेणी :—(१) आकर्षण विद्या पुस्तक (२) वनस्पति शास्त्र (३) रेखा गणित (४) क्षेत्र चन्द्रिका (५) वेद भाष्य-भूमिका (६) शिल्प विद्या पुस्तक (७) संस्कृत पाठ उपकारक (८) दर्शन (९) व्याख्यान लिखना।

निश्चित है कि यदि स्त्रियों को इस पद्धति के अनुसार पढ़ाया जाये तो अति सुगमता से १५, १६ वर्ष की अवस्था तक लीलावती की बहिनें बन जायेंगी और सरस्वती का अवतार कहलाएंगी। हमारे सुधारक महा पुरुषों का कथन है कि जब तक विदुषी माताओं के दूध से आर्यावर्त निवासी लोगों का पालन पोषण न होगा, वे बुद्धिमान न बन पाएंगे।

आजकल जितनी चर्चा स्त्री शिक्षा की हो रही है। ऐसी स्यात् किसी और विषय की हो। विधान सभा, देशकी सोसाईटियों, धर्म की भलाई बताने वाले समाजों में जहां देखो यही चर्चा है। व्याख्यान दाता, देश हितैषी, कुप्रथाओं के निवारक लोग जोर शोर से इस विषय में लिख रहे हैं। देश के समाचार पत्र पृथक् बल दे रहे हैं। जितना अत्याचार आर्यावर्त में स्त्री जाति पर हो रहा है, उसके लिखने की हममें शक्ति नहीं हैं। प्रथम सती होने का अत्याचार जिसकी व्याख्या से बड़े २ वीरों के हृदय विदीर्ण हो जाते हैं। यह अत्याचार स्त्री जाति के लिये इसलिए था कि जिससे नारी का सदा आधे भाग का होना सिद्ध होता था। उन दिनों में सारे देश में अविद्या भ्रमजाल का अंधेरा फैला हुआ था। जड़ पूजा और मूर्ति पूजा सर्वत्र फैली हुई थी। उन्हीं दिनों १७७४ ईस्वी में जाति पर बलिदान होने वाले सुधारक राजा राम मोहन राय उत्पन्न हुये। जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा में ही होवन हार बिरवा के चिकने २ पात की उक्ति के अनुसार वह २ जौहर दिखाये कि अल्प काल में ही बुद्धिमान् पण्डित कहलाये। यद्यपि ब्राह्मण जाति से न थे किन्तु सत्य की पहिचान और सत्यान्वेषण की उमंग, मन में लग रही थी। संन्यासियों के सत्संग से भी लाभान्वित हुए। और अरबी फ़ारसी में भी योग्यता प्राप्त करके उच्च पद प्राप्त किया। जातिहित, देशहित उन के हृदय में कूट २ कर भरा था। स्त्री जाति पर सती होने का अत्याचार देखकर जाति की अविद्या पर उन्हें बहुत शोक हुआ और निश्चय किया कि जब तक इस कुप्रथा को जड़ से उखाड़ न फैंकू तब तक मेरे लिये आराम अनुचित है। इसी बीच में आंगल शिक्षा प्राप्ति का विचार किया।

देश और जाति हित के सम्मेलनों में इस विषय पर भाषण दिये और अंग्रेज़ी में भी पूरे जन्टलमैन बन कर जाति सेवा में संलग्न हुए। "साहसी पुरुषों को ईश्वरीय सहायता प्राप्त होती है" उक्ति के अनुसार उनके पुरुषार्थ के प्रभाव ने इस बात को सरकार तक पहुँचाया। उन्होंने इसके साथ ही वेदादि धार्मिक ग्रन्थों से प्रमाणित कर दिखाया कि आत्मघाती महापापी होता है। गवर्नमेंट की आज्ञा से विधान सभा में प्रस्ताव आया। उन की युक्तियों और प्रमाणों ने सिद्ध कर दिया कि यह अत्याचार ऐसी न्याय-युक्त सरकार के समय में स्त्री जाति के लिये सर्वथा न्याय विरुद्ध है। अन्ततः कौन्सल के सदस्यों ने सती प्रथा रोकने वाली धारा स्वीकृत की। जिससे लाखों निष्पाप देवियों के जीवन बचे। और निरपराधों के वध का दोष आर्यावर्त से धुल गया। दूसरे बाल विधवा, तीसरे विधवाओं के विवाह न करना, जिसका वर्णन पृथक् पुस्तक "नवेदे वेवगान" में है, आदि का भी आप ने विरोध किया। इस स्थान पर यह वर्णन करना अनावश्यक है कि प्राचीन काल में आर्य जाति की देवियां विदुषी होती थीं। जैसा कि लिखा है कि व्यास जी ने महाभारत इसलिये बनाया कि स्त्रियों और उन लोगों को भी जिनकी पहुँच वेदों तक कम होती है, धार्मिक विद्याओं से परिचित कराया जाय। जो लोग मनु को स्त्रियों के बारे में अन्यायकारी बताते हैं। हम उन से पूछते हैं कि मनु जी की इस आज्ञा का (कि स्त्रियों के नाम अच्छे, शुभ और उत्तम रखने चाहियें) क्या अभिप्राय है ?

क्योंकि स्त्रियों की सुन्दरता और भावुकता पर श्रेष्ठ नाम एक और चमत्कार है। अतः आर्य-धर्मात्मा मनुजी का यह वचन इस बात को स्पष्ट प्रमाणित करता है कि वह स्त्रियों के लिये दया-हीन नहीं थे। प्रत्युत केवल अयथार्थ अनुवाद करने वालों का दोष है। अन्यथा ऐसे महापुरुष से यह अन्याय सत्यता से दूर है। मनु जी ने स्त्री-शिक्षा तथा उनके आदर सम्मानार्थ जितनी आज्ञाएं दी हैं, वह सर्वथा उन को स्त्री जाति का शुभ चिन्तक सिद्ध करती हैं। माता पिता, वृद्धों, विद्वानों, सदाचारी पुरुषों और बुद्धि-मानों का मान करना मनु जी ने लिखा है, वैसा ही स्त्री जाति के लिये उन का आदेश है। एक स्थान पर मनु जी ने आज्ञा दी है कि जिस घर में स्त्री पति की इच्छा का और पति स्त्री की इच्छा का तथा दोनों एक दूसरे की सम्मति का मान करते हैं वह घर सदा स्वर्ग है। लिखा है कि जब मार्ग में कोई गाड़ी, ६० वर्ष का वृद्ध, रोगी, बोझदार, स्त्री, ब्राह्मण, राजा अथवा वर आता हो तो हट कर उनको मार्ग देना चाहिये।

प्राचीन काल में स्त्रियां सब स्थानों पर आ जा सकती थीं। उनकी रक्षा के लिये उनकी लज्जा और पुरुषों के मन में उनके लिये मान की भावना पर्याप्त होती थी। जैसा कि धर्म-शास्त्रों में लिखा है कि जो पिता १५ वर्ष से पूर्व अपनी कन्या का विवाह करदे, जो पति नियत समय पर अपनी स्त्री के पास न जाये, जो पुत्र अपने पिता के देहान्त के पश्चात् अपनी माता की रक्षा और सेवा न करे वह फटकार के योग्य है। और उन्हों ने पुत्री के बदले में धन लेने का भी निषेध किया है। मनुजी की आज्ञा है कि जो कोई अपने दामाद से एक कौड़ी भी पुत्री के बदले में लेता है, मानो वह लड़की को बेचता है, जो महापाप है।

सभी बातों में पति पत्नी एक मन हों। यह सत्य है कि स्त्री का केवल अपने मकान में बैठ कर ईश्वर का भजन करना, पति की सेवा में संलग्न रहना, सन्तान की पालना और उन को शिक्षा देना कर्तव्य है। परन्तु इस के साथ यह भी लिखा है कि ठाकुरद्वारों, धर्मशालाओं इत्यादि पूजा स्थानों

पर नहीं जाना चाहिये और न गले में चुनी डालकर सीतला माता के गधे की पूजा करनी चाहिये। मन बहलाने की बातों जैसे शिल्प और आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय करना उचित है। इस विषय में पति को पत्नी के विरुद्ध न होना चाहिये। मनु धर्मशास्त्र में यह भी लिखा है कि मनुष्य कठोरता से स्त्री को वश में नहीं रख सकता। उसे चाहिये कि वह पत्नी को गृहस्थ कार्यों, प्रबन्ध, आय व्यय और स्नान ध्यान में संलग्न रखे।

मनु जी के जो निम्न वचन हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में आर्य जाति में स्त्रियों का बड़ा मान था :—

(१) यदि विवाहित स्त्रियों के पिता भ्राता और पति अपना भला चाहें तो उन की शोभा मान और विद्या का ध्यान रखें।

(२) जहां स्त्रियों का मान होता है वहां देवता रमण करते हैं और जहां इन का अपमान होता है वहां सारे पुण्य कार्य अकारथ (व्यर्थ) जाते हैं।

(३) जो व्यक्ति सम्बन्धित स्त्रियों को कष्ट में रखता है उस का सारा वंश नष्ट हो जाता है। परन्तु जिस घर में स्त्रियां अप्रसन्न नहीं रहतीं वह वंश सदैव वृद्धि को प्राप्त होता है।

(४) जो लोग ऐश्वर्य के इच्छुक हैं उन को उचित है कि स्त्रियों को यथासम्भव भोजनाच्छादन तथा भूषणादि से खुश रखें। परन्तु स्त्री को भी उचित है कि पति को बाधित करके ऋणी न कर दे। और जैसी चादर देखे वैसे पाँव फैलावे। निश्चित है यदि स्त्री का पहरावा अच्छा न होगा तो पति का मन उस से प्रसन्न न होगा, और जब मन ही प्रसन्न न होगा तो सन्तान क्या होगी?

इन वचनों से सिद्ध है कि जो लोग आर्यजाति की स्त्रियों को भाग्यहीन समझते हैं ऐसी उन की अवस्था नहीं है। जहां पिता अपनी पुत्री को बहुत प्रिय समझता हो, उसका उत्तम नाम रखने की उसे आज्ञा हो, उसे विद्या प्राप्ति की धर्मशास्त्र में आज्ञा हो, जहां स्त्री के साथ मान पूर्वक बात करने, उसे देवी समझने और सौभाग्य प्राप्ति का चिह्न समझने की आज्ञा हो, जहां बिना धन लोभ के अच्छे स्थान पर उसका विवाह करने की प्रथा हो, जहां यह बात हो कि पति पत्नी को अपना अंगी समझे, सदा उसको भूषण वसन भोजन से यथाशक्ति प्रसन्न रखे तथा आय व्यय के प्रबंध और गृह व्यवहार में उसे संलग्न रखकर प्रेम पूर्वक वर्ताव करे, उस पर विश्वास करके कार्य व्यवहार में उससे सम्मति ले, जहां यह बात हो कि स्त्रीधन पति के धन के अतिरिक्त गिना जावे और किसी सम्बंधी को उस धन का अधिकार न हो वहां स्त्री का मान ऐसे समझना चाहिये जैसे अगले समय में अविद्या काल में आर्यावर्त के रोम और यूनान की सभ्य जातियों में थी अथवा आजकल की सभ्य जातियों में होती है। जो मान आर्यों में स्त्रियों का होता है वह किसी राजपूत से पूछना चाहिये जिसके समीप स्त्री, तलवार और घोड़े से प्रिय वस्तु संसार में अन्य कोई नहीं। जितना मान स्त्रियों का राजपूतों में है उतना एशिया की किसी जाति में नहीं। राजपूत को अपनी स्त्री से ऐसा प्रेम होता है कि वह उसकी एक प्रेम भरी दृष्टि को राज्य प्राप्ति से श्रेष्ठ समझता है। आर्यावर्त की स्त्री जाति की प्राचीन और अर्वाचीन अवस्था में बहुत बड़ा अन्तर है जिस पर लोग ध्यान नहीं देते। बालपन में स्त्री का विवाह करना, कई स्त्रियें रखना, विधवा

का दूसरा विवाह न करना, सती होना, स्त्री को मूर्ख रखना तथा इसको घर से बाहिर न निकलने देना, साधू पुजारियों की सेवा का उपदेश देना यह सारी बातें ऐसी हैं कि प्राचीनकाल में इन में से एक भी न थी। बहुत सी विदुषी देवियों के वृत्तान्त से, जिन का वर्णन आगे आयेगा, सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल में स्त्रियां विदुषी होती थीं। उस काल में लड़की को युवावस्था के पश्चात् तीन वर्ष तक विवाह के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इसके पश्चात् वह अपना पति वरण करती थीं। उस काल में स्त्रियों को यह भी आज्ञा थी कि अपने इच्छुक व्यक्तियों में से जिसे चाहें चुनें। जैसा कि रामायण में सीता स्वयंवर, महाभारत में द्रौपदी का स्वयंवर, रघुवंश कालीदास में इन्दुमती का स्वंयवर आदि इसके प्रमाण हैं।

एरियन नामी एक यूनानी इतिहासकार अपने इतिहास में लिखता है कि पूर्व के आर्य लोग अपनी लड़कियां उन लोगों को देते थे जो वीरता की कसौटी पर पूरे उतरते थे। ज्ञात होता है कि छोटी आयु के विवाह की प्रथा उन समस्त देशों में है जहां लड़कियां शीघ्र यौवन प्राप्त कर लेती हैं। परन्तु ऐसा नहीं जैसा कि भारत में होता है कि अभी लड़की गुड़ियां खेलना भी नहीं छोड़ती कि उसका विवाह हो जाता है। स्पष्ट है कि जिन लड़कियों ने अपने पतियों को स्वंय चुना वह युवावस्था को पहुँच गई होंगी।

जब देवयानी ने कंजू के आगे कुछ श्लोक पढ़े और कंजू ने उसको अगले समय की कथा और श्लोक सुनाये तो निश्चित् है कि दोनों युवावस्था सम्पन्न थे। सीता ने जब रामचन्द्र जी को स्वयंवर सभा में चुना और गले में फूलों की माला डाली तो स्पष्ट है कि वह सात आठ वर्ष की न थी। द्रौपदी को जब अर्जुन ने स्वयंवर में जीता और माला लेकर गले में डाली तो दोनों ही सुन्दरता और यौवन पूर्ण थे। रुक्मिणी ने जब कृष्ण जी को प्रेम-पत्र द्वारा अपनी इच्छा निवेदित की थी और शिशुपाल के साथ विवाह करने से इन्कार किया था तो अच्छी प्रकार से प्रमाणित है कि दोनों युवा थे। दमयन्ती के पिता ने जब उसके स्वयंवर की इच्छा की थी तो वह भी युवा थी। वकबा ने जब अपने पिता पर विवाह की इच्छा प्रकट् की थी तो वह भी युवावस्था में थी।

आर्यों में बहु विवाह की प्रथा भी न थी। पतिपत्नी को कठोरता के साथ आज्ञा थी कि परस्पर प्रेम व्यवहार करें। तथा अन्य के साथ प्रेम न करें और न दृष्टि-पात करें। पति को दूसरा विवाह करने की जो आज्ञा है वह केवल उन अवस्थाओं में है जो आपत्तिकाल की हैं। पवित्र वेदों और प्राचीन स्मृतियों में भी विधवा को दूसरा विवाह करने का सर्वथा निषेध नहीं है। प्रत्युत मनु-धर्मशास्त्र में सती होने का चिह्न तक भी नहीं मिलता और न बालपन के विवाह का नाम है। उनका यह कदापि विचार न था कि भविष्य में लोग ऐसी गन्दी प्रथाओं में पड़ जाएंगे। इस बात की जांच करना कठिन है कि इस अत्याचार पूर्ण जंगली प्रथा का प्रारम्भ कब और क्यों कर हुआ? इस बात में सबसे प्रथम लेख आपरिस्टोवेविस का है। वह लिखता है कि यह प्रथा राजा टैक्सला के राज्य में प्रचलित थी और एक इतिहासकार भी, जिस को दो हजार एक सौ छियासी वर्ष हो चुके हैं, इस प्रकार की घटनाओं का वर्णन करता है जो योमीन्या की सेना में हुई थी। यह लेखक, जिसका नाम डाऊडेविस है, इस प्रथा के प्रचलित होने का कारण विधवा की दुरवस्था को बताता है जिसमें उसे समस्त जीवन व्यतीत करना पड़ता है। एक महात्मा का वाक्य है कि सती की प्रथा मनुष्य के बहुत ही गन्दे विचारों का परिणाम

है। स्वार्थ से उसकी वृद्धि, असत्य से उसका विस्तार और निर्दयता पर उसकी समाप्ति हुई। अविद्या जिस से ऐसे घृणित विचार उत्पन्न हुए, जब तक स्त्रियों से सर्वथा दूर न की जाय तब तक असम्भव है कि भारतीय बालक सभ्य कहला सकें। विद्या वह अनमोल मोती और ज्ञान वह सूक्ष्म भोजन है जिसके लेने और खाने को मनुष्यमात्र विवश है। विद्या प्राप्ति के बिना मनुष्य पशु समान है। इसके बिना अच्छे बुरे के भेद से परिचित नहीं हो सकता। यद्यपि दैनिक अनुभव से कुछ २ कार्य कर सकता है। पुनरपि उसका यह करना भ्रम जालों के कारण न करने के समान हो रहा है। अन्ध-युग के सारे इतिहास पुरुषों के नाम से प्रख्यात हैं। बेचारी ज्ञान-शून्य स्त्रियां इस सौभाग्य से हीन हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की बहुत सी देवियां योग्य हुई हैं। यूनानियों के सारे इतिहास में पांच छः प्रसिद्ध स्त्रियों से अधिक का वर्णन नहीं है। रोम वासियों की पुस्तकों में, जिस की उन्नति १५ सौ वर्ष तक रही, केवल पाँच स्त्रियों का वर्णन आया है। फ्रांस में दो तीन स्त्रियों का नाम लोगों की वाणी पर है। ब्रिटेन की स्त्रियों के नाम उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। आर्य जाति के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से पुरुषों के अतिरिक्त बहुत सी विदुषी और योग्य देवियों के वृत्तान्त लिखे हैं, जो कि विद्या प्राप्ति से अविद्या का कलंक मिटा कर पदार्थ विद्या और अध्यात्मिक विद्या से सुशोभित हुईं और उन सभ्य माताओं के उदर से सभ्य प्राचीन आर्य उत्पन्न होकर देश को ज्ञान विज्ञान की खान बनाते और यूनान आदि को सभ्यता सिखाते थे।

स्त्री शिक्षा के विरोधी कुछ मूर्ख लोग कहते हैं कि हमें स्त्री शिक्षा से कोई अधिक लाभ अथवा जाति की उन्नति दृष्टिगत नहीं होती। उन सूरदासों के लिये यह सुरमाए सुलैमानी पर्याप्त है कि यदि स्त्रियों को मूर्ख रखना ही आवश्यक है तो उसके लिए अर्द्धांगी की पदवी भी लंगूर की लांगूल की भाँति ही है। एक आंख में सुरमा डालना और दूसरी में श्वेत लगाना बुद्धिमानों के लिये शोभनीय नहीं है। "यदि कोई घर में है तो एक शब्द भी उसके लिए पर्याप्त है" की उक्ति के अनुसार इस सम्बन्ध में इतना पर्याप्त समझा जाए।

दूसरा अध्याय

विदुषी देवियों का वृत्तान्त

यद्यपि आर्य लोग बहुत समय से प्राचीन काल का इतिहास लिखने से पराङ्मुख रहे परन्तु उन की प्रसिद्ध देवियों के नाम योरुप के किसी देश की प्रसिद्ध स्त्रियों के नाम से कम नहीं हैं। मैत्रेयी, गार्गी, तारा मन्दोदरी, सीता, कुन्ती, द्रौपदी, गान्धारी, शकुन्तला। इसी प्रकार इन के अतिरिक्त और बहुत सी देवियां हैं जिन के नाम स्मरणीय हैं। जांच पड़ताल के पश्चात् प्रत्येक के वृत्तान्त लिखे जाते हैं।

(१) मैत्रेयी का वृत्तान्त

यह स्त्री याज्ञवल्क्य ऋषि के साथ विवाहिता थी। एक उपनिषद् में इस का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है कि जब उस ने वनस्थ होने का विचार किया तो प्रथम अपनी धर्मपत्नी से मन्त्रणा की और कहा कि यदि तुम आज्ञा दो तो मैं वानप्रस्थ होने का विचार रखता हूँ। जितना मेरा धनादि है वह तुम और कात्यायनी परस्पर बांट लो। मैत्रेयी ने कहा कि यदि सारी पृथ्वी और उस का धन मेरे आधीन हो जाये तो क्या मैं धनी हो सकती हूँ। पति ने कहा कि धन से जीवन व्यतीत हो सकता है। परन्तु वह अमृत पद प्राप्ति का साधन नहीं। मैत्रेयी ने कहा कि ऐसा धन मुझे नहीं चाहिये। मुझे तो वह मार्ग बताओ जिस से सदा का जीवन और अमृत पद प्राप्त हो।

याज्ञवल्क्य पत्नी का यह वैराग्य देख कर बहुत आश्चर्य चकित हुए। उन को सम्मुख बैठा कर मोक्ष मार्ग इस प्रकार बताने लगे कि मनुष्य को अमृत पद की प्राप्ति तब हो सकती है जिस समय सब पदार्थों से मन हटाकर अद्वितीय परमेश्वर का ध्यान किया जाए। सुख दुःख जो कुछ मनुष्य को प्राप्त होता है सब जीव के सम्बन्ध से है। अतः सब को चेतन का ही ध्यान करना चाहिये क्योंकि जिस एक ने सब पदार्थ उत्पन्न किये। अन्ततः सब की समाप्ति उसी की उपासना में है और मोक्ष उसी को प्राप्त होगा जो परमेश्वर को एक जाने और माने। अपने भीतर परमेश्वर का ध्यान करे। ब्रह्म की पहचान और ध्यान के लिये ब्रह्म विद्या वेद में है।

इस प्रकार के उपदेश के उपरान्त वह अपनी पत्नी सहित उपासना और भक्ति के लिये बन को चले गए। और दोनों ऐसे बड़े ऋषि हुए कि उस समय के ऋषियों में विशेष समझे गये। इस विदुषी देवी ने कई बार पाखण्डी पण्डितों से शास्त्रार्थ करके उन को पाखण्ड से बचने का उपदेश किया, और सहस्रों को सन्मार्ग दिखाया।

एक बार राजा जनक के दरबार में पण्डितों का शास्त्रार्थ हो रहा था और वहां मैत्रेयी जी बड़े साहस से उन के साथ शास्त्रार्थ कर रही थीं। अकस्मात् याज्ञवल्क्य जी आ गए। मैत्रेयी उन को देख कर मौन धारण कर गईं। राजा जनक ने पूछा कि इतने पुरुषों के सम्मुख तो आप बोलती रहीं परन्तु शोक कि एक ऋषि के आने से तेरी वाणी बन्द हो गई। मैत्रेयी ने कहा कि हे राजन! आध्यात्मवाद के पुरुष तो यही हैं शेष तेरे पण्डित वाचक और सन्मार्ग से दूर हैं।

परिणाम

यह कथा एक ऐसी साहस वाली देवी की है जो एक बड़े ऋषि की पत्नी थी। यह इस बात का दृष्टान्त है कि प्राचीन काल में पत्नी की बड़ी भारी प्रतिष्ठा थी और पत्नी की सम्मति के बिना किसी बड़े कार्य का विचार न किया जाता था। केवल उन की सांसारिक उन्नति का विचार ही दृष्टिगत न होता था। प्रत्युत परलोक की चिन्ता भी होती थी।

(२) गार्गी का वृत्तान्त

इस प्रसिद्ध देवी ने अपने ज्ञान विज्ञान और बुद्धि कौशल से बहुत बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। एक उपनिषद् में इन के और याज्ञवल्क्य जी के शास्त्रार्थ का वर्णन इस प्रकार है कि एक बार दोहासाधिपति राजा जनक के यहां बड़ा यज्ञ हुआ। कुरु और पांचाल देश के बड़े २ प्रसिद्ध विद्वान् पंडित वहां पधारे। राजा ने यह जानने के लिये कि इस सभा में कौन सा विद्वान् बड़ा गंभीर ज्ञान रखता है और अच्छा व्याख्याता है, एक गौ के सींगों पर सोने के खोल (आवरण) चढ़ा कर ब्राह्मणों (विद्वानों) से कहा कि तुम में से जो व्यक्ति शास्त्र में अपूर्व योग्यता दिखावे, वह यह दान पारितोषिक रूप में प्राप्त करे। याज्ञवल्क्य को छोड़ कर और किसी को साहस न हुआ कि उनको हाथ लगाए। यहां तक कि उनके कहने से उनका शिष्य सब गौएं हांक कर उनके घर ले गया। इस बात पर समस्त विद्वानों में हल चल मची। राजा के पुरोहित ने उससे कहा कि तुम अपनी योग्यता के प्रमाण के बिना किस प्रकार इस दान के पात्र हो सकते हो? याज्ञवल्क्य ने इस सभा के समस्त विद्वानों को प्रणाम करके कहा कि मैं अपने ही को इस दान का पात्र समझता हूँ। जिस को कुछ कहना हो मुझ से शास्त्रार्थ कर ले। उस समय सभा में छः महानुभाव जिन में गार्गी जी भी थीं, शास्त्रार्थ के लिये समुद्यत हुए। पाँच विद्वान् तो थोड़ी देर में मौन धारण कर गए। गार्गी जी भी अन्त में हार गईं परन्तु उन्होंने बड़ी देर तक ऐसी गम्भीरता और विचार से शास्त्रार्थ किया कि सभामंडप में पधारे लोग वाह २ कर उठे और शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

परिणाम

गार्गी जी के शास्त्रार्थ से प्राचीन काल के आर्यों के स्वभाव के सम्बन्ध में कई बातें ज्ञात होती हैं। प्रथम यह कि उस युग में आर्यों के विचार में पशु धन सब से बड़ा धन समझा जाता था। उस समय भी स्त्रियां पठित होती थीं। द्वितीय यह कि प्राचीन काल में पर्दा न था। स्त्रियां मकान की चार दीवारी के अन्दर क़ैद न रहती थीं। प्रत्युत सभाओं और शास्त्रार्थों में भाग लेती थीं। तृतीय यह कि जिस प्रकार आजकल के लोग अपनी सम्मति समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों में प्रकाशित करके प्रसिद्ध करते हैं अथवा किसी सभा में खड़े होकर सुनाते हैं। उस युग में यह प्रथा न थी। उन दिनों में जो बात किसी को लोगों के हृदयों में जमानी होती थी तो वह शास्त्रार्थ की समिति में उपस्थित करता था और ऐसी समिति किसी यज्ञोत्सव का किसी अच्छे अवसर पर प्रबन्ध करती थी। इन सभाओं में ब्राह्मण अपनी विद्वत्ता की धाक बैठाते थे। और सभा के सभ्य सभासदों से प्रशंसित होते थे। लगभग ऐसी ही प्रथा यूनानादि में भी थी।

...कि लिखा है कि उस देश के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ हरीडेविक ने ओपमन्यार के अखाड़े में ...इतिहास पढ़े थे। ब्राह्मणों में अब भी प्रथा है कि जो पंडितों पर अपना प्रभाव जमाना ...है वह किसी अच्छे अवसर पर अपना चमत्कार दिखाता है और सब से अधिक दान ...है।

(३) तारा रानी का वृत्तान्त

इसका वर्णन रामायण में है। यह तामिल देश के राजा की बेटी थी और करनाटक में महा-पुर के राजा बाली से उस का विवाह हुआ था। उसके सौन्दर्य और ज्ञान विज्ञान के गुणों की प्रशं...तनी है कि जितनी किसी बुद्धिमति देवी की सम्भव हो सकती है। जैसा कि विस्तृत वृत्तान्त रामायण ...लखा है। राजा वाली और राजा रामचन्द्रके युद्धका वृत्तान्त जो रामायण में लिखा है। उससे यह स्पष्ट ...ता है कि राजा वाली के घर तारा के अतिरिक्त दूसरी विवाहिता स्त्री कोई न थी। जब राजा वाली युद्ध में मारा गया तो तारा रानी अपनी सहेलियों के साथ उसकी शव के पास आई। वह दुःख और की ऐसी प्रतिमा बनी हुई थी कि दर्शकों को शोक होता था। उसने धर्मशास्त्र ... नियमानुसार उसकी ...का दाहकर्म संस्कार करा कर जलवा दिया। बाली के मरणोपरान्त उसके भाई सुग्रीव को राजा ...या गया। सुग्रीव ने अपने भाई का राज्य ही नहीं पाया प्रत्युत उस प्रथा के (जो अब भी उड़ीसा ...चलित है) अनुसार श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा लेकर तारा से दूसरा विवाह करके उसे अपनी रानी बनाया।

(४) मन्दोदरी का वृत्तान्त

यह देवी तामल देश की पुत्री थी। उसका विवाह लंका के राजा रावण से हुआ था। लंका ...र्यावर्त देश के दक्षिण की ओर समुद्र का एक टापू है। इसी को सरांद्वीप भी कहते हैं। सौन्दर्य और ...प लावण्य के अतिरिक्त बहुत सी योग्यता और विशेषता इस देवी में पाई जाती थी, जिस का होना ...द्धिमान् और गम्भीर पुरुष अपनी पत्नियों में अवश्य चाहते हैं।

यह जो लिखा है कि रावण के घर कई सहस्र रानियां थीं। यह कवियों की घड़न्त प्रतीत होती ...। क्योंकि इस देश के कवीश्वरों का नियम है कि वे जब किसी राजा की महिमा का व्याख्यान करते हैं ...प्र...र उसकी रानियों की अधिकता का वर्णन करते हैं।

यदि मान लिया जाए कि रावण की बहुत सी रानियां थीं। तो भी सन्देह नहीं कि मन्दोदरी ...टरानी थी और उसके पेट से रावण के कई वीर पुत्र उत्पन्न हुए। जब रावण ने सीता को बल और छल ...पट से ले जाकर अशोक वाटिका में बन्दी बनाया था तो मन्दोदरी ने कई बार उसकी मुक्ति का ...त्न किया था। परन्तु रावण ने एक न सुनी। स्त्री को स्त्री पर प्रायः दया आती है। इस दया का आना ...नुष्यपन है। शतरंज का प्रसिद्ध खेल, जो शतियों से चला आ रहा है, और जो संसार भर में प्रायः प्रचलित है। यह भी मन्दोदरी की बुद्धि का चमत्कार पूर्ण कौशल है। इस खेल के निकालने का कारण यह बताते हैं कि रावण युद्ध और हत्या का बहुत उत्सुक था। अतः मन्दोदरी ने अपने चमत्कार से यह खेल निकाला। अभिप्राय यह था कि उस का पति रावण इस खेल में शतरंज के मोहरों के युद्ध से अपना मन बहला कर ईश्वर की सृष्टि को बरबाद न करे। शतरंज के आविष्कार का दावा बहुत सी

जातियां करती हैं। परन्तु सर विलियम जौंस आर्यों को इस का आविष्कारक बताते हैं। और आर्य मन्दोदरी का आविष्कार बताते हैं। और शतरंज इस का अपभ्रंश प्रतीत होता है। कुछ लोग इस नाम का कारण यह बताते हैं कि संस्कृत में शत्रु दुश्मन को कहते हैं। शत्रु का बहुवचन शत्रून् है। जब साथ जय शब्द लगा दिया गया तो शत्रुंजय बन गया। और उसका अपभ्रंश शत्रंज हुआ। अर्थ शत्रु पर विजय प्राप्त करने के हैं। सेना के चार भागों रथ, हाथी, सवार, पैदल को चतुरंग हैं। पहले इस खेल के मोहरे इन चार नामों से युक्त थे। पश्चात् रथ के स्थान पर किश्ती (नौका) जाने लगा। जैसा कि हिन्दुओं के हां रुख़ को नौका कहते हैं। सर विलियम जौंस लिखते हैं कि हाथियों पियादों के साथ रुख़ का होना अनुचित सा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तविकता यह है किश्तियों (नौकाओं) का अभिप्राय यहां समुद्री सेना से है। और रथों से नौकाओं का बदलना इस का प्रमाण है कि प्राचीन काल में आर्य राजाओं के समय देश रक्षार्थ समुद्री सेना का रखना भी आव हो गया था। मन्दोदरी अपने पति और पुत्रों के मारे जाने के पश्चात् रामचन्द्र जी की आज्ञा से देवर विभीषण जी से पुनर्विवाहित हुई। क्योंकि रामचन्द्र जी ने अपनी सहायता के बदले में रावण मरणोपरान्त लंका का राज्य उस के भाई विभीषण को स्वयं दे दिया था।

परिणाम

जिस प्रकार पंजाब में अनपढ़ स्त्रियां प्रायः सुहाग भाग्य का व्रत रखती हैं और उस से हार्दि भावना यही होती है कि पति कष्टों, दुःखों और असामयिक दुर्घटनाओं से सुरक्षित रहे। यदि इन कुछ भी ज्ञान होता तो वे भी मन्दोदरी जी की भाँति ऐसे कृत्रिम व्रतों से पृथक् हो कर पति को दुःखों से सुरक्षित करने के लिये शिल्पों के आविष्कारों से सहायता करती।

(५) सीता जी का वृत्तान्त

जो प्रसिद्धि आर्यों में रामचन्द्र जी की रानी सीता ने पाई वह किसी स्त्री के भाग्य में न आ विभिन्न आपत्तियों को झेलना, विचित्र २ परिणामों को देखना, कुलीनता, सज्जनता, ईश्वर प्रद सौन्दर्य की सूक्ष्मता और गुणों की विशेषता यह सारी बातें ऐसी हैं जिन के कारण प्रतिपक्ष औ प्रति सम्प्रदाय के आर्य इन के नाम को आदर से लेते हैं। हिन्दु सीता का ऐसा मान करते हैं जैसे ईसा बीबी मर्यम का और मुसलमान बीबी फ़ातमा का। सीता के पिता का नाम जनक था। वह मिथिल देश का राजा था। जिसे आज कल तिरहुत कहते हैं। इस लड़की के अतिरिक्त उस के घर और सन्ता न थी। अतः बड़े प्रेम और लाड से इसे पाला पोसा था। सौन्दर्य और रूपलावण्य में उस समय इस देवी का कोई और दृष्टान्त न था। और विशिष्ट स्तुत्य गुणों ने उसे और भी चमका रखा था। एक बुद्धिमान् का वचन है कि वीर पुरुष के अतिरिक्त गुणवती स्त्री का कोई स्वामी नहीं है। इस वचनानुसा उस के पिता ने निश्चय किया कि जो कोई एक सुदृढ़ धनुष्कमान को (जो इस के यहां रखी हुई थी चिल्ला चढ़ायेगा, वही सीता को पायेगा। उस काल में वीरता ही योग्यता समझी जाती थी। समस सरदार और क्षत्रिय लड़कियां उन्हीं लोगों को देते थे जो युद्ध विद्या में प्राथमिकता प्राप्त करते थे। य कमान कोई आसमानी कमान न थी। और न कोई चमत्कार रखती थी। प्रत्युत बड़ी भारी और सुदृ थी कि उस का खेंचना कठिन था। ऐरियन नामी एक इतिहासकार लिखता है कि भारत के लोग कमानों

को पांव से खेंचते थे। उन का तीर छः फ़ुट लम्बा होता था। ऐसी कमान अब भी पर्वतीय प्रदेशों में पाई जाती है।

राजा जनक के पास ऐसी कमान का होना विचित्र बात नहीं है। जब सीता के सौन्दर्य और गुणों तथा उस के पिता के धन ऐश्वर्य की प्रसिद्धि आर्यावर्त देश में फैल गई। तो समीप और दूर के बहुत से राजा श्री जनक जी के दरबार में आने लगे। उस समय रामचन्द्र जी के यौवन का प्रारम्भ था। धनुर्विद्या में उन्होंने पूर्णता प्राप्त की थी। कोई राजा श्री रामचन्द्र जी के अतिरिक्त उस कमान को न खेंच सका। उन्हों ने केवल खेंचा ही नहीं प्रत्युत दो भाग भी कर दिये। उनकी परमवीरता को देख कर सीता के पिता ने उसका विवाह रामचन्द्र जी से कर दिया और वह उन को लेकर अयोध्या में चले आए जहां उनके पिता दशरथ का राज्य था। यहां रहते हुए रामचन्द्र जी को थोड़े दिन हुए थे कि उन के पिता दशरथ ने अपनी एक चहेती रानी के बहकाने से राम चन्द्र जी को चौदह वर्ष का बनवास दे दिया। राम चन्द्र जी सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर वहां से चले। इलाहाबाद से होते हुए चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे। कई वर्षों तक इधर उधर घूम कर अन्ततः पंचवटी, जो गोदावरी के उद्गमस्थान के निकट है, वहां पधार कर शेष बनवास काल व्यतीत किया।

उन के घर से जाने के पश्चात् राजा दशरथ शोकाकुल होकर परलोक सिधार गए। तब राम चन्द्र जी को लौटा लाने के लिये भरत उन के पास आए। परन्तु उन्हों ने वचनानुसार बनवास की अवधि समाप्त होने से पूर्व अयोध्या जाने से इनकार कर दिया। संक्षेपतः श्री रामचन्द्र जी सीता जी औरं लक्ष्मण जी सहित पंचवटी में रहते और बन के फलाहार से जीवन व्यतीत करते थे। इस यात्रा काल में जिस तत्परता के साथ राम, लक्ष्मण और सीता के साथ सद्व्यवहार करते थे तथा जिस प्रेम-भावना से उन की सुध लेते थे उस से सिद्ध होता है कि आर्य अपनी स्त्रियों का बहुत मान करते थे। राम और लक्ष्मण सीता को कभी अकेला न छोड़ते थे। एक दिन अकस्मात् हिरण का एक रूपवान् बच्चा उस मार्ग से गुज़रा। सीता का मन उस के प्रेम में मग्न हो गया। उसने रामचन्द्र जी से प्रार्थना की कि महाराज ! यदि यह जीवित मिल जाए तो मन इस बनवास में सन्तोष पाये। रामचन्द्र जी उस के पीछे गए। और उसे जीवित पकड़ने के विचार से बहुत देर की। जिस पर लक्ष्मण जी सुध लेने गए। भाग्य से लंका का राजा रावण मैदान ख़ाली देख कर सीता को बलपूर्वक ले गया। इस का कारण यह था कि रावण की बहिन राम चन्द्र जी से विवाह करना चाहती थी। वह बोले कि मैं अपनी पत्नी साथ लाया हूँ। लक्ष्मण नहीं लाया। उससे कहो। जब उसके पास गए तो उसने इनकार किया किन्तु स्वरूपणखा गुप्त रूप से आकर सीता को डराया करती थी। लक्ष्मण ने उसकी असभ्यता, गति विधि तथा बातचीत से बाधित होकर उस का नाक काट डाला। विवश होकर रावण सहायतार्थ आया। और सीता को अकेली पाकर ले गया। लंका में लेजाकर काम वासना के वश में होकर कई जाल बिछाए। यहां तक कि सीता को बंदी बना दिया। परन्तु सीता की पवित्रता के आगे उसकी एक न चली।

राम और लक्ष्मण ने जब वापिस आकर सीता को वहां न पाया तो बहुत दुःखी हुए। और बन में स्थान २ पर ढूंढने लगे। अन्त में जब सीता जी का पता चला तो करनाटक के राजा बाली के भाई सुग्रीव से मिलकर सीता को क़ैद से निकालने के लिये रावण से युद्ध की

तय्यारी हुई। युद्ध से पूर्व सुग्रीव के सेनापति और प्रधान मंत्री हनुमान को दूत बनाकर रावण को समझाने के लिये भेजा गया परन्तु वह न माना। हनुमान् जी सीता को सान्त्वना देकर वापिस आ गये। तब रामचंद्र जी ने सुग्रीव सहित बीनार की खाड़ी पर पुल बांध कर लंका पर चढ़ाई की। जो युद्ध में वीरता के चमत्कारपूर्ण कार्य हुए और जितना वध हुआ, उसको महर्षि वाल्मीकी जी ने विस्तार सहित वर्णन किया है। अन्त में राम और रावण का युद्ध हुआ और राम ने रावण को मार डाला। रावण वध के पश्चात् सीता को क़ैद से छुड़ा कर वनवास की अवधि पूरी हो जाने के कारण स्वदेश लौटे किन्तु वापिसी से पूर्व सीता को पवित्रता के प्रमाणार्थ अपनी निर्दोषता सिद्ध करनी पड़ी। सीता जी को सारी जनता ने निर्दोष स्वीकार किया। और सब अयोध्या आये।

राजा रामचंद्र जी सीता के साथ प्रसन्नता पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। वह जितना अपने सौन्दर्य और शुभ गुणों से उनके मन को अपनी ओर आकर्षित करती थीं, वह उतना ही अपनी श्रेष्ठता, प्रेम तथा सद्भावनाओं का बीज उसके मन में बोते थे। इन दोनों के प्रेम का वृत्तान्त महर्षि वाल्मीकी आदि ने लिखा है। वह केवल कविता ही नहीं है। प्रत्युत पति-पत्नी के प्रेम का दृष्टान्त है। सीता का मन प्रायः सांसारिक वासनाओं से दूर रहता था। अन्त में कुछ वर्षों के पश्चात् एकान्त वास की आज्ञा मांगी। अयोध्या के पास जहां घना वन है। सीता की इच्छानुसार लक्ष्मण जी वहां उसको छोड़ आए। वन में पहुँचने के कुछ काल पश्चात् लव और कुश दो जोड़े पुत्र उत्पन्न हुए। वाल्मीकी मुनि जो उस समय के ऋषियो में बहुत ही धर्मात्मा थे, इस अवस्था में समीप थे। सीता जी उनके आश्रम में चली गईं। इस प्रकार बारह वर्ष तक एकान्त स्थान में सन्तान के पालन पोषण, ऋषि की सेवा और प्रभुभक्ति में संलग्न रहीं। जिस समय राम चंद्र जी ने अपने यहां एक बड़ा यज्ञ किया तो उस समय तक वाल्मीकी जी रामायण लिख चुके थे। और वह लव और कुश को स्मरण करादी थी। इस यज्ञ में बहुत से ऋषि मुनि और दोनों लड़कों को लेकर वाल्मीकी जी भी अयोध्या आए और लड़कों ने सारी रामायण ऐसी मधुर वाणी से राम चंद्र जी को सुनाई कि उस बड़ी सभा में सब को सीता वियोग दुःख देने लगा। तब राम ने हनुमान् आदि सेनापतियों को भेज कर सीता जी को अयोध्या में बुलाया। वह चिरकाल से कष्ट उठाते २ बहुत ही निर्बल हो गई थीं। अयोध्या में पहुँच कर वह अचेत होकर गिर पड़ीं। चेतनावस्था में लाने के लिये बहुत उपाय किये गये परन्तु कुछ लाभ न हुआ। थोड़ी देर के पश्चात् उन की मुक्ति हो गई। रामचंद्र जी को उनके मरने का ऐसा दुःख हुआ कि उन्होंने सरयू की शरण ले सद्गति प्राप्त की। श्री रामचंद्र जी के स्वर्ग वास के उपरान्त लव ने राज्य किया।

परिणाम

सीता की कथा से निम्नलिखित रहस्य प्रकट होते हैं:—प्रथम यह कि लड़की का विवाह देख भाल कर करना चाहिये द्वितीय-युवावस्था में विवाह होना चाहिये जब कि पूरे दाम्पत्याधिकार तथा कर्तव्यों का ज्ञान हो. तृतीय वीरके साथ विवाह करना चाहिये न कि आभूषण के लोभ में वृद्ध के साथ चतुर्थ-धैर्य, शान्ति

और आज्ञा पालन से पति के दुखों में सम्मिलित होना चाहिये। पंचम आपत्ति और क़ैद में भी पति को न भूलना चाहिये। षष्ट गर्भादि का ज्ञान होना चाहिये और तीसरे अध्याय के वर्णानुसार सावधानता करनी चाहिये। स्त्री को विदुषी होना चाहिये। सप्तम एक छोटी सी बात पर मन न लगाना चाहिये जिससे पति का जीवन आपत्ति में पड़ जाए और स्वयं भी दुःखी होना पड़े।

(६) शकुन्तला-वर्णन

यह देवी भारत में ऐसी हुई है कि जिसके वर्णन से एक प्रसिद्ध कवि कालीदास ने अपने नाटक को शोभायमान किया। शकुन्तला कण्वऋषि की पुत्री थी। ये ऋषि हरिद्वार के समीप एक छोटी सी नदी के सामने के तट पर एक एकान्त स्थान में रहते थे। उनके आश्रम के चारों ओर सर्व आदि के भाँति २ के स्वयं उत्पन्न होने वाले फूलों के वृक्ष थे। कण्वजी की सन्तान केवल शकुन्तला थी। अतः उन्होंने बड़े लालन पालन से उसे पाला पोसा था। जो बातें ज्ञानादि की तथा आचार शास्त्र की स्त्रियों को सिखानी चाहियें वह सब इसे सिखा दी थीं। पशुपालन और पौदों को पानी देना इस लड़की का काम था। जब वह युवावस्था में पहुँची तो अचानक एक दिन राजा दुष्यंत शिकार करता हुआ उधर आ निकला। कण्व जी उस समय आश्रम में न थे। आतिथ्य के लिये शकुन्तला ने उनका स्वागत किया। दृष्टियों का चार होना था कि दोनों का काम कामदेव के तीर ने तमाम किया। दृष्टि पात में ही दोनों ने एक दूसरे का रहस्य समझ लिया। उसी समय राजा दुष्यन्त ने अपना वंश कुलादि बता कर उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। यह विवाह दोनों पक्षों की सहमति से हो जाता था। और किसी प्रथा और नियम का उसमें प्रवेश नहीं होता था। इस प्रकार के विवाह प्राचीन काल में हिमालय के समीप एक पर्वतीय जाति में प्रचलित थे। मनु ने भी विवाह के प्रकारों में इस का वर्णन किया है। परन्तु इसको पसन्द नहीं किया। विवाह के पश्चात् राजा दो चार दिन वहां रहा। पुनः अपनी राजधानी को चला गया। चलते समय शकुन्तला को अपनी अंगूठी देकर यह कहा कि कुछ दिन में मैं तुझे अपने पास बुला लूंगा। थोड़े समय के पश्चात् शकुन्तला को गर्भ के चिह्न प्रकट हुए। तो अपने पति की ओर हस्तिनापुर को चली। परन्तु मार्ग में जो एक तालाब में उसे स्नान करने का अवसर मिला तो वह अंगूठी उसमें गिर पड़ी। जब वह अपने पति के पास पहुँची और उसने अपना चिह्न न देखा तो उसकी बात को न माना। और बन में जो वचन दिये थे, सब मनसे भुला दिये। यहां पाठकों को यह बात बतानी आवश्यक है। कि एक समय में आर्यावर्त में प्रथा थी कि सरदार को महर्षि कहते थे। और राज्यव्यवस्था भी उसी के हाथमें होती थी। पिछले राजाओं ने लड़ाई और राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में रक्खा। भक्ति और उपदेश तथा नेतृत्व का कार्य ब्राह्मणों को दिया। इस काल में जब ब्राह्मण क्षत्रियों के मुखापेक्षी हुए तो क्षत्रियों के मन से उनकी प्रतिष्ठा जाती रही। प्रत्युत उनसे विवाह करना भी अपमान समझने लगे। प्रतीत होता है कि दुष्यंत राजा भी उसी काल में हुआ है। शकुन्तला को जब उसने निर्धन ब्राह्मण की लड़की देखा तो उस को अपने घर में रखना अपमान समझा। अन्ततः जब राजा ने शकुन्तला को स्वीकार न किया तो उसकी माता आकर उसे बन में ले गई। यहां पहुँच कर शकुन्तला के एक लड़का हुआ जिसका नाम भरत रखा गया। इस लड़के के साहस का यह वृत्तान्त लिखा है कि वह वन में शेरों से न डरता था। उसके सामने उनके बच्चों से खेलता था। अन्त में जब वह अंगूठी, जो शकुतंला के हाथ से गिर पड़ी थी। किसी प्रकार राजा के पास पहुँची और भरत की

वीरता तथा साहस की प्रसिद्धि भी सुनी तो वास्तविकता जानने के लिये बन में पहुँचा। उसे अपना बेटा मान कर शकुंतला को साथ लाया और पटरानी बनाया। भरत बड़ा वीर और योद्धा हुआ और भारत के बहुत से भाग उसने जीते। इसी भरत के नाम से आर्यावर्त देश भारत कहलाया।

परिणाम

(१) लड़कियों को शिक्षा देकर विद्या के भूषण से सुशोभित करना चाहिये। जिससे भूषण न होनें अथवा पहनने का धब्बा मनसे दूर करके सदाचार व सत्याचरण से प्रसन्न रहें।

(२) समान व्यक्ति से विवाह करना चाहिये जो विद्या और गुणों में समान हो।

(३) राजा दुष्यंत की भान्ति वचन का परित्याग न करना चाहिये ताकि अन्त में पश्चाताप न करना पड़े। क्यों कि सदाचार की विशेषता आचरण में ही है।

(७) कुन्ती का वृतान्त

कुन्ती का नाम आर्यों के इतिहास में ऐसा ही प्रसिद्ध है जैसा रोम वालों में कोजेल्या का। इस जेल्या के विषय में लिखा है कि इस के दो बड़े लड़के वीर साहसी और देश प्रेमी थे। यह स्वयं श्रेष्ठ सदाचारिणी थी। यह देवी मसीह से २०० वर्ष पूर्व हुई है। लिखा है कि एक बार एक स्त्री अपने समस्त आभूषण शरीर पर धारण करके उस के पास आई और अपने आभूषण दिखा कर कहने लगी कि तू भी अपने आभूषण मुझे दिखा। उसने अपने दोनों लड़कों को उसके सम्मुख खड़ा कर दिया और कहा कि इन दोनों आभूषणों के अतिरिक्त मेरे पास और कोई आभूषण नहीं है। परन्तु मुझ को इन के कारण पूर्ण गर्व है।

कुन्ती राजा सूर की लड़की थी, जो मथुरा का राजा था। उन दिनों मथुरा का राज्य बड़े राज्यों में माना जाता था। अत: पांडू जैसे राजा का, जो चंद्रवंशी कुल का सूर्य था, मथुरा के राजा की लड़की से विवाह करना दोनों के गर्व का कारण था। राजा पांडू की दो स्त्रियां थीं। एक कुन्ती दूसरी माद्री। कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तीन लड़के तथा माद्री से नकुल सहदेव दो लड़के उत्पन्न हुए। इन पाँचों को प्राचीन इतिहास में पांडव कहते हैं।

पांडू प्रतापी राजा था। कई वर्ष तक उसने बड़ी शान से राज्य किया। अन्त में राज्य छोड़ कर हिमालय पर्वत में चला गया ताकि शेष आयु सपरिवार वहां एकान्त वास में व्यतीत करे। पर्वत यात्रा से अपना मन बहलाए। जब पांडू का स्वर्गवास हुआ तो कुन्ती पाँचों लड़कों को लेकर उनके चाचा धृतराष्ट्र के पास चली गई। राजा धृतराष्ट्र ने इनका बड़ा स्वागत किया। महल में अपनी धर्म पत्नी गांधारी के पास उसे रहने का स्थान दिया और उसके बच्चों को अपने बच्चों की भाँति पालने लगा। सब की शिक्षा के लिये गुरु द्रोणाचार्य को नियत किया। इस में कुछ सन्देह नहीं कि इन अनाथ बच्चों को द्रोणाचार्य पूर्ण गुरु मिले थे परन्तु माता की शिक्षा भी उनको गुरु की शिक्षा से कम लाभदायक न थी। जब पाण्डव प्रथम बार देशनिर्वासित हुए तो कुन्ती उन के साथ बनों और जंगलों में फिरती रही। बनों से निकलने के पश्चात् सब के सब वरुणावत अर्थात् इलाहाबाद पहुँचे। यहां उन के शत्रुओं ने उन के मारने का ऐसा ढंग किया था कि वह सब प्रकार जल कर

राख हो जाते। परन्तु उन का बाल टेढ़ा न हुआ। वहां से आरा नगर में पहुँचे। कुछ दिन तक एक ब्राह्मण के मकान में छिपे रहे। एक दिन उन्हों ने इस घर में रुदन का शोर सुना। जब पता किया तो उन्हों ने बताया कि इस नगर के निकट वाक नाम का एक नरभक्षी जंगली मनुष्य रहता है। उस का आचरण यह है कि प्रतिदिन एक मनुष्य खा कर अपना पेट भरता है। क्रमशः प्रत्येक घर से इस नगर का एक व्यक्ति भोजन की सामग्री सहित उस के पास भेजा जाता है। आज उस को साधारण भोजन और एक मनुष्य भेजने की हमारी बारी है। इस पर कुन्ती ने कहा कि तुम कुछ चिन्ता मत करो। मैं आज अपने एक लड़के को भेज दूंगी जो उस नर भक्षी को मार डालेगा। भीमसेन इस कार्यार्थ नियत हुआ और पीपल के वृक्ष के नीचे जहां वह नर-भक्षी आकर मनुष्य खाता था, जा बैठा। जिस समय वह नर-भक्षी आया और चाहा कि उस का भोजन करे। वह उस से लड़ने लग गया। बड़ी देर तक दोनों में युद्ध हुआ। अन्त में भीम की विजय हुई। और उस का कार्य समाप्त हुआ। संक्षेपतः आरा से निकल कर पांडव पंचाल राज्य के कमीला नगर में इस हेतु से चले गए कि वहां के राजा की लड़की द्रौपदी के स्वयंवर में सम्मिलित हों। अपनी माता को उस ब्राह्मण के पास छोड़ गए। जब द्रौपदी उन को स्वयंवर में प्राप्त हुई। तो पाँचों भाई अपनी माता सहित कुछ दिन कमीला में रहे। इस के पश्चात् राजा धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर में उन्हें बुलवाया। जब पांडव दूसरी बार निर्वासित हुए तो कुन्ती उस समय बहुत निर्बल हो चुकी थी। और उस में बनों में घूमने की शक्ति न थी। अतः उस को अपने चचा विदुर जी के पास छोड़ गए। इस निर्वासिन की शर्त पूरी होने के पश्चात् पाण्डवों ने कृष्ण जी को कौरवों के पास भेजा। जिस से शान्ति से उन को उन का राज्य मिल जाये तथा युद्ध न हो। जब कृष्ण जी हस्तिनापुर पहुँचे तो कुन्ती को बहुत दुखी देखा। उन्हों ने उन को सान्त्वना दी और कहा कि थोड़े दिन और धैर्य करो। पांडवों को शीघ्र राज्य मिल जायेगा। उस समय जो सन्देश कुन्ती ने उन के हाथ अपने लड़कों को भेजा वह बहुत ही महत्वपूर्ण और जानने के योग्य है। उस से यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त की देवियां किस प्रकार का मन और बुद्धि रखती थीं।

वह सन्देश यह है कि हे मेरे पुत्रो! अवसर को कभी हाथ से न जाने देना चाहिये। तुम को आवश्यक है कि अपने पिता के राज्य को वापिस लेने के लिये लड़ने में कुछ भी कमी न करो। शत्रु के प्रभाव और उसकी सेना की बहुतात का कुछ भय अपने मन में न लाओ। शीघ्र ही उससे राज्य छीन लो। समझ लो कि तुम क्षत्रिय हो। भिक्षा मांगने, हल जोतने के लिये तुम उत्पन्न नहीं हुए हो। हथियार बांधना, मरना, मारना तुम्हारा काम है। अपमान युक्त जीवन से मरना लाखों गुणा अच्छा है। यही समय है कि तुम पांडु के सच्चे वीर पुत्र बन दिखाओ। लोगों पर सिद्ध करो कि कुन्ती वीर पुत्रों की माता है। तुम्हारे शत्रुओं के कारण जो आपत्तियां तुम्हारे खानदान पर पड़ीं, वे कोई न्यून नहीं हैं। जब मैं इस बात का विचार करती हूँ कि द्रौपदी के बाल पकड़ कर उन्होंने उसे किस प्रकार घसीटा तो सब आपत्तियां इस अपमान के सामने छोटी दृष्टिगत होती हैं। यदि तुम नें कौरवों से इस अपमान का प्रतिकार न लिया तो संसार में तुम्हारा जीना व्यर्थ है। तुम्हें आवश्यक था कि जिस दिन यह अपमान हुआ था, उस दिन उस का प्रतिकार करते। अथवा वहीं मर कर ढेर हो जाते। अब समय हाथ से निकल गया है अतः अब इस में पूर्ण शक्ति लगाना आवश्यक है।

इस सन्देश से हमें स्पार्टा की स्त्रियों की वह उक्ति स्मरण हो उठती है कि जब उन के लड़के युद्ध में जाते थे तो उन से माताएं कह देती थीं कि या ढाल ले कर आना या ढाल के ऊपर आना। इस से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में आर्य जाति की सब देवियां एक सा स्वभाव रखती थीं। संक्षेप यह कि महाभारत के युद्ध में पांडव विजयी हुए। कुन्ती अपने पुत्रों समेत राज्य की स्वामिनी बनी। परमेश्वर ने उस को वह राज्य और गौरव दिया कि उस के लड़के अश्वमेध यज्ञ करने के योग्य हुए। जब उन की सारी इच्छाएं पूर्ण हुईं तो वह धृतराष्ट्र और गान्धारी सहित हस्तिनापुर से चली गई। गंगा के तट पर एकान्त स्थान पर रहने लगी। जब आयु के दिन पूरे हुए तो अकस्मात् उस वन में आग लग गई और कुन्ती, गान्धारी तथा धृतराष्ट्र तीनों जल कर परलोक सिधारे।

परिणाम

प्रथम—स्त्री को श्रेष्ठ सन्तान और वीर पुत्रों पर गर्व करना चाहिये न कि आभूषणों पर।
द्वितीय—माता का शिक्षित होना लड़कों के लिये महारसायन वत् है।
तृतीय—घरेलु कार्यों के अतिरिक्त देश की राजनीति में स्त्रियां सम्मति देती थीं।
चतुर्थ—स्त्रियों में भययुक्त विचार होने से सन्तान डरपोक बनती है।

(८) गान्धारी

गान्धारी बड़ी बुद्धिमती और श्रेष्ठ देवी थी। यह महाराजा कंधार की पुत्री और हस्तिनापुर के अधीश्वर राजा धृतराष्ट्र की रानी थी। चाहे उसका पति चक्षुहीन था परन्तु उसने उसके मान और आज्ञा पालन में कोई त्रुटि नहीं आने दी। गान्धारी से राजा धृतराष्ट्र के दो लड़के दुर्योधन तथा दुशासन और एक लड़की दुःशाला उत्पन्न हुई। उसकी सच्चरित्रता और पवित्रता की यहां तक प्रसिद्धि थी कि आज तक भी लोग इसका दृष्टान्त देते हैं। जब दुर्योधन का पांडवों के साथ बिगाड़ हुआ तो इसी देवी की बुद्धिमत्ता के कारण राजा ने उसको दरबार में दुर्योधन के समझाने के लिए बुलवाया था। परन्तु उस हठी और दुराग्रही ने जिस प्रकार और बड़ों की बात को न माना, माता की शिक्षा पर भी कान न धरे। अन्त में परिणाम यह हुआ कि कुरुक्षेत्र की भूमि में दोनों का युद्ध हुआ और समस्त कौरव इस युद्ध में मारे गए। इस घटना के पश्चात् जब पांडवों को धृतराष्ट्र और गान्धारी के दुःखी होने का ज्ञान हुआ तो प्रथम उन्हों ने उनकी सान्त्वना के लिये कृष्ण जी को उनके पास भेजा। जब वह वहां पधारे तो उन्हों ने मृतकों पर शोक प्रकट करके महाराज को सान्त्वना दी उसके पश्चात् चाहते थे कि महल में जाकर गान्धारी को धैर्य दें। परन्तु उनका आना सुनकर उससे र न गया और वह शोकातुर होकर वहीं आ गई। कृष्ण को देख कर अचेत हो गिर पड़ी। कृष्ण जी र अवस्था देखकर बहुत घबराए और यह समझकर कि गान्धारी मर गई है रोने लगे। पुनः केवड़ा और गुलाब मंगवा कर उसके मुख पर छिड़का। धृतराष्ट्र जी भी वहां पर आए। उसका सिर उठाकर अपनी जंघा पर रख लिया। बड़ी देर के पश्चात् जब उसे होश आया तो कृष्ण जी ने उसको बहुत सान्त्वना दी। इस देवी को जितना अपनी सन्तान के मारे जाने का दुःख था उतना अपने निर्बल और दुःखी पति की भी चिन्ता थी। महाभारत में जिस स्थान पर युद्धक्षेत्र में स्त्रियों के भेजने, पुत्रों भाईयों और पतियों के मृत शरीरों को देख कर रोने और अन्तिम विधि करने का वर्णन है, वह इतना प्रभावशाली है कि

पत्थर हृदय भी उस स्थान पर पानी होकर मोम हो जाता है। जैसा यह प्रकरण महाभारत में दुःखदायक है स्यात् समस्त महाभारत में दो चार स्थल ही और ऐसे होंगे।

संक्षेपतः गान्धारी ने अपनी बुद्धिमत्ता के कारण बड़े धैर्य के साथ जीवन व्यतीत किया। अपनी अन्तिम आयु में अपने पति के साथ गंगा के तट पर जाकर रही। और वहां बन में आग लग जाने के कारण वह और सब साथी कुन्ती सहित जल कर राख हो गए।

परिणाम

इस कथा से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में अटक नदी से इस पार आना, जैसा कि अब प्रायः गोबर गणेश लोगों के कथनानुसार पाप होता है, पाप न माना जाता था। प्रत्युत लोग प्रसन्नता और उत्साह से इस ओर विवाह करते थे। संस्कृत में कंधार नगर का नाम गान्धार लिखा है। और इस कथा से पति की आज्ञा में दृढ़ता के साथ रहना भी सिद्ध होता है।

(६) द्रौपदी

द्रौपदी की कथा लिखते हुए लेखनी की जिह्वा पर छाले पड़ते हैं। यह राजा पंचाल की लड़की थी। बाह्याभ्यन्तर गुणों से युक्त, ज्ञान विज्ञान सदाचार के मोती से शोभायमान होकर जितनी प्रशस्ति एक सच्चरित्र देवी में उचित है उसमें सब विद्यमान थी। पूर्ण युवावस्था में पहुँचकर उसकी इच्छानुसार विवाह का समारम्भ होने लगा। संस्कृत का विद्वान् पंडित द्रौपदी के शुभ नाम को सुनकर कुछ व्याकरण पर ध्यान देता है तो उससे स्पष्ट होता है कि द्रौपदी किस पद से विभूषित देवी थी। धीरता, लज्जा से युक्त तथा अभिमान से रहित थी। जिस प्रकार सीता का स्वयंवर धूम धाम से हुआ। द्रौपदी का स्वयंवर भी उससे कुछ कम न था।

द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार समस्त आर्यावर्त में फैल गया। बड़े २ राजा महाराजा आदि स्वयंवर में पधारे। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पांडव निर्वासनावस्था में उन दिनों आरा में एक ब्राह्मण के घर गुप्तरूप से ठहरे हुए थे। स्वयंवर का समाचार सुनकर पांडव कमीला नगर (पांचाल राजधानी) में पहुँचे। स्वयंवर के दिन शर्त पूरी करने के लिये भाईयों की सम्मति से अर्जुन आगे बढ़े। स्वयंवर की शर्त यह थी कि एक सोने की मछली बनाकर लटकाई गई थी। उस मछली के चारों ओर एक चक्र तीव्र गति से घूम रहा था। जिस पर दृष्टि कठिनता से ठहरती थी। शर्त यह थी कि जिस वीर पुरुष का तीर चक्र में से निकल कर मछली की आँख में लगे वही वीर द्रौपदी के साथ विवाह करने योग्य समझा जाएगा।

संक्षेप यह कि द्रौपदी सुन्दर वस्त्र धारण करके स्वयंवर सभा में आ गई। जब कुछ महानुभाव असफल हो कर बैठ गए तो अर्जुन जी ने आगे बढ़कर और परमेश्वर का स्मरण करके धनुष उठाया। ऐसा ताककर निशाना लगाया कि तीर ने चक्र से निकल कर मछली को उड़ा दिया। द्रौपदी ने उसी समय पुष्पमाला अर्जुन के गले में डाल दी। राजा ने बड़ी सजधज से द्रौपदी का विवाह किया। कोई न्यूनता न छोड़ी। पांडव तब कमीला में रहने लगे। जब राजा धृतराष्ट्र को यह ज्ञान हुआ कि द्रौपदी का स्वयंवर भी पांडवों ने जीता है। तो उसने उनको हस्तिनापुर बुलवाया। हस्तिनापुर में पहुँच कर कौरवों में पुनः फूट की आग भड़की।

जब द्यूत क्रीड़ा की लत में दोबारा पांडवों ने अपना धन और राज्य हरा दिया तो मूर्खता जनित प्रथा में फंसकर निरपराध बेचारी द्रौपदी को दाव पर लगा दिया। तो स्वार्थ का वह पौधा जिसके फूटने से देश का विनाश संभव था, मूर्खता के फंदे में फंसकर मनबहलाव में बोया गया। जिस से पांडव रिक्तहस्त होकर देशनिर्वासन पर विवश हुए। दुर्योधन की आज्ञा प्राप्त करके दुष्ट दुःशासन द्रौपदी को दरबार में पकड़ लाने के हेतु द्रौपदी के महल में गया। वह उसके वावेला पर ध्यान न देता हुआ बालों से घसीट कर उसे दरबार में लाया। बहुत ही गन्दे अकथनीय निर्दयता पूर्ण अत्याचार ढाए गए और दरबार में नग्न करने का निश्चय किया गया। यद्यपि उस समय पांचों पाँडव विद्यमान थे। परन्तु न जाने किस नीति से युधिष्ठिर जैसे वीर योद्धा, अर्जुन जैसे धनुर्धारी मौन धारण किये बैठे रहे। अन्त में भीम से न रहा गया। बहुत अधिक जोश में आकर दुःशासन के हाथ से उसे छीन लिया। ऐसे कठोर शब्द वाणी से कहे जिससे निश्चय था कि रक्त की नदी बह जायेगी। और सैंकड़ों मौत के भंवर में तैरते दृष्टिगत होंगे। परन्तु दुर्योधन दुःशासन अपने दरबार वालों के सहित भयभीत होकर अवाक् रहे। अन्त में पांडव द्रौपदी सहित शर्त के अनुसार निर्वासित हो गये। निर्वासनकाल की समाप्ति के पश्चात् कौरवों के साथ युद्ध छिड़ा। थानेश्वर में महासंग्राम हुआ। पांडव विजयी और कौरव मृत्यु का ग्रास बने। पुनः द्रौपदी के भाग्य का तारा चमका और हस्तिनापुर का राज्य पांडवों को मिला। द्रौपदी शिल्पकला में अतिनिपुण थी। निर्वासन काल में उसने ऐसे २ कार्य-कौशल से काम लिया कि यात्रा की आपत्तियां उनके हृदय से भुला दीं। अन्ततः प्रसन्नता पूर्वक जीवन अवधि समाप्त की।

परिणाम

प्रायः स्त्रियां दीवाली के दिन जुआ खेलती हैं। अथवा जिन के पति इस कुरीति के अभ्यस्त हैं उन को उचित है और उन का कर्तव्य है कि इस बुरी प्रथा का त्याग करें। अन्यथा द्रौपदी की भाँति दुखों और कष्टों में दिन व्यतीत करने होंगे।

(१०) संयोगिता

रानी संयोगिता क़न्नौज के महाराजा जयचन्द्र की लड़की थी, जो परम सुन्दरी और रूपवती थी। इस के साथ वह गुणवती भी बहुत थी। इन दिनों राठौरों का राजा जयचन्द और चौहानों का राजा पृथिवी राज था। राजपूत जाति में बहुत काल से परस्पर द्वेष चला आ रहा था। जब पृथिवीराज ने धूम-धाम से एक यज्ञ किया तो जय चन्द को द्वेषाग्नि ने और भड़काया। उस ने अपने शत्रु से अधिक ख्याति प्राप्त करने के लिये राजसूय यज्ञ की तैयारी की। बहुत ही सजधज से यज्ञ की समाप्ति होने लगी। पृथिवीराज और चित्तौड़ नरेश सोमरासी को छोड़ कर भारत के समस्त राजा यज्ञ शाला में सुशोभित थे। ऐसे अवसर पर यज्ञ का सब कार्य राजाओं को करना पड़ता है। अतः जयचन्द ने उन अनुपस्थित दोनों राजाओं का अपमान करने के लिये उन की सुनहरी मूर्तियाँ बनवा कर एक को दरबान तथा दूसरे को झूठे बरतन मांजने पर नियत कर दिया। यज्ञ समाप्त होने पर जयचन्द जी ने राजकुमारी संयोगिता का स्वयंवर करने का विचार किया। राजकन्या जयमाला हाथ में लेकर यज्ञ स्थान में आई कि इन महाराजाओं में से जिसे चाहे अपना पति चुने किन्तु उस ने जब से पृथ्वीराज की शूरवीरता सुनी थी किसी अन्य पर उस की दृष्टि न पड़ती थी। और उस ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह पृथिवीराज को छोड़कर अन्य किसी से विवाह न करेगी। पिता की द्वेषाग्नि का कुछ विचार

न करके उसने निर्भय हो कर सब के सम्मुख पृथिवी राज की मूर्ति के गले में जयमाला डाल दी। पृथ्वी राज ने यह समाचार सुन कर विचार किया कि किसी साधन से अपनी प्रेमिका को उस के पिता के घर से लाना चाहिये। एक दिन अकस्मात् सारी सेना साथ लेकर क़न्नौज के राज महलों में घुस कर सब के देखते हुए पृथिवीराज उसे निकाल लाया। मार्ग में पाँच दिन तक युद्ध होता रहा। राजा के बहुत वीर सरदार मारे गए। किन्तु उस की वीरता में कोई अन्तर न पड़ा। और वह संयोगिता को देहली में लाया। जब पृथिवीराज संयोगिता को ले कर देहली आया। तब से उसे राजकाज की कोई चिन्ता न रही। विषय भोग में लोलुप हो गया। एक वर्ष के पश्चात् राजदूतों ने सूचना दी कि महाराज! यवनों की सेनाएं चढ़ती आती हैं। यह सुन कर महारानी उपदेश करने लगी। हे प्रीतम! उठिये। अब यह भोग विलास का समय नहीं है। आप क्षत्रिय हैं। अस्त्र शस्त्र पहिन लीजिये। संग्राम की तैय्यारी कीजिये। क्षत्रियों के लिये अपने देश और मान पर प्राण दे देना मृत्यु नहीं है। अतः उठिये! शस्त्रों का शृंगार कीजिये।

यह सेना शहाबुद्दीन गौरी की थी। पहले वह तलवार के मैदान में इसी राजा से पराजित हो कर चला गया था। अब पुनः सेना सम्भाल कर भारत पर चढ़ आया था। उधर पृथिवीराज भी कटिबद्ध होकर तैय्यार हो गया। किन्तु शोक कि जितने बड़े २ वीर योद्धा थे, सब क़न्नौज के युद्ध में मारे जा चुके थे। फिर भी अपने शेष अनुकूल राजाओं को एकत्र कर वह युद्ध के लिये समुद्यत हुआ। जब पृथिवीराज अपनी प्रिय पत्नी संयोगिता से मिलने आया। दोनों में बोलने की शक्ति न रही। अन्त में रानी से पृथक् हो कर युद्ध भूमि पहुँचा। यद्यपि इस युद्ध में राजपूतों ने वीरता के जौहर दिखाए। परन्तु सेना के सुशिक्षित न होने के कारण पृथिवीराज मारा गया। सेना पराजित हुई। रानी संयोगिता अकेली युद्ध-भूमि में शहाबुद्दीन के पास गई और कहा कि मेरे पति का सिर दे दो। मैं सती होती हूँ। उस ने पहले बहुत समझाया। किन्तु जब उसे समुद्यत देखा तो राजा का सिर दे दिया। उस को ले कर रानी संयोगिता सती हो गई। पुरानी देहली के खण्डरों में अब तक संयोगिता के भवनों के चिह्न पाए जाते हैं। शहाबुद्दीन संयोगिता की वीरता और साहस देख कर दुखी हो कर चिर काल तक शोक करता रहा। उस की बुद्धि और ज्ञान की प्रशंसा चन्द्र कवि ने की है, उसे पढ़ कर पत्थर हृदय भी पिघल कर मोम हो जाते हैं।

तीसरा अध्याय

बच्चों के पालन पोषण तथा गर्भ सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातों का वर्णन इस अध्याय में होगा जिन का जानना स्त्रियों के लिये अत्यावश्यक है।

ज्ञान न होने के कारण स्त्रियों को गर्भावस्था में और प्रसवकाल में जितने कष्टों का सामना करना पड़ता है, उन का विस्तृत वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। इस स्थान पर कुछ चिह्न लिखने उचित हैं जिन से गर्भ होने का अच्छी प्रकार से ज्ञान हो। प्रथम नियत समय पर मासिकधर्म का न आना। द्वितीय प्रातः काल जी का मचलाना। तृतीय आलसी हो कर सुस्ती का होना और कार्य करने में मन न लगना। चतुर्थ कब्ज़ हो कर थूक ज़्यादा आना, बेचैनी और निद्रा की अधिकता। पंचम मुख का मुरझा जाना, भोजन से घृणा। षष्ठ गर्भ के प्रारम्भ काल में स्तन चूचियों में एक काला दायरा पड़ जाना। और पेट भी चपटा हो जाना। तीसरे मास में उस की ऊँचाई दीख पड़ती है। स्तन भी दूसरे मास बढ़ने लगते हैं। तीसरे चौथे मास में दूध की भाँति मवाद निकलता है। खट्टी चीज़ों के खाने की मन में प्रबल इच्छा होती है। अपवित्र स्वभाव स्त्रियों के मन प्रायः गर्भावस्था में मिट्टी खाने अथवा कोयला खाने पर भटकते हैं। मूर्ख कहते हैं कि बच्चे का मन मिट्टी खाने का है। किन्तु यह मिथ्या है। वस्तु स्थिति यह है कि स्त्रियों की इच्छाओं में से कोई इच्छा गर्भावस्था में प्रबल हो उठती हैं। यद्यपि अधिक खटाई खाना भी उचित नहीं। परन्तु मिट्टी खाना बहुत ही बुरा है। अच्छा यह है कि साधारण भोजन जो स्वभाव के अनुकूल हो उसे खाना और घरके काम धंधे में संलग्न रहना चाहिये। जिस समय किसी स्त्री को अपने में यह चिह्न दिखाई दें तो उसको अधिक अनुमान गर्भ का करना चाहिये और निम्नलिखित सावधानता करनी चाहिये। प्रथम ऐसे दिनों में चिन्ता क्रोध दुःखादि न करना चाहिये। द्वितीय भारी वस्तु न उठाये। तृतीय अति परिश्रम न करे। चतुर्थ पैदल यात्रा न करे। पंचम रोगी न देखे। षष्ठ भयानक वस्तु, भयानक स्त्री, भयानक फ़ोटो न देखे। सप्तम मादक द्रव्य सेवन न करे। अष्टम किसी स्त्री की प्रसवपीड़ा न देखे। नवम तीव्र जुलाब न ले। दशम रक्त न निकलवाये। एकादश ज्वर में अधिक कोनीन अथवा कोई और गरम-खुश्क औषध सेवन न करे। द्वादश कटि को कस कर न बांधे। इन बातों का करना गर्भगत दिनों में निषिद्ध है। साथ ही सर्वथा बैठे रहना अथवा कोई कार्य न करना सदोष समझा जाता है।

स्मरण रहे कि जिन दिनों में स्त्रियों को मासिक धर्म आता है। उसका वर्णन करना भी इस अवसर पर आवश्यक है।

मासिक धर्म क्या है? एक सुर्ख स्याही लिये पतली रतूबत जो युवावस्था में बलवती स्त्रियों में दो छटांक से पाँच छटांक तक प्रतिमास बच्चा दानी से निकलती है। गरम देशों में १०–१२ वर्ष की आयु में और शीत देशों में १८–१६ वर्ष में यह स्याही आनी आरम्भ होती है। जो लोग इसको रक्त समझते हैं, वे भूल पर हैं। क्योंकि यदि यह रक्त होता तो निकलने के पश्चात् जम जाता। परन्तु

यह नहीं जमता । इसी से पता चलता है कि वह रक्त नहीं है । यदि मासिक धर्म न आवे तो सन्तान भी नहीं होती । निर्बल स्त्रियों को मासिक धर्म के प्रारम्भ में ज्वर आजाया करता है । इसका अधिक समय तक आना शक्ति पर आधारित है । इसकी अन्तिम अवधि ४० से ६५ वर्ष तक की है । न्यून से न्यून तीन दिन अधिक से अधिक ६ दिन में स्त्री निवृत्त हो जाती है । यदि इससे अधिक दिन आये तो रोग समझा जाता है । ऋतुकाल में सरदी से बचना चाहिये । यथा संभव ठंडे जल में पाद प्रक्षालन न करना चाहिये । और भयानक आवाज़, प्रतिकृति अथवा बातचीत का प्रभाव हृदय पर न पड़ने देना चाहिये । अन्यथा मासिकधर्म के एक साथ बन्द हो जाने से मृत्यु का भय होता है । मासिकधर्म ऐसा है जैसा कि वृक्षों में फूल होते हैं । गर्भावस्था में दांत निकलवाना भी बुरा है । क्योंकि इस से गर्भपात का भय रहता है । प्रजनन समय का कष्ट होने पर किसी चतुर दाई से कार्य कराना चाहिये । शहीदों के झाड़ और बाबा जी के जन्त्रमन्त्र या अमर नाथ की भबूत लगाना व्यर्थ और मूर्खता का चिह्न है । प्रायः बच्चे मूर्खता और अविद्या से व्यर्थ चले जाते हैं । और उनके माता पिता शोकातुर होकर रुदन करते हैं । जैसा कि कहा जाता है कि एक धनी के घर लड़का उत्पन्न हुआ । दाया स्यानी न थी । उसने जब झिल्ली में लड़के का रूप रंग न देखा तो उसको मृतक समझा और घर वालों ने, जो जाति के हिन्दू थे, कृत्रिम छूत-छात के बन्धन के कारण उसको हाथ न लगाया । दाई ने लड़के को ले जा कर कहीं बाहर भूमि में दबा दिया । परमात्मा रक्षक हो तो मारे कौन ? अकस्मात् दूसरे दिन कोई पथिक उस ओर से गुज़रा । लड़के के रोने का शब्द सुना । जब धीरे २ उस स्थान को खोदा तो लड़का ठीक अवस्था में था । उठा लाया और पूछताछ करके उसके माता पिता को दे दिया । मूर्ख स्त्रियों के मूर्खपन से बहुत से बच्चे भारत में इस प्रकार विनष्ट हो जाते हैं । हम अब उन आवश्यक बातों का वर्णन करते हैं जो बच्चों के पालने में काम आ सकती है :—

जब लड़का उत्पन्न हो तो जितना अधिक वह सोये उतना ही उसके लिये स्वास्थ्य प्रद और अच्छा है । क्योंकि प्रथम तीन मासमें यदि वह पूरा स्वस्थ है तो शीघ्र सो जाया करेगा । केवल उस समय जागेगा जिस समय उसको भूख होगी । जितनी अवस्था बढ़ती जाएगी उतनी जागने की इच्छा बढ़ती जाएगी । यदि रात्रि को बच्चे को नींद न आए तो उसका इलाज यह है कि दिनमें उसे जगाए रखें । दूध पिलाने के पश्चात् उसे शीघ्र न सुलाएं । क्योंकि ऐसे सोने से कभी २ हाथ पांव का ऐंठना और सुस्ती आदि रह जाती है । हे सन्तान वाली देवियो ! यदि तुम बच्चों को प्रिय मानती हो तो अपने अथवा किसी और बच्चे को पोस्त अथवा अफ़ीम आदि कोई मादक द्रव्य न खिलाओ ।

शोक ! किस प्रकार तुम्हारा हाथ चाहता है जब कि तुम ऐसी ख़राब करने वाली औषध बच्चे को देती हो । तुम निश्चित समझो कि तुम अपने प्यारे बच्चे को औषध नहीं प्रत्युत विष खिलाती हो । मृत्यु का शर्बत पिलाती हो । तुम प्रत्यक्ष यह समझती हो कि बच्चा मौन हो गया । यदि ध्यान से देखो तो मृत्यु से अधिक कोई खामोशी नहीं । इस हमारे आर्यावर्त देश में हज़ारों बच्चे इस तुम्हारी मौन धारण कराने वाली औषधियों से चले गए । परन्तु तुम्हारी अवस्था अब तक न सुधरी । मुझे दृढ़ निश्चय है कि यदि तुम को विश्वास हो कि इससे बच्चे मर जाते हैं तो उनको कभी विषैली घुटियों का प्रयोग न कराओ । परन्तु यह आप का विश्वास करना शिक्षा के बिना नहीं हो सकता । जब तुम अपने बच्चों को औषध के प्रयोग से अधिक सुलाना चाहो तो यह छोटी सी बात स्मरण कर लिया करो क्योंकि सम्भव है

तुम्हारा बच्चा इस नशीली औषध से ऐसा सोगे कि पुनः न उठे। बच्चों का नशों से मरना अथवा वध होना बहुत कुछ हुआ और होता जाता है। बहुत से लड़के इन मादक द्रव्यों के सेवन कराने से व्यर्थ चले जाते हैं। किन्तु तुम्हारे हृदयों से यह विचार नहीं जाते। अपने लड़के जगन्नाथ के रक्तरंजित रथ पर बलि चढ़ाने अथवा किसी नर भक्षी पशु द्वारा खा जाने अथवा नज़र गुज़ारने के लिये गंगा की भेंट किये जाने की अपेक्षा धोखा में आई हुई बेचारी यह माताएं इस कृत्रिमनींद को अच्छा समझती हैं। किन्तु यह नशे बुद्धि को रुग्ण करते हैं। हे श्रेष्ठ गुणवति देवियो! इन अफ़यूनी बूंदों को हलाहल विष की बूंदें जानो और सत्यहृदय से मानो कि बच्चा मर जाएगा। जगन्नाथ की मूर्ति अथवा रथ से बच्चा मांगना और पुनः उस पर बलि चढ़ा देना अथवा गंगा माई की भेंट धरना पूर्ण मूर्खता का चिह्न और प्रथम दर्जे की पूर्ण नादानी है। हमारे भारत वर्ष में एक स्त्री सम्प्रदाय, जिसको मूर्ख लोग चुड़ैल अथवा डायन कहते हैं, हर स्थान पर मौजूद है। सुना जाता है कि उन के पास अढ़ाई अक्षर होते हैं। वह पढ़कर बच्चों का कलेजा निकाल कर खा जाती हैं।

यह पुस्तक स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित है। अतः उचित समझा गया कि यहां उसकी पूरी २ व्याख्या करूं और ऐसा अटल मन्त्र बताऊं जिससे भविष्य में जो कोई इस पुस्तक को अपने घर में रखे और जो स्त्री इसको एकाग्रचित्त होकर पढ़े उस के घर और वंश में डायन पग न धरे। समझ लो कि साधारणतः डायन व चुड़ेल का अभिप्राय भयानक रूप वाली स्त्री हैं। छोटे नन्हे बच्चे जब किसी भयानक रूप अथवा प्रतिकृति को देखते हैं तो मन में भयभीत हो कर डर जाते हैं। कृत्रिम वहम (भ्रम) की मूर्तियां उन्हें वास्तविक की भाँति दिखाई देती हैं। जिस के कारण पीला रंग, निर्बल शरीर, आँखें सिमटी हुई रहती हैं। लोग इनको भूत और परी की छाया, जोगिनों की दृष्टि, डायन और चुड़ैल की दृष्टि मानने लगते हैं तथा उसी के दूर करने में तत्पर रहते हैं। यथार्थ इलाज न होने के कारण बहुत से बच्चे मर जाते हैं। मूर्ख लोग बच्चों के रोग से बेसुध रह कर उन के रोग को चुड़ैलों की मक्कारी जानते हैं।

वैद्य शिरोमणि धन्वन्तरि जी का कथन है कि भ्रम का इलाज मेरे पास नहीं है। परन्तु मेरे विचार में विभ्रम, परियों का विचार, चुड़ैलों की मिथ्या कल्पना, डायनों के मिथ्या चिह्नों की समाप्ति ज्ञान रूपी महौषध के बिना नहीं हो सकती। जैसे सूर्योदय से अन्धेरा दूर हो जाता है और रात्रि काफ़ूर हो जाती है वैसे ही ज्ञान-सूर्य के प्रकाश के सम्मुख अविद्यारूपी भ्रम भी एक साथ दूर हो जाते हैं।

हे सन्तान वाली देवियो! तुम्हें उचित है कि अपने नवोदित बालक को किसी सन्तान रहित डाईन की गोद में मत दो और न उस का दूध पिलाओ। अन्यथा वह विषैले अढ़ाई अक्षरों से तुम्हारी गोद खाली कर देगी। यदि बालक तुम्हारी गोद में हो और दूर से कोई लाख छूछा करे सर्वथा रुग्ण न होगा। तुम्हारी शिक्षा के लिये एक बात लिखना आवश्यक समझता हूँ। बहुत ध्यान से विचार करो कि भारत को छोड़ कर किसी और देश में शुक तारे का भ्रम नहीं है तो विचार करना चाहिये कि क्या वहां स्त्रियों को कष्ट नहीं होता। हमने कभी समाचारपत्रों में नहीं पढ़ा कि अमुक स्त्री को तारा सामने था। इस कारण से जहाज डूब गया। यदि मंत्र है तो मूर्ख और विद्वान् दोनों को नशा होगा। अन्यथा वह शराब नहीं जल होगा। इस ज्ञान से तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जाएंगे। अटल मन्त्र यह है कि इसे प्रातःकाल मुख हाथ प्रक्षालन करके बच्चों के कान में फूंक दिया करो।

यदि तुम्हारा बच्चा न सोये। बेचैन होवे, हठ करे, रोवे तो संभव यह है कि उस के पेट में दर्द होगा क्योंकि बच्चे अकारण नहीं रोते। जब बच्चा बेचैन हो तो एक घण्टा अथवा दो घण्टा के पश्चात् एक चमचा चाय का अथवा दो चमचा ग्राईप वाटर के दे दो अथवा सायंकाल जल में कोलिंग पाऊडर (एक दवाई है जो हस्पताल में मिलती है) दो। यह पेट के सब कष्टदायक भोजन को हज़म करा देगी। और मादक वस्तु से अधिक नींद लाएगा। जब माताएं दूध पिलाएं तो उस समय किसी अवस्था में भी किसी मादक द्रव्य अथवा लाल मिर्च का सेवन न करें क्योंकि इस से बच्चे का रक्त गरम हो जाएगा जिस से बच्चे को मसूढ़ों का दर्द, दांतों का कष्ट अथवा और बहुत प्रकार का कष्ट हो जाएगा। यह बात सिद्ध हो चुकी है कि बहुत से बालक दाई को देने पर नष्ट हो जाते हैं। यदि स्वयं दूध पिलाया जाय और अपने हाथों लालन पालन हो तो हानि की सम्भावना कम है। बच्चों को बहुत शीघ्र, जब कि माता प्रजनन कष्ट से चेते, दूध पिलाना आरम्भ करे। यह आरम्भ का दूध बच्चे को बहुत साफ़ करेगा। किसी और औषध की अपेक्षा यह स्वाभाविक जुलाब है। दूध बच्चों का स्वाभाविक भोजन है। अतः जब तक उस के दान्त न निकलें तब तक माता के दूध के अतिरिक्त और भोजन न दिया जाय। क्योंकि इस के सम्मुख बच्चे के लिये अन्य कोई वस्तु लाभप्रद नहीं। दान्त निकलने से पूर्व बच्चों को अन्य भोजन देना स्वाभाविक भोजन से वंचित रखना है। यदि उस का पेट अन्य भोजन से भर जाएगा तो दूध के लिये कोई स्थान शेष न रहेगा। बुद्धिमान् लोग समझाते हैं पुनरपि माताएं नहीं समझ पातीं। और लोभी माताएं बच्चों को अन्य पदार्थ खिला देती हैं। इस बात से भय मत करें कि तुम्हारा बच्चा केवल दूध पीने से भूखा मर जाएगा। देखो किस प्रकार पशुओं के बच्चे पुष्ट हो कर मोटे हो जाते हैं। यदि आप में समझ हो तो समझो कि दूध समस्त पोषक तत्वा का भण्डार है। अनन्त शक्तिमान् ईश्वर का हृदय से धन्यवाद करो। उस की कितनी बड़ी महिमा है कि सब प्रकार का भोजन जो माता खाती है उस से वह श्वेत भण्डार जिस का नाम शीरे मादर (माता का दूध) है बन कर स्तनों में आता है। जो प्रत्येक बालक की बुद्धि की वृद्धि के लिये पर्याप्त होता है। मानो कि जब तक बच्चे के दान्त निकलते हैं उन के बदले में माताएं खाती हैं।

प्रतिदिन दूध पिलाने से पूर्व स्तनों का धोना उचित है। यदि माता के दूध में कमी हो। अथवा वह रोग या निर्बलतादि कारणों से बच्चे को दूध न पिला सकती हों तो उसका श्रेष्ठ बदला गोदुग्ध होगा। जिस में तीसरा भाग गरम पानी मिला हो। और कुछ श्वेत शक्कर मीठा करने के लिये हो। यह दूध बच्चे को बोतल द्वारा पिलाना चाहिये। जिसके चारों ओर एक चिड़ी की सी श्वेत चोंच बनी होवे। बच्चे का भोजन बासी न हो। प्रत्युत ऐसा हो जैसा छाती का दूध। खट्टा और बासी दूध बच्चे के लिये हानिकारक है। नन्हें बच्चे को प्रारम्भिक दिनों में दो तीन घंटों के पश्चात् बार २ दूध पिलाना चाहिये। और रात्रि में लगभग तीन बार। किन्तु कुछ सप्ताहों के पश्चात् सारे दिनमें केवल तीन बार दूध देना पर्याप्त है। अर्थात् चार २ घंटे के पश्चात्। तथा रात्रि को दूध न देना चाहिए। क्योंकि पुनः रात्रि को दूध पिलाने से कई प्रकार के रोग बच्चों को हो जाते हैं। प्रथम पेट में गड़बड़, द्वितीय बदहज़मी, तृतीय पेटका दर्द, चतुर्थ वमन आदि आना। इससे माता पिता का आराम सर्वथा दूर हो जाता है। बच्चा भी बहुत कष्ट उठाता है। तुम निश्चित जानलो कि बच्चे को उपरिलिखित विधि से दिये गये दूध के अतिरिक्त और किसी प्रकार के भोजन की आवश्यकता नहीं होती। अतः कोई माता जानना चाहे कि बच्चे के अपच के क्या चिह्न हैं और वे किस प्रकार पहचाने जा सकते हैं

तो हम केवल इतना बता सकते हैं कि सोते २ एक साथ जाग पड़ना, हिलाना, चिल्लाना, रात को डरना हाथ पांव का ऐंठना, अकस्मात् पसीना २ हो जाना आदि इसके चिह्न हैं। इस के लिये सरल इलाज यह है कि माता को चाहिये कि प्रथम दिन बच्चे को इतना न खिलावे कि जिससे वह कष्ट उठाए। जब बच्चा रोवे तो हर समय उसे दूध न पिलावे। क्योंकि दूधका पिलाना ही उसके हठी होने का कारण माना गया है। छोटे बच्चों को जब दूध अधिक पिला दिया जाता है तो वह पेट में जा कर एकत्र हो जाता है। पेट के भर जाने के कारण बच्चे को प्रायः रोग होते हैं। यदि बच्चा सर्वथा स्वस्थ होगा तो प्रति चौबीस घंटा अर्थात् रात दिन में दो से चार बार शौच जाएगा। उसका साधारण शौच पतला अथवा हल्के जर्द रंग का होगा। उस में खट्टे प्रकार की दुर्गन्ध होगी। यदि शौच (पाख़ाना) दही जैसा अथवा फुटकीदार होवे तो यह रोग का चिह्न है।

बच्चे के स्नान का वर्णन

बच्चे को स्वस्थ रखने के लिये दिन में दो बार स्नान कराना चाहिये। हमेशा प्रातः काल के समय कोमल असफ़ंज से सिर, गर्दन, मुख और शौचादि के स्थान को तथा प्रति रात्रि को सारा शरीर धोना चाहिये। बच्चों के सारे शरीर पर साबुन लगाना निषिद्ध है। क्योंकि उससे शरीर में शुष्कता हो जाती है। हाथों को साबुन से धो डालना चाहिये। स्नान के लिये पानी कदोष्ण (कुछ गरम) हो। स्नान के पश्चात् किसी कोमल वस्त्र से बच्चे को पोंछना चाहिये। उसकी बग़लों और गले को बादाम रौग़न अथवा गोघृत कुछ गरम करके धीरे २ लगाना चाहिये। थोड़ा लगावें अधिक नहीं। यदि यह बातें न की जाएं तो जोड़ों में ख़ारिश अथवा ज़ख़म हो जाएंगे। तथा स्त्रियां आलसी और निकम्मी सिद्ध होंगी। बच्चे की स्वास्थ्यरक्षा का ध्यान रखने से बच्चे के जीवन का बड़ा कल्याण होता है। वह सरलता से पूर्णायु को प्राप्त करता है।

दांत निकलने का वर्णन

दांतों के निकलने का समय साधारणतः सात मास से बारह मास तक का है। उनका बहुत कुछ आधार बच्चे के स्वस्थ होने पर है। चिह्न निम्न प्रकार हैं :—

प्रथम दांत के निकलने से पूर्व काटना सात मास से आरम्भ होना चाहिये। उन दिनों बच्चे को दूध के स्थान पर सादी रोटी दूध में देनी चाहिये। क्योंकि यह बहुत ही पुष्टिकारक भोजन है। उचित है कि जिन बच्चों के दान्त काटते हैं, उनको रोटी और दूध का भोजन दो। जो बच्चे इसे खाते हैं बहुत मोटे और दृढ़ हो जाते हैं। बचपन की शक्ति और सुन्दरता का एक उदाहरण बन जाते हैं। बचपन के रोगों से छुटकारा पाते हैं। बच्चों को मांस और रक्त को जोश देने वाला भोजन खिलाने से ख़सरा का रोग हो जाता है। तुम अपने बच्चों को भूरी रोटी दूध में मिला कर दो। श्वेतरोटी में प्रायः फटकड़ी मिली होती है जो हड्डी बनाने वाली शक्ति को दूर कर देती है। यदि बच्चे को भूरी रोटी खिलाओगे तो उसकी हड्डियां दृढ़ और टांगें सुन्दर होंगी। जब दांत निकलते हैं तो शहद में थोड़ा सा नमक मिला कर दिन में तीन बार मसूढ़ों पर मलना चाहिये।

वस्त्रों का वर्णन

बच्चों के वस्त्रों में दृढ़ बन्द मत लगाओ क्योंकि उससे बच्चे का आधा श्वास रुक जाता है। प्रत्येक वस्त्र खुला, ढीला और पहनने में सरल हो। यह बात स्मरण रखो कि नए बच्चों की हड्डियाँ आरम्भ में चरबी और झिल्ली के अनुकूल होती हैं। वह किसी रूप में ढल सकती हैं। बहुत से बच्चे आयु भर छाती के रोगों में ग्रसित रहते हैं अथवा उन की पसलियां दब जाती हैं। इस का कारण यह है कि वह आरम्भ से वस्त्रों में कसे जाते हैं। बच्चों को वस्त्र पहिनाने में यह बात स्मरण रखने के योग्य है कि बारहों मास बच्चे को सर्दी न लगे और न खांसी हो। एक हकीम का वचन है कि बच्चों और बूढ़ों को फ़लालैन चमड़े के समान पहननी चाहिये।

टीका लगाने के लाभ

यह एक योग्यतम हकीम का वचन है कि जब दक्षिण वायु अधिकता से चलती है तो उस के पश्चात् चेचक की उत्पत्ति होती है। भोजनों में भी ऐसे पदार्थ हैं जिन के खाने से चेचक शीघ्र उत्पन्न होती है। विशेषतः ऐसे पदार्थ जिन के खाने का स्वभाव न हो। उन के ऊपर गरम पदार्थ अथवा औषध प्रयुक्त किये जाएं। जैसे प्रथम ऊँटनी अथवा घोड़ी का दूध अधिक पी कर उस के पश्चात् मद्य अथवा किसी और गरम वस्तु को खा लिया जाए तो चेचक निकलेगी। चेचक का रोग मानो एक बाह्य मवाद है। यह प्रायः बच्चों को होती है। युवा और वृद्धों को कम होती है। जिस शरीर में रतूबत अधिक हो, उस में चेचक बहुत निकलती है। जिस शरीर में शुष्कता बहुत हो उस में बहुत कम निकलती है। फ़िलासफ़ी (दार्शनिक) युग अर्थात् सत्युग, द्वापर और त्रेता में इस रोग से बहुत कम बच्चे मरते थे। मूर्खता युग अर्थात् कलियुग में जब वेदों और शास्त्रों की पवित्र शिक्षा छूट गई तो प्रायः मूर्ख स्त्रियों ने इस रोग को शीतला (माई देवी) के नाम से स्मरण किया। शोक है कि हम अपनी आँखों से देख रहे हैं कि हमारी जाति के लाखों बच्चे इस रोग की भेंट होते हैं। पुनरपि इलाज करना पाप समझ रहे हैं। प्रति दिन के अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि जिन लोगों को टीका लगाया जाता है वे उन बालकों की अपेक्षा बहुत कम मरते हैं कि जिन को टीका नहीं लगाया जाता।

उदाहरणार्थ एक सौ बच्चा एक गली में है ऐसा है जिन को टीका लगाया गया और दूसरी गली में भोली माताओं ने मूर्खता की कृपा से अपने एक सौ बच्चों को टीका लगाने के समय छिपा दिया, तो मैं वचन देता हूं कि नम्बर एक में से चालीस को चेचक निकलेगी और तीस स्वस्थ हो जायेंगे। शेष को सर्वथा न निकलेगी। नम्बर दो में सौ को निकलेगी। पच्चास मर जायेंगे। बीस अन्धे, काने, डोरे और कुरूप हो जाएंगे और मान लो कि तीस स्वस्थ भी हो जाएंगे।

यह दृष्टान्त मन घड़न्त नहीं है प्रत्युत डाक्टरों की वार्षिक रिपोर्टों से सम्पुष्ट है। श्वेत रंग की चेचक भयानक नहीं जब कि कुछ दाने बड़े निकल आवें। हे देवियो! यदि तुम्हारी यह इच्छा हो कि तुम्हारे बालक सुन्दर स्वस्थ हों, पूर्णायु प्राप्त करें। अन्धे काने, डोरे और निर्बल न हों तो सत्य कहता हूँ।

(१) शफ़ा बायदत दारूए तल्ख़ नोश।
(अर्थ) सेहत गर चाहिये तुझे तो कड़वा दारू[1] नोशकर।
आफ़ियत[2] दरकार हो तो यह नसीहत गोशकर[3]॥

१—दवा, २—सुख-आराम, ३—सुन।

(२) है अगर औलाद से उल्फ़त तुम्हें और प्यार कुछ।
बच्चों को टीका लगाओ समझ कर और होश कर॥

(३) जिस तरह निकला करे हैं फुंसियां हर एक को।
इस तरह चेचक निकलती है मवादी जोश कर॥

(४) यह नहीं माता न देवी और न है सीतला।
मर्ज़ है, बीमारी है, रोग है, जहालत पोश कर॥

(५) सर्द मुल्कों में बहुत कम मर्ज़ चेचक हो ज़रूर।
तुम भी ऐ औरात भारत समझो इस को होश कर॥

जब लड़का १ वर्ष का हो जाए तो उसका दूध छुड़ाने का उपक्रम उचित है। धीरे २ दूध छुड़वाना चाहिये। जहां पहले ५ बार दूध पिलाया जाय वहां धीरे धीरे तीन बार, दो बार, एक बार और अन्त में सर्वथा बन्द कर दिया जाए। इस प्रकार से बच्चे से दूध छुड़ाना सरल है। इस से कोई कष्ट न होगा। किन्तु सावधानी की आवश्यकता है क्यों कि उस समय दूध न निकलने के कारण माता को कष्ट होगा। अतः इस का इलाज यह है कि छः माशा खड़िया मिट्टी और चार रत्ती काफ़ूर पानी में घिसकर स्तन पर लगाया जाय। साधारण भोजन को भी कुछ अल्पमात्रा में करना चाहिये जिस से कष्ट दूर हो जाएगा।

जितनी तुम्हारी शिक्षा बच्चों के लिये लाभ प्रद हो सकती है और किसी गुरु, पीर मुरशिद, मास्टर आदि का उपदेश उतना लाभ दायक नहीं हो सकता। वह मूर्ख स्त्रियां जो बच्चों को गाली आदि के असभ्य कार्य सिखाती हैं, मानो वह यह यत्न कर रही हैं कि हमारी सन्तान मानव वृत्त के अनुकूल न हो। प्रथम तुम्हें यह उचित है कि तुम स्वयं शिक्षित होकर बच्चों को जब से कि वह बातचीत करना आरम्भ करें, उनको प्रत्येक बात ऐसी सिखाओ जिससे वह जीवन की फुलवाड़ी में एक आदमी दिखाई दें। गाली देना, सिखाना, दाढ़ी पकड़ना सिखाना, अशुद्ध शब्द स्मरण कराना, जिन्न भूत, शैतान, हौव्वा, चुड़ैल, डायन आदि बला से डराना, अथवा भयानक रूप वाले चित्र दिखाना सन्तान को प्रारम्भ से ही मूर्खता का पाठ पढ़ाना है। तुम्हारा कर्तव्य है कि बात चीत के प्रारंभ में बच्चे को ईश्वर का नाम स्मरण कराओ और उसे परमात्मा के गुण बताओ। ईश्वर का सर्वथा एक होना अच्छी प्रकार उनकी बुद्धि में बैठाओ। साथ ही माता पिता आदि बड़ों की प्रचलित मानमर्यादा उनको बताओ। आग में हाथ डालने से उन्हें डराओ और उन्हें गहने न पहिनाओ। प्रत्युत निर्मल वस्त्र खुले प्रयोग में लाओ। अपने सम्बन्धियों के नाम उन्हें सिखाओ। पांच वर्ष की आयु तक बच्चों को अक्षर बोध करा दिया जाए। उसके पश्चात् बच्चे को संस्कृत की शिक्षा नियम पूर्वक देनी चाहिये। यह नहीं कि उसे मार २ कर होड़ा चक्र अथवा चंडी पाठ कण्ठस्थ कराया जाए। अथवा महिम्मा स्तोत्र तोते की भाँति रटाया जाए। अपितु शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिससे स्मृति शक्ति पर बोझ न पड़े और अच्छी २ लाभप्रद शिक्षाएं स्मरण हो जाएं। संध्योपासना अर्थ सहित सिखलानी चाहियें। धर्म की श्रेष्ठता के सम्बंध में आवश्यक सिद्धान्त अच्छी प्रकार समझाने चाहियें। जिस से ऐसा न हो कि लोमड़ी के भेस में भेड़िये अर्थात् अन्य सम्प्रदायों के फिसलाने वाले प्रचारक तुम्हारे निर्मल चरित्र बच्चे को हूरों के कृत्रिम जाल के धोखे में फंसा कर पथ-भ्रष्ट करें। और तुम्हें शोक से हाथ

मलना पड़े। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि तुम्हारे बच्चे सत्य की खोज न करें प्रत्युत यह ऐसे न हों कि जैसे एक पहाड़ी क्षेत्र का व्यक्ति एक मन याकूत और मरजान के टुकड़े पर्वत से लाया और एक दुकानदार से कहा कि हमारे घर में नमक नहीं है। यदि इन पत्थरों के बदले में कुछ नमक दो तो बड़ी कृपा होगी। उसने पांच छः सेर नमक दे दिया और वह प्रसन्नता पूर्वक घर ले गया। परन्तु इसके पश्चात् जब उसको किसी जौहरी से उनका मूल्य ज्ञात हुआ तब रो २ कर शरीर सुखा दिया। जौहरी ने कहा कि "अब पछताए क्या होत जब चिड़ियां चुग गई खेत"। शेष स्वयं समझ लो। यदि तुम्हारा लड़का वेद से पूरा २ युक्ति पूर्वक परिचित होगा तो निश्चिव जानो कि सत्य मार्ग से कभी भ्रष्ट न होगा। प्रत्युत दार्शनिक, पण्डित अथवा शत्रुञ्जय वीर कहला कर जाति का इलाज करेगा और तुम्हारे काज संवारेगा।

चौथा अध्याय

घरेलु प्रबन्ध

एक महात्मा ऋषि का वाक्य है कि खाना और पहनना युक्ति पूर्वक होना चाहिये। घरेलु कार्य और सांसारिक धन्धे भी युक्ति पूर्वक हों। क्योंकि गृहस्थाश्रम का प्रबन्ध कष्ट झेले बिना सम्भव नहीं। अब देखना चाहिये कि विद्या के बिना स्त्रियां इन कर्तव्यों का पालन कैसे करती हैं? न पकाने का ढंग और न खाने की समझ। डेढ़ पहर दिन चढ़े तक सोकर जागें। मन में आया तो एक आध छींटा पानी का मुख पर डाल लिया। नहीं तो यूं ही मक्खियां भिनक रही हैं। हाथों से आँखों को पूंछ कर, जले दिल से दो टिक्कर पका कर जले बले दे दिये। दाल बनाई तो आधी कच्ची, दाना पृथक् पानी पृथक्। खाने वाले को कुछ भी अच्छा न लगा। चावल पकाए तो अधकच्चे। अभिप्राय यह कि कोई कार्य मन से न किया। प्रत्येक बात को सिर से टाल दिया। बेचारे पति ने किसी बात से डांटा तो कहर आगया (अंधेर मच गया) झट सुक़रात की पत्नी की भाँति बरतनों का धोवन उसके सिर पर उंडेल दिया। तुरन्त पंजे झाड़ कर उसके पीछे पड़ गई। रूठ कर घर का काम काज छोड़ दिया। वह जनमुरीद (स्त्री का दास) जब रोटी खाने से लाचार (बाधित) हुआ तो उसे अनुनय विनय से मनाया। उसको और सिर चढ़ाया। सारा दिन खाते रहना, सदा हाथ मुंह धोते रहना। यदि अच्छा वस्त्र पहना तो उसको सम्भालने का तरीका नहीं। एक दो दिन में गन्दा कर दिया। सास से झगड़ा, सहेलियों से लड़ाई, दिन रात छुरी कटारी की तय्यारी, ज्यों ही ब्याही हुई आई पति से प्रथम ही यह ठहरी कि यदि माता पिता से पृथक्ता करोगे तो मैं रहूँगी अन्यथा मुझ से किसी के ताने और गिले नहीं उठाये जाते। मैं किसी के बर्तन मांजने को नहीं आई। मुझे लोगों के सम्मुख खाया हुआ हज़म नहीं होता। उनके आभूषण हों और मेरे न हों। यह अत्याचार मैं सहन नहीं कर सकती। समस्त आयु मेरा तुम्हारे साथ निर्वाह है। माता पिता से प्रत्येक पृथक् होता आया है। उचित है कि पृथक् हो जाओ। मानो उस काठ के उल्लू को दीपक जला कर ऐसा नचाया कि न सुध बुध की ली और न मंगल की ली, घर से निकल राह जंगल की ली। जब माता पिता को ज्ञात हुआ कि लड़का हाथ से जाता है तो उन्होंने भी शीघ्र चल अचल सम्पत्ति विभक्त कर उसके लिये पृथक् मकान बनवा दिया। भला फूट का बोया हुआ बीज भूमि में जल जाएगा? जो परिणाम होगा। वह सूर्यप्रकाशवत् प्रकट है।

गृह प्रबन्ध के कार्यों में से प्रथम अनुचित व्यय है। जिस के कारण सैंकड़ों घराने वीरान होगए। ऋण तो राजयक्ष्मा से भी अधिक हानि कर है, जो अनुचित व्यय की कृपा का परिणाम है। एक बुद्धिमान् फारसी के कवि ने कहा है कि लोकाचार अपनी शक्ति के अनुसार होना उचित है। जो कार्य दिखावा के लिये शक्ति से बाहर किया जाता है वह लज्जाजनक होता है।

अभिप्राय यह कि जितनी चादर देखे उतना पांव पसारे। अन्यथा लज्जित, बदनाम और ऋणी होना पड़ेगा, सारे खुशामदी धनी के मित्र हैं। धन समाप्ति पर ऐसे लोग दूर भाग जाते हैं।

यदि गृहकार्यों के प्रबन्ध के लिये स्त्रियां इन नियमों का पालन करें करायें तो पूर्ण विश्वास है कि संसार में देवियों का पद बहुत ऊँचा हो जाए।

दो पैसे के मजदूर से ले कर राजा महाराजा तक प्रत्येक को धन प्रिय है क्योंकि सांसारिक कार्य व्यवहार में यह एक बहुत लाभदायक वस्तु है। परन्तु यह जानना आवश्यक है कि धन का वास्तविक मूल्य और उस की उचित स्थिति यह है कि प्रथम कमाओ, द्वितीय खाओ, तृतीय खर्च करो। यह तीन बातें ऐसी आवश्यक हैं कि यदि इन में से किसी की न्यूनता हो तो तुम्हें कई खराबियों का सामना करना होगा। अर्थात् यदि बचाओ और खर्च न करो तो शूम (कंजूस) कहलाओगे। अपने पराये तथा मुहल्ले वालों और हमसायों से फटकार का पारितोषिक प्राप्त होगा। रात दिन लोभ लालच की मुरदार इच्छा तुम्हारे मन को बहकाती रहेगी। कंजूस मक्खी चूस, धन के लोभ में सर्वथा मनहूस इच्छाएं तुम्हें तरसाती रहेंगी। तुम्हारी कमाई में कुछ भी वृद्धि न होगी। क्योंकि जो लाभ चलता पुर्जा पहुँचा सकता है वह गढ़े हुए कोष से असम्भव है। कमाने के साथ व्यय करना और बचाना आवश्यक है। जिस प्रकार पड़ी हुई और प्रयोग में न आने वाली तलवार को जंग लग जाता है इसी प्रकार कंजूस के मन को भूखे रहने और धन पूजा का घुन लग जाता है। यदि तुम कमाओ और खर्चो और उस में से कुछ बचाओ नहीं तो किसी न किसी समय धोखा खाओगे। सम्भव है किसी दिन ऐसे कारणों में फंस जाओ कि कमाई के द्वार तक न पहुँच सको। उस समय यदि तुम कुछ धन गांठ में न रखोगे तो तुम्हारी आवश्यकता पूर्ति की आशा सर्वथा समाप्त हो जाएगी तब लोगों के हाथ तकते रह जाओगे। अथवा यह कि तुम बचाओ और खर्चो तो भी तुम्हारे लिये भलाई नहीं है। क्योंकि जब कमाने से हाथ पांव निकम्मे हो जाएंगे तो न इधर के रहोगे न उधर के। उस समय अपमानित होने के अतिरिक्त कुछ प्राप्त न होगा। बड़ी कठिनाइयों से जीवन के दिन काटने होंगे। एक अनुभवी चतुर सज्जन का कथन है कि जिस ने गृह-कार्यों में उपर्युक्त बातों पर ध्यान न दिया वह एक दिन हानि उठायेगा। यदि न्याय दृष्टि से देखा जाए तो यह बड़े बहुमूल्य उपदेश हैं। इन तीन बातों में ही शुभ गुणों का सार मिलता है। (प्रथम) कमाने में परिश्रम (द्वितीय) बचाने में दूर-दर्शी होना (तृतीय) खर्चने में मितव्ययता। यह तीन गुण ऐसे हैं यदि कोई इनका पालन करे तो उसके समस्त सांसारिक प्रयत्न शुभ फल लाते रहेंगे। उस की आशाओं के पौदे प्रसन्नता और धनाढ्यता से फलदार होते रहेंगे। क्योंकि नूतन अंकुर जब तक लापरवाही की झंजावात से सुरक्षित न किये जाएं सम्भव नहीं कि जीवनोद्यान में खुशरंगी (सुन्दरता) आए।

अपने बोझ को स्वयं उठावें। ऐसे मिथ्या और पथभ्रष्ट आलस्य का पाठ पढ़ाने वाले और फ़क़ीरी का उपदेश फूंकने वाले वाक्य, "बाबा अटल! पकी-पकाई घल" अथवा "अन्न पूर्णा भूरना" आदि इस प्रकार से हमारे भारतीय भाग्य में फ़क़ीरी टोटकों की भरमार हो गई। ब्राह्मणों ने सहानुभूति को छोड़ कर श्राद्धों का बहुत बड़ा भाग अपनी उदर पूर्ति के लिये नियत कर दिया। जो पुरुष परिश्रम, दूरदर्शिता और मितव्ययता को दृष्टि में रखता है वह संसार में यदि कोई ठोकर भी खाता है तो भी बच निकलता है। यह तीनों पद ऐसे हैं कि जीवन का पथिक संसार में प्रसन्नता पूर्वक विचरता दिखाई देगा। एक अन्य महात्मा का वचन है कि परिश्रम, दूर-दर्शिता, मितव्ययता वह अमूल्य प्रस्तावनाएं हैं कि कठिन समय में काम आती हैं। काल की विकराल आपत्तियों से बचाती हैं। जो

व्यक्ति इन प्रस्तावनाओं पर आचरण करता है उस को संसार में कोई आपत्ति नहीं झेलनी पड़ती। वह एक तंग और अन्धेरी झोंपड़ी में रह कर अपना ऐसा समुचित प्रबन्ध कर पाता है जिस को बड़े २ बुद्धिमान नहीं कर सकते। जानना चाहिये यदि संसार में शान्ति और सुखवृद्धि चाहते हो तो प्रथम और द्वितीय अर्थात् परिश्रम और दूर-दर्शिता तथा तृतीय मितव्ययता से बरतो। आलस्य ऐसी बुरी आदत है जो परिश्रम जैसे अनुभूत और बलप्रद भोजन से वंचित कर देती है। कुछ निठल्ले साधुओं को छोड़ कर शेष सब प्राणियों का आधारभूत यही मूलमन्त्र है। बिना परिश्रम के कमाना सर्वथा असम्भव है। पशु और मनुष्य सब ही चल फिर कर अपना २ पेट भरते हैं। जो लोग केवल दैव पर निर्भर रहते हैं तथा परिश्रम नहीं करते। मेरी सम्मति में उन के जीवन की गति पानी के बुलबुले की भाँति है। क्या कोई बता सकता है कि संसार में किसी ने परिश्रम के बिना उच्च पद प्राप्त किया हो ? निश्चय ही इस का उत्तर नकारात्मक ही होगा। यदि तुम चाहते हो कि धन एकत्र करो तो कमाओ, और यदि कमाना चाहते हो तो परिश्रम करो।

सांसारिक कार्यों में गृहस्थी अथवा कारोबारी व्यक्ति को बहुत २ रुकावटें उपस्थित होती हैं। यदि स्त्री चतुर और स्यानी हो तो इन रुकावटों को दूर करना कुछ कठिन नहीं। एक उक्ति प्रसिद्ध है कि यदि पुरुष अनुभव-शून्य तथा स्त्री अनुभव-युक्ता हो तो गृह कार्यों में कुछ भी रोक नहीं आती किन्तु इससे विपरीत हो तो तीनों काने हैं। संक्षेप यह कि स्त्री सुई से घर बरबाद कर सकती है। पुरुष बेलचा से भी बरबाद नहीं कर सकता। समस्त गृह कार्यों का समारम्भ स्त्रियों के हस्तगत है। शर्त यह कि अनुभव-युक्ता हो। ईश्वरीय प्रबन्धों पर ध्यान देने से पाया जाता है कि स्त्रियों की स्वस्थता व शिक्षा मनुष्य सन्तान के लिये शारीरिक और आत्मिक उन्नति की गारंटी है। एक बुद्धिमान् का वचन है कि—

जनाने बारदार ऐ मर्दे हुश्यार ।
अगर वक्ते विलादत मार जायन्द ॥
अजां बेहतर ब नजदीके खिरदमंद ।
कि फ़र्जन्दाने नाहमवार जायन्द ॥

अर्थ

बे इल्म औरात जो बच्चा जने हैं ना खलफ़।
उस से होगी क्या भला दुनिया के अंदर बेहतरी ॥
ऐसे लड़कों से तो अच्छा है अगर कुछ ग़ौर हो।
वक्त जनने के शिकम में सांप लावे स्त्री ॥

हमारे देश की स्त्रियों को जितने गहने (आभूषण) पहनने का शौक और सिठनियां तथा स्यापा करने की भावना है। उस से बढ़कर किसी और बात की इच्छा नहीं। पुरुषों ने स्त्रियों के सम्बन्ध में कम अक़ली (बुद्धि हीनता) की उक्ति ऐसी प्रसिद्ध की है कि उन्हें स्वयं इसको स्वीकार करना पड़ा और इस स्वीकृति ने उनकी वाणी सर्वथा बन्द कर दी। शोक ! हे अविद्या रूपी चुड़ैल ! तेरा सत्यानाश हो। तूने कैसी २ कुप्रथाएं, भ्रमजाल इन भोली भाली विद्या-विहीन स्त्रियों के हृदय में आभूषण के रूप में पहना दी। जिस के कारण उन्हें अपने पद पर विचार करना, स्वाभाविक रूप से ज्ञान शक्ति के रहते भी उसकी सत्ता से इन्कार करना और बेसुध रहना पड़ा। लोग इसे विधाता के लेख और ईश्वरीय लेखनी का लेख समझ बैठे हैं। हे विद्या देवी ! शीघ्र पधारिये। और इस अविद्यारूपी चुड़ैल के जादू से हमें बचाइये।

पाँचवां अध्याय

स्त्रियों की पूजा पद्धति के सम्बन्ध में

उपासना अथवा भक्ति वह पवित्र शुभ सत्व है कि जिसके प्रयोग से मनुष्य कृत्रिमता को छोड़ कर सच्ची शान्ति को प्राप्त होता है। इस पवित्र जौहर को हमारे गोबर गणेशों ने प्रथम तो केवल ब्राह्मणों के लिये, द्वितीय सहस्र कठिनाई से केवल पुरुषों के लिए अधिकार समझ रखा है। स्त्री को विद्या का ग्रहण करना सदोष मान रहे हैं। जब कि आजकल वह युग नहीं रहा कि स्वार्थ के पौदे फल लावें और "अन्धा धुन्ध काशी में मरना मुक्तिदायक" होने के सिद्धान्त पर लोग अविद्या की पट्टी बांधकर जान देवें। काल ने बहुत करवटें बदलीं। स्वार्थ के पौदे जले नहीं तो कुमलाए अवश्य हैं। इसी अनुमान पर शिक्षा ने हमारी आँखें खोल कर हमें अच्छी प्रकार समझा दिया कि :—

"वे इल्म न नतवां खुदारा शनाख्त" अर्थात् बिना विद्या के मनुष्य ईश्वर को नहीं जान सकता। क्यों कि विद्या तीसरा नेत्र है और विद्या प्राप्ति के बिना उपासना और भक्ति असम्भव है। कुम्भ के स्नानार्थ गंगा में जाना, प्रातः काल जाकर धर्मशाला का कूड़ा उठाना, महादेव जी पर जल चढ़ाना, शालग्राम पर तुलसी दल चढ़ाना, ठाकुरों को मोहनभोग लगाना, सन्तों के चरणों पर सीस नवाना, उनकी टहल कमाना, मन्दिरों की सात २ प्रदक्षिणा करना, घंटा घड़ियाल बजाना, तिलक छाप लगाना, उच्चघोष से सीताराम राधेश्याम आदि कहना इन सब बातों का उपासना से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। भक्ति केवल मन की पवित्रता और सत्याचरण पर आधारित है। अन्यथा मिलकर भक्ति करने का क्या अर्थ हो सकता है? जिस बात को महात्मा ऋषीश्वरों ने भक्ति का साधन बताया है वह उपरिलिखित बातों से पृथक् है। मनु जी का वचन है कि शरीर जल से, मन सत्य से, विद्या और तप से जीव और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। जब यह सब शुद्ध हुए तो इसी का नाम भक्ति और उपासना है। (शरीर जल से) जो लोग गंगा स्नान से मुक्ति मानते हैं उन्हें ज्ञात हो कि जल केवल बाह्य शुद्धि का कारण है। जीव, मन और बुद्धि से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं, वह किसी और औषध की अपेक्षा रखता है। यही कारण है कि गंगा निवासी प्रायः कठोर मन, अत्याचारी और खाल उतारने वाले हैं और विद्या से दान लेने के अतिरिक्त और कुछ संस्कृत का उनको ज्ञान नहीं।

(मन सत्य से) का अर्थ है कि सत्यभाषण, सत्याचरण और सत्य विचार से मन की शुद्धि होती है। अन्यथा छल कपट से मक्कर माला फेरनी, "राम २ जपना पराया माल अपना" इस सिद्धान्त को मानना है। साधारणतया माला छल कपट का चिह्न है। नहीं तो गिनने की क्या आवश्यकता है? कोई सूद तो हम ने किसी से नहीं लेना कि हिसाब करते रहें। इसके अतिरिक्त माला की गिनती से एक प्रकार का अभिमान मनमें समा जाता है। कि ओहो। मैंने आज तक सहस्रों बार गायत्री का जाप किया है अथवा लाख बार माला फेरी है। मन की माला फेरनी चाहिये न कि लकड़ी की रुद्राक्ष के मनकों की माला। कवि ने ठीक कहा है कि :—

ऐ पोप शंख बजाने में हुश्यार, गरदन तेरे माला रुद्राक्ष ज़ेबदार[१]।
बातन[२] में हेच,[३] ज़ाहिर[४] में पेचो ताब[५] हो, ईश्वर का तुम को ख़ौफ़ नहीं दिल में ज़ीनहार[६]॥
औरात[७] को आपने शूद्र बना दिया, पैदा होते उनके शिकम[८] से आई न तुम को आर[९]।
मन फेर दामे खल्क़[१०] से गर होश है तुम्हें, माला अठोत्री को फिरा मत तू बारबार॥

(विद्या और तप से जीव) का अर्थ है सत्यपथ से दूर पड़ा हुआ अज्ञानी जीव केवल गंगा स्नान अथवा बद्री आश्रम की घाटी पर चढ़कर कभी यथार्थ ज्ञानी न होगा। क्योंकि जन्म से अब तक इसको मोहजाल के इच्छा और तृष्णा रूपीझंझावात घेरे हुए हैं। कर्मठ विद्वान् होने के अतिरिक्त इसका सत्येच्छु बनना संभव नहीं। विद्या के अर्थ जानना और तपके अर्थ कर्म करना यह दो ऐसे नियम हैं कि जीव की शुद्धि के लिये पर्याप्त सामान प्राप्त करा सकते हैं। अन्यथा इनके बिना असम्भव है कि जीव शुद्ध हो। इस अवसर पर यह उचित प्रतीत हुआ कि मूर्खों के इस वचन का खण्डन किया जावे जो वह कभी २ अभिमान से कहते हैं कि (जीता पठिया ईंता गुढ़िया) किन्तु शोक कि जाति की अविद्या से हमें इस छोटे से प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता पड़ी। कुछ भी हो प्रश्न का उत्तर देना उचित है कि भाई ! आप ने इस दृष्टान्त में बहुत भूल की है। वास्तविक बात इस प्रकार है कि :—

जितना पढ़िया उतना बढ़िया बुद्धि अक़ल सवाई।
गुढ़िया मूर्ख भला न पाया, वृथा उमर गंवाई॥

(ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है) का अर्थ है पारब्रह्म को पहचानना ज्ञान है। जिस की बुद्धि में ज्ञान नहीं, यद्यपि वह बुद्धि है किन्तु अशुद्ध है। जैसे जिस दर्पण पर कली नहीं हुई वह दर्पण तो है परन्तु अन्धा है। प्रथम शरीर का ज्ञान चाहिये कि उस का स्वरूप और पालन पोषण किस प्रकार हो। द्वितीय कर्मेन्द्रियों का, तृतीय ज्ञानेन्द्रियों का, चतुर्थ जीव का, पंचम परमात्मा का ज्ञान। जब परमात्मा का ज्ञान मन में समाया तो पूर्ण विश्वास है कि सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। मेरी सम्मति में स्त्रियों के लिये इस के अतिरिक्त और भक्ति नहीं है कि प्रथम प्रातः काल उठ कर स्नान करना, उस के पश्चात् पंचमहायज्ञविधि के अनुसार सन्ध्या करनी चाहिये। उस के पश्चात् सारा दिन यथावसर गृहकार्यों को पूर्ण करे। स्नान और सन्ध्या, पति की अनुकूलता और आज्ञापालन तथा बाल बच्चों का पालन पोषण, धार्मिक शिक्षा और गृह कार्यों में दक्षता स्त्रियों के धर्म की पूर्णता के लिये इस से बढ़ कर कोई साधन नहीं। आजकल की धर्मशालाओं के भावों और ठाकुरद्वारो के महन्तों तथा मन्दिरों के पुजारियों, जियारत के मुल्लाओं के जो विचार हैं। वह आंख वालों से छिपे नहीं। सत्य कहता हूँ कि आजकल के मन्दिर और पूजा स्थान उपासना और भक्ति के स्थान पर दुराचार के लिये अड्डे बने हुए हैं। यदि इन के सच्चे दर्शकों की गिनती को न्याय से देखा जाए, तो दस प्रतिशत भी नहीं। देशोपकारक समाचार पत्र के लेखानुसार अमृतसर के मन्दिर को देखना चाहिये कि जहाँ बहुत हिन्दु स्त्रियां प्रातः से सायं तक जाती हैं। वृन्दावन के ठाकुरद्वारों पर ध्यान देना चाहिये कि हिन्दु स्त्रियों में दोनों नगरों के सदाचार जीवन पर इन का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कुछ हो जब यह मूर्तिपूजा, जो इन सब दोषों की जड़ है, समाप्त होगी तो यह सब आपत्तियां दूर हो जाएंगी। यदि आर्यावर्त देश की स्त्रियां वेद में लिखी सच्ची उपासना स्वामी दयानंद कृत पंचमहायज्ञ विधि के अनुसार करें तो पूर्ण विश्वास है कि कृत्रिम ग्रहों की शृंखला अथवा दिशाशूल कहीं उन को न सताये। सदा वह सुख में रहेंगी। गृह-कलह

१—सजी हुई है। २—अन्दर। ३—कुछ नहीं। ४—बाहर-प्रकट। ५—टेढ़े। ६—बिलकुल। ७—स्त्रियां। ८—पेट। ९—शर्म। १०—प्रजा को धोका देना।

और जातियों के झगड़े जिन का आधार जर, जन, जमीन अर्थात् धन, स्त्री और भूमि है। तीन में से दो रह जायेंगे। विद्या से वंचित होने के कारण भारत की नारियां जितनी दुःखी हैं यदि उस का विस्तार किया जाए तो एक दफ़्तर तय्यार हो जाए। मानो इसी अविद्या के कारण से वह मूर्ख टोला में गिनी जा कर शूद्र बन गईं। मेरा जहाँ तक अनुभव है। उसी आधार पर मैं कह सकता हूं कि शिक्षा न होने के अतिरिक्त स्त्रियों में कुछ भी मूर्खता नहीं। कोई रुकावट ईश्वर की ओर से भी नहीं। हमारे देश की स्त्रियां तो गुग्गा पीर का व्रत धारण करके घर में सांपों की मूर्तियां बनातीं, सत्यनारायण की कथा सुनतीं, गणेशचौथ, एकादशी, पूर्णिमा, अष्टमी, अमावस, इत्यादि दिनों को दूध पीने और फलाहार करने का साधन समझती हैं। एकादशी शिवरात्री आदि के व्रत-महात्म्य सुन २ कर अपना समय व्यर्थ गंवाती हैं। यदि कोई दैव से सब तीर्थों पर जाकर पति का धन बरबाद कर आवे अथवा कोई मन्दिर और धर्मशाला बनवावे तो उसके मुक्ति पाने में सन्देह करने वाले काफ़िर कहलाते हैं। यदि कोई स्त्री इन उपरिलिखित दिनों में मर जावे तो वैष्णव वैकुण्ठ धाम को प्राप्त हो कर मुक्त शुद्ध समझी जाती है। इस मूर्खता पर शोक है! हे मूर्खता! तूने क्या २ जाल बिछा कर भोली भाली देवियों को डायन और चुड़ैल बना दिया। हे परमात्मन्! आर्यावर्त निवासी स्त्रियों को झूठे व्रतों और रोजों से छुड़ा कर कृत्रिम पूजाओं से बचा और अपनी अखंड व अटल भक्ति से अपनी माया के जौहर उन को प्रदान कर जिससे वह शुभाशुभ गति से परिचय प्राप्त करके श्रेष्ठता का पाठ पढ़ें तथा शुभ कर्म करने वाले ज्ञानी बालक जनें।

अन्तिम प्रार्थना

हे बालबच्चों से रहित! जन्म मरण से मुक्त! हे कल्पित आसमानों पर न रहने वाले! हे दुःख-दर्द न सहने वाले! रास लीला करने और बनवास फिरने से पृथक्! हे सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त सर्वज्ञ! हे वेदों का सत्योपदेश प्रेरणा द्वारा करने वाले परमात्मन्! स्त्रियों की आत्मा को मूर्खता से युक्ति उत्तम शिक्षा, श्रेष्ठ चाल चलन, पवित्र जीवन, सुप्रबन्ध तथा अपनी भक्ति के आभूषणों से संयुक्त कर। झूठे ग्रहों, कल्पित भयों, कृत्रिम भ्रम जाल कुप्रथाओं, गन्दे वचनों और गाली गलौच से उन्हें बचा कर सभ्यता पर आरूढ़ कर। पारब्रह्म को सहस्रों बार धन्यवाद है जिसकी कृपा से आज यह पुस्तक समाप्त हुई। जितना स्त्री हित में उचित समझा लिख दिया। मुझे इस से प्रसिद्धि की इच्छा नहीं। केवल मनुष्यों से सहानुभूति की इच्छा है। ओं तत्सत् ब्रह्म

स्त्री शिक्षा

पर

पण्डित लेखराम आर्य पथिक का एक लेख

लेखराम दृढ़ विश्वासी और पुरुषार्थी लेखराम उन पुरुषों में से था जो स्त्री शिक्षा के महत्व को समझते हैं। जो इसके लिये जहां तक उनसे बन पड़ा काम करते हैं। उस समय जब कि आर्य समाजों में सब प्रकार से शान्ति थी। जब कि पार्टी का शब्द सौभाग्य से समाज के सदस्यों ने अभी तक नहीं सीखा था। जब कि प्रत्येक आर्य केवल धर्म भावना से प्रेरा जाकर लेख और पुस्तकें लिखता था। उस

समय, जिसे (जहां तक हमें ज्ञान है) लगभग दस वर्ष हुए, प्रथम पुस्तक जो स्त्री शिक्षा पर समाजों में भेजी गई, पं० लेखराम की लेखनी से लिखी गई थी और प्रकाशित हुई थी। इसका नाम "कुमारी भूषण" है। इस में पं० जी ने युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध किया है कि स्त्री शिक्षा अत्यावश्यक है। वेद इस की आज्ञा देता है। शास्त्रों में इस के लिये उपदेश है। और बुद्धिमान लोग इस का बड़ा भारी समर्थन करते हैं।

पण्डित लेखराम प्रथम पुरुष थे जिस ने सामाजिक संसार को प्राचीन ऋषि का यह प्रमाण सुनाया कि यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकार जैसा बालकों को है वैसा ही कन्याओं को है। स्वर्गीय आर्य पथिक की हार्दिक इच्छा थी कि कन्याएं भी यज्ञोपवीत संस्कार कराएं। क्योंकि वह यह चाहते थे कि जिस प्रकार से प्राचीन समय में यज्ञोपवीत और वेदाध्ययन संस्कार ऋषि पुत्रों और ऋषि कन्याओं में प्रचलित था इसी प्रकार अब भी पुत्रियों में इन संस्कारों को प्रचलित करना उचित है।

स्त्री शिक्षा विषयक

अपने प्रबल लेख के अतिरिक्त पंडित जी के आय समाजों में स्त्री शिक्षा पर बहुत से व्याख्यान हुए हैं। पं० जी कुमारिलाचार्य के उस वार्तालाप का, जो उन्होंने राज मन्दिर में बैठी हुई राज कन्या से किया था, प्रायः व्याख्यानों में वर्णन किया करते थे। भट्ट कुमारिल आचार्य का वृत्तान्त यह है कि जब भारत वर्ष में वैदिक धर्म लुप्त हो गया था, शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना छूट गया था, सब लोग नास्तिक होते जाते थे। तो भट्ट कुमारिलाचार्य एक दिन विचरते २ एक राजमन्दिर के निकट से गुजरे। एक कन्या ऊपर बैठी हुई विलाप कर रही थी। कि:—

वेदों का धर्म लुप्त हो गया। नास्तिक पन फैल रहा है, शास्त्रों का निरादर हो रहा है। हां! इस की रक्षा करने वाला कोई नहीं। ऋषि ने नीचे से सुना। झट वहां खड़े हो गए। और राज कन्या की ओर सम्बोधन करके बोले। "मत रो हे कन्या! मत रो। मैं अभी जीता हूं। मैं वेदों की रक्षा करूंगा"। जिससे प्रकट होता है कि पंडित जी स्त्री जाति के कहां तक कृतज्ञ थे। और उनके मन में कहां तक विचार था कि भारतवर्ष में ऐसी देवियां हुई हैं। जो धर्म नैया को डूबते देख कर विलाप किया करती थीं। और ऋषि उन से प्रेरे जाकर धर्म ध्वजा को फिर से फहराने के लिये उद्यत होते थे।

स्त्रियों का संस्कार

मुझे अच्छी प्रकार से एक बार की बात स्मरण है कि जब एक धनाढ्य पुरुष एक स्त्री के सम्बन्ध में कठोर शब्द कह रहा था तो पंडित जी इन शब्दों को सहन न कर सके। उस पुरुष को बहुत ही लज्जित किया कि तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम अपने आप को आर्य कहते हो। क्या तुम्हें वेदों का भी कुछ विचार नहीं? तुम आर्य कहलाने के योग्य नहीं हो। यदि तुम आर्य होते तो स्त्रियों के लिये ऐसे कठोर शब्द कभी प्रयुक्त न करते।

जालन्धर में जिन लोगों को पंडित जी के घर आने जाने का अवसर मिलता था वह अच्छी प्रकार से जानते हैं कि पंडित जी सब स्त्रियों को माता, माई, देवी सदैव इन शब्दों

से पुकारा करते थे। अपनी धर्म पत्नी से इन का बहुत प्रेम था। प्रायः उत्सवों पर वह अपनी धर्म पत्नी को साथ ले जाते थे और शीतल वचनों से अपनी सुशीला भार्या से बात चीत किया करते। चाहे उनको समय नहीं मिलता था पुनरपि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी स्त्री समाज में जाने लगी थीं।

पण्डित जी उन व्यक्तियों में से न थे जो स्त्रियों को अपनी अवस्था पर छोड़ देते हैं। और गृहस्थ की आवश्यकताओं से बेसुध हो जाते हैं। वह सदा प्रत्येक आवश्यक वस्तु को यथावसर लाते और धर्म पत्नी की इच्छा को प्रसन्नता से पूरा करते थे। वास्तव में यह जोड़ा सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था।

संभव है बहुत से लोगों को यह बात नई प्रतीत होगी कि लेखराम जी अपनी धर्म पत्नी का स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये उन को सायंकाल सूर्यास्त के निकट खुले खेतों में वायु सेवन के लिये ले जाते थे।

कन्याश्रम की कन्याओं के साथ बाहिर जाते हुए मैं ने कई बार उनको अपनी सहधर्मिणी लक्ष्मी जी के साथ जाते देखा। और कई बार उस सौभाग्यशाली जोड़े को किसी खेत के समीप बैठे अपने पुत्र को खिलाते हुए पाया।

कन्या महाविद्यालय से प्रेम

पण्डित जी महाविद्यालय के बड़े सहायक थे। जब भी वह जालन्धर आते, महाविद्यालय का कुशल क्षेम अवश्य पूछते और उसकी उन्नति के साधनों पर विचार करते। अपने मित्रों से जालन्धर जाने और महाविद्यालय को देखने की प्रेरणा करते थे। उनका अन्तिम पत्र जो महाविद्यालय के प्रबंधकर्ता के नाम आया था, धर्म पर बलिदान होने से कुछ दिन पूर्व का था। उसमें उन्होंने लिखा था कि "लला बारूमल रईस जगाधरी जोकि आर्य समाज को हृदय से मानते हैं, चाहे सदस्य नहीं हैं, वह किसी कार्य के लिये लाहौर आये थे। आज मुझे मिले। उनकी इच्छा महाविद्यालय देखने की है। वह परसों वहां आएंगे। आशा है कि आप उनके लिये दोपहर, गाड़ी आने के समय, कोई व्यक्ति अथवा गाड़ी भिजवा दें तो कृपा होगी। उन्हें अपने मकान पर ठहरावें और विद्यालय दिखला दीजिये। परिणाम शुभ निकलेगा।"

(लेखराम, लाहौर ८ फर्वरी १८९७ ईस्वी)

जिस लेख की यह भूमिका है उसका इतिहास यह है कि अगस्त १८९४ ईस्वी में कन्या महाविद्यालय की उन्नति के लिये एक चांदी का पारितोषिक पदक लेख के लिये रखा गया था। पदक पर "स्त्री शिक्षा" यह शब्द खुदे थे। लेखों की जांच पड़ताल के लिये तीन सज्जनों की एक समिति नियत हुई थी। लेख में निम्न विषयों पर विचार करना था :—

प्रथम :—क्या स्त्रियों को उच्चशिक्षा का अधिकार है ? युक्ति और प्रमाण से।

द्वितीय:—क्या स्त्रियों को उच्चशिक्षा की आवश्यकता है ?

तृतीय :—पुरुषों को स्त्रीशिक्षा की ओर रुचि दिलाने के क्या २ उपाय हैं ?

चतुर्थ :—स्त्री शिक्षा की उन्नति के लिये क्या २ साधन हैं ?

पंचम :—स्त्रियों को पूर्ण विदुषी बनाने और उनमें उच्चशिक्षा प्रसार के क्या उपाय हैं ?

पदक लाला जमनादास बी.ए. को प्राप्त हुआ परन्तु पण्डित जी का लेख ऐसा है जिससे जनता बहुत लाभ उठा सकती है। स्त्रीशिक्षा के प्रचारकों और सहायकों के लिये यह लेख बहुत लाभदायक होगा।

लेख पर एक साधारण दृष्टि

पण्डित जी युक्ति प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि विद्या का अधिकार स्त्रियों को है।

सर्वप्रथम विद्याधिकार स्त्रियों को है।

वह यहां तक बल देते हैं "इसके अतिरिक्त विद्या शब्द स्त्रीलिंग है और इसकी देवी सरस्वती भी स्त्री है। विद्या के लिये कोई पुँल्लिंग शब्द नहीं। अतः सर्वप्रथम स्त्रियों को विद्या का अधिकार है। पश्चात् पुरुषों को। शोक कि माता अर्थात् सरस्वती की सम्पत्ति से उसकी पुत्रियां वंचित हैं।"

स्त्रियों को उच्चशिक्षा की बहुत आवश्यकता है।

क्योंकि जैसे पण्डित जी कहते हैं कि "यदि स्त्रियों को सभ्यता, सुशीलता, कोमलता, सुख, धर्म और मोक्ष की आवश्यकता है तो निःसन्देह उन्हें विद्या की आवश्यकता है। क्योंकि यह सब उच्चशिक्षा के बिना नहीं आ सकतीं अतः स्त्रियों को उच्चशिक्षा की अधिक आवश्यकता है।"

स्त्री शिक्षा पर उपदेश

पंडित जी सिफ़ारिश करते हैं कि इस लेख का प्रकाशन और पुरुषों की रुचि इस ओर बढ़ाने के लिये और उपायों के साथ "कुछ उपदेशक ऐसे भी होने चाहियें जो देश में इस विषय पर उपदेश करें।" ईश्वर करे कि पण्डित जी की इस सिफ़ारिश पर हमारे वह भाई जो उपदेश दे सकते हैं बल देने में ध्यान दें और भारत वर्ष में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता का नाद गुंजाएं। यहां तक कि इस बल से बहरे कानों में अपने शब्द गुञ्जायमान करदें कि वे सुनने को बाधित हों।

स्त्रियों को शिक्षा की ओर रुचि दिलाने के हेतु समय निकालो

स्त्री शिक्षा के सहायकों को पंडित जी के यह शब्द कभी न भुलाने चाहियें प्रत्युत उन पर आचरण करना चाहिये कि कन्या पाठशालाओं में अपनी लड़कियां प्रविष्ट कराएं और अपनी स्त्रियों को शिक्षा देने के लिये घर में समय निकालें। जिससे शिक्षा प्राप्त करके उनकी स्त्रियां विद्या का मान करें। पुनः वह स्त्रियां सन्तान को मूर्ख रखना कदापि सहन न कर सकेंगी।

पुरुषो ! साहस करो साहस करो और साहस करो

पण्डित जी अन्त में पुरुषों को इस कार्य के लिये पुरुषार्थ से तन मन धन लगाने की प्रेरणा करते हैं। वे कहते हैं कि :—

"स्त्रियों को पूर्ण विदुषी बनाने के लिये स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता जानने वाले पुरुष-डाक्टरों

की आवश्यकता है। जिससे वह सर्वतः संलग्न होकर इस रोग के निवारणार्थ यत्न करें। बड़े परिश्रम की आवश्यकता है। ऐसे अवसर पर योग्यतम वैद्यों की जरूरत है। जो मूर्खों के अप-शब्दों पर ध्यान न देते हुए अपनी पूर्ण शक्ति जुटा दें।

विद्यालय स्थापित करो

सब रोगियों को एक हस्पताल में प्रविष्ट करें जिस का नाम महाविद्यालय हो।

श्रेष्ठ देवियों के जीवन पर व्याख्यान

पण्डित जी की प्रस्तावना शुभ और श्रेष्ठ है और प्रसन्नता की बात है कि कन्या महाविद्यालय जालन्धर इस प्रस्तावना पर आचरण कर रहा है। अर्थात् सब कन्याओं को भवन में एकत्रित करके प्रबन्ध-कर्त्ता धर्मात्मा लोगों के जीवन-चरित्र पर व्याख्यान देता है और अध्यापक अध्यापिकाएं कन्याओं को पुस्तकें स्मरण कराती हैं। इन पर रुचि दिलाती हैं और कन्याओं को शिक्षा देती हैं कि तुम भी ऐसी ही बनो। इसी प्रकार श्रेष्ठ देवियों की जीवनी पर स्कूल के अध्यापक अथवा अध्यापिकायें व्याख्यान दिया करें। दूसरा उपाय यह है कि किसी अच्छे अवसर पर माता पिता, बिरादरी, अथवा अन्य प्रमुख लोगों के सम्मुख कन्याओं को पारितोषिक दिये जाएं।

देवराज

—:०:—

स्त्रीशिक्षा पर लेख

सद्धर्म प्रचारक ८ अगस्त १८९७ ईस्वी में दिये गये विज्ञापन के आधार पर।

(१) क्या स्त्रियों को उच्चशिक्षा का अधिकार है? युक्ति और प्रमाण से।

समय की क्रान्ति और सद्धर्म की नौका के भंवर में फंस जाने के कारण ऐसे २ प्रश्न भी आर्य-सन्तान से होने का समय आ गया, जिन की सत्यता संसार भर में प्रसिद्ध थी, आज अविद्या के प्रबल धक्कों से वे ऐसे गिर गए कि उन्हें आत्मविश्वास और न्याय का कुछ भी विचार नहीं रहा। व्यर्थ भ्रम जालों में वह सभ्यता के पवित्र गुण को एक साथ छोड़ बैठे हैं। हाय रे काल! तेरी लीला का जानना सर्वथा असम्भव है।

अवश्य ही स्त्रियों को विद्या का अधिकार है। और यह बात समस्त संसार के विद्वानों की सम्मति के अनुसार स्वीकार करने के योग्य है कि जिस देश में स्त्री जाति के सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया जाता वह देश दिन प्रतिदिन अधोगति की ओर झुकता जाता है।

वर्तमान समय में हम लोग स्त्रियों की शिक्षा में समस्त सभ्य जातियों से पीछे हैं। परन्तु अब भी संसार की जातियों से गए गुजरे नहीं हैं। बंगाल, मद्रास, बम्बई की कुछ जातियों में स्त्री शिक्षा की बहुत चर्चा है। राजपूत, कायस्थ, काश्मीरी और बंगाली लोग प्रायः स्त्रियों को पढ़ाते हैं। उनमें अशिक्षिता स्त्रियां दूसरों की अपेक्षा अतिन्यून हैं।

अधिकार का विचार बहुत पुराना नहीं। प्रत्युत नवीन और थोड़े समय का है। यही कारण है कि सत्य-शास्त्रों में इसका कहीं पता नहीं चलता। जैसा कि अधिकार अनधिकार के समीक्षक

यह भूमिका श्री ला. देवराज जी सञ्चालक तथा प्रबन्धक कन्या महाविद्यालय जालन्धर की लिखी हुई है जो उस काल में स्त्रीशिक्षा के सर्व प्रमुख समर्थक थे।

और पूर्ण निर्णायक महर्षि जैमिनि जी का कथन है कि सत्य-शास्त्रों अर्थात् वेदों का सब मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। कोई भी इस अधिकार से वञ्चित नहीं। जब सब को अधिकार है तो क्या स्त्री जाति सब में नहीं है। अथवा वह मनुष्य श्रेणी से बाहिर है? यदि इस शास्त्र के वाक्य से सब को अधिकार है तो पुनः वेदों से बढ़ कर कौन सा उत्तम ग्रन्थ है और कौन सी उच्च शिक्षा है जिस का उन्हें अधिकार नहीं है? और जब वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है तो सब सत्या विद्याओं के प्राप्त करने में किसी के लिये रुकावट नहीं। शास्त्रों में कर्मकाण्ड का अधिक सम्बन्ध मीमांसा से है। और वह सब को अधिकार बताता है। उसका उत्तर भाग वेदान्त शास्त्र है। जो उपनिषदों और वेदों की ब्रह्म विद्या का विधान करने वाला है। इसमें भी कोई ऐसा सूत्र नहीं जिस से पता चले कि स्त्रियां उच्च शिक्षा का अधिकार नहीं रखतीं। प्रत्युत सब को ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति तक का अधिकार लिखा है। और इस से बढ़ कर स्त्रियों की शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक समझ कर गर्भाधान से ही इस का प्रयोजन बताया है। इन शब्दों में कि :—

अन्य य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत् सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै।

(बृहदारण्यक पृ० १६६)

(अर्थ) जो कोई चाहे कि मेरी पुत्री पण्डिता उत्पन्न हो, सम्पूर्ण आयु विद्या प्राप्त करे, तो पति पत्नी दोनों तिल युक्त ओदन कर घी सहित सेवन करें। इस से उनको ऐसी लड़की उत्पन्न करने का सामर्थ्य प्राप्त होगा।

स्वयं उपनिषदों में बीसियों विदुषी देवियों के नाम हैं जो ब्रह्म-विद्या में प्रवीण हो चुकी हैं। महात्मा कपिल जी की माता देवहूति जी भी इन्हीं ब्रह्मवेत्ता स्त्रियों में से एक थी। यह उपनिषद् यजुर्वेद की है। स्वयं यजुर्वेद में भी सब मनुष्यमात्र को वेद अध्ययन का अधिकार लिखा है। अध्याय २६ मन्त्र २ में।

परमेश्वर कहते हैं कि "जैसे मैं सब मनुष्यों के लिये इस कल्याण करने वाली ऋग्वेदादि चार वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे मेरी ओर से सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री आदि सम्बन्धियों तथा अति शूद्र आदि जंगली लोगों के लिये वेद विद्या का उपदेश है। वैसे ही तुम भी किया करो।"

जब परमेश्वर ने सब से उत्तम वेद विद्या का सब के लिये उपदेश करना लिखा है तो हम कौन हैं जो सब को वंचित रखें और उस का उपदेश न करें। यह तो वही बात है कि दाता दान करे और भण्डारी का पेट फटे अर्थात् दाता परमेश्वर ने तो वेद का सब के लिये दान किया और स्वार्थी भण्डारियों के पेट में मरोड़ उठते हैं कि हाय इन को क्यों मिलता है। वेद के जानने के लिये षडङ्ग और षडुपांग का जानना आवश्यक है अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, आयुर्वेद, अर्थवेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद मिल कर अनेक विद्याएं हैं। अतः इन के अध्ययन का सब को अधिकार है।

अथर्व वेद के ग्यारहवें कांड के तीसरे अनुवाक और चौथे प्रपाठक में कंडिका १४ से १६ तक २६ मन्त्रों में ब्रह्मचर्य का वर्णन है और जिस विशेषता से वहां इस आश्रम का वर्णन किया गया है कोई

उच्चशिक्षा इससे बाहिर नहीं रह सकती। वहां कन्या और बालक दोनों के लिये ब्रह्मचर्य की आज्ञा है। ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी के स्वभाव व्यवहार, और शिक्षा-पद्धति, आर्य सम्बन्धी कर्तव्य, यज्ञोपवीत सब का वर्णन करते हुए मन्त्र १८ में यह आज्ञा दी है कि "कन्या ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि सत्यशास्त्रों को पढ़कर विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो तथा युवती होकर अपने गुण, कर्मस्वभावानुसार पूर्ण युवा पुरुष से विवाह करे।"

गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी, नन्दालसा और मंडन मिश्र जी की स्त्री आदिऐसी २ विदुषी हो चुकी हैं जिन्होंने सैकड़ों पण्डितों के होश गुम कर दिये। उपनिषदों के कोष में अभी तक ऐसे २ रत्न उनकी बुद्धि से निकले हुए विद्यमान हैं जिसे आजकल के उच्चशिक्षाविशारद प्रायः बहुत ही कठिनता से समझ सकते हैं। वैसे विचार उत्पन्न करने की तो बात ही क्या है ? व्याकरण की पुस्तकों में स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं कि जिस प्रकार आचार्य अर्थात् पुरुष अध्यापक हो कर लड़कों को पढ़ाया करते थे वैसे ही आचार्या अर्थात् स्त्री अध्यापिका भी लड़कियों को पढ़ाया करतीं थीं।

जब माता को सब से पहले देवता गिना है कि "मातृ देवो भव" अर्थात् माता को देवता समझो और देवता के अर्थ यह हैं कि "विद्वांसो हि देवा" अर्थात् विद्वानों का नाम देवता है। महाभाष्य में भी लिखा है "देवा इति पण्डिताः" अर्थात् बड़े पण्डितों को देवता कहते हैं। तो मैं नहीं जानता कि किस प्रकार विद्वान् लोग स्त्रियों को शिक्षा देने से इन्कार कर सकते हैं ? इसके अतिरिक्त स्वयं माता शब्द विद्या से सम्बन्धित है। अर्थात् जो बच्चे के विचार, स्वभाव, प्रकृति, स्वास्थ्य, आचार और धर्मादि सब बातों का सुधार करा कर मान करावे उसे माता कहते हैं। यह शब्द मूर्ख स्त्री पर कभी चरितार्थ नहीं हो सकता। यही कारण है कि शास्त्रों में जहां कहीं मान और आदर का वर्णन है वहां पिता की अपेक्षा प्रथम माता के मान करने की आज्ञा है। आचार शास्त्र के एक प्रसिद्ध विद्वान् का वचन है कि :—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।

अर्थ—वह माता शत्रु और पिता वैरी है जिसने स्वबालक को नहीं पढ़ाया।

इसके अतिरिक्त विद्या शब्द स्त्रीलिंग है। उसकी देवी भी स्त्री है। जहां तक हमने सच्छास्त्रों को पढ़ा और सुना है। विद्या के लिए कोई पुँल्लिंग शब्द नहीं। अतः स्त्रियों को विद्या का सर्वतः प्रथम अधिकार है। पश्चात् पुरुषों को है। शोक ! कि माता अर्थात् सरस्वती की सम्पत्ति से बेटियां वंचित हैं।

युक्तियां

युक्ति नं० १—स्त्रियां पुरुषों की अर्द्धांगिनी हैं अर्थात् गृहस्थी पुरुष स्त्री के बिना अपूर्ण है। क्योंकि अविद्या से बढ़ कर कोई दुःख नहीं। स्त्रियों को मूर्ख रखना मानो आधे शरीर को दुःखी रखना है जिसे कोई बुद्धिमान् पुरुष न मानेगा।

युक्ति नं० २—विद्या का सम्बन्ध बुद्धि से है जो स्त्रियों को भी ईश्वर ने प्रदान की है। आँखें भी दी हैं और जिह्वा भी। पुनः वह विद्या से वंचित कैसे रह सकती हैं ?

युक्ति नं० ३—स्त्रियां विद्या पढ़ सकती हैं और पढ़ रही हैं। उच्च से उच्च एम. ए., बी. ए. की

डिग्रियां प्राप्त कर रही हैं। *(क) ऐनीबेसैंट, (ख) मैडेमब्लैवस्टकी, (ग) पार्वती, (घ) बनारस की बाई इत्यादि बहुत सी विदुषी देवियां सुधारक होने की घोषणा कर चुकी हैं। अतः उनकी शिक्षा से इन्कार करना और उन्हें अधिकार न देना जानबूझ कर सत्य से मुख मोड़ना है।

युक्ति नं० ४—पठित पुरुष की अपेक्षा मूर्ख मनुष्य अतिशीघ्र भ्रम में पड़ सकता है। आजकल कई स्त्रियां इसलाम में चली जाती हैं अथवा साधुओं के साथ भाग जाती हैं और धर्म-कर्म की कुछ तुलना नहीं करतीं। इसका कारण भी अविद्या है क्योंकि पठित देवियों से ऐसे कर्म बहुत ही न्यून होते हैं।

युक्ति नं० ५—महारानी विक्टोरिया के राज्य में रह कर स्त्री शिक्षा का निषेध करना सर्वथा अविद्या है। केवल यही नहीं कि स्त्रियां शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं प्रत्युत राज्य प्रवन्ध भी उत्तम चला सकती हैं। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई का उत्तम प्रवन्ध तथा प्रसिद्ध युद्ध मराठा स्त्रियों का राज्य प्रबन्ध केकयी का राजा दशरथ के साथ युद्ध में जाना, बेगम भूपाल की बुद्धिमत्ता और नूर जहां की योग्यता क्या किसी से छिपी है ? यह सब की सब देश की रानी और स्वामिनी कहलाती हैं। इनमें से नम्बर २, ३, ५ का देहान्त हो चुका है। नम्बर १, ४ अभी तक राज्य कर रही हैं कोई बताए तो सही कि किसी भारतीय राजा अथवा नवाब से बेगम का राज्य और किसी शाहन्शाह से महारानी विक्टोरिया क्या कम है ? प्रत्युत इस समय संसार का कोई राज्य भी शान्ति और विस्तार में महारानी के समान नहीं है।

युक्ति नं० ६—सत्यनारायण, रुक्मणी मंगल, गणेश चौथ, अनन्त कथा, गुरुगीता, अंबेखह भाई लालू आदि की अनुमान से दूर बातें सुना २ कर आजकल जो ठग लोग स्त्रियों का तन,मन, धन हर लेते हैं। यह दोष उनके शिक्षित होने पर न रहेगा। क्योंकि वह विद्या पढ़कर ऐसी और इनसे उत्तम २ कथाएं स्वयं बना लेंगी और इनकी गप्पों का खंडन भी कर सकेंगी।

युक्ति नं० ७—रम्मालों, ज्योतिषियों, डकौतों, कीमियागरों, फालगीरों, गोरपरस्तों (क़बर पूजकों) मसानों मढ़ियों और सुनारों की शोभा न्यून हो जाएगी। क्योंकि स्त्री शिक्षा से उनको दुःखी होना चाहिये जिन की कमाई मारी जाएगी। न कि हमारे शिक्षित आर्य-हिन्दू भाईयों को।

युक्ति नं ८—स्त्रियों के दुराचार के १६ कारण हैं। एक कवि कहता है कि

(१) अकेले उद्यान में विचरण करना (२) मद्य पान (३) रात्रि में दूसरे के घर जाना और वहां रहना (४) गन्दे गीत गाना (५) अन्य पुरुषों के सम्मुख निर्लज्जता पूर्वक नाचना (६) हंसी ठट्ठा करना (७) चपलता (८) अतिलोभ (९) अधिक आराम चाहना (१०) अतिदुःखी होना (११) अकेले ग्रामों में

---

*(क) यह पहली नास्तिक और ब्रेडला की सहायिका प्रसिद्ध विदुषी देवी थीं। अब कुछ समय से थयासोफ़ीकल सोसाईटी में हैं और कई पुस्तकें लिख चुकी हैं।

(ख) यह प्रसिद्ध विदुषी देवी रशियन मैडिम हैं। जिन्होंने कर्नल अल्काट के साथ आकर भारत में थयासोफिस्ट पत्र निकाला और कई बड़ी पुस्तकें लिखीं।

(ग) यह विदुषी देवी जैनधर्म की उपदेशिका हैं।

(घ) यह संस्कृत की विदुषी बनारस में वरुणा नदी के संगम पर एक कन्दरा में रहती और सदुपदेश करती हैं।

उक्त चारों देवियां पण्डित जी के काल की थीं। (अनुवादक)

यात्रा करना (१२) पुराणों का सुनना (१३) पति का दुराचारी हो जाना (१४) अल्पायु में विवाह करके अधिक समय तक माता पिताके घर रहना (१५) अभिमान (१६) मन्दिरों में जाकर जगराता करना। इन १६ बातों के कारण कुलीन और श्रेष्ठ स्त्री भी पतित हो सकती है। ये सब खराबियां शिक्षा के बिना दूर नहीं हो सकतीं। अतः स्त्रियों का शिक्षा पर पूर्ण अधिकार है।

(२) क्या स्त्रियों को उच्च शिक्षा की आवश्यकता है ?

जिन को भगवान् ने हृदय और बुद्धि दी है उन्हें उच्चशिक्षा की आवश्यकता है। यदि स्त्रियों के पास हृदय, बुद्धि, वाणी और आँखें विद्यमान हैं तो उन को उन वस्तुओं की आवश्यकता है जो इन अंगों के साथ सम्बन्ध रखने वाली हैं। यदि स्त्रियाँ माता के गर्भ से पढ़ी लिखी उत्पन्न होतीं तो उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी परन्तु जब यह बात इस के विपरीत है और चिरकाल से पुरुषों की शिक्षा का अधिक प्रचार होने के कारण तथा स्वयं पुरुषों की स्वार्थमयी शरारतों से स्त्रियों की दशा बिगड़ गई है। अत्यावश्यक है कि इन की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाए और धीरे २ उन को उच्च शिक्षा तक ले जाया जाए। आंगल विधि को छोड़ कर सनातन ऋषि मुनियों की विधि के अनुसार अर्थात् सब से अधिक उन्हें सदाचार, गृह-प्रबन्ध, धर्म, स्वास्थ्य आदि विषयों पर उच्च शिक्षा दी जानी चाहिये।

विद्या का काम सुधार करना है। जो अधिक विगड़ा हुआ है उस को ही अधिक सुधारने की आवश्यकता है। अधिक रोगी को अधिक औषध दी जाती है न कि स्वस्थ को। गृहप्रबन्ध कार्य स्त्रियों से सम्बन्धित हैं। अतः विद्या की अधिक आवश्यकता इन के लिये है। यदि स्त्रियों को नम्रता, सभ्यता, सुशीलता, कोमलता, सुख, धर्म और मोक्ष की आवश्यकता है तो निस्सन्देह उन्हें विद्या की भी आवश्यकता है। यह वस्तु उच्च शिक्षा प्राप्ति के विना सम्भव नहीं अतः स्त्रियों को उच्च शिक्षा की आवश्यकता है।

बाल्मीकी रामायण अयोध्या कांड सर्ग १२ श्लोक १५ में लिखा है कि राम चन्द्र जी जब कौशल्या से मिलने गए तो उस समय वह रेशमी वस्त्र धारण किये परमानन्ददायक नित्य के व्रत में लगी हुई मन्त्र पढ़ २ कर अग्नि में आहुति दे रही थीं। सीता जी भी धर्म शास्त्र पढ़ी हुई थीं।

[देखो सीता रावण सम्वाद]

सब से ऊँची शिक्षा वेद की है। वेदों पर प्राचीन समय की विदुषी स्त्रियों के वाद प्रतिवाद विद्यमान हैं। जिन्हें आज कल के शास्त्री और एम० ए० कठिनता से समझ सकते हैं। किन्तु आजकल स्त्रियों की अतिशोचनीय अवस्था हो रही है। अतः आवश्यक है कि हम उन की सुध लें।

[देखो नीतिशतक श्लोक नं० १४]

यदि हम चाहते हैं कि स्त्रियाँ पशुता से निकल कर सभ्यता की वेदी पर पग धरें तथा हमारे गृहस्थ वास्तविक आर्य घराने बनें तो उन्हें उच्च शिक्षा देनी चाहिये।

(३) पुरुषों को स्त्री शिक्षा की ओर प्रवृत्त करने के क्या उपाय हैं ?

प्रथम उपाय :—स्त्री शिक्षा सम्बन्धी लघु पुस्तकें विद्वानों से लिखवा कर इस देश में बांटी जाएं

द्वितीय उपाय :—प्रत्येक समाचारपत्र में प्रतिदिन स्त्री शिक्षा की आवश्यकता के सम्बन्ध में लेख लिखे जाएं तथा स्त्री शिक्षा के बिना भारत की दुर्दशा का चित्र खेंचा जाए।

तृतीय उपाय :—पठित विदुषी देवियों के जीवन चरित्र प्रकाशित किये जायें।

चतुर्थ उपाय :—कुछ उपदेशक भी ऐसे हों जो देश में एतद्विषयक उपदेश करें।

पाँचवां उपाय :—जिस बात पर दोष रूप से सर्व साधारण को आपत्ति हो उसे यथासम्भव दूर किया जाए। जहां तक सम्भव हो लड़कियों के सदाचार के लिये सदाचारिणी विवाहिता देवियों की सेवा प्राप्त की जाए तथा छात्रालयों में भी ऐसा ही प्रबन्ध किया जाए।

(४) स्त्री शिक्षा प्रवृत्ति के क्या साधन हो सकते हैं ?

प्रथम साधन :—जो लोग स्त्री शिक्षा के सहायक हैं उन्हें चाहिये कि अपनी लड़कियाँ पाठशालाओं में प्रविष्ट करायें और अपनी स्त्रियों को पढ़ाने के लिये घर में समय निकालें। जब वह विद्या का मान करना जान लेंगी तो सन्तान को मूर्ख रखना कदापि सहन न करेंगी।

द्वितीय साधन :—जो देवियां स्कूल की अध्यापिकायें हों उन्हें चाहिये कि वे लड़कियों के संस्कारों पर पण्डित के स्थान पर कार्य करें।

तृतीय साधन :—बड़े २ धनियों की देवियां लड़कियों को भिन्न २ शुभावसरों पर पारितोषिक दिया करें। तथा कभी २ देसी उच्च अधिकारियों की स्त्रियां भी ऐसा करें।

चतुर्थ साधन :—लड़कियों को माता पिता का मान करना सिखाया जाए। उन का अधिक समय शिल्पकारी में लगाया जाए, जिस से विवाह होने पर वे पति का हाथ बटाने वाली बन सकें।

पंचम साधन :—जब लड़की का विवाह हो तो पाठशाला की ओर से कोई उत्तम वस्तु पारितोषिक रूप में दी जाए।

(५) स्त्रियों को पूर्ण विदुषी बनाने के क्या २ उपाय हैं ?

स्वास्थ्य बनाने के लिये औषध, वैद्य और युक्ताहार विहार की आवश्यकता है। इसी प्रकार स्त्रियों को पूर्ण विदुषी बनाने के लिये स्त्री शिक्षा पद्धति को जानने वाले पुरुष वैद्यों की आवश्यकता है। जिस से वह पूर्ण शक्ति लगा कर इस रोग के निवारणार्थ यत्नशील हों। एक साधारण रोग के विनाश के लिये साहस और यत्न की आवश्यकता होती है। जब कि एक राजरोग को दूर करने का उपक्रम करने के लिये निरन्तर साहस पूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है। ऐसे अवसर पर कुशल वैद्यों का कर्तव्य है कि मूर्खों के विरोध की सर्वथा उपेक्षा करके सर्वदा प्रयत्नशील हों और सब रोगियों को एक हस्पताल में प्रविष्ट करें जिस का नाम महाविद्यालय रखा जाए।

महाविद्यालय की देख-रेख करने वाले ऐसे सज्जन हों जो उत्तम प्रबन्धक होने के अतिरिक्त बहुत ही पवित्र आचरण युक्त हों। क्योंकि लोगों के सदाचार और प्रतिष्ठा का इससे अधिक सम्बन्ध है। ऐसा न हो कि वह अपनी भूल से कलंकित होकर सारे परिश्रम को धूलिसात् करदें और हमें निराश होना पड़े। ध्यान रहे कि रामा बाई के ईसाई हो जाने से स्त्रीशिक्षा को बहुत धक्का लगा है। इस प्रकार के दोषों को यथासम्भव रोक दिया जाए। इसके लिये निदान की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जिसका

उपाय शिक्षा की पुस्तकों और शिक्षा विधि को सुधारना है। हमारे प्रबन्धकों को चाहिए कि अन्य महाविद्यालयों का प्रबन्ध करने वाले विशेषज्ञों से सम्मति लें। शास्त्र रीति के अनुसार १६ से २४ वर्ष तक कन्या के विवाह का समय है। तथा विद्यारम्भ का समय ६, ७, ८ वर्ष है। ६ से २४ तक १८ वर्ष, ६ से १६ तक ११ वर्ष और ८ से १६ तक ८ वर्ष और २४ तक १६ वर्ष होते हैं। यदि शिक्षा पद्धति सरल हो। इतिहास, भूगोल और गणित को भी सरल किया जाए तो पढ़ाई में सरलता लाई जा सकती है।

कालीदास के काव्य हटा कर यदि उनके स्थान पर वाल्मीकी रामायण अथवा मनुस्मृति के कुछ अध्याय रखे जाएं तो न्यूनातिन्यून प्राज्ञ और अधिक से अधिक शास्त्री की पढ़ाई के लिए समय पर्याप्त है। अकलीदस स्त्रियों को शिल्पकारी में अधिक सहायता देगी। मेरे विचार में वह उनके स्वभाव के अधिक अनुकूल है। वैद्यक की पुस्तकें आरम्भ से अन्त तक पाठ्यक्रम में अवश्य रखनी चाहियें। अनुभवी लेडी डाक्टर कभी २ परीक्षा लिया करें। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ देवियों की जीवनी पर कभी २ स्कूल की अध्यापिकाएं व्याख्यान दिया करें। दूसरा उपाय यह है कि पारितोषिक वितरण किये जाएं और समय २ पर लड़कियों को उनके माता पिता अथवा बिरादरी के लोगों के सम्मुख मान दिया जाए।

३० सितम्बर १८९३ लेखराम आर्य-पथिक
जालन्धर नगर।

आर्य हिन्दु और नमस्ते की खोज

समय की क्रान्ति इस सीमा तक आ पहुँची है और अविद्या ने वह दिन आ दिखलाया है कि लोगों को अपने यथार्थ नाम आदि का ज्ञान भी नहीं रहा। श्रेष्ठ, विश्वव्यापी, सभ्य और वास्तविक नाम भुला कर एक गुमनाम, कृत्रिम, असभ्य और अनुचित कलंक से हमारे भाइयों को मोह और प्रेम होगया है। सच्चे और वास्तविक नाम का आदर और परिचय दूर होकर उस का जानना व मानना भी हट गया। अविद्या ने यहां तक डेरा डाला कि आर्य के स्थान पर हिन्दु तथा आर्यावर्त के स्थान पर हिन्दुस्थान कहने और कहलवाने लगे। शोक ! महा शोक !!

इस दृष्टि से उचित प्रतीत हुआ कि अति विस्तार के साथ उनकी व्याख्या करके सत्यासत्य पर पूर्ण प्रकाश डाला जाए। जिस से विरोधियों को कुछ कहने का अवसर न रहे। ज्ञात हो कि हम आर्य लोग इस हिन्दुस्तान और हिन्दु नाम को कई कारणों से बुरा समझते हैं। जैसा कि :—

(१) हमारी जाति का हिन्दु नाम किसी संस्कृत पुस्तक में लिखा हुआ नहीं। वेदों से शास्त्रों प्रत्युत पुराणों से ले कर सत्यनारायण की कथा (जो बहुत थोड़े समय की रचना है) तक भी कहीं इस नाम का चिह्न नहीं मिलता। अतः हमारा नाम हिन्दु नहीं।

(२) कभी किसी दैनिक स्मृति पत्र, तिथि पत्र, रोजनामचा, वही, जन्मपत्री, टेवा आदि में भी हिन्दु, हिन्दी, हिन्दुस्थान के नाम नहीं लिखे गए। जिस से विशेषतः सिद्ध है कि हम हिन्दु नहीं हैं।

(३) हमारे साहित्यिक ग्रन्थों में भी जो इसलामी युग से पूर्व की रचना हैं और इसलामी पुस्तकों में भी यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुए। यहां तक कि किसी धार्मिक अथवा जातीय प्रथा रीति के अनुसार इस समय तक हिन्दु आदि शब्द प्रयुक्त नहीं हुए। अतः किसी प्रकार स्वीकार नहीं कि हमारा हिन्दु नाम हो। पादरी टामस हावल (अपनी आर्य हिन्दु शब्द व्याख्या में) लिखते हैं कि यह हिन्दु शब्द उस नदी के नाम से बना है जो सिन्धु कहलाती है। क्योंकि प्रायः शब्द जो संस्कृत भाषा से फ़ारसी भाषा में आगए हैं, वे इस प्रकार से परिवर्तित पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ सप्ताह से हफ़्तह, दशम से दहम, सहस्र से हज़ार। इसी प्रकार सिन्धु हिन्दु हो गया हुआ प्रतीत होता है जिसका अभिप्राय है कि सिन्धु के तट निवासी लोग।

(उत्तर) पादरी जी इतना तो मानते हैं कि यह शब्द फ़ारसी भाषा का है। परन्तु संस्कृत से आया हुआ है अर्थात् संस्कृत के सिन्धु से हिन्दु बना है। ऐसा मानने में ज्ञात हो कि यह भी ठीक नहीं। क्योंकि यूनानी लोग रोम, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से आर्यावर्त में आए थे। मार्ग में जैसा किसी देश का नाम था वही प्रयुक्त किया। 'स' अक्षर का 'ह' अक्षर से परिवर्तित होना हम ने माना। परन्तु फ़ारसी में संस्कृत किसी प्रकार नहीं। संस्कृत में सिन्धु शब्द नदी को कहते हैं। (देखो निघंटु १/१३ तथा उणादि कोष १/११) परन्तु सिन्धु शब्द कभी आर्यावर्त निवासियों के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ।

और न उचित है। किन्तु फ़ारसी कोषों की दृष्टि से जो इस शब्द के अर्थ हैं। वह इस के लिये सहायता कर सकते हैं। जैसे :—

"सिन्द-दर फ़ारसी बकसरे सीन बमानी हरामज़ादा व बद व शरीर व काफ़िया मअ्यूब।"
(अज़ कशफ़ व सिराज, मुन्तख़िब व ग़यास व बुरहान व लतायफ़ुल्लुग़ात)

अर्थात् कशफ़, सिराज, मुन्तख़िब, ग़यास, बुरहान और लतायफ़ आदि कोषों में लिखा है कि सिन्द शब्द फ़ारसी में 'स' के नीचे सियारी लगा कर लिखा जाता है जिस के अर्थ हरामज़ादा, बदमाश और शरारती आदि दोष युक्त हैं।

क्योंकि सीमा के लोग सीमापार के लोगों को लूट लिया करते थे अतः उन का नाम सीमापार वालों ने सिन्धु अथवा हिन्दु रखा। दोनों शब्द फ़ारसी भाषा में पर्यायवाची हैं। उस देश की बोल-चाल में चोरों द्वारा तोड़ी दीवार के सुराख़ को सीन्ध अथवा सन्ध कहते हैं। अफ़ग़ानी भाषा में नदी को सीन कहते हैं और यह दीवार तोड़ने वाले चोर का नाम भी है। यह सिन्धु अथवा हिन्दु नाम किसी भले मनुष्य का नहीं तो आर्यों का नाम कैसे हो सकता है? अतः आप का यह कथन भी ठीक नहीं।

पादरी—सम्भव है कि यह हिन्दु नाम संस्कृत के शब्दों "हीनदोष"=निर्दोष से बना हो। सम्भव है कि बहुत प्रयोग के कारण कुछ अक्षर छूट गए हों जैसे हिन्दुस्थान को हिन्दोस्तां कहते हैं। बुद्धि भी मानती है कि हिन्दुओं के पूर्वज लोग बुद्धिमान् थे। उन्हों ने निर्दोष अर्थ वाले हिन्दु शब्द को जाति के लिये प्रयुक्त किया होगा।

(उत्तर) आप का कृत्रिम सम्भव संस्कृत की दृष्टि से सर्वथा असम्भव है। क्योंकि संस्कृत के किसी कोष अथवा इतिहास से इस का ज्ञान नहीं होता। अतः आर्यों के पूर्वजों द्वारा प्रचलित यह नाम नहीं है। प्रत्युत दूसरी जातियों का आर्यों के लिये गाली प्रदान है। स्थान शब्द भी सर्वथा असम्भव और अनुपयुक्त है क्योंकि एक फ़ारसी और दूसरा संस्कृत का है।

इस बात के मानने से किसी को इनकार नहीं कि जिस प्रकार और भाषाएं संस्कृत से निकली हैं उसी प्रकार संस्कृत के स्थान से फ़ारसी का स्तान बना है परन्तु अरबिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, फ़िरंगिस्तान, इंगलिस्तान, ज़ाबलिस्तान, बलोचिस्तान, तुर्किस्तान, गुलिस्तान, बोस्तान, दबिस्तान, ताकिस्तान, नख़लिस्तान, चमनिस्तान के समान हिन्दोस्तान भी है। कोई शब्द इस में से छूटा हुआ नहीं है। अतः आप का यह कथन भी केवल निराधार है कि यह हिन्दुओं का आविष्कार है। नहीं, यह विदेशियों का आरोप है। और इस के अधिक प्रयोग का कारण इस्लाम है। जिस की सिद्धि में प्रमाण यह हैं :—

हिन्दु शब्द के विभिन्न प्रयोग

(१) हज़रत मुआविया की माता का नाम हिन्दिया था क्योंकि वह काले रूप वाली थी।
(मसालिब)

(२) हिन्द बिल्कसर नाम ज़ने कि क़ातिले अमीर हमज़ह बूदा अस्त (मुन्तख़िब)
अर्थ—हिन्द (सयारी के साथ) एक स्त्री का नाम है जो अमीर हमज़ह की हत्यारी थी।
(मुन्तख़िब नामी कोष)

(३) हिन्दु दर मुहावरा फ़ारसियां व मअ्ने दुज़दो रहज़नो ग़ुलाम मे आयद। (ग़यास)
अर्थ—हिन्दु शब्द फ़ारसी भाषा के अनुसार चोर, डाकू, रहज़न (मार्ग का लुटेरा) और ग़ुलाम (बन्दी) के अर्थों में आता है। (ग़यास नामी कोष)

(४) हिन्दु ज़न, ज़ने साहिरा रा गोयन्द यअ़नी जादूगरनी औरत। (ग़यास, करीम)

अर्थ—हिन्दुज़न का अर्थ साहिरा (जंगली) औरत (जादूगरनी स्त्री) है। यह ग़यास और करीमुल्लुग़ात नामी कोषों में लिखा है।

(५) हिन्दु यअ़नी हिन्दुस्तान या दवात (स्याही)। (कशफ़)

अर्थ—हिन्दु शब्द का अर्थ हिन्दुस्तान और दवात (स्याही) है। (कशफ़ नामी कोष)

(६) हिन्दु ए पीर। ज़ुहुल कि दर आसमाने हफ़्तुमस्त व पास-बाने मुल्कस्त व रंग सियाह दारद। अगर पासबाने हिन्द कि एशांरा सादही गोयन्द रंग स्याह मे बाशद। (कशफ़)

अर्थ—हिन्दू पीर का अर्थ ज़ुहल सितारा है जो कि सातवें आकाश पर है और देश का रक्षक है। इस का रंग काला है। यदि इस का अर्थ भारत का रक्षक लिया जाए तो इन्हें साध कहते हैं और इन का रंग काला होता है। (कशफ़)

(७) हिन्दुए चर्ख़ हफ़्तुम बिल्कसर यअ़नी ज़ुहुल कि नहस व स्याह अस्त।

(कशफ़ बुरहान)

अर्थ—हिन्दु जो कसर (सियारी) के साथ लिखा जाता है इस का अर्थ ज़ुहुल सितारा है जो काला और मनहूस है।

(८) हिन्दुए बारीक बीन व हिन्दुए सपहर हफ़्तमी व हिन्दुए क़ुनन्द गरदाना ज़ुहुल।

(कशफ़)

अर्थ—बारीक दीखने वाला अथवा सातवें आकाश वाला अथवा गर्दिश करने वाला ज़ुहुल सितारा है। (कशफ़)

(९) हिन्दु ए-तो बिल्कसर, ग़ुलाम व बन्दा ए तो। (कशफ़)

अर्थ—हिन्दु ए तो का अर्थ तेरा दास और तेरा बन्दी है। (कशफ़ नामी कोष)

(१०) हिन्दु बकसर ग़ुलाम व बन्दह, काफ़िर व तेग़। (कशफ़)

अर्थ—हिन्दु का अर्थ ग़ुलाम, क़ैदी, काफ़िर और तलवार है। (कशफ़ नामी कोष)

(११) चार हिन्दु दर यके मसजिद शुदन्द, बहरे ताअ़त राकओ साजिद शुदन्द॥

अर्थ—चार हिन्दु एक मसजिद में रुकूअ़ और सिजदा करने के लिये इकट्ठे हुए।

(१२) ज़ुल्फ़ दिलबन्दश, सबा रा बन्द दर गरदन निहद।
बा हवा दारान राहरौ हीलाये हिन्दु बबीं॥

अर्थ—उस की काली ज़ुल्फ़ जो दिल को बान्धने वाली (मन को मोहने वाली) है वह प्रातः कालीन वायु के गले में फन्दा डालती है। उसके निकट से चलने वालों के साथ इस "हिन्दु" काले रंग वाली ज़ुल्फ़ का फ़रेब (मोहपाशया धोखा) देखो।

(१३) अगर आं तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिले मा रा।
बख़ाले हिन्दुवश बख़शम समरक़न्दो बुख़ारा रा॥

अर्थ—यदि वह शीराज़ी तुर्क (मेरा प्रियतम) हमारे दिल को हमारे हाथ में दे दे। तो मैं उसके काले तिल पर समरक़न्द और बुख़ारा को वार दूं।

(१४) ख़्वाजा रा बूद हिन्दु बन्दाये।
परवरीदा करदह ओ रा जिन्दाये ॥ (मसनवी रूमी)

अर्थ—एक हिन्दु (काला आदमी) एक धनी मानी व्यक्ति का नौकर था। उस धनी ने अपने नौकर का पालन-पोषण कर के उसे जीवन प्रदान किया अर्थात् उसे जीवन भर पाला।

(१५) दो हिन्दु बर आयन्द ज़े हिन्दोस्तान ।
यके दुज़्द बाशद यके पासबान ॥ (निज़ामी)

अर्थ—दो हिन्दु हिन्दुस्तान से आए। उन में एक चोर था। दूसरा चौकीदार (निज़ामी)

(१६) दो हिन्दुए अज़ पस संगे सर बर आवुर्दन्द । (गुलिस्तान)

अर्थ—दो चोर चट्टान के पीछे से निकले।

(१७) हिन्दुए लफ़ज़ अन्दाज़मी मे आमोख्त, हकीमे गुफ़त तुरा कि ख़ाना नीं अस्त बाज़ी न ईनस्त (गुलिस्तान)

अर्थ—एक हिन्दु (काले रंग वाला आदमी) आतिशबाज़ी सीखता था। एक विद्वान् ने उसे कहा (शिक्षा दी) तेरे लिये कि जिस का अपना घर घास फूस का है यह खेल नहीं है अर्थात् आसान काम नहीं। भाव यह है कि इस से तुम्हारी अपनी भी हानि होने की सम्भावना है।

(१८) चे हिन्दु हिन्दुए काफ़िर चे काफ़िर, काफ़िरे रहज़न ।
चे रहज़न रहज़ने ईमान (चमन बेनज़ीर)

अर्थ—हिन्दु क्या है ? हिन्दु काफ़िर है। काफ़िर क्या है ? काफ़िर रहज़न है । रहज़न क्या है ? रहनज़ ईमान पर डाका मारने वाला है। (चमन बेनज़ीर)

(१९) ख़ाले न बर आरिज़ आं शाहिद मस्तअस्त। हिन्दु बच्चा अस्त कि ख़ुर्शीद परस्त अस्त ॥

अर्थ—उस मेरे प्रियतम के मुख पर वह काला तिल नहीं प्रत्युत हिन्दु बच्चा है जो सूर्य की पूजा करता है।

(२०) जहां हिन्दवस्त तारख़्तस्त न गीरद ।
बगीरश सुस्त तासख़्तस्त न गीरद शीरीं ॥ (ख़ुसरो)

अर्थ—यह संसार मन का काला और चोर है सावधान रहना कि कहीं यह तेरा सामान उठा कर ही न चलता बने। इस दुनिया को ढीला पकड़ (इस के साथ अधिक प्यार न रख) ताकि यह तुझे सख्ती से अपने पाश में न जकड़ ले।

(२१) दो गेसुअश दो हिंदुए रसन बाज़।
ज़ि शमशाद सरावाज़श रसन साज़॥ (ज़ुलैखां)

अर्थ—इस (प्रियतमा) की दो ज़ुल्फ़ें दो काले रंग की बाज़ीगर हैं। जो इसके लम्बे ग्रांडील कद से रस्सियां बांधे हुए हैं।

(२२) यके ख़ाल सियाह जा कर्द बर कुंज बर लबे लालश।
तू गोई बर लबे आबे बक़ा बनिशस्त हिन्दुए ॥

अर्थ—एक काले रंग के तिल ने उसके लाल गुलाल होंठों के एक कोने में अपना स्थान बना

लिया है। इसे देख कर तू कहेगा कि जीवन दाता जल (अमृत) के स्रोत के तट पर एक काला आदमी (हिन्दु) बैठा हुआ है।

(२३) कुनद दर पेश पाए आं निगारे सज्दाहा ज़े नफ़स ।
बले कारे बेह अज़ आतिश परस्ती नेस्त हिन्दुए॥ (दीवान ग़नी)

अर्थ—इसकी जुल्फें उस (सुन्दर मुखड़े वाले) प्रियतम के चरणों पर नतमस्तक हो गिर रही हैं। हां किसी हिन्दु (काले) के लिये अग्नि पूजा से बढ़ कर कोई अन्य काम नहीं हो सकता।

(२४) मन आं तुर्क सियाह चश्मम बरीं बाम ।
कि हिन्दुए सफ़ैदत शुद मरा नाम ॥ (शीरीं खुसरो)

अर्थ—मैं इस कोठे (मकान की छत) पर काली आंखों वाला (श्वेत वर्ण) तुर्क हूँ कि लोग मुझे तेरा श्वेत वर्ण वाला हिन्दु (गुलाम, बन्दी) कह कर पुकारते हैं।

यही हिन्दु शब्द फ़ारसी, अरबी, इबरानी आदि भाषाओं में लगभग इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ऐसी कोई पुस्तक होगी जिसमें यह शब्द इन अर्थों में न आया हो। जिस से प्रत्येक प्रकार से सिद्ध है कि यह नाम हमारा नहीं। सर्वथा त्याग करने के योग्य और शत्रुता तथा विरोध से रचा गया है। जैसा कि हमारे यहां उनके किये यवन और म्लेच्छ आदि नाम मिलते हैं।

पादरी—संस्कृत भाषा में आर्य और फ़ारसी भाषा में ईरानी दोनों शब्द एक ही धातु "आर" से निकले आर्य और ईरानी के वास्तविक अर्थ हल चला कर खेती करने वाले के हैं। वास्तव में यह नाम आर्य जाति के लोगों का उस समय था जब वे केवल खेती करके हलवाही करने से रोटी कमाते थे।

उत्तर—खेद है कि जिन को धातु का ज्ञान भी नहीं वे भी आक्षेप करने पर उद्यत हो जाते हैं। संस्कृत में आर कोई धातु नहीं है। ऋ धातु से आर्य और अर्य नाम बने हैं। इसी से फ़ारसी-पहलवी-में ईरानी शब्द बना है। परन्तु आर्य और अर्य भी एक नहीं। वह अन्य "ऋ" से बना है और यह अन्य से। आर्य शब्द समस्त जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का नाम है। और अर्य केवल वैश्यों के कार्य (मनुस्मृति अ० १ श्लो० ९०) में पशु-रक्षा, दान देना, यज्ञ करना पढ़ना, व्यापार करना, व्याज लेना, खेती करना सात काम लिखे है। पंजाबी में कहावत है कि,

उत्तम खेती मध्यम व्यापार ।
निखद चाकरी भीख संगार ॥

आर्य शब्द के अर्थ संस्कृत भाषा में विद्वान्, श्रेष्ठ, बुद्धिमान्, धार्मिक, ईश्वरभक्त आदि के हैं। मैक्समूलर जी ने ऐसा ही लिखा है।

"आर्य के अर्थ बुद्धिमान, विद्वान्, देवता और श्रेष्ठ सदाचारी तथा देवों का मान करने वाला है क्योंकि यह शब्द दस्यु का अपवाद है।"

(साइंस आफ़ लैंग्वेज पृ० २७५)

सभी आर्य कभी खेती नहीं करते थे। आरम्भ काल से ही इन को चार भागों में विभक्त किया गया है। जिस की आज्ञा वेदों में है। इसी आज्ञा पर ही इस सामाजिक विभाजन का संगठन है। अर्थात्

विद्या का पढ़ना, यज्ञ करना, कराना, दान देना लेना, जो मुख्य कार्य हैं उनका कर्ता ब्राह्मण, विद्या का पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना; देश और जाति की रक्षा करना जो कार्य बाहुबल पर अधारित हैं उसका कर्ता क्षत्रिय और उपरि व्याख्यानुसार देशाटन करके व्यापार करने वाला वैश्य तथा विद्याहीन सेवक का नाम शूद्र है। सदैव आर्य जाति में वैश्य खेती करने वाले रहे अथवा खेती करने वालों का पद वैश्य रहा। परन्तु समस्त मनुष्यमात्र का कार्य ईश्वरीय नियमानुसार केवल खेती करना नहीं है। अन्यथा युद्धविद्या, देशरक्षा, सेवा, परोपकार कौन करे? और यही विभाजन ईरानी जाति में भी इसी प्रकार सामाजिक रूपेण वर्तमान है।

दबिस्ताने मजाहिब, जन्दावस्ता आदि में इसका स्पष्ट वर्णन और समर्थन है। मैक्समूलर के कथन से भी स्पष्ट है कि पारसी लोग भी आर्यावर्त से चलकर ईरान में बसे थे। (साइंस आफ़ लेंग्वेज पृ० २८८)

इतिहास में भी ऐसा ही लिखा है कि प्राचीन यूनानी, रूमी, इंगलिश, फ्रांसीसी, जर्मन और फ़ारिस आदि के समस्त पूर्वज आर्य थे। (देखो तारीखें हिन्द)

अतः उचित है कि आप इस भूल का भी सुधार करें और इस प्रकार के काल्पनिक विचारों का परित्याग करें।

पादरी—जैसा कि हमारे पंजाब में भी खेती करने वाले "अराईं" कहलाते हैं।

(उत्तर) श्री मान् जी! अराईं शब्द संस्कृत का नहीं, पंजाबी का है। जहां तक विचार से देखा जाए। अराईं नाम वाली जाति मुसलमान ही है। हिन्दु कोई नहीं। जिस से यह परिणाम निकलता है कि यह उनका नाम अरबी के राई से विगड़ा हुआ है। बहुत थोड़े परिवर्तन से जो कुछ गले के बल से बोलने की कठिनता के कारण उस का राईं अथवा अराईं हो जाना कुछ भी कठिन नहीं। गयासुल्लुग़ात में लिखा है कि राईं शब्बान, निगहबान "यअ़नी चरानंदाए चार पायान।" अर्थात् अरबी भाषा का है। संस्कृत का नहीं।

पादरी—इस पेशा के लोग पशुओं और बैलों पर अत्याचार करते हैं। मूक पशुओं को अपनी छड़ी से जिस के सिर पर एक लोहे की नोकदार कील लगी होती है, चुभो २ कर हांका करते हैं। इसी कारण सम्भवतः उन्हें अराईं कहा जाता है, वह नोकदार कील आर कहलाती है।

(उत्तर) श्रीमान् जी! यह इन निर्दयी मूर्खों का बहुत अत्याचार है और धर्मशास्त्र की दृष्टि से ऐसे लोग दंडनीय हैं। जैसा कि महाराजा जम्मू, कपूरथला, नाभा, जीन्द, जोधपुर आदि में कोई इस का प्रयोग नहीं करता। और करने वाला दंड पाता है।

(देखो रणवीर दंड विधान)

बटाला में भी कुछ हिन्दु मुसलमान ईसाइयों के यत्न से "अंजमन हमदर्दी हैवानात" अर्थात् "पशु सहायक सभा" बनी हुई है। सरकारी क़ानून भी ऐसे लोगों के दंड के लिये बना हुआ है।

(देखो ऐक्ट ५ सन् १८६६ ईस्वी धारा ३४)

"आर" शब्द भी संस्कृत का नहीं, फ़ारसी का है। जैसा कि आरह काबुल, अफ़ग़ानिस्तान, पेशावर में लकड़ी चीरने, जूती सीने वाले लोहे के औज़ार को कहते हैं। सम्भवतः फ़ारसी के इन शब्दों से ही इन निर्दयी मूर्खों ने यह शब्द सुन सुना कर प्रचलित किया हो तो आश्चर्य नहीं।

पादरी—अतः जब इस जाति ने धीरे २ विद्या, कलाकौशल, व्यापार में उन्नति की तो आर्य नाम को, जो केवल खेती करने वालों के लिये विशिष्ट था, छोड़ दिया और इस आर्य नाम की अपेक्षा हीनदोष को जो धीरे २ हिन्दु हो गया है अपनी जाति पर प्रचलित कर लिया है और यह हिन्दु आर्य नाम की अपेक्षा अधिक शोभा पा गया है।

(उत्तर) आप का यह आक्षेप भी सर्वथा अयुक्त है। कभी किसी संस्कृत अथवा प्राकृत के विद्वान् ने यह हिन्दु नाम अपनी जाति के लिये प्रचलित नहीं किया। परन्तु पराधीनतावश बाधित हो कर मुसलमानों के समय में फ़ारसी का प्रचलन हो जाने के कारण दफ़्तरों (राजकीय कार्यालयों) में यह नाम लिखा जाने लगा। और अन्त में समस्त देश मुसलमानों का हिन्दु (गुलाम) हो गया। आप का यह कथन कि जब इस जाति ने धीरे २ विद्या, कलाकौशल, व्यापार में उन्नति की तो आर्य नाम को छोड़ दिया, सर्वथा असत्य और व्यर्थ तथा छल कपट पूर्ण है। जब तक विद्या, कलाकौशल·व्यापारादि में उन्नति रही तब तक आर्य नाम रहा और जब से आलस्य प्रमाद आदि दोषों ने घेरा। विद्या कलाकौशल व्यापार तथा दूर देश पर्यटन से वञ्चित हुए तब हिन्दु, काफ़िर, गुलाम, असभ्य बन गये। जैसा कि इतिहास भी बताता है कि आर्य लोग सदैव से फ़िलासफ़ी के विद्वान् रहे। हिन्दसा, गणित, ज्योतिषादि के गुरू भी यही हैं। इसी कारण से वह आर्य अर्थात् श्रेष्ठ कहलाते थे। ईरान का बादशाह दारा भी आर्य होने का गर्व करता था कि मैं आर्य हूँ और आर्यों की सन्तान से हूँ क्योंकि उस के परदादा का नाम एरियारनमिया था (देखो साइंस आफ़ लेंग्वेज मैक्समूलर कृत पृ० २८०)

पादरी—जो कहते हैं कि यह नाम हमारी जाति का हमारे शत्रुओं अर्थात् मुहम्मदियों ने रखा है वह केवल भ्रम ही नहीं प्रत्युत धोखा है।

(उत्तर) क्योंकि यह नाम हमारी किसी धार्मिक पुस्तक, इतिहास और किसी विद्या सम्बन्धी पुस्तक में किसी स्थान पर नहीं लिखा। और विरोधियों, विधर्मियों तथा विदेशियों की पुस्तकों में सैंकड़ों स्थानों पर है जिस के कुछ उदाहरण हम ने उपस्थित पीछे दिये हैं। अतः इसी पर भी आप के इनकार को हम जानबूझ कर मूर्खता के अतिरिक्त और क्या कहें? और यह इस लिये कि आप आर्य जाति के लोगों को सत्य वैदिक धर्म से वञ्चित रखकर छल कपट युक्त खुशामद करके ईसाई बना लिया करें और उन को आर्य नाम से घृणा हो जाए। पादरी जी ने एक कपट जाल बिछा कर उन को पथ-भ्रष्ट करना चाहा अन्यथा और कुछ नहीं।

अतः प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष जान सकता है कि यह नाम हमारे विरोधियों की पुस्तकों में (चाहे वह ईरानी, अफ़ग़ानी, यूनानी, एराबी अथवा रूसी हों) विद्यमान है। तो उन का कथन नितान्त भ्रम और असत्य है। जिस पर हमें कहना पड़ा कि पादरी जी ने छल कपट का कार्य किया तथा सत्य से मुख मोड़ा है। हम उन को चैलंज करते हैं कि वह अथवा उन का कोई और इल्हामी मित्र...मिर्ज़ा गुलाम अहमद आदि हिन्दु नाम किसी संस्कृत की पुस्तक में से बताए और प्रमाण दे। अन्यथा यह-धोखाबाजी की जंजीर यहूदा असकर्यू ती और यज़ीद की भान्ति क़यामत तक छली कपटी के गले में रहेगी।

पादरी—क्योंकि यह नाम इन पुस्तकों में पाया जाता है। जो मुहम्मद जी की उत्पत्ति से बहुत पहिले लिखी गई थीं (जैसे अस्तर की पुस्तक जो हज़रत मुहम्मद की उत्पत्ति से एक सहस्र वर्ष पूर्व

लिखी हुई थी) उस के पहले अध्याय की पहली आयत में हिन्दोस्तान है। इसी प्रकार फ़लादेस जोसफ़र यहूदी इतिहासकार भी अपनी पुस्तक में हिन्दोस्तान का नाम लिखता है जो मुहम्मद साहिब की उत्पत्ति से ६०० वर्ष पूर्व हुआ है (देखो उस पुस्तक का अध्याय ५) अतः स्पष्ट है कि मुहम्मद साहब की उत्पत्ति से बहुत पूर्व यह देश हिन्दुस्तान के नाम से प्रसिद्ध था। सम्भवतः उस के निवासी हिन्दु कहलाते थे।

(उत्तर) यह प्रमाण भी आपके विश्वास का समर्थन नहीं कर सकता। क्योंकि हमारा विश्वास यह है कि हमारी पुस्तकों में हमारा नाम हिन्दु नहीं है। और न यह संस्कृत का शब्द है। शेष रहा अस्तर में अथवा यहूदी इतिहास में इसका होना। अस्तर नाम की पुस्तक सिकन्दर के काल के लगभग बनी है। (देखो अस्तर की किताब इब्रानी बाईबल पृ० ११८७ छापा १८७८ ईस्वी लंडन, मसीह से ५२१ वर्ष पूर्व)।

दूसरी पुस्तक मसीह के पश्चात् की है। जहां तक खोज हो चुकी है। संभवतः यही काल है जब से यह बुरा नाम हमारे और हमारे देश के लिए विदेशियों नें प्रचलित किया। क्योंकि आपके कथन से भी हमारी बात की सिद्धि होती है जो आपके लिए हानिकर है। यतः हमारे यहां प्रसिद्ध है कि यह नाम यूंही लोगों ने बना लिया है, जो विदेशियों की पुस्तकों में पाया जाता है। हमारे देश की पुस्तकों में कहीं नहीं पाया जाता।

(प्रश्न) हिन्दु नाम इन्दु से बना है। इन्दु चन्द्रमा को भी कहते हैं अर्थात् चन्द्रवंशी लोग।

(उत्तर) हम मानते हैं कि इन्दु चन्द्रमा को कहते हैं। परन्तु संस्कृत में यह किस प्रकार बन गया। इसके अतिरिक्त क्या समस्त हिन्दु चन्द्रवंशी अथवा सूर्यवंशी हैं, ब्राह्मण वैश्य शूद्र नहीं हैं? और इन्दु केवल चन्द्रमा को कहते हैं ? वंशज कहां से आगया ? और किस के अर्थ हुए ? और यह नाम इस धातु से निकला हुआ किसी भी संस्कृत पुस्तक में आज दिन तक उल्लिखित नहीं है क्या चन्द्रवंशियों के अतिरिक्त और लोग अपने आप को हिन्दु नहीं कहते अथवा सूर्यवंशी से कोई और नाम निकला है ? और क्या आप के अतिरिक्त संसार भर में किसी और को यह ज्ञात है ? जब कि इन सब बातों में कोई भी ठीक नहीं तो आप का यह प्रश्न भी निराधार है क्योंकि अब तक चन्द्रवंशी सूर्यवंशी आदि सैंकड़ों गोत्रों की जातियां आर्यावर्त में विद्यमान हैं परन्तु हिन्दु का चिह्न तक भी नहीं।

अब कुछ थोड़े से इस बात के प्रामण भी दिये जाते हैं कि हमारा आर्य नाम किन २ पुस्तकों में लिखा है। प्रमाण की पुष्टि के लिए मूल के साथ पुस्तक आदि का नाम भी लिखा जाता है :—

संख्या (१) ऋ० १–१०३–३ में आर्य शब्द है।

(२) विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। (ऋ० १–५१–८)

(३) नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोतरणाय च।
नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च॥ (यजु० १६–४२)

(४) आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्यो रार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥ (मनु २–२२)

(५) मुख बाहूरु पज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्य वाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ (मनु० १०–४५)
(६) न्याय दर्शन १–१० पर वात्स्यायन भाष्य
(७) केवल मामक भाग धेय पापापर समानार्य कृत सुमंगल भेषजाच्च ।
(अष्टाध्यायी ४–१–३०)
(८) इन्द्र वरुण भव शर्व रुद्रमृड हिमारण्य यवन मातुलाचार्याणामानुक् ।
(अष्टाध्यायी ४–१–४९)
(९) इस पर काशिकाभाष्यः— आर्य क्षत्रियाभ्यां चार्याणी आर्या ।
(१०) अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमजु न (गीता ७–२)
(११) श्रुतं प्रज्ञानुगमस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
अस्मिन्नार्य.................... (महाभारत उद्योगपर्व)
(१२–१६) हितोपदेश में कई स्थलों पर आर्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। विशेषतः पाँच स्थानों में तो स्पष्ट वर्णन है ।
(१७) वेद वेदांग तत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ।
आर्यः सर्व समश्चैव सदैव प्रिय दर्शनः ॥
(रामा० बालकाड १–१४, १६)
(१८) बाली की स्त्री पति के वध हो जाने पर उसे आर्य पुत्र पुकार कर रुदन करती है ।
(किष्किन्धा काण्ड १९–२७)
(१९) आर्यपुत्र (संस्कृत इंगलिश बृहत्कोष कलकत्ता १८७४ ईस्वी पृ० १२४)
(२०) आर्य (२१) आर्यक (२२) आर्याम्र्य (२३) आर्य पवित्र (२४) आर्य प्रायः
(२५) आर्य रूप (२६) आर्य लिंगन (२७) आर्यावर्त
(२८) आर्य देश (२९) आर्य गीत (३०) आर्य
(३१) अहं आर्यः । (भविष्य पुराण) ।
(३२) देवार्य नंदन (मृच्छकटिका नाटक) ।
(शब्दार्थ भानुकोष पृ० ५०, १८७५ ईस्वी लाहौर) ।
(३३) आर्य से ईरान और आर्योना शब्द निकलते हैं ।
(३४) एरीक आर्य से बना है ।
(३५) आरमीनियों के हां उसके अर्थ शूरवीर के हैं ।
(साइंस आफ़ दी लैंग्वेज पृ० २८१) ।
(३६) जो देश आर्यों का निवास स्थान है उसका नाम आर्य है । यह जन्दावस्ता में लिखा है ।
(साइंस आफ़ दी लैंग्वेज पृ० २८१) ।
(३७) जो तुम सुख हमारे आर्य । दियो सीस धर्म के कार्य ॥ (गुरविलास) ।
(३८) विवेक विलास ग्रन्थ में बौद्धों का मत ऐसा लिखा है :—
(३९) बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुर मार्य सत्वाख्य यात स्वं चतुष्टमिदं क्रमात् ।
(४०) प्रतिदिन का संकल्प :—

ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे श्वेत वाराह कल्पे जम्बुद्वीपे आर्यावर्तान्तर्गते इत्यादि ।

इस से प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष जान सकता है कि हमारा नाम आर्य है या हिन्दु । देश का नाम आर्यावर्त है या हिन्दुस्तान। हमने सत्य के अनुमोदन और असत्य के निवारणार्थ दोनों नामों के बहुत से प्रमाण उपस्थित कर दिये हैं। पाठक सत्यासत्य में विवेक करके देश और जाति को इन कलंकित नामों से बचाने का यत्न करें।

एक पत्र की प्रतिलिपि

श्रीमान् सम्पादक जी आर्य गजट नमस्ते ! निम्न लेख जोकि शब्द आर्य की व्याख्या के सम्बंध में "नूर अफ़गाँ" के आक्षेप के सम्बन्ध में हैं, सेवा में प्रेषित है । अपने बहुमूल्य पत्र के किसी भाग में प्रकाशित करके सेवक को कृतार्थ करें।

पादरी जी के लिये आर्य शब्द की रीसर्च से पूर्व इस बात की खोज आवश्यक है कि सब कालों में भाषाओं की माता कौन सी है ? और किस के प्राचीनतम होने की चर्चा है ? पूर्णतः निश्चित है कि इस बात की रीसर्च करते ही संक्षेप और खुले रूप से देववाणी संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा की नित्य होने की प्रतिज्ञा और सब भाषाओं की माता होने की सिद्धि प्रमाणित न हो सकेगी। अतः जब संस्कृत ही भाषाओं की जननी है। और विचारणीय शब्द "आर्य" उसी भाषा का है तो साधारण रूपेण उसे संस्कृत ही में ढूढंना समुचित है। संस्कृत के कोष और धातु (प्रकृति) को छोड़ कर दूसरी विकृत भाषाओं में आर्य शब्द का धातु ढूँढना ठीक वैसे ही है जैसे "जमीका" की सुवर्ण से भरी कान पर बैठ कर मोर पंख से सोना निकालने की चिन्ता में सिर मारना। कुछ हो पादरी जी तो क्या समस्त भूमण्डल में कोई भी देश ऐसा नहीं जहां के विद्वान् संस्कृत की महत्ता और पुरातनता का समर्थन न करें । और बुद्धि संगत युक्तियों और प्रमाणों की ओर ध्यान दिलाने पर संस्कृत के सब भाषाओं की जननी होने के सिद्धान्त में कोई आक्षेप करें । अतः पादरी जी को यदि ज्ञात नहीं तो अब जान लें कि आर्य शब्द का धातु प्रत्यय और अर्थ निम्नलिखित है :—

आर्य-पुल्लिङ्ग ऋतु योगा आर्यन्ते वा ऋ गतो ऋ इतो रायेत इति स्वामिनि गुरौ सुहृदि श्रेष्ठ कुलोत्पन्ने पूज्ये ज्येष्ठे सङ्गते न्यायोक्ते मान्ये उदार चरिते शान्तचित्तेर्कर्तव्यमाचरणे कामध्य कर्तव्य मनाचरणेतिष्ठति परकृता चोर स तु आर्य इति स्मृतः ।

यदि पादरी जी संस्कृत जैसी देववाणी के समझने की योग्यता न होने के कारण अथवा क्या और क्योंकी पक्षपातपूर्ण ऐनक आँखों पर लगाने से केवल आफ़टर बार्न (पीछे से उत्पन्न हुई) भाषाओं का अच्छी प्रकार अभ्यास रखते हैं तो भी आर्य शब्द के अर्थ लगभग उन भाषाओं में (जब कि वह सब संस्कृत से निकली हैं) श्रेष्ठ और उत्तम के पाए जाते हैं जैसा कि :—

(१) आर—आराये (फ़ारसी) आरास्ता करने वाला (शोभायमान करने वाला)।
(२) आरिज—(फ़ारसी) क़दर, मरतबा (मान और उच्चपद)।
(३) अरबी—बुलंद, ऊँचा।
(४) आर्यन—नाम एक कवि का।

यद्यपि आर्य शब्द की खोज संस्कृत जैसी उच्च भाषा को छोड़ कर दूसरी भाषा में करना केवल मूर्खता है तो भी दो लाभ अवश्य हैं। एक यह कि प्रत्येक भाषा में आर्य शब्द लगभग समानार्थक होने से संस्कृत की सब भाषाओं की जननी के सिद्धान्त को पुष्ट करता है। दूसरे हमारे एक अमरीकन

भाई के मन में आर्य शब्द के अर्थ और महत्ता यदि दूसरी भाषाओं के द्वारा सम्भव हो तो कुछ बुरा नहीं इसी लिये मैं ने अपनी इस धारणा का (कि आर्य शब्द की खोज प्रत्येक प्रकार से संस्कृत भाषा में ही होनी ठीक है) समर्थन न करके जो कुछ शब्द पर्यायवाची और समानार्थक दूसरी भाषाओं के लिखे हैं, वह केवल पादरी जी की सान्त्वना और आर्य शब्द के अर्थ उन के मन में बैठाने के लिये वैसे ही लिखे हैं कि जैसे साहब लोग अपने बच्चों को अक्षर ज्ञान कराने के लिये चित्रों से अक्षर दिखाते हैं जिस से हमारी जाति वास्तविक यथार्थ नाम और धर्म पर ध्यान देकर अज्ञाननिद्रा से जागे। और सत्पथगामी हो कर दोषों से पृथक् हो। ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति !

आप का शुभचिन्तक
हनुमान प्रशाद मास्टर ऐंग्लो वैदिक स्कूल
छपरानौ जिला फ़रुख़ाबाद

१ सितम्बर १८८७ ईस्वी।

नमस्ते प्रकरण

जिस प्रकार हमारे हिन्दु भाई अपना वास्तविक नाम "आर्य" भूल गये हैं। उसी प्रकार उन में परस्पर मेल जोल के समय भी अति निरर्थक, ऋषि मुनि कृतग्रन्थ-विरुद्ध और असामयिक शब्द समझे बूझे बिना प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ जय राधे कृष्ण, जय सीता राम, राम राम, हरे राम, जय हरि, पैरी पौना, बन्दगी, पाँव लागे, मथा टेकना, नमोनारायण, असीस, जय शम्भू, जयदेवी, माता की जय, आशीर्वाद आदि।

जहां तक खोज की गई है। इन बातों का प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। जिस से स्पष्ट सिद्ध है कि प्राचीन आर्य महात्मा उस समय जब कि सत्य धर्म उन्नति पर था, उन का प्रयोग नहीं करते थे। जब से इन बातों का प्रचलन हुआ है, तब से घर २ फूट, द्वेष, ईर्ष्या और झगड़े के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगत नहीं होता। मतमतान्तरों के झगड़े, पृथक् २ इष्टदेव आदि भी इसी फूट की कृपा का परिणाम हैं। अन्यथा एक ईश्वर के भक्त होने से इन का चिह्न मिलना भी असम्भव होता। आर्यावर्त की पवित्र भूमि में दिन प्रतिदिन असत्यता और जड़पूजा का फैल जाना और दिन प्रतिदिन अवनति प्राप्त करना केवल इसी घटना चक्र का परिणाम है। जब तक बुद्धिवाद से इन व्यर्थ अपवादों का खण्डन न होगा, फूट का दूर होना असम्भव है! जहां तक सनातन ऋषि मुनि प्रणीत आर्य ग्रन्थों को देखा गया है। उन सब में "नमस्ते" का शब्द परस्पर व्यवहार और प्रणाम के लिये प्रयुक्त हुआ पाया जाता है, जो प्रेम, संगठन और सदाचार बढ़ाने के लिये समुचित है।

संभव है किसी भाई को सन्देह हो कि नमस्ते का शब्द सनातन ग्रन्थों में कहां आया है? इस के लिये आवश्यक है कि कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाएं।

(१) ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु।
अवतुमामवतु वक्तारम्॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्)

(२) नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूड्याशे अस्यसि ॥

(अथर्व १-१३-१)

(३) नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः ।
बाहूभ्यामुत ते नमः ॥ (यजु० १६-१)

(४) नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्ष मिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतिची र्दशोदीची र्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमस्तु तेनोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्चनो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ (यजु० १६-६४)

(५) नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वा पुनश्च भूयो पि नमो नमस्ते ॥ (गीता ११-३९)

(६) नमः कमल नाभाय नमस्ते जलशायिने नमस्ते केशवानंत वासुदेव नमो ऽस्तु ते।

(विष्णु सहस्रनाम)

(७) वासना वासुदेवस्य चासि ...नमो ऽस्तु........।

(विष्णु सहस्र नाम)

(८) नमो ब्रह्मणे

(विष्णु सहस्र नाम)

(९) चण्डी पाठ अध्याय ५ श्लो० ७—३४ तक

(१०) तवावबोधो भगवन् नमस्ते

(शिव पुराण)

(११) जगदीश...नमो ऽस्तु (शिव पुराण)

(१२) नमस्ते रुद्ररूपाय (शिव पुराण)

(१३) नमस्ते भगवन् भूयो देहि मे मोक्षमव्ययम्

(सारस्वत सूत्र २८५०)

(१४) गुरु गोविन्द सिंह जी द्वारा रचित जापजी—पौड़ी २—४८, २४—५७, ६५—७१, १४४—१८७, १९८ ॥

(१५) नमः सत्यनारायण.........नमस्ते...।

(सत्य नारायण कथा अध्याय १ श्लो० ५२)

(१६) नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च । (यजु० १६-३२)

(१७) भविष्य पुराण में भी बहुत से स्थानों पर नमस्ते शब्द मिलता है।
स्मृतियों में भी कई स्थानों पर इस नमस्ते शब्द का प्रयोग है।

(१८) बाल्मीकी रामायण में विश्वामित्र और वसिष्ठ की एक दूसरे से अलग होने की अवस्था में नमस्ते का वर्णन है :—

नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि ।

(१९) नमस्य नमस्कारणीय (त्वी) (स्त्री) पूजाता जीमकं नमस्ते...।

(शब्दार्थ भानु पृ० १८५)

(२०) सर्वानुक्रमणिका सूत्र नं० ८ वाक्य २४ में नमस्ते को याज्ञवल्क्य जी बोल चाल में प्रयुक्त करते

हैं। पक्षपात् और हठ का कोई इलाज, कोई नुसखा, और कोई मन्त्र धन्वन्तरि और लुक़मान के पास भी न था। जो पुरुष ध्यान पूर्वक विचार करेंगे उन पर स्पष्ट प्रमाणित हो जायगा कि नमस्ते शब्द उचित, सार्थक, श्रेष्ठ और गंभीर भाव पूर्ण है। जहां तक सोचा गया है। इससे बढ़िया और इससे अधिक कोई शब्द उपयुक्त नहीं हो सकता। अतः आवश्यक है कि हम इस प्रेम, गठन और आचार युत शब्द का प्रयोग करें। जिससे देश जाति और धर्म की अवनति का निरोध करके उसकी वृद्धि और उन्नति के लिए हम कटिबद्ध हों। और हिन्दुस्तान को परमेश्वर की कृपा से आर्यावर्त बनाएं।

पादरी जी ने टिप्पणि में लिखा है कि हिन्दु नाम फारसी में बुरा होने के कारण त्याज्य है तो राम फ़ारसी में गुलाम, सेवक और इसी प्रकार आर्य अरबी में बदले की भावना रखने वाले को कहते हैं तथा वैद्य संस्कृत में हकीम को और वेद फ़ारसी में फल रहित वृक्ष को कहते हैं। इसी प्रकार संस्कृत में अनादि के अर्थ आरम्भ रहित के है किन्तु अरबी में अनाद शत्रुता को कहते हैं। अतः ये शब्द भी छोड़ देने उचित होंगे।

इसका उत्तर हमारी ओर से यह है कि राम, आर्य, वेद और अनादि शब्द संस्कृत की पुस्तकों में सैंकड़ों स्थानों पर हैं। परन्तु हिन्दु शब्द का चिह्न तक भी नहीं मिलता। अतः पहिले नाम मानने योग्य और दूसरा त्याग देने योग्य है। यदि हिन्दु शब्द भी किसी आर्यग्रन्थ में होता तो हमें मान लेने में कोई इन्कार नहीं था। परन्तु कोई प्रमाण न होने के कारण (जैसा कि अभी तक हो चुका है।) हमें किसी प्रकार भी मानना उचित नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि स्वाध्याय के पश्चात् सत्य को स्वीकार करके आर्य कहलाने और नमस्ते कहने कहलाने से किसी प्रकार का भी कभी इन्कार न करें।

(पादरी) जब दयानन्द ने सुना कि फ़ारसी भाषा में आशीर्वाद के अर्थ क़ैद (बन्दी) होने के हैं। तो इस कारण से उन्होंने संस्कृत शब्द आशीर्वाद को त्याग दिया और उसके स्थान पर नमस्ते का शब्द रखा। जब कि आशीर्वाद शब्द संस्कृत में अच्छे अर्थ रखता और बहुत पुराना शब्द है। क्योंकि मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में बहुत स्थानों पर पाया जाता है। जिसका प्रयोग करना अत्यावश्यक बताया गया है। (देखो मनुस्मृति २-१२६)

(उत्तर) पादरी जी ! आपने भूल की जो गुणों के भण्डार महाराज दयानंद पर अकारण दोष लगाया। स्वामी जी ने कहीं भी आशीर्वाद त्यागने की आज्ञा नहीं दी। और न कभी इस का प्रचलन किया। जो शब्द सनातन ऋषियों के ग्रन्थों में उन्होंने प्रचलित देखा और जो अत्युत्तम भी था। उसी का प्रचलन किया। और फूट का बीज बोने, सत्य और प्रेम के दूर करने वाले अनार्ष अभिवादनों को दूर किया। आप ने जो मनुधर्म शास्त्र का प्रमाण दिया है उस में आशीर्वाद शब्द नहीं है। वहां अभिवादन और प्रतिवादन है। अभिवाद सत्कार का नाम है और प्रतिवादन उस का उत्तर है। जिसे स्वामी जी ने उचित कहा है। अनुचित नहीं। (देखो वेदांग प्रकाश भाग ४ सं० २४, २५, २६,) आप का यह प्रश्न केवल छल कपट पूर्ण है। और किसी प्रकार समुचित नहीं।

पादरी—हिन्दु राजाओं और विद्वानों में से स्वामी दयानंद और उनके पंथियों के अतिरिक्त और किसी ने हिन्दु शब्द पर आपत्ति नहीं उठाई। हिन्दुओं की पुस्तकों में हिन्दु नाम का

प्रचलन बहुत है। उदाहरणार्थ गुरु नानक जी के आदि ग्रन्थ में बार २ इस जाति का नाम हिन्दु लिखा है। गुरु गोविन्द सिंह जी, जो फ़ारसी भाषा में अच्छी महारत रखते थे, उनको कभी यह ज्ञात न हुआ कि जिस जाति में से हम लोग हैं, उस का नाम मुहम्मदियों की ओर से बहुत ही बुरा रखा गया है। अतः वह नाम परिवर्तित किया जाए।

(उत्तर) हिन्दु राजाओं के राज कार्य में साधारण रूप से वर्ण गोत्र के अनुसार कार्यवाही होती है। और हिन्दु नाम मुसलमानों के आगमन से पूर्व सर्वथा न था। और अब भी लगभग मिट सा गया है। यदि कुछ है तो उर्दु फ़ारसी की कृपा से है। परन्तु राजाओं के संबोधन में अब भी आर्य-कुल-दिवाकर, इन्द्र, महेन्द्र आदि संस्कृत के यथार्थ पद शोभायमान होते हैं। हिन्दु सर्वथा नहीं। शेष रहा सदुपदेशक बाबा नानक देव जी महाराज के आदि ग्रन्थ साहिब में हिन्दु शब्द का होना। वह हमें स्वीकार है। परन्तु यह फ़ारसी शिक्षा का परिणाम है। और मुसलमानी राज्य का प्राबल्य भी इस का कारण है। अन्यथा ऐसा कभी न होता। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग गर्व पूर्वक नहीं किया। प्रत्युत साधारण रूप से सद्धर्म का उपदेश पंजाबी बोली में दिया जिस से लाखों हिन्दुओं को उन्होंने मुसलमान होने से बचाया और सद्धर्म पर स्थिर रखा। (विस्तार सुरमा चश्मे आर्य के उत्तर में देखो)

शेष रहा यह कि वीरता के धनी, सत्य पूजक, युद्ध विद्या विशारद, सिंह समान, जाति के नेता श्री मान् गुरु गोविन्द सिंह जी को यह नाम बुरा क्यों न प्रतीत हुआ? यह आप की बहुत बड़ी भूल और अज्ञानता है। यदि आप को कुछ भी उनके इतिहास और उपदेशों से परिचिति होती तो ऐसा कभी न कहते। उन्होंने फ़ारसी के बहुत बड़े विद्वान् होने के कारण इसके बुरे अर्थ अच्छी प्रकार से समझ कर ही हिन्दु शब्द सर्वथा छोड़ दिया और सिख अथवा सिंह नाम व्यक्तिगत रूपेण नियत करके अपने समस्त अनुयाइयों का सामूहिक नाम "खालसा-खालिस-श्रेष्ठ" (जो आर्य का फ़ारसी में पर्यायवाची शब्द अथवा शाब्दिक अर्थ है) रखकर उसी के प्रयोग की आज्ञा दी।

देखो ग़यासुल्लुग़ात, मुन्तख़िब, कशफ़ आदि फ़ारसी कोष ग्रन्थों में लिखा है कि:—

ख़ालिस और ख़ालिसा=पाक व बे आमेज़िश (पवित्र और मिलावट रहित) गुरु जी के समस्त अनुगामी और समस्त पठित सिंह भाई हिन्दु नाम को बुरा समझते हैं। सिख और सिंह आर्यों के समझाने और खालसा मुहम्मदी भाइयों को समझाने के लिये हैं। अतः आप का कथन सर्वथा प्रमाण शून्य है।

पादरी—क्या यह बात विचारणीय नहीं कि सम्राट् अकबर, जो पक्षपात शून्य थे। उन के काल में बहुत से बुद्धिमान् हिन्दु अमीर और वज़ीर (मन्त्री) फ़ारसी भाषा के ज्ञाता स्वतन्त्रता से कार्य कर चुके हैं। उस समय उन्हों ने भी इस नाम पर कुछ आपत्ति नहीं उठाई। अतः जब हिन्दुओं के महापुरुष उसी नाम का प्रचलन करते रहे हैं और अपने लिये उसे स्वीकार करते रहे हैं। और इस शब्द पर कुछ भी आक्षेप नहीं करते रहे तो क्या इस से यह प्रतीत नहीं होता कि वे इस नाम को अच्छा समझते थे न कि बुरा।

(उत्तर) यह नियम है कि जब तक दो भाषाओं का मुक़ाबला नहीं होता और जब तक इस विश्लेषण

के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती, तब तक मनुष्य दोनों भाषाओं से परिचित नहीं हो पाता और न विश्लेषण कर सकता है।

समस्त संसार जानता है कि अमीर और वजीर आराम चाहने वाले होते हैं अथवा राज कार्य में संलग्न रहते हैं। जिस से धार्मिक पड़ताल अथवा कुप्रथाओं को दूर करने का उन्हें अवसर न्यून मिलता है।

यह भी कोई प्रमाण नहीं कि उन्हों ने आपत्ति नहीं उठाई। हम भी आप की भाँति कहते हैं कि आपत्ति उठाई हो तो क्या सन्देह है? केवल लेख के न होने का बहाना है। इस का प्रभाव दोनों पक्षों पर समान है। वह हिन्दुओं के महापुरुष भी न थे, केवल धनी मनुष्य थे। सांसारिक प्रतिष्ठा के अतिरिक्त हिन्दु उन को और किसी मान, अथवा गर्व की दृष्टि से नहीं देखते।

पादरी—हिन्दु और आर्यों को अपने नामों के अर्थ संस्कृत भाषा में देखने चाहियें न कि फ़ारसी आदि भाषा में।

(उत्तर) प्रत्येक व्यक्ति जिस को कुछ ज्ञान हो और जिस की बुद्धि को किसी स्वार्थ ने अन्धा न कर रखा हो, वह अवश्य न्यायपूर्वक कहेगा कि हम ने जितना आर्य और आर्यावर्त के शब्दों को स्वीकार और हिन्दु हिन्दुस्तान के शब्दों को अस्वीकार किया है, वह उसी गवेषणा का परिणाम है, जो हम ने संस्कृत के अनुसार (पादरी जी के कथनानुसार) की है। क्योंकि संस्कृत में इन दो शब्दों (हिन्दु, हिन्दुस्तान) के कुछ अर्थ नहीं हैं और न किसी कोष, इतिहास, पुराण और धर्म पुस्तक में यह शब्द हैं। अतः आप के कथनानुसार भी हमें और सब देशवासियों को इन बुरे नामों का त्याग करना आवश्यक है।

हम ऐसा कभी नहीं करते कि संस्कृत शब्दों को फ़ारसी से विजित समझ कर छोड़ दें। प्रत्युत हम तो जो सच्ची बात धर्मानुसार प्रतीत होती है, उस को स्वीकार करके असत्य और बुराई का, जो विदेशियों ने हम पर थोंपी है, परित्याग करते हैं और यही आर्य समाज का चौथा पवित्र नियम है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। अतः हम ने इस नियम को दृष्टिगत रखते हुए आप के समस्त प्रश्नों के उत्तर निवेदन कर दिये हैं। प्रत्येक सत्य के जिज्ञासु को आवश्यक है कि बुरी बातों, बुरे नामों और बुराई से बचने के लिये पूर्ण उत्साह के साथ शीघ्र समुद्यत हो। परमात्मा सब की धार्मिक भावनाओं को सफलता दे। सब को नमस्ते।

मुर्दा अवश्य जलाना चाहिये

मृतशव के साथ भिन्न २ देशों और जातियों में भिन्न २ व्यवहार होता है। जलाना, दफ़नाना, पशुओं के आगे डाल देना, वायु में अथवा मसाला (औषध) डाल कर शुष्क कर देना, पानी में डाल देना आदि अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। आर्य लोग प्राचीन काल से मृत शरीर को जलाते हैं। यहूदी, ईसाई, मुहम्मदी भूमि में गाड़ते हैं। पारसी पशुओं के आगे डाल देते हैं। पूर्व के मिश्रवासी वायु में अथवा मसाला डाल कर शुष्क कर देते थे। कुछ जातियां पानी में बहा देती हैं।

हमारा प्रयोजन इस कथन में यह है कि जो सत्य हो और ज्ञान विज्ञान के अनुकूल हो जिस से हानि सर्वथा न हो अथवा बहुत ही न्यून हो। उस प्रथा का प्रचलन करना चाहिये। जो पद्धति ज्ञान विज्ञान के विरुद्ध हो। रोगवर्द्धक, जड़पूजा प्रसारक, पाप युक्त, और हानिकारक हो उससे घृणा करके उस का परित्याग करना चाहिये। क्योंकि धर्म और प्रथा वही सत्य है जो सत्य ज्ञानानुसार हो। शेष मिथ्या है।

मुर्दा गाढ़ने के सम्बन्ध में अनुसन्धान

तौरेत उत्पत्ति अध्याय ४ आयत १—१६ तक क़ायन और हाबील की कथा है कि एक की बलि ईश्वर ने स्वीकृत की और दूसरे की अस्वीकृत कर दी। जिस पर क़ायन (जिसे मुसलमान क़ाबील कहते हैं) ने हाबील को मार डाला। इस का पता न लगे इस कारण से उसे दफ़न कर दिया (भूमि में दबा दिया)। खुदा ने पूछा कि हे कायन! तेरा भाई हाबील कहां है? उस ने कहा कि मैं नहीं जानता। क्या मैं उस की देख रेख रखता हूं? खुदा ने कहा कि तेरे भाई का रक्त पृथिवी से पुकार कर कह रहा है कि तू ने उस का वध किया है। अन्त में क़ायल ने स्वीकार किया जिस पर खुदा ने उस को वहां से नूद की भूमि में चले जाने की आज्ञा प्रदान की।

इस के सम्बन्ध में क़ुरआन में लिखा है। कि—

फ़बअ़सल्लाहो ग़ुराबन्यबहसो फ़िल् अर्ज़े लि युरय्यहू केफ़ा पुवारी सौअता अख़ीहि। क़ाला यावैल अअ़जज़ो अन् अकूना मिस्ल हाज़ल्ग़ुराब फ़अवारी सौअता अख़ी फ़अस्बह मिनन्नादिमीना॥

इस पर फ़ारसी तफ़सीरे हुसैनी में स्पष्ट रूप से क़ाबील और हाबील की सारी कथा लिखी है कि जब क़ाबील हाबील को मारने की चिन्ता में था तो उस समय शैतान मनुष्य का रूप धारण करके उसे दिखाई दिया। एक मुर्ग़ा उस ने हाथ में पकड़ा हुआ था। तब शैतान ने उस मुर्ग़े के सिर को पत्थर पर रखा और दूसरा पत्थर उस पर मारा जिस से वह पिस गया और मर गया। क़ाबील ने शैतान से यह पद्धति सीख कर जब हाबील को पत्थर पर सिर रखे हुए सोया पाया। उसी प्रकार उसने भी पत्थर उठा

कर उस के सिर पर मारा और वह मर गया। क़यामत के दिन दोज़ख़ (नर्क) का आधा दुःख उस को होगा। अब क़ाबील नहीं जानता था कि उसे क्या करे। उसे वस्त्र में लपेट कर चालीस दिन प्रत्येक दिशा में घूमता रहा। इब्ने अब्बास कहते हैं कि एक वर्ष तक फिरता रहा, जिस से वह गन्दा दुर्गन्ध युक्त हो गया। पशुपक्षी उस पर गिरते थे कि यह फैंक दे और वे खायें। जिस से वह बहुत बाधित हुआ। इतने में एक कव्वे को क़ाबील ने देखा कि उस ने अपने दोनों पाँवों से एक गढ़ा खोदा और दूसरे मृत कव्वे को लाया। उस में दफ़न किया। और ऊपर मिट्टी डाल दी। क़ाबील ने कहा कि मैं इस कव्वे से भी मूर्ख हूं। इस के पश्चात् क़ाबील ने हाबील को कव्वे की भाँति दफ़न किया।

(तफ़सीरे हुसैनी पृष्ट १४३, १४४ जिल्द प्रथम नवलकिशोर)

इस पर आनरेबल सरसय्यद अहमद ख़ान लिखते है कि "हज़रत आदम की सन्तान क़ाबील और हाबील की कथा कि जिस का वर्णन क़ुरआने मजीद में है, के अनुसार जब एक ने दूसरे का वध किया तो उस की लाश छिपाने के लिये वह चिन्तित था। उसने एक कव्वे को देखा कि वह हड्डी मिट्टी में छिपाता है। मनुष्य ने मृतक को क़बर में दफ़न करना वास्तव में उसी समय से सीखा है"।

(तहज़ीबे इख़लाक़ जिल्द १ नं० ४ पृ. ३५)

अतः स्पष्ट है कि मुर्दा का दफ़न करना मनुष्य ने ग़ुराब अर्थात् कव्वे से सीखा अथवा उस का अनुकरण किया। अतः यह कोई धार्मिक बात नहीं है और न दीन का इस से कोई सम्बन्ध है।

इन क़बरों के कारण क़ब्रिस्तान के साथ लगे खेतों का अन्न स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक है। क़बरों के समीप के कूप का जल स्वास्थ्य का बिगाड़ने वाला है।

इस के अतिरिक्त लाखों बीघा और सैंकड़ों मील भूमि क़ब्रिस्तान के कारण खेती करने के बिना वीरान पड़ी है। क़ब्रिस्तान प्रायः मैदानों में होते हैं। और मैदान की भूमि ही उत्तम उपजाऊ होती है। जब सैंकड़ों मील उत्तम भूमि क़ब्रिस्तानों में बदल गई तो बताइये कि खेती की कितनी हानि हुई और हो रही है तथा भविष्य में होगी ?

आबादी बढ़ रही है और क़ब्रिस्तान भूमि घटा रहे हैं। इसके अतिरिक्त रोग भी उत्पन्न कर रहे हैं। अतः मुर्दों का दफ़न करना वास्तव में जीवितों का गला काटना है। करोड़ों मनुष्य ईश्वर विश्वास को छोड़, औषध से मुख मोड़, वैद्यक और डाक्टरी के विरुद्ध क़ब्रिस्तान पर जाकर समय व्यर्थ गंवाते और शिर्क (एक ईश्वर की पूजा छोड़ कर जड़ पूजा, मृतक पूजा और मनुष्य पूजा आदि करना) के पाप में लिप्त हो रहे हैं और उसका दुःख रूप फल भी दिन प्रतिदिन प्राप्त कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त हाबील शैतान की प्रेरणा से वध हुआ और कव्वे की प्रेरणा से दफ़न किया गया। हमारा इससे क्या सम्बन्ध है ? हम वह पद्धति अपनाएं जिससे मनुष्यमात्र का लाभ, रोगनिवृत्ति, अन्न वृद्धि, स्वास्थ्य प्राप्ति और शान्ति स्थापना से दुनियां आबाद हो।

मुर्दे का पशुपक्षी के आगे डाल देना

यह प्रथा पारसी लोगों में ज़रदुश्त पैग़म्बर के पश्चात् चली है। अन्यथा ज़न्दावस्ता में इसका कुछ भी वर्णन नहीं। वहां केवल दो विधियां लिखी हैं कि "मुर्दा रा दर ख़ुमेतुन्द आब या दर आतिश या ख़ाक सुपरेद। ईं तरीक़ दफ़ने मुर्दाअस्त।"

इस पर जो भाष्य फ़ारसी में लिखा है उस का अर्थ यह है कि :—

"जो कुछ कैश और आबाद के अनुयाई मृतक के संबन्ध में करते हैं वह यह है कि शरीर से जीवात्मा के पृथक् हो जाने पर शरीर को पानी से धोते हैं और पवित्र वस्त्र (कफ़न) पहनाते हैं। इसके पश्चात् उस शरीर को तेज़ाब में डालते हैं। जब पिघल जाता है तब उस तेजाब को नगर से दूर लेजाकर गिरा देते हैं। जिससे मृतक शरीर की दुर्गन्ध मनुष्य के लिए हानि कारक न हो। यदि तेज़ाब न डालें तब पवित्र वस्त्रों से मृतक शरीर को ढांप कर (कफ़न ओढ़ कर) आग में जला देते हैं।"

(फ़िराज़ाबाद व ख़शूरान व ख़शूर आयत १५४ पृ० ३७)

इससे आगे इसी आयत के भाष्यकार ने वर्तमान पद्धति से कूप खोद कर उसमें डाल देने का वर्णन भी किया है परन्तु यह पद्धति रोग प्रसारक और सभ्यता के अनुकूल नहीं है। और अब सभ्य पारसियों ने मृतक शरीर का जलाना स्वीकार कर लिया है। अतः सर्वोत्तम विधि दाहकर्म की ही है।

वायु में अथवा औषध लेप से मुर्दे को शुष्क करना

यह पद्धति मिश्र देश के राजाओं की थी क्योंकि वह ईश्वरीय सत्ता से इनकारी फ़िरऔन के विचार के थे। अतः अपनी पूजा कराने के विचार से उन्होंने स्वयं अथवा उनके शिष्यों ने इस प्रथा का प्रचलन किया। सत्य तो यह है कि अब यह प्रथा नहीं रही। और यह प्रथा अच्छी भी नहीं थी क्योंकि इससे भी रोग फैलने की सम्भावना रहती है तथा जो उद्देश्य है वह भी स्थिर नहीं रह सकता क्यों कि मनुष्यों के लिये यह नियम नहीं चल सकता और इतनी भूमि भी नहीं कि उस पर आरम्भ सृष्टि से आज तक ज़ितने मनुष्य उत्पन्न हुए, उन्हें औषध लगाकर रखा जाए। इतनी गुंजायश कहां हो सकती है? पुनः जीवितों को भूमि छोड़कर समुद्र में मकान बनाने होंगे। तो अतः यह पद्धति केवल कपोल कल्पित और आचरण के अयोग्य है।

मुर्दे को जल में बहा देना

यह प्रथा गंगा के तटस्थ प्रदेशों में प्रचलित है। और वह केवल मुक्ति प्राप्ति के लिए है। ताकि गंगा में पड़ जाने से मुक्ति हो जाए। अन्यथा यह धार्मिक और वैज्ञानिक मन्तव्य नहीं है।

डाक्टरों और वैद्यों ने सिद्ध कर दिया है कि जल में गन्दगी डालना उसे पीने वालों के लिये बहुत हानि कारक बना देता है। आप लोग देखते होंगे कि यदि किसी कूप अथवा तालाब में कोई मृत पशु पड़ जाए अथवा मर जाए तो पानी कैसा दुर्गन्ध युक्त हो जाता है? और कितना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो जाता है? वास्तव में लोग गंगा का अमृत रूपी जल इसी प्रकार की दुर्गन्ध से दूषित कर देते हैं। यह पद्धति चोर चकोरों। ठगों, रहज़नों के लिये है। वह लोग घटना को छिपाने के लिये ऐसा करते हैं। सभ्य संसार के लिये तो यह विधि अत्यन्त बुद्धि-विरुद्ध है।

मुर्दों का जलाना

मुर्दों का जलाना एक समय (जब कि समस्त संसार में वैदिक धर्म का प्रचार था) समस्त संसार में प्रचलित था। आर्य जाति जिसमें यूनानी, रूमी, पारसी, अंग्रेज, जर्मन, फ्रैंच और सारा योरुप तथा एशिया की समस्त ज़ातियां सम्मिलित हैं, सदैव से सब स्थानों पर मुर्दा जलाती थी। जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार आनरेबल डाक्टर डब्ल्यू हन्टर साहिब लिखते हैं कि :—

"आर्य क्या हिन्दु क्या यूनान और इटली में भी लोग अपने मुर्दों को चिता पर जलाते थे।" (तारीख़े हिन्द १८८४ ईस्वी, पृ० ७०)

अब हम आर्यावर्त की पवित्र पुस्तकों से खोज करते हैं तो यजुर्वेद में लिखा है कि

भस्मान्त ँ शरीरम् ॥ य० ४०-१५

अर्थ—इस मनुष्य शरीर का मनुष्य से अन्तिम सम्बन्ध जलाने और भस्म कर देने तक है। इस पर महर्षि मनु जी की आज्ञा है कि "निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः" ॥ मनु २-१६

अर्थ—गर्भस्थापना से लेकर श्मशान में जलाने तक मनुष्य शरीर के लिये मन्त्रों से वैदिक-विधि कही गई है। अर्थात् गर्भ से लेकर जलाने तक जो २ कार्य मनुष्यों के लाभार्थ स्वयं अथवा लोगों को करने योग्य हैं उनकी आज्ञा वेदों में है। शरीर के जल जाने के पश्चात् मन्त्रों में उसके लिये पीछे करने की आज्ञा नहीं है। ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १६ मन्त्र ३—७, १३ ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १४ मन्त्र ६ से १६ ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त २० मन्त्र १६ यजुर्वेद ३६-१—६३ अथर्ववेद कांड १८ सूक्त २ मन्त्र १—१० तक और तैतरीय ऋषि की व्याख्या में भी इन मन्त्रों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन है। प्रपाठक ६ अनुवाक १—१० तक स्पष्ट रूप से मृतक के जलाने के लाभ और उसकी हड्डियों को जलाने के पश्चात् पानी अथवा खेत में डालने का वर्णन है। जिनका लाभ सूर्य प्रकाशवत् प्रकट है। चूना, हड्डी, कोयला, रेत इत्यादि से पानी निर्मल होता है।

मुर्दा जलाने के लाभ

(१) मृतक को जलाने में भूमि न्यून व्यय होती है। एक बीघा अथवा कनाल वा मरला भूमि में चाहे संसार भर के मृतकों को जलावें तो भी वह भूमि वैसी की वैसी पाई जाती है। इससे न्यून भूमि हो तो भी काम चल जाता है।

(२) जड़पूजा अथवा ईश्वर के स्थान पर अन्य की पूजा का आधार उखड़ जाता है। क्योंकि न क़बरें होंगी और न कोई उन से मुराद मांगेगा तथा न पापों का प्रारम्भ होगा। वास्तव में इसी पीर परस्ती अथवा क़बर पूजा से मृतक पूजा की प्रथा प्रचलित हुई है।

(३) रोग जो क़ब्रिस्तान के कारण फैलते हैं, सर्वथा बन्द हो जाएंगे। जल वायु तथा अन्न दूषित न होगा। ईश्वरीय प्रजा का नाश न होगा और उत्तम अन्न, निर्मल जल, शुद्ध वायु आदि प्रयोगार्थ मिलेंगे।

अर्वाचीन और प्राचीन वैद्यों ने स्पष्ट, खुले, सुदृढ़ हेतुओं से सिद्ध किया है और समस्त उदार हृदय वाले लोगों का अनुभव है कि श्रेष्ठ, पवित्र और खुलीवायु, निर्मल जल मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक हैं। वायु के न मिलने से मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। इसी प्रकार जल के बिना भी जीवन नहीं रहता। क्योंकि सब से अच्छी श्रेष्ठ वस्तु जिस पर मनुष्य जीवन का आधार है, वह यही है। वास्तव में स्वभाव और आचरण का आयु के साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है जिस का श्रेष्ठ और उच्च आधार जलवायु है। जिस समय मुर्दों के जलाने का सर्व संसार में प्रचलन था अर्थात् तीन सहस्र वर्ष से पूर्व उस समय मनुष्य के जीवन सुदृढ़, पूर्ण और ठीक थे। वह पूर्ण युवा, दृढ़शरीर और बलवान् होते थे। यदि मुर्दा जलाने की प्रथा पूर्ववत् पुनः प्रचलित हो जाए तो स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो जाएगा।

(४) बिज्जू नाम का एक प्रकार का पशु, क़ब्रों को उखाड़ कर मुर्दों को ले जाता है और कुछ कफ़न चोर लोग क़ब्रें उखाड़ कर कफ़न का वस्त्र उतार लेते हैं। इन कुकर्मों से मुर्दों का अपमान होता है तथा चोरी आदि दुष्कर्म बढ़ते हैं इन की रोक थाम हो जाएगी।

(५) क़ब्रें खोदने वाले लोग और क़ब्रिस्तान के मुजाविर (ख़ानक़ाहों में रहने वाले) लोग जो लोगों की मृत्यु की इच्छा रखते हैं तथा इसी व्यवसाय के द्वारा रोटी कमाते हैं, ऐसे लोग किसी अच्छे काम धन्धे में लग जाएंगे।

(६) सैंकड़ों लोगों की ख़ानक़ाहों पर जो हज़ारों और लाखों करोड़ों रुपये खर्च करके बड़े २ मक़बरे (समाधियां) और भवन बनाए गये हैं अथवा बनाए जाते हैं। वह धन आगे को व्यर्थ न होने पाएगा। प्रत्युत वह धन किसी अच्छे, प्राणीमात्र के लाभ-प्रद कार्य, अर्थात् शिक्षा, अनाथालय, औषधालयादि में व्यय होगा।

(७) कब्रे अथवा शैतान का अनुसरण छोड़ कर हम बुद्धिवादी, ज्ञान विज्ञान और सत्य के प्रसारक कहलाएंगे।

(८) तेल अथवा उर्स (मुर्दों की स्मृति के मेले) आदि का व्यय जो लाखों रुपये वार्षिक के लगभग है वह भी सर्वथा न होगा। यह धन भी शुभ कार्यों में लगेगा। अब तो केवल मुर्दा के सिरहाने तेल जलता है जिस का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं। यह मसजिदों, धर्मशालाओं, मन्दिरों में जलेगा अथवा चौराहों पर, जहां मनुष्यों का बहुत लाभ होगा और पुण्य प्राप्त होगा।

(९) चर्स, गांजा, अफ़ीम, तम्बाकू पीना, दुराचार द्यूतकर्म (जो प्रायः ऐसे स्थानों (तकिया आदि) पर अधिक होते हैं) उस का भी निवारण हो जाएगा।

अब कुछ वर्षों से मुर्दा जलाने की ओर डाक्टरों और वैज्ञानिकों का ध्यान खिंचा है। उन्हों ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया है कि वास्तव में दफ़नाने से जलाना अति लाभप्रद है तथा प्रत्येक प्रकार के रोग (जो दफ़नाने से उत्पन्न होते हैं) उन का निवारक है।

जापान, अमेरिका और योरुप के सभी देशों में इस की अधिक प्रथा प्रचलित होती जा रही है। क्योंकि ज्ञान इस का साथी है। अतः आशा है कि एक समय समस्त सभ्य सजग संसार में यह प्रथा प्रचलित हो जाएगी।

सम्प्रदाय वादियों में ईसाई अधिक ज्ञान-प्रिय हैं। एक विद्वान् अन्वेषण कर्ता के वचनानुसार "योरुप में आजकल ज्ञान की समस्त शक्ति है और ज्ञान का ही वहां राज्य है।" अतः योरुप और अमेरिका के ईसाईयों ने भी न्याय और विद्या की दृष्टि से गुणदोषों का विश्लेषण करके यही बुद्धि संगत प्रथा स्वीकार की है। जिस का समर्थन समस्त सर्व प्रिय समाचार पत्रों में मिलता है।

समस्त धार्मिक समाचारपत्रों की सम्मतियां

लुधियाना का ईसाई पत्र "नूर अफ़शां" लिखता है कि :—

"भारत का इंगलिश पत्र "प्वायेनीयर" लण्डन की स्वास्थ्य कांग्रेस की इस प्रस्तावना को अच्छा समझता है कि मुर्दों का जलाना दफ़नाने की अपेक्षा लाभ दायक है।"

(१७ सितम्बर १८९१ ईस्वी, पृ० १०)

पत्र "अख़तर रोम", जो टर्की की राजधानी क़ुस्तुन्तुनिया से निकलता है "इंग्लैण्ड में मृतकों का जला देना" इस शीर्षक से अपने लेख में लिखता है कि :—

"कुछ वर्षों से योरुप और इंग्लैण्ड में अग्नि पूजकों की एक प्रथा प्रचलित हुई है। वह यह है कि जो लोग मर जाते हैं उन के शरीरों को अग्नि में जला देते हैं। जैसा कि १८८५ ईस्वी में लाशों को जलाने के लिये एक भट्टी बनाई गई। उक्त वर्ष से १८६० ईस्वी तक तीन अंग्रेजों को उन की वसीयत (अन्तिम सन्देश) के अनुसार और ५४ मनुष्यों को वसीयत के बिना जला दिया गया। इसी प्रकार इसी वर्ष भी ६६ मनुष्यों की लाशों को उन की वसीयत के अनुसार जला कर उन की राख़ को वायु में उड़ा दिया गया। निकट भविष्य में मानचैस्टर और अन्य नगरों में भी ऐसी भट्टियां बनने वाली हैं।"

(अख़तर रोम फ़ारसी क़ुस्तुन्तुनिया १८६२ ईस्वी)

"शम्सुल् अख़बार" मद्रास ने भी (जिस के प्रबन्धक मुहम्मद सैफ़ुद्दीन आफ़ंदी हैं) अपने अङ्क २८ मार्च १८६२ ईस्वी जिल्द १३४ में इस की नक़ल की है।

"रफ़ीक़े हिन्द" लाहौर (जिस के सम्पादक एक मुसलमान महरम अली थे) उस में लिखा है कि "योरुप के विद्वानों ने इस का स्वीकरण किया है कि योरुप में मुर्दा जलाने की प्रथा फैलती जाती है। इटली के रोम नगर में १८८५ में ११६ मुर्दे जलाए गए। १८८७ ईस्वी में १५५ परन्तु इस वर्ष २०० से अधिक मुर्दे जलाए गए।

इंगलैंड में वोकिंग नामी स्थान पर मुर्दा जलाने की आज्ञा दी गई है। तब से ६६ मुर्दे जले हैं। अंग्रेज विद्वानों की यही सम्मति है। जब तक ऐसे लोग जो हैज़ा (विपूचिका) चेचक आदि संक्रामक रोगों से मरते हैं दफ़न किये (दबाए) जाएंगे तब तक इन रोगों की जड़ कट जाना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि क़ब्रों में उन की उत्पत्ति के एकत्र हुए बीज विद्यमान रहते हैं।"

(रफ़ीक़े हिन्द १६ अक्तूबर १८६० ईस्वी पृ० ६.)

"कायस्थ सम्मेलन गजट" लिखता है कि "जापान और योरुप में मुर्दा जलाने की प्रथा बढ़ती जाती है। गत चार मास में इंगलैंड के मान्चिस्टर लिस्टर और अन्य कसबों (परगनों) में मुर्दा जलाने के समर्थन में सोसाइटियां बन गई हैं।"

(१८ सितम्बर १८६१ ईस्वी जिल्द १नं० ४६)

"दबदबाए क़ैसरी" बरेली के प्रमाण से **आर्यसमाचार** मेरठ अङ्क ४ संवत् १६६६ नंबर १० पृष्ठ २६८ मासिक पत्र में लिखा है कि :—

"योरुप के देश इटली, जर्मनी, स्विटज़रलैंड, अमरीका के यूनाइटिड स्टेट्स में मुर्दों को दफ़नाने के स्थान पर जलाने की आज्ञा मिली है। उक्त देशों में स्थान २ पर मरघट (भट्टियां) बनाए जा रहे हैं और बन गए हैं।"

इस पर समाचार के सम्पादक ने सम्मति दी है कि "ऐसे कार्यों से सर्वथा सिद्ध हो रहा है कि ईसाई धर्म पर विश्वास शिक्षित संसार के हृदय से दिन प्रतिदिन समाप्त होता जा रहा है।"

"खत्री (क्षत्रिय) हितोपदेश" लिखता है कि गतवर्ष इंगलैंड में ५४ मुर्दे जलाए गए। अब मुर्दा जलाने के लिये एक भट्टी लंडन में बनाई जाएगी। धन एकत्र हो रहा है। ड्यूक

आफ़बैडफ़ोर्ड ने इसके लिये पच्चास सहस्र रुपया दान दिया।"

(संस्करण १ नम्बर २ पृष्ठ २२ सन् १८२१ ईस्वी)

"अखबार आम" लाहौर लिखता है कि:—"१८६० ईस्वी में फ़्रांस की राजधानी पैरस में ३३८८ मुर्दे जलाए गए और टोकियो में २६०१३" (अखबार आम ७ जौलाई १८६१)।

"आर्यावर्त कलकत्ता" में लिखा है कि अमरीका में २२ श्मशान मुर्दा जलाने के लिये तय्यार किये गए हैं। बहुत ही मुर्दे जलाये जा चुके हैं। लंडन में इस के लिये एक बहुत बड़े मकान का प्रबन्ध हो रहा है।

(आर्यावर्त १५ अगस्त १८६१ ईस्वी)

"धर्म जीवन" के परिशिष्ट में लिखा है जिस का शीर्षक मुर्दा जलाना है।

स्वास्थ्य कांग्रेस लंडन ने इस प्रयोजन के लिये एक प्रस्ताव स्वीकार किया है कि जब कोई संक्रामक रोग से मर जाए तो मुर्दा को जलाना अत्यावश्यक है।"

(३० अगस्त १८६१ ईस्वी पृ. ४)

"आर्य पत्रिका लाहौर" में लिखा है कि "प्वायेनियर" नामी पत्र में यह लिखा हुआ ईसाइयों को आश्चर्य के साथ पसंद होगा कि स्वास्थ्य रक्षक कांग्रेस ने जो प्रस्ताव जलाने के लिये स्वीकार किया है वह सिद्ध करता है कि सर हुनरी टामसन और स्वास्थ्य रक्षक समिति के यत्न अन्ततो गत्वा अपना प्रभाव दिखाने लगे हैं और वहां साधारण जनता में यह विचार फैलता जाता है। जहां बहुत देर से पक्षपात ने राज्य स्थापित किया हुआ था।

यह बात सत्य है कि इस कांग्रेस ने केवल ऐसे व्यक्तियों को जलाना उचित समझा जो संक्रामक रोगों से मरे। परन्तु यह युक्ति उन के साम्प्रदायिक विचारों को धक्का पहुँचाती है। क्योंकि वह मनुष्य जो संक्रामक रोग से मरा है, उस की आगामी अवस्था ऐसी है जैसे कि उस की जो संक्रामक रोग से न मरा हो। यह बात सत्य है कि यह विचार कि समस्त ईसाई दफ़नाए (दबाए) जाएं बहुत ही (भद्दा) है। ज्ञान विज्ञान और बुद्धि, जिस का युग प्रशंसक है, ऐसी पक्षपात पूर्ण निष्प्रयोजन प्रथा पर अन्ततो गत्वा विजय प्राप्त करेगी। चाहे यह एक ऐसी पवित्र पुस्तक (बाईबल) की सहायता अपने साथ रखती हो। यह बात अर्थात् असत्य से सत्य की ओर आकर्षित होना एक वीरतापूर्ण कार्य है। सत्य के विरुद्ध जाना कोई वीरता नहीं है। बहुत बड़ी निर्बलता है।"

[आर्य पत्रिका लाहौर १५ सितम्बर १८६१ ईस्वी पृ० २]

दैनिक पत्र "विक्टोरिया" स्यालकोट लिखता है कि :—

"ब्रिटिश मैडीकल एसोसीयेशन मुर्दों के जलाने के सिद्धान्त का समर्थन कर रही है।"

[१७ सितम्बर १८६१ ईस्वी पृ० ४]

साप्ताहिक "सद्धर्म प्रचारक" जालन्धर लिखता है कि :—

"स्वास्थ्य रक्षक कांग्रेस ने जो इस वर्ष विलायत (इंग्लैंड) में प्रिंस आफ़ वेल्ज इंगलिस्तान के सम्राट् की आधीनता में सम्पन्न हुई थी और जिस में दो सहस्र तीन सौ बड़े २ योग्य विद्वान् अमेरिका, जापान, ईरान, मिश्र और भारत आदि से सम्मिलित हुए थे, स्वीकार कर लिया है कि मुर्दों को दबाने

से जलाना बहुत अच्छा है। तथा संक्रामक रोगों से मरने वालों को तो अवश्य ही जलाना चाहिये।"

(सद्धर्म प्रचारक २९ सितम्बर १८९१ ईस्वी पृ० ७)

"विक्टोरिया पेपर" लिखता है कि "पैरस में मुर्दा जलाने की प्रथा उन्नति पर है।"

"दोस्त हिन्द" भेरा जिला शाहपुर लिखता है कि :—

"फ्रांस और अमेरिका में मुर्दों का जलाना शीघ्रता से प्रचलित होता जा रहा है। इंग्लैण्ड में सब बड़े नगरों में मुर्दे जलाने के मरघट बन रहे हैं। (१८ सितम्बर १८९१ ईस्वी)

"कैसर पत्र" करनाल लिखता है कि :—

"अमेरिका में मुर्दों का जलाना दबाने की अपेक्षा अधिक अच्छा समझा गया है। दिन प्रतिदिन इस की उन्नति पाई जाती है। इंग्लैण्ड में मुर्दों के जलाने के मरघट बनाए जा रहे हैं।"

(१९ सितम्बर १८९१ ईस्वी)

"सद्धर्म प्रचारक" जालन्धर लिखता है कि :—

"मुर्दा जलाने की प्रथा फ्रांस में उन्नति पर है। गतवर्ष में तीन सहस्र चार सौ इक्तालीस मुर्दे फ्रांस में जलाए गए।" (जिल्द ४ नम्बर ६ पृष्ठ ७ कालिम १ २१ मई १८९२ ईस्वी)

न्यूयार्क अम्रीका से हनरी ऐस कर्नल अलकाट प्रधान थ्योसाफ़ीकल सोसायटी अपने पत्र नम्बर १७ तिथि १८ फ़र्वरी १८७८ ईस्वी में लिखते हैं कि :—

"१८ मास बीते। इस बड़े नगर में जिस में १० लाख से अधिक ईसाई आबादी है। हम ने अपनी सोसायटी के एक व्यक्ति को उन गंवारू प्रथाओं के साथ दफ़नाया और अग्नि प्रकाश, पुरानी कैंचली जो कि सांप के साथ थी इत्यादि चिह्न ले गये थे। अन्य और चिह्नों को भी प्रयुक्त किया। छः मास के पश्चात् हम ने उस लाश को उस क़बर से निकाल कर उस को अपनी आर्य जाति के पूर्वजों की भांति दाह कर्म विधि के अनुसार जला दिया।"

(पृष्ठ ४ ज्वाला प्रकाश प्रैस मेरठ)

योरुप में मुर्दा जलाने की प्रथा

"प्रथम यह समाचार लिखा जा चुका है कि योरुप में मुर्दा जलाने की प्रथा दिन प्रति दिन उन्नति पर है। अभी समाचार मिला है कि नेपल्ज़ में मुर्दों के जलाने के लिये सर्व साधारण के दान से एक मरघट बनवाया गया। पोप आफ़ रोम ने बहुत विरोध किया और कहा कि जलाने से मुर्दा नर्क में जाएगा। किन्तु सर्व साधारण ने इस सम्मति को न माना। सभी ने इसे ठुकरा दिया तथा बहुत से सम्प्रदाय वादियों की लाशें जलाई गईं। योरुप में यह विचार फैलता जा रहा है कि संक्रामक रोगों के निवारण का बड़ा साधन मुर्दों का जलाना ही है।"

(ताजुल् अख़बार रावलपिंडी ९ जौलाई १८९२ ईस्वी)

मुर्दों को जलाने की प्रथा

परशिया की राजधानी बरलिन नगर में एक इन्टर नैशनल कान्फ्रैंस गत मास में हुई ताकि पता लगायें कि लाश के ठिकाने लगाने का बढ़िया साधन क्या है? कान्फ्रैंस ने सर्व सम्मति से निश्चय किया कि जलाने की प्रथा बहुत श्रेष्ठ है। जैसा कि बहुत वाद विवाद के पश्चात् एक प्रस्ताव सर्व सम्मत स्वीकृत

हुआ कि समस्त योरुपियन राज्यों से प्रार्थना की जाए कि वह इस पद्धति की श्रेष्ठता को स्वीकार करें और अपने २ देश में इस प्रथा को प्रचलित करें।"

(आर्यदर्पण-मासिक शाहजहांपुर जिल्द १० नंबर ४ पृ० ८१ अप्रैल १८६१ ईस्वी)

मुर्दा जलाने की प्रथा

ब्रिटिश मैडीकल एसोसीएशन इंगलिस्तान ने प्रस्ताव किया है कि भविष्य में दफ़न करने की प्रथा समाप्त की जाए और मुर्दा जलाने की प्रथा आरम्भ की जाय। यह एक बहुत बड़ी सभा में कहा गया। और प्रस्ताव उपस्थित हुआ।" वर्णन किया जाता है कि दफ़न करने से जल वायु दूषित हो जाते हैं। सैंकड़ों रोग इसी कारण फैलते हैं। संक्रामक रोगों का कारण भी इसी को बताया जाता है। अतः इसी विचार की उन्नति हो रही है कि मुर्दे जलाये जाएं।"

इस पर इसलामी समाचार पत्र लिखता है कि "हम इस बात के बहुत बड़े विरोधी हैं। इसका कारण यह है कि यदि इस प्रथा पर इंगलैंड में अधिक बल दिया गया तो सम्भव है कि इसका प्रभाव धीरे २ भारत में भी पहुँचे। मुसलमानों का शरीयत का क़ानून (नियम) इन्हें केवल दफ़न करने की आज्ञा देता है। और इसके अतिरिक्त कोई पद्धति नहीं बताई गई। अतः यह एक मजहबी कर्तव्य और मजहबी आज्ञा है। हम इस सम्मति के बहुत विरोधी हैं। और ऐसे कार्यों में हमें इसलाम की अपनी मजहबी प्रथा का अधिक ध्यान रहेगा। इसलाम जलाने को कभी उचित नहीं समझ सकता। जो पद्धति इसलाम ने बताई हैं वही उचित हैं। यदि परमात्मा न चाहे इस सम्मति का कोई प्रभाव भारत पर भी पड़ा तो उस समय मानो सरकार भारत के एक बड़े मजहबी मन्तव्य में दखल देगी जो सम्भवतः मुसलमानों को बहुत ही चिड़ानें वाली बात होगी।"

इस पर "आर्य समाचार" के सम्पादक ने नोट दिया है कि "यह समय से पूर्व का वावेला है। सरकार क्यों इस विषय में बल का प्रयोग करेगी ? जैसे शिक्षा ने योरुप वालों की आँखें खोलीं और इस मन्तव्य को लाभदायक समझ कर अपने यहां प्रचलित किया वैसे जब मुसलमानों में विद्या की उन्नति होगी और वह दफ़न करने की प्रथा को हानिकारक समझेंगे, तब उन में भी मज़हब की न चलेगी। सौ सियाने एक मत।",

(आर्य समाचार (मासिक) मेरठ अगस्त १८६४ ईस्वी जिल्द १३ नं० ७ पृ० २०३)

एक और इस्लामी पत्र लिखता है कि:— "गत वर्ष फ्रांस में तीन हज़ार मृतक जलाए गए। इसी प्रकार इटली में मुर्दा जलाने की भट्टियां २० के लगभग हैं।"

(पैसा अखबार लाहौर ४ जौलाई १८६२ ईस्वी, पृ० ५ कालम २)

भारत सुधार में लिखा है कि "अमरीका में मुर्दों के जलाने की प्रथा दिन प्रतिदिन उन्नति पर है।"

(१७ सितबंर १८६२ ईस्वी, जिल्द ४ अंक ३२)

"अखबार आम" में लिखा है कि "ब्रिटिश डाक्टरों ने सम्मति दी है कि जो व्यक्ति हैज़ा (विषूचिका) से मरें उन की लाशें जलाई जाएं।"

(१२ सितम्बर १८६२ ईस्वी)

पुनः इसी पत्र में लिखा है कि—"डाक्टर बैलों भूतपूर्व कमिश्नर स्वास्थ्य रक्षक विभाग पंजाब मर गए। उन का मृतक शरीर जलाया गया।"

(१२ सितम्बर १८६२ ईस्वी)

दाह कर्म

हम सब जानते हैं कि वायु हमारे जीवन के लिये कितना बड़ा आवश्यक पदार्थ है। विना वायु के कोई जीवित नहीं रह सकता। जीवन से मृत्यु पर्यन्त हम प्रतिक्षण वायु में श्वास लेते हैं। हमारा स्वास्थ्य अधिकतर उस वायु की पवित्रता और स्वच्छता पर निर्भर है जिस से कि हम श्वास लिया करते हैं। वह लोग जो दूषित वायु में श्वास लेते हैं, जैसाकि गुंजान आबादियों के लोग, ऐसे स्वस्थ नहीं होते जैसा कि वह लोग जो खुले मैदान में रहते हैं। जहां बहुत से वृक्ष लगे होते हैं और उन के चारों ओर शाकादि के खेत होते हैं। दूषित वायु के प्रभाव से, जिससे हम बड़े (जनसमूह) वाले अथवा रोगयुक्त स्थान में श्वास लिया करते हैं, सर्दी-जुकाम (प्रतिश्याय रोग) उत्पन्न होता है। अथवा कई दिन तक स्वास्थ्य में अवनति आ जाती है। यह बात सब पर प्रकट है। जहां कहीं सड़ा हुआ पदार्थ फेंका जाता है वहां की वायु उस की दूषित गैस से भारी हो जाती है। यदि तुम किसी बूचड़ अथवा मछली बेचने वाले की दुकान और किसी वधस्थली के समीप होकर चलो तथा किसी फूल बेचने वाले माली और उद्यान के निकट से निकलो तो तुम तुरन्त इन दोनों स्थानों के वायु-भेद को जान लोगे। कुछ स्थानों में वायु में विष ऐसे फैला हुआ होता है कि मन्द गन्धी नासिका से उस का कुछ ज्ञान नहीं होता। सूंघने की शक्ति ऐसी वायु के संयुक्त होने से मन्द हो जाया करती है और शारीरिक संस्थानों पर भी उस का गहरा प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य की रक्षा के लिये सब से श्रेष्ठ उपाय यह है कि वायु के दूषित होने के कारणों को न्यून किया जाए। उन कारणों में से जो वायु को दूषित करते हैं एक मुख्य कारण लाशों को दफ़नाना है। कुछ दिनों में उनसे गल सड़ कर विषैली गैस निकलती है। यह गैस पहले भूमि में प्रभाव डाल कर पुनः क़बरों से बाहर निकल कर इधर उधर उड़ती हुई आस पास की वायु को भारी करती है। ऐसी बातें सुनी गई हैं कि अकस्मात् क़बरों के खुलने से टाइफ़ाइड अथवा हैज़ा फैल गया। बहुत से लोगों ने क़बर के समीप एक प्रकाश देखा है, जोकि फ़ासफ़ोर्स के अतिरिक्त और कुछ नहीं। और यह फ़ासफ़ोर्स लाशों के सड़ने से क़बरों में से निकलता है। अतः यह वायु के भारी होने का कारण मुर्दे जलाने के द्वारा सरलता से दूर किया जा सकता है। जिस से शीघ्र ही लाश राख हो जाती है और कोई हानि नहीं पहुँचती। क्यों कि इससे लाश सड़ने नहीं पाती।

वायु को स्वच्छ रखने के लिये पशुचिकित्सक विभाग ने मृत घोड़ों की लाशों का जलाना स्वीकार किया है। यह पद्धति लाशों को ठिकाने लगाने के लिये प्रयोग में लाई जा सकती है। निम्न प्रमाण से, जो कि एक प्रसिद्ध लेख से प्राप्त किया गया है, स्पष्ट प्रकट होगा कि यह प्रस्तावना है कि मृतशरीरों को जलाने का प्रचार किया जाए। तथा (एक क़ानूनी निर्णय १८८४ ई० में हुआ था कि मुर्दा जलाना उचित है। किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। जब तक उसका प्रभाव दूसरों के लिये हानि कारक न हो) होम सैकरेट्री के कंट्रोल में कुछ ऐसे नियम नियत किये जायें जो वह जलाने के लिए निश्चित करे। एक प्रकार का प्रमाण पत्र जो मृत्यु का कारण बताए, जलाने से पूर्व उपस्थित किया जाए। किसी अफ़सर को लाश को बिना रोक टोक दिखाया जाए। इस प्रस्ताव का समर्थन निम्न हेतुओं से किया गया है :—

(१) जीवितों का ध्यान रखना मुर्दों से अधिक आवश्यक है। दफ़न करने का वर्तमान नियम मनुष्य

जीवन के लिये हानि कारक है। क्यों कि क़ब्रिस्तान बहुत बढ़ते हैं। उन में तथा उनके निकटस्थ इलाकों में विषैली गैस प्रभाव डालती जाती है।

(२) (क) क़ब्रिस्तानों के बनने में संकट बहुत है। तथा अधिक आबाद स्थानों की कठिनाईयां बढ़ती जा रही हैं।

(ख) बहुत से क़ब्रिस्तान, जो आबादी की सीमा से परे थे, अब वह घरों से घिरे हुए हैं।

(३) दफ़नाने का कोई ढंग इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता कि वह शरीर के अवयवों की पृथकता को रोके। किसी प्रकार से दफ़नाएं, वास्तव में बात एक ही है। किन्तु जला देना वायु का शोधक है। और दफ़न करना शरीरों का सड़ाना है। अथवा यूं कहें कि एक शीघ्र जलाने वाली आग के बदले में धीरे २ सड़ा गला देना है।

(४) यद्यपि धनी लोग अच्छी प्रकार से दफ़नाए जा सकते हैं। परन्तु निर्धनों की क़बरें आबाद स्थानों पर केवल गंदगी के गढ़े हैं। निर्धन लोग शीघ्र सड़ने वाले कफ़न में दबाए जाते हैं। जो एक दूसरे से पृथक् कठिनता से होते और लगभग समीप २ होते हैं। तथा बहुत ही न्यून मिट्टी में ढांपे जाते हैं जो समय से पूर्व अर्थात् मिट्टी बन जाने से पूर्व ही खोदे जाते हैं।

(५) (क) यदि ठीक नियमानुसार कार्य किया जाए तो जलाना किसी प्रकार अनुचित नहीं। जलकर शरीर के श्वेत बिल्लौर जैसे खण्ड हो जाएंगे जो हानिकारक नहीं होते और चिरकाल तक रखे जा सकते हैं।

(ख) दाहकर्म बहुत बड़ी सभ्यता से हो सकता है। धार्मिक विश्वासों में भी कोई भेद नहीं पड़ता। साधारण कर्म कांड भी इस अवसर पर पूर्ण किया जा सकता है।

(ग) इस से साधारण जनता के विचारों पर कोई चोट नहीं पहुँच सकती। यदि पहले जन-साधारण के छोटे और तंगविचारों पर कुछ बुरा प्रभाव पड़ेगा तो यह शीघ्र दूर हो जाएगा, और जलाने के लाभ भी स्वीकार कर लिये जाएंगे।

(घ) * जलाने वाली वर्तमान भट्टियों से लाभ उठाने के मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां डाली गई हैं और जो प्रवृत्ति नियमित पद्धति और बौद्धिक उत्साह से होती है उस का अनुमान इस थोड़े से प्रयोग से, जो आज कल हो रहा है, नहीं हो सकता।

(६) अपने परिवार के क़बरिस्तान और गांव के गिरजाघर से लोगों को बहुत प्रेम है परन्तु यह प्रेम वहां नहीं रहता जब कि मुर्दा को किसी दूर के क़बरिस्तान अथवा अपरिचितों में ले जाकर दफ़न करते हैं। जहां न कोई उस की देख-भाल करता है और न कोई क़बर का मान करता है।

(७) (क) इस जलाने की प्रथा को चाहने न चाहने का सब को अधिकार है। यह आवश्यक नहीं कि किसी मनुष्य को अपनी अथवा अपने सम्बन्धियों की इच्छा के विरुद्ध जलावें। इस में बहुत

---

* पहले होमसैकरेट्री साहब लार्डक्रास ने अपने एक भाषण में जो अप्रैल १८८४ ईस्वी में हुआ था, स्वीकार किया था कि जब मैं होम आफ़िस में था तो मैं ने वकिंग हाम को भट्टियों में जलाने में रुकावट डालने का अनुचित यत्न किया था।

बड़ा स्वार्थ पाया जाता है कि जो लोग स्वयं अथवा अपने सम्बन्धियों के शवों को जलाने की इच्छा रखते हैं, उन्हें इस गारंटी से इनकार किया जाए, जो बुद्धि पूर्वक और उचित है।

(ख) अभिप्राय यह है कि दाहकर्म को नियम में लाया जाए। उस की उन्नति हो और आज्ञा दी जाए। जलाने के सम्बन्ध में कोई नियम निर्धारित होना चाहिये। अभी इस की आज्ञा तो है परन्तु इस के नियम नियत नहीं।

(८) (क) दाहकर्म को उचित मान लेने से विष प्रयोग अथवा छल से वध करने के जुर्मों की वृद्धि नहीं होगी। इस के विपरीत जो कठोर नियम प्रस्तावित किये गये हैं, उन से दुष्टों को रोक होगी कि वह अपने मारे हुए मनुष्यों के शरीरों को न जलाने पाएंगे। क्योंकि प्रमाण पत्र तथा निरीक्षण कार्य आवश्यक होने से विष और मारपीट के रहस्य खुल जाएंगे।

(ख) अभी दफ़नाने के सम्बन्ध में नियम ऐसे दोषयुक्त हैं कि तीस सहस्र मनुष्य विशेष कर बालक प्रतिवर्ष मृत्यु-प्रमाण-पत्र के बिना दफ़नाए जाते हैं। इस से विष प्रयोग और छल-कपट द्वारा वध करने का साहस बढ़ता है।

(ग) संदिग्ध अवस्थाओं में अथवा यदि उचित प्रतीत हो तो सदैव परीक्षण के लिये अन्तड़ियों के रखे जाने में सरलता होगी।

(घ) वनस्पति सम्बन्धी तथा पाशविक विषों का जानना समस्त अवस्थाओं में अति कठिन है और धातुज विषों का विश्लेषण सरलता से होगा।

(ङ) विष अग्नि में कुछ न्यून हो जाता है तो भी कीम्याई विश्लेषण के लिये उस का पर्याप्त भाग रह जाता है।

(च) गला सड़ा शरीर स्वयं कुछ विषों को उत्पन्न करता है और बहुत से विषों पर भी अपना कीम्याई प्रभाव डालता है। क्योंकि मृत्यु के थोड़ी देर पश्चात् ही उस वास्तविक विष के कारण का फ़िज़्यालोजी से यथार्थ ज्ञात होना कठिन हो जाता है।

(९) आजकल शरीर बहुत कम क़बरों से खोद कर निकाले जाते हैं।

(१०) सम्भव है कि कभी मुर्दा जलाने से अन्वेषण में कठिनता और धोखा हो। परन्तु यह परिणाम प्रायः वर्तमान प्रबन्ध के कारण निकलता है।

(हाईजीन्ज आफ़ हैल्थ फ़र्वरी १८९२ ईस्वी पृ० ८—१०)

प्रिय पाठक वृन्द ! हम आप की सेवा में एक आवश्यक और लाभ-प्रद मन्तव्य विचार के लिये उपस्थित करते हैं। ज्ञान और बुद्धि दोनों इस के साथी हैं। समस्त विद्वान् और अन्वेषण कर्ता डाक्टर और हकीम इस के समर्थक हैं। सभ्य संसार इस के मानने के लिये उद्यत हो रहा है। परन्तु हमारे देश के भाई अभी तक बेसुध हैं। ईश्वर करे कि ये (मुसलमान) भी इस लाभ-प्रद प्रथा की स्वीकृति में शीघ्र यत्न करके स्वास्थ्य और सुख विस्तार के समर्थक हों।

पतितोद्धार

आर्य (हिन्दु) क्यों मुसलमान हुए ?

वेदों का श्रेष्ठधर्म और शास्त्रों की पवित्र मर्यादा, जिस की पवित्रता के गीत मित्र और शत्रु अब तक गा रहे हैं, यदि आज तक संसार में बनी रहती अथवा उस के अनुसार लोग आचार व्यवहार करते रहते तो पूर्णतः निश्चित था कि कोई और मत (मजहब) मुख न दिखाता और न कोई नया सम्प्रदाय उत्पन्न होता। वैदिक युग की लाखों घटनाओं में से एक घटना, रामचन्द्र जी की है। जिस के शब्द २ से सत्य धर्म का प्रकाश चमकता है और पग २ पर सत्य सुगन्धि प्रकट होती है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के हार्दिक प्रेम से कौन परिचित नहीं ? भ्रातृ-प्रेम के सम्मुख वह राज्य को कुछ भी न समझते थे। रामचन्द्र की खड़ाऊं को भारत के राजकीय सिंहासन पर रख कर और राम चन्द्र जी का सेवक कहला कर चौदह वर्ष तक राज्य करना क्या संसार में अद्भुत उदाहरण नहीं ? और इसी प्रकार रामचन्द्र जी का बनवास से लौट कर प्रथम कैकई के भवन में नमस्कार के लिये जाना क्या कोई संसार में उदाहरण रखता है ? वही आर्यधर्म या वैदिक धर्म का युग था और इस के पश्चात् भी चिरकाल तक रहा। अन्त में कौरव पाँडव काल आया। पाँडू के कुछ काल के लिये दिये हुए राज्य पर दुर्योधन का अधिकार जमा। महायुद्ध की सम्भावना उत्पन्न हुई तब कृष्ण जी स्वयं समझाने के लिये गये और केवल यह कहा कि समस्त आर्यावर्त के राज्य से पाँच भाईयों को देहली के निकटस्थ पाँच ग्राम पानीपत, सोनीपत, बागपत, दलपत, करनाल दे दें। जिस से युद्ध की सम्भावना न रहे। दुर्योधन ने कहा कि—

"सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव।" अर्थात् हे कृष्ण ! तुम तो पाँच ग्राम मांगते हो। मैं तो उन को सूई के अगले सिरे जितनी भूमि भी युद्ध के बिना न दूंगा।

समय के इस परिवर्तन को देख कर कौन है जिसे सन्देह होगा कि धर्म की व्यवस्था वैसी की वैसी स्थिर रहेगी। इतना बड़ा भारी परिवर्तन और अन्धेर, बहुत बड़ी आशाओं के ढेर पर बिजली गिराता है।

भारत के युद्ध के पश्चात् आर्यावर्त की अवस्था दिन प्रतिदिन गिरती गई। भोग विलास के फैलने के कारण राजा और राजधर्म की व्यवस्था बहुत ही दूषित हो गई और "यथा राजा तथा प्रजा" का होना आवश्यक समझा गया। यही कारण था कि उन के बुरे आचरणों का प्रभाव राजाओं के व्यक्तित्व तक सीमित न रहा। राजा गुरु अर्थात् पुरोहितों ने सर्वतोप्रथम इस में भाग लिया और तन्त्र शास्त्र रच डाला तथा वाममार्ग घड़ लिया। इस उक्ति के अनुसार कि "कुफ़ गीरद कामिले शवद।" कुफ़ पकड़ता है तो अधूरा नहीं रहता। पूरा हो के रहता है। समस्त ब्राह्मण राज पुरोहितों के आधीन होते हैं। यही बड़ा भारी कारण था कि वह बाधित हो कर मौन रहे अथवा उन के साथ मिल गए और जो मौन रहे उन्हों ने वाममार्ग के प्रवृत्ति मार्ग के विरुद्ध निवृत्तिमार्ग नाम रख कर सनातनधर्म को

पतित होने से बचाया और व्यभिचार के गढ़े में न गिरने दिया। वाममार्ग के अत्याचार ने बौद्धधर्म उत्पन्न किया। जिस ने वैदिक धर्म पर बड़ी चोट की और संस्कृत विद्या को धक्का लगा कर प्राकृत भाषा बना ली। नास्तिक मत का प्रचार और वैदिक मत का संहार होने लगा। ऐसे समय में दो सिंहपुरुष 'विशेषज्ञ' धर्म के मैदान में निकले और शास्त्रार्थ का झण्डा खड़ा किया। पहले का नाम कुमारिल भट्ट या भट्टाचार्य था। जिस ने वाममार्ग का नाश किया और दूसरे का पवित्र नाम स्वामी शंकराचार्य था। जिस ने नास्तिकता के वृक्ष पर परशुरामवत् कुठार रखा, और उस को आर्यावर्त की पवित्र भूमि अर्थात् महर्षियों की भूमि से जड़ से काट कर समुद्र में गिरा दिया। पुनः वैदिकधर्म का प्रचार और शास्त्रोक्त संस्कार होने लगे। लाखों पतित हुए नास्तिक पुनः गंगा और गोदावरी के तट पर यज्ञोपवीत धारण करने लगे। नये सिरे से उन में वर्णव्यवस्था गुण कर्मानुसार स्थापित हुई। उस समय शुद्धि पद्धति केवल यह थी कि हस्तामलक आदि शिष्य स्वामी जी की आज्ञानुसार एक दो दिन में प्रायश्चित्त करा के गायत्री सिखा और यज्ञोपवीत पहिना कर सभा में लाकर शुद्ध कर देते थे। इस से अधिक कोई प्रायश्चित्त न था। शंकर स्वामी के कई शती पश्चात् रामानुजाचार्य हुए। यही युग था कि जब मुहम्मदी मज़हब का अरब में उदय हुआ। कुछ काल के पश्चात् लूटमार के विचार से जहाद "धर्मयुद्ध" के नाम पर भारत पर चढ़ाई कर दी गई। अर्थात् ६३६ ईस्वी में अबुल्आस यमन के हाकिम ने थाना (बम्बई के निकट) पर धावा बोला। पुनः ६६४ ईस्वी में अरब का अमीर महाब काबुल के मार्ग से मुलतान तक आया। पुनः ७१२ ईस्वी में मुहम्मद बिनक़ासिम हाकिम हुज्जाज ने सिन्ध पर चढ़ाई की और फिर १००१ ईस्वी से १०२६ ईस्वी तक महमूद ग़ज़नवी के १७ धावे और इसी प्रकार मुहम्मद ग़ौरी, शम्सुद्दीन अल्तमश, अलाउद्दीन ख़िलजी, कुतुबुद्दीन, सुल्तान मुहम्मद, फ़िरोजशाह और १३६८ ईस्वी में तैमूर शाह के हमले से १७५७ ईस्वी तक जब कि नादिरशाह के पश्चात् अहमदशाह दुर्रानी का अन्तिम हमला हुआ।

जिस अत्याचार अनाचार से अत्याचारी लुटेरों ने बेचारे हिन्दुओं के साथ व्यवहार किया और जितनी निर्दयता और बरबरता से उन बेचारों के गलों पर तलवारें चलाईं और सतियों के सतीत्व भंग किये उन के वृत्तान्त पढ़ने से हृदय काँपता और कलेजा थर्राता है।

(विस्तृत देखो रिसालाए जहाद)

ऐसी अवस्था में सहस्रों में से कोई एक भी कठिनता से निकल सकता है जो वध और अपमान के सम्मुख दीने इस्लाम को स्वीकार न करे और सत्यधर्म पर डटा रहे। आपत्ति पर आपत्ति पड़ने पर जो अडिग रहे। जब तलवार के धनी राजपूतों ने बरबादी के मुक़ाबले में निर्बल हो कलंक का टीका लगवा लड़कियां देना स्वीकार कर लिया। जब राना बापा जैसे व्यक्ति मुसलमान बन गए और इसी प्रकार सहस्रों राजपूत किसी न किसी स्वार्थ से तलवार से भयभीत हो कर अथवा स्त्रियों के अपमान से डर कर मुसलमान बनने पर समुद्यत हो गए, और कोलां देवी, देवल देवी, जोधाबाई जैसी देवियां बलात् शाही महलों में डाल दी गईं। जब जीवा और जलिया जैसी देवियां बग़दाद में ऊँटों के पाँव से बन्धवाकर मार डाली गईं तो साधारण जनों की क्या गति? प्रत्येक राजपूत के अन्दर राणा प्रताप व राणा साँगा व महाराज शिवा जी जैसा हृदय नहीं और न प्रत्येक क्षत्रिय में हक़ीक़तराय जैसा धैर्य है और जब कि प्रत्येक ब्राह्मण में उन तीन ब्राह्मणों जैसा ब्रह्मतेज नहीं है, जिन्हें फ़िरोजशाह

सिकन्दर लोधी, औरंगज़ेब ने इस्लामी पक्षपात के कारण शाही दरबार के सम्मुख जीवित अग्नि में जलवा दिया था, और न वैष्णवी (विशनोई) बानियों जैसा सब वैश्यों में साहस है। तो पुनः तलवार और स्त्रियों पर अत्याचार तथा इस्लाम के मुकाबला में ठहरना कितना कठिन है। कुछ एक मिन्ट के लिये एकाग्रचित्त हो कर सोचिये कि आप में कितने ऐसे वीर हैं जिन के सिर पर यदि तलवार और हाथ में कुरआन रखा जाये तो वे तलवार को स्वीकार करेंगे और कुरआन से इनकार करेंगे।

भाईयो ! ऐसी आपत्तियों के पड़ने से जो निरन्तर ६२६ ईस्वी से १७५७ ईस्वी तक ११३१ वर्ष एक दूसरे के पश्चात् पड़ती रहीं और जिन का सामना साधारण जनों के लिये कठिन और असम्भव था । लाखों ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजपूत, वैश्य, शूद्र समस्त भारत के प्रत्येक भाग में बल और कष्ट से तलवार के बल पर मुसलमान बनाए गए। यह प्रथम कारण है जिस से हिन्दु मुसलमान बने।

शान्ति स्थापना न होने से वैदिक शिक्षा सर्वथा लुप्त हो गई थी । संस्कृत का प्रचार छूट गया था। पुनः बताइये कि पवित्र वेदों को कौन पढ़ता ? पवित्र उपनिषदों का अध्ययन कौन करता ? और कौन उन्हें पढ़कर इस्लामी सिद्धान्तों से तुलना कर सकता ? ऐसी अशान्ति की अवस्था अर्थात् सिकंदर लोधी के काल में हिन्दुओं ने फ़ारसी की शिक्षा आरंभ की। हिन्दु धर्म से परिचय और शिक्षा का अभाव था। साथ ही यदि कोई समझाने वाला हो भी सही तो वह मारा जाए। इन कारणों पर विचार करने से स्पष्ट प्रकट है कि फ़ारसी की धार्मिक शिक्षा क्या रूप दिखाएगी ? जैसा कि इस कारण भी बड़ी भारी आपत्ति में घिर कर "न राहे मुर्दन व न राहे बुर्दन" अर्थात् "न मरने का स्थान और न निकलने का स्थान" इस उक्ति के अनुसार इतनी बड़ी आपत्ति में घिर कर बहुत हिन्दु मुसलमान हो गए। जिनका कुछ भी दोष नहीं और जो प्रकट मुसलमान न हुए वे अपनी अविद्या के कारण हृदय से इस्लाम पर विश्वास रखकर हूरों की आशा में संलग्न रहे। ऐसे लोग कुछ पीढ़ियों के पश्चात् प्रकट मुसलमान हो गए। यह दूसरा कारण है।

इधर निरपराध, निष्पाप हिन्दू लड़कियां बलात् पकड़ी जाती थीं। और उधर मुसलिम वेश्याओं के समूह हिन्दु युवकों के शिकार के लिये जाल बिछाए हुए थे। जिन के पेचदार जाल में भानू, हलायू और जगन्नाथ जैसे पंडित भी फंस गए तो साधारण अशिक्षित मूर्ख वर्ग का क्या कहना ? उनके मुसलमान होने में क्या देर थी ? जैसा कि कहा है :—

"मुर्गे दिल क्यों न फंसे दाना भी हो दाम भी हो।" जब कि वे अच्छी २ कुरआन पढ़ी हुई, नमाज़ जानने वाली और रमज़ान के ३० रोज़े रखने वाली ईमानदार मोमिना समस्त कमाई का धन मसजिदों पर खर्च करने वाली, मुहर्रम में शर्बत की सबीलें (प्याऊ) लगाने वाली विदुषी और कवयित्री हों। तो उन्हें हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित करने में क्या देर लग सकती है ? इसी कारण दो करोड़ से अधिक हिन्दु मुसलमानी वेश्याओं की काली नागनियों ने डस लिये। और वह इस प्रकार से कामातुर होकर पतित हो गए। यह तीसरा कारण है कि जिस से हिन्दु मुसलमान हुए।

इसलामी स्कूलों के जारी होने से सहस्रों हिन्दु विद्यार्थी मौलवियों की शरारत और

बहकावट में आकर फिसल गए। यह तो सब जानते हैं कि अध्यापक का शिष्य पर कितना बड़ा प्रभाव होता है। ऐसी अवस्था में समस्त विद्यार्थी बंदी की भाँति थे। यह चौथा कारण है।

विधवा हो जाने की अवस्था में हिन्दु स्त्री के लिये पुराणों ने दो ही इलाज लिखे हैं। सती हो जाना अथवा समस्त आयु वैधव्य का मातमी लिबास धारण कर लेना। ऐसी शिक्षा के अनुसार लाखों सती हो गईं (देखो टाड राजस्थान) परन्तु जो करोड़ों सती होने से बच गईं, उनकी अवस्था पर ध्यान दीजिये। सन्तान रहित होने की अवस्था में वैधव्यकाल कितना कठिन है और कैसा दुःसाध्य पर्वत पार करना पड़ता है ? जवानी मस्तानी और जवानी दीवानी की अवस्था मस्त हाथी के समान है। उस का वेग रोकना अत्यन्त कठिन है। सहस्रों भाग्यशील और सतवन्तियों (सत् रखने वाली देवियों) के अतिरिक्त अन्य लाखों से यह कठिनता न सहारी गई। क्योंकि उसका सहन करना वास्तव में कठिन है। वह बाधित हो कर कुटनियों की बहकावट से अथवा स्वयमेव मुसलमान होगईं। जिस में उनका कुछ भी दोष नहीं। यदि दोष है तो अल्पायु में विवाह करने वालों का अथवा टेवा देखने वालों का है। क्योंकि पराशर जी महाराज ने (जिन्हें हिन्दू मात्र मानते हैं) अपनी स्मृति में इस प्रकार लिखा है कि:—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

अर्थात् पति गुम हो जाए, मर जाए, साधु हो जाए, नपुंसक हो जाए, मुसलमान अथवा किसी इतर धर्म में जाकर अन्य भाँति से पतित हो जाए। ऐसी अवस्था में स्त्री को चाहिये कि दूसरा पति करले। और नारद जी का भी ऐसा ही कथन है। यदि इस पर आचरण होता रहता तो अब तक मुसलमानों की इतनी उन्नति न होती। संभवतः दो करोड़ से अधिक न बढ़ते और ऐसा ही हुआ है कि युवक हिन्दु जो किसी विधवा से विवाह करना चाहता और हिन्दु इसे बिरादरी से खारिज करना चाहते तो वह उस विधवा सहित मुसलमान हो जाता था जिससे कोई कुछ कह न सके। यह पाँचवां कारण है।

जिस प्रकार बुद्ध मत के प्रसार से बुद्ध के नास्तिक और वेद निन्दक होने पर भी पुराण कर्ता ने बुद्ध को अवतार मान लिया। इसी प्रकार हिन्दुओं का वध करने और सतीत्व भंग करने पर भी करोड़ों मूर्ख हिन्दु स्त्री पुरुषों ने मुसलमान पीरों फ़क़ीरों की खानक़ाहों से अंधा धुंध मुरादें मांगनी शुरु कीं। अल्पायु के विवाह और ब्रह्मचर्य के बिगड़ने के कारण प्रायः नपुंसकता ने मुख दिखाया। क़बरों से पुत्र मांगने लगे। प्रकट है कि क़बरों के दिये हुए अर्थात् निर्दयी मुसलमानों के दिये हुए पुत्र हिन्दु नहीं रह सकते। एक दो पीढ़ियों के पश्चात् अवश्य मुसलमान हो जाते हैं। और बुत पूजा का यह परिणाम होना भी था। क्योंकि क़बर पूजा और मृतक पूजा बुत पूजा की दूसरी बहिन है। बुत-पूजा से निराश हिन्दुओं ने जब देखा कि क़बर पूजक मुसलमान हमसे बलवान् हैं तो मूर्खता के अनुसरण के कारण क़बरों से मुरादें मांगने लगे। भारत के प्रत्येक भाग में क़बर पूजा शुरू हुई। बाबा नानक जैसे सत्य पूजक के मरने के पश्चात् भी उसके शिष्यों में बुतपूजा और क़बर पूजा के स्थान पर रोड़े साहिब, माड़ी साहिब, बेरी साहिब, थड़ा साहिब, दुःख भंजन साहिब, केरा साहिब, बाल साहिब, हाट साहिब, तोल साहिब, पंजा साहिब, बाबा की बेर साहिब, स्थापित किये। जिस पर उनके शिष्य भी वैसे ही बुतपूजा में लग गये जैसे अन्य क़बरपूजक बुतपूजक। अतः करोड़ों राजपूत, ब्राह्मण, मरहट्टे, सिख, खत्री, अरोड़ा,

बनिये, और शूद्र ख़ाजा मुअय्युद्दीन, पीर साहिब, लखां का दाता, निगाहे वाला, सरवर, धोंकल, यूसुफ़शाह, पीराने कलीर, पाकपट्टन, इमामबख़्श, शम्सुद्दीन, बहाउलहक्क़, सादेशहीद, दीनपनाह, ग़ाज़ी मुसलमान आदि की ख़ानक़ाहों में द्वारद्वार फिरने और सिर रगड़ने लगे। जिससे आये दिन लाखों मुसलमान होते और सत्यधर्म से पतित हो जाते हैं। यह छटा कारण है मुसलमान होने का।

बहुत से निर्धन हिन्दु विवाह न होने के कारण और सारी आयु कुंवारा गुज़ारने की कठिनाई से घबरा कर विवाह के लोभ में मुसलमान हो गये। जिनकी संख्या भी किसी अवस्था में एक करोड़ से न्यून न होगी और प्रत्येक नगर, क़सबा और ग्राम में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं। यह सातवां कारण है।

जितनी लागत बुतख़ानों पर लगी हुई है। उससे कई गुना बढ़कर मुसलमानों ने क़बरों पर लगाई है और बड़े २ मक़बरे मुर्दापरस्ती के लिए बना दिये हैं। संभवतः भारत के ५ करोड़ मुसलमानों में से चार करोड़ बुतपरस्त अर्थात् क़बरपरस्त हैं। जिस प्रकार यहां ऐसे २ मठ बनाए। इसी प्रकार अरब में भी हैं। जैसा कि हज़रत मुहम्मद साहिब की क़बर पर तीन करोड़ रुपये के मूल्य के हीरे और लाल जड़े हुए हैं। इसका नाम बुतपरस्ती नहीं तो गोरपरस्ती (क़बर पूजा) है। (अख़बार दानापुर)

यह उपरिलिखित कष्ट, आपत्तियां और कठिनाईयां हैं जिनके कारण ६२६ ईस्वी से १८६० ईस्वी की जनगणना तक ६७३२५४३२ मुसलमान हुए हिन्दु और मुसलमानों की सन्तान आर्यावर्त में विद्यमान थे।

चुटकला

डेरा इस्माइल ख़ान नगर में एक शैख़यूसुफ़ की ख़ानक़ाह है। जिससे सैंकड़ों हिन्दु स्त्री पुरुष मुरादें मांगने जाते हैं। वहां के मुजावर (पुजारी) प्रथम मुख पर थूकते, पुनः जूते लगाते हैं। एक बार डेरा में कुछ हिन्दु मुझसे पूछने लगे कि वह थूकते तो हैं परन्तु जूते क्यों लगाते हैं। मैंने कहा कि थूकते इस लिये हैं कि तुम परमात्मा पार ब्रह्म को छोड़कर क़बर पर सिर रगड़ने आए। क्योंकि थूक शीघ्र सूख जाती है अतः जूते भी लगाते हैं जिससे तुम शीघ्र से भूल न जाओ। अल्हज़र ऐ क़ौमे नादां अल्हज़र। अर्थात् ईश्वर से डर ऐ मूर्ख जाति! ईश्वर से डर।

१३ सौ वर्ष मुसलमान होने के पश्चात् भी अभी तक भारत के भिन्न भागों में समस्त मुसलिम जातियों के अन्दर सहस्रों प्रथाएं हिन्दुओं की विद्यमान हैं।

लाखों मुसलमान ब्राह्मणों से फेरे खिलाते, विवाह पढ़वाते और उनको पुरोहित मानते हैं। कंघा बांधते हैं। हिन्दु और मुसलमान दो नाम पृथक् रखते हैं। यही अवस्था स्त्रियों की है। सम्भवतः एक करोड़ ऐसी मुस्लिम संख्या होगी जो सर्वथा गोमांस नहीं खाती। लाखों मुसलमान ऐसे हैं जिनको मिट्टी के प्याले के अतिरिक्त इसलाम से कुछ लाभ नहीं हुआ।

(सय्यद अहमद खां के व्याख्यान से)

लाखों मुसलमान ऐसे हैं जो मुर्दा दफ़नाने के अतिरिक्त इसलाम से कुछ परिचित नहीं और न मसलमानी नियमों को मानते हैं।

लाखों मुसलमान हिन्दुओं की ज्योतिषविद्या पर विश्वास रखते और पंडितों के मुरीद हैं। जब मिलते हैं उन्हें पालागन, चरनबन्दना अथवा नमस्कार करते हैं।

लाखों अब तक विवाहों में गोत बचाते हैं। निकट विवाह सर्वथा नहीं करते और न अपनी मुसलिम जाति से बाहिर विवाह करते हैं। लाखों ऐसे हैं जो चोटी रखते हैं। नागरी पढ़ते हैं। जैसे बम्बई के वोहरे और खोजे, जिनके नाम काहन जी, रामजी, श्याम जी हुआ करते हैं। यदि आर्य जाति चाहे अथवा उन की कोई सहायता करने वाला हो तो लाखों सच्चे हृदय से पुनः लौटने को उद्यत हैं। अतः भाईयो! ऐसे आपत्ति के मारों की बुरी अवस्था पर दया करके उदारता और धीरता से शास्त्रों पर विचार करो और कृपा पूर्वक परोपकार भावना से उनके लिये पुनः लौटने का द्वार खोलो।

आपत्काल धर्म और उसका प्रायश्चित्त

जिस प्रकार वैद्यक शास्त्र आयुर्वेद में सब शारीरिक रोगों का निदान है। उसी प्रकार धर्म शास्त्र में सब आत्मिक रोगों की औषधि है। सब धर्म शास्त्रों और वैद्यक शास्त्रों में मूल वेद है। यही कारण है कि वेदों में शारीरिक रोग निवृत्यर्थ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास की आज्ञा है। और उसी युक्ताहार विहार का वर्णन किया है कि जिस पर चलकर मनुष्य शारीरिक रोगों से बच सकता है। इसी प्रकार आत्मा सम्बन्धी रोगों की निवृत्यर्थ वेद ने विद्या, उपासना, ध्यान, धारणा, समाधियोग की आज्ञा दी है। जिससे शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार के आनन्द भोगकर जीव मोक्ष धाम को प्राप्त हो।

वेदों के पश्चात् राजनैतिक धर्म शास्त्र के पण्डित मनु हुए हैं। जिनकी स्मृति विद्यमान है। यद्यपि स्मृतियां संख्या में १८ हैं। परन्तु सबमें मनु की प्रशंसा है। इसी को श्रेष्ठ माना गया है। बृहस्पति स्मृति में लिखा है कि :—

वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोःस्मृतेः।
मन्वर्थ विपरीता तु यास्मृतिः सा न शस्यते॥

वेदार्थ के अनुकूल होने से सब स्मृतियों में मनुस्मृति प्रधान है। जो स्मृति मनुके विरुद्ध है वह प्रशंसा के योग्य नहीं।

जिन बातों को मनु ने प्रायश्चित के योग्य लिखा है, यदि तदनुसार प्रायश्चित कराया जाए तो सम्भवतः एक हिन्दु भारत में न निकले जो प्रायश्चित के योग्य न हो। विस्तार से देखो मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक ५५ जिस में लिखा है कि ब्रह्महत्या करने वाला, मद्यपान करने वाला, गुरु की स्त्री से दुराचार करने वाला यह तीनों महापातकी हैं। उनके साथ व्यवहार करने वाला भी ऐसा है। प्रथम और अन्तिम बात को छोड़ कर शराब पीने वाले इस समय प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक कुलीन घर में थोड़े बहुत विद्यमान हैं। और हमारे इस पांचाल देश में तो कई स्थानों पर ब्राह्मण शराब के ठेकेदार हैं और शराब की दुकानों पर खाने की वस्तुएं बेचते हैं। शूद्र तो ऐसी अवस्था में है कि कुछ न पूछिये। वाम-मार्ग में प्रवेश करने वाले चाहे किसी जाति से हों, उन्हें अवश्य शराब पीनी पड़ती है। मांस खाने वाले, जिसे धर्म शास्त्र में बहुत निन्दनीय कर्म लिखा है, वह भी भारत के प्रत्येक भाग में विशेषतः पंजाब, काश्मीर, बंगाल, मिथिल, मध्यदेश में लाखों हैं। यदि कोई धार्मिक राजा मनु ११ के अनुसार दंड देने लगे तो सम्भवतः आबादी आधी रह जाए। परन्तु साथ ही शास्त्र यह भी कहता है कि जब राजा आर्य धर्मानुकूल न हो तो वह आपत्काल है और आपत्काल के लिये यह भी आज्ञा है कि

"आपत्काले मर्यादा नास्ति।" अर्थात् आपत्काल में कोई मर्यादा नहीं। जो हो सके और जिस प्रकार हो सके अपने धर्म को स्थिर रखे। और यही अवस्था काबुल, क़न्धार, ग़ज़नी, हरात, बलोचिस्तान, क़लात, तिब्बत, काश्मीर, बुख़ारा, ख़ेवा, बुशाहर, बसरा, सिकंदरिया, नटाल, अदन, जावा, बाली, जापान, मालटा हांगकांग और जंजबार के हिन्दुओं की है। कि वह अपने आप को केवल हिन्दु कहते हैं। अन्यथा कोई धर्म की वास्तविक सत्यता उनके पास नहीं। अतः क्या हम उनको धर्म से बहिष्कृत समझें, नहीं, कदापि नहीं। क्योंकि धैर्य और परिश्रम में हम से बढ़ कर हैं। उनकी श्रद्धा भी हम से अधिक है। हिन्दुधर्म से जितना उन का प्रेम है, उसका कोई अनुमान नहीं हो सकता। परन्तु वह आपत्काल में हैं। इसी कारण से विवश और दयनीय हैं।

हमारे ऋषि मुनि इस बात से अपरिचित नहीं थे। वे दूरदर्शी थे। और अपनी दूरदर्शी विज्ञानशक्ति से इस बात को जानते थे। इसी हेतु से उन्हों ने मन्तव्य पर विचार किया है (देखो मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक ८१ से १३० तक) श्लोक १०६ में लिखा है कि वामदेव धर्माधर्म के जानने वाले ने भूख से आर्त होकर कुत्ते का मांस खा लिया परन्तु वह पतित न हुआ। (श्लोक १०७) भूख से बाधित होकर भारद्वाज ऋषि महा तपस्वी ने घने वन में अपने पुत्र सहित एक नीच मनुष्य से दान लिया। (श्लोक १०८) भूख से अति व्याकुल धर्म अधर्म के वेत्ता विश्वामित्र ऋषि ने एक चण्डाल से कुत्ते की टांग का मांस खाने के लिये लिया।*

प्रेम से युक्त श्री रामचन्द्र ने भीलनी शूद्राणी अति शूद्राणी के झूठे बेर खाए। और प्रेम से युक्त कृष्ण महाराज ने कुब्जा मालिन के घर का भोजन खाया।

रामानुज के उपदेश से कबीर, कमाल आदि मुसलमान वैदिकधर्म में दीक्षित हुए। और लाखों हिन्दु अब इन मुसलमान साधुओं को अपना गुरु मानते हैं।]

चेतन स्वामी बंग देश वासी के उपदेश से भी कुछ जन्म के मुसलमान वैदिक धर्म में दीक्षित हुए। और बंगाली हिन्दुओं में वह मिल गए।

मनुष्य मांस खाने वाले अघोरी साधुओं के भी कई हिन्दु शिष्य हैं जिनके साथ समस्त हिन्दु बरतते हैं।

मनु १०।१०४ में लिखा है कि—

जो मनुष्य प्राणत्राणार्थ किसी नीच जाति का अन्न खा लेता है वह अन्तरिक्षवत् पाप से लिप्त नहीं होता।

मनुस्मृति में लिखा है कि:—

यदि गोहत्यादि करे तो तीन मास में शुद्ध होता है। (मनु० १०-६०, ११६)

इच्छा के बिना बलात् किया हुआ पाप वेद के अभ्यास से दूर हो जाता है। परन्तु जो इच्छा से पाप किया जाए तो धर्म से उसका प्रायश्चित है। (मनुस्मृति १०-४६)

कठोर से कठोर कोई पाप नहीं जिसका धर्म शास्त्र ने प्रायश्चित न कहा हो और प्राचीन काल में न होता रहा हो। जब उनके लिए प्रायश्चित है तो जो लोग आपत्काल के मारे रक्तवाहिनी असिधारा के भय से त्रस्त हो मुसलमान हो गए अथवा अपनी इज्जत बचाने के लिये मुसलमान हुए। ताकि उनकी स्त्रियों से दुराचार न हो तो वह केवल गायत्री जाप से ही शुद्ध हो जाते हैं। जन्म के मुसलमानों

* यह श्लोक प्रक्षिप्त लगते हैं। —अनुवादक।

ईसाईयों, यहूदियों, जैनियों और बौद्धों के लिये शास्त्र ने स्पष्ट बताया है कि वह कामना के बिना प्रविष्ट हुए हैं। अतः वह केवल गायत्री मन्त्र से अथवा अग्नि होत्र करने से शुद्ध हो कर आर्य धर्म में प्रवेश कर सकते हैं। जैसा कि स्वामी शंकराचार्य ने सहस्रों बौद्धों को केवल गायत्री जाप से शुद्ध कर लिया था। इसी प्रकार अब भी होना चाहिये। शेष मुसलमान अथवा ईसाई होकर शुद्धि की अभिलाषा रखने वालों के लिये शास्त्र कहता है कि देशकाल पात्र देख कर प्रायश्चित करा कर शुद्धि द्वारा उन्हें आर्य जाति में प्रविष्ट करो।

शास्त्र में लिखा है कि सावित्री के जाप करने से ब्रह्महत्या और गौहत्या का पाप छूट जाता है। गायत्री मन्त्र सब से पवित्र है। इसी लिये इस के सम्बन्ध में सब एकमत हैं कि इस से प्रत्येक प्रकार के पाप छूट जाते हैं। तो क्या मुहम्मदी अथवा ईसाई और बौद्ध शुद्ध नहीं हो सकते? अवश्य हो सकते हैं।

प्रायश्चित्त विधि

आजतक आर्य समाजों में लगभग एक सहस्र व्यक्ति मुसलमान और ईसाई पतित हुए शुद्ध किये गये। *किन्तु किसी विशेष व्यवस्था न होने के कारण प्रत्येक स्थान पर कठिनाई होती है। अमृतसर रावलपिंडी, लाहौर, पेशावर, गुजरांवाला, लुधियाना की समाजों ने जितने हार्दिक उत्साह और धर्मभाव से उस में अधिक भाग लिया, उतना वे अधिक धन्यवाद के पात्र हैं। आर्य समाजों ने जितनी धार्मिक सेवा अधिक की, उतनी ही लोग वैदिकधर्म की महत्ता को मानते गये।

किसी पतित को शुद्ध करने के लिये सब से प्रथम आवश्यक यह है कि उस के असत्य विचार शुद्ध किये जाएं और जितना वह समझ सकता है उसे सत्यधर्म की महत्ता बताई जाए। अन्यथा किसी स्नान, भोजन, अथवा अंग काट देने और गुलामी का दाग़ लगाने से कोई शुद्धि नहीं हो सकती। पौराणिक लोग गोबर खिला और गंगा जी भिजवा कर वहां के भंगियों से जूते लगवाते और ब्रह्म भोज कराकर हिन्दुधर्म से पतित लोगों को शुद्ध करते हैं।

स्वर्गवासी महाराजा रणवीर सिंह जम्मू व कश्मीर ने बहुत सा धन ख़र्च करके इस महान् दण्ड को नर्म कर दिया था। और यह व्यवस्था प्रकाशित की थी कि गोबर खिलाना और जूते लगवाना आवश्यक नहीं। शेष बातें ही शुद्धि के लिये पर्याप्त हैं। जैसा कि कई हिन्दु इसी के अनुसार पवित्र किये गये। यद्यपि सिख भाई साधारणतः शुद्धि के विरोध में हैं। परन्तु उन में से कुछ लोग मिश्री अथवा पताशों का शर्बत घोल कर उस में लोहा रगड़ कर पिलाते हैं। ऊपर से सुअर का मांस खिलाते और कुछ शर्बत उस के सिर पर डालते तथा कुछ मुख और आँखों पर डाल कर शुद्ध करते हैं। बहुत से जूते भी उसे झाड़ने पड़ते हैं। परन्तु यह पक्षपातपूर्ण कार्य कुछ कट्टर मुल्लाओं के कार्य से अधिक महत्व नहीं रख सकता। जो वह हिन्दुओं अथवा सिखों के साथ मुसलमान बनाते हुए किया करते हैं। जिस से मानसिक दुःख देने के अतिरिक्त और कोई पवित्र बात प्रकट नहीं होगी। परन्तु क्या गोबर, सुअर का मांस, भंगियों अथवा सर्वसाधारण के जूते, निरापराध गौओं का मांस, ख़तना, ईसाइयों का चुल्लु भर पानी, बुद्धि अथवा अन्तःकरण को राई के दाने के समान भी शुद्ध कर सकते हैं? कदापि नहीं। भक्त कबीर जी ने सत्य कहा है कि—

ओ जावे मक्का ते ओ जावे कांशी, कहे कबीर दोहां गल फांसी।
ओ पूजिन मढ़ियां ओ पूजिन गोरां, कहे कबीर दोए लुट लये चोरां॥

* यह आर्य पथिक के काल के आंकड़े हैं। —अनुवादक।

पुनः दूसरे स्थान पर भक्त कबीर जी कहते हैं कि—

उन झटका उन बिस्मल कीनी दया दोहां से भागी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो आग दोहां घर लागी॥

सिख, राजपूत, ईसाई, हिन्दु, मुसलमान

पंजाब में हिन्दुओं की अपेक्षा सिख आबादी की दृष्टि से थोड़े होते हुए भी मुसलमान अधिक हुए और हो रहे हैं। इसी प्रकार पहाड़ी डोगरा, राजपूत और सूर खाने वाले भी यही लोग हैं। हमारे हिन्दु भाइयों को संभवतः ज्ञान नहीं कि मुहम्मदी दीन में सूर खाने, जुआ खेलने, शराब पीने और दुराचार करने से अधिक पाप और कोई नहीं माना गया। जब कि भारत, रोम, अरब, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान आदि में करोड़ों मुसलमान जुआ, शराब और दुराचार के पापों में संलग्न हैं। पुनः यह भी ज्ञात नहीं होता कि मुर्गा, सूर और भेड़ जैसे गन्दगी खाने वाले पशुओं के खाने से क्या आध्यात्मिक पवित्रता प्राप्त की जा सकती है?

बाबा नानक जी, जो कि सिखमत के संस्थापक थे, वह समस्त मांस विशेषतः सूर के मांस को भी हराम (निषिद्ध) मानते थे और शराब को भी। जैसा कि एक निष्पक्ष लेखक, जिस की पुस्तक को सब लोग प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं, जिस की सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव जी से बहुत मित्रता थी। लिखता है कि :—

"नानक क़ायल बतोहीद बारी बूद, व बा तनासुख नीज़ ईमान दाश्त, वखुमर व गोश्त व ख़ूक रा हराम शुमर्दा तर्के हैवानी कर्दा या इज्तनावे अज़ारे हैवाँ अमर मे फ़रमूद। गोश्तख़ुर्दन बअद अज़ ओ दर मुरीदानश शोहरत याफ़्त। व अंर्जुनमल कि अज़ ख़ुलफ़ाए बवास्ता ओस्त चूं कबह आं रा दर्याफ़्त अज़ अकले हैवानी मानेअ आमदो गुफ़्त ईं अमल मर्ज़ीए नानक नेस्त।"

(दबिस्ताने मज़ाहिब तअ़लीम दोम पृ० २२३)

अर्थ—"नानक जी एक ईश्वर को मानते थे, और पुनर्जन्म पर विश्वास रखते थे। शराब, मांस, सूर को निषिद्ध जान कर पशु हत्या छोड़ कर पशु-हिंसा से बचने की आज्ञा देते थे, और मांस भक्षण उन के पश्चात् ही उन के मुरीदों (अनुयाइयों) में शुरू हुआ और अर्जुनमल, जो उनके सम्बन्ध से उन के ख़लीफ़ों में से हैं। जब उन्हें इन की बुराई का पता लगा तो उन्होंने पशु मांस का निषेध किया और कहा कि मांस भक्षण नानक जी की इच्छा के विरुद्ध है।"

(दबिस्ताने मज़ाहिब शिक्षा २ पृ० २२३)

शुद्धि की यथार्थ पद्धति वही है कि जिस से बाबा नानक ने मरदाना को शुद्ध किया। अर्थात् वैदिक पद्धति से परमेश्वर की भक्ति सिखा कर न कि सूर आदि का मांस खिला कर। और सब से अधिक भूल हमारे भाईयों की यह है कि वह ईसाइयों को भी इसी अशुद्ध पद्धति से अर्थात् सूर मांस खिला कर शुद्ध करते हैं। सम्भवतः उन्हें ज्ञात नहीं कि वह ईसाई लोग सूर खाने को निषिद्ध नहीं मानते हैं। वे प्रायः खाते हैं। सूर ही क्या इन के मत में सब पशु हलाल हैं।

अतः यथार्थ पतित पावन अथवा पतितोद्धारण की पद्धति वही है, जो सच्छास्त्रों में लिखी है। जिस के अनुसार सनातनधर्म और वेद के अनुयाइयों का कर्तव्य है कि वह समस्त विधर्मियों तथा पतित व्यक्तियों को शुद्ध करके सत्यसनातन आर्यधर्म का अनुयायी बनाएं।

शुद्धि व्यवस्था

विधर्मियों की शुद्धि

उन को प्रथम अच्छे प्रकार कई दिन तक सद्धर्म की वास्तविकता बता कर उन के हृदय पटल से अन्य मतों का रंग उतार देना चाहिये। जब अच्छी प्रकार समझ आ जाए तो उन्हें सन्ध्या गायत्री अर्थ सहित सिखा कर वैदिक रीति से उन का नामकरण संस्कार और यदि यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हों तो यज्ञोपवीत कराकर समस्त विधि समझाने के पश्चात् सभा में शुद्ध कर लेना चाहिये, और गुण कर्मानुसार किसी वर्ण में मिला लेना चाहिये।

बलात् भ्रष्टों का प्रायश्चित्त

जब अच्छी प्रकार निश्चय हो जाए कि वह बल प्रयोग से अथवा किसी कठोर दबाव से विधर्मी हुआ था तो उसे बिना किसी ननुनच के प्रसन्नतापूर्वक मान और सत्कार के साथ अपने में मिला लेना चाहिये। उस के लिये केवल उस का आ जाना ही पर्याप्त है। किसी अन्य प्रायश्चित्त अथवा दण्ड की आवश्यकता नहीं।

स्वेच्छा से लोभ अथवा कामवश हुए विधर्मियों का प्रायश्चित्त

जितने वर्ष तक ऐसा व्यक्ति विधर्मी रहा हो, उतने मास और जितने मास रहा हो उतने दिन तथा जितने दिन रहा हो उतने घंटे उसकी परीक्षा करके जब ठीक निश्चय हो जाए कि वह पुनः पतित न होगा और उसकी श्रद्धा भी अधिक प्रतीत हो; वहां से सम्बन्ध भी टूट गया हो अथवा पतित करने वाली स्त्री भी उसके साथ आना चाहती हो तो एक सप्ताह सरल व्रत रखवा कर चोटी रखवाने और नाम बदलवाने के पश्चात् उपस्थित जनता से उस व्यक्ति की अनुनय विनय के पश्चात् उस बुराई की खराबी और सद्धर्म की महत्ता ठीक २ समझा कर हवन यज्ञ द्वारा उसे मिला लेना चाहिये। उसकी साथ वाली स्त्री को भी शुद्ध कर लेना चाहिये। यदि वह किसी वेश्या के पीछे पतित हुआ हो तो उससे शक्ति के अनुसार दण्ड लेना चाहिये। अन्यथा किसी धार्मिक सोसायटी अर्थात् आर्यसमाज आदि में उससे योग्य सेवा लेनी चाहिये। यदि वह यह सब बातें स्वीकार करे तो उसे धर्म से अच्छी प्रकार परिचित कराने के पश्चात् शुद्ध कर लेना चाहिए। यदि प्रायश्चित करने के अनन्तर वह पुनः किसी कुसंग से पतित हो जाए तो दूसरी बार उससे दुगना दण्ड और दुगनी सावधानता की आवश्यकता है।

शुद्धि-पत्र से पूर्व उससे पतित होने के विस्तृत वृत्त के साथ शुद्धि का प्रार्थना-पत्र लिखवा लिया जाए। पुनः शुद्ध करके उसे शुद्धि का प्रमाण-पत्र दिया जाए और उसकी एक प्रतिलिपि समाज के कार्यालय में स्मृति रूप में रखी जाए।

ओ३म्

शुद्धि-पत्रिका

आज तिथि———मास———शुदी या बदी———विक्रमी संवत्———तदनुसार———मास———सन्———को सब वृत्तान्त की अच्छी प्रकार जांच करने के पश्चात् अमुक———पिता का नाम———जाति———निवास स्थान———को शुद्ध किया गया है। हमें अब इससे कोई घृणा नहीं रही। यह प्रत्येक प्रकार से हमारे में सम्मिलित है। कोई भी इस से घृणा न करे। इस ने सबके सम्मुख अमुक सम्प्रदाय———से घृणा करके उससे पश्चाताप किया है। इस कारण इसे समस्त जनता के सम्मुख शुद्ध किया गया है।

मन्त्री प्रधान

आर्यसमाज आर्यसमाज

धर्म प्रचार

हमारी आर्य जाति अविद्यान्धकार की निद्रा में सो गई है। अब इसे जागते हुए संकोच होता है कहां वह ऋषि मुनियों का पवित्र युग और कहां उनकी वर्तमान संतति की यह दुर्गति । त्राहिमां त्राहि माम्।

प्रिय भाईयो ! ४६६० वर्ष हुए जबकि महाराजा युधिष्ठिर का चक्रवर्ती धर्मराज पृथ्वी में वर्तमान था। उस समय कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई बौद्ध, कोई जैन इस भारतवर्ष में विद्यमान न था। प्रत्युत सारे संसार में भी कहीं उनका चिह्न तक न था। समस्त प्रजा वैदिकधर्म और शास्त्रोक्त कर्म में संलग्न थी। शतियों पश्चात् जब अविद्या के कारण मद्यमांस व्यभिचार आदि इस देश में बढ़ने लगा। तब २४६० वर्ष बीते कि नेपाल प्रान्त में एक साखी सिंह नामक व्यक्ति ने जो नास्तिक था बुद्धमत चलाया। राजबल भी साथ था। उसी लोभ से बहुत से पेट पालक ब्राह्मण उसके साथ हो गए जिस से बुद्धमत सारे भारत में फैल गया। काशी, काश्मीर, कन्नौज के अतिरिक्त कोई नगर भारत में ऐसा न रहा जो बौद्ध न हो गया हो। जब यह मत बहुत बढ़ गया और लोग वेदधर्म से पतित हुए। यज्ञोपवीत आदि संस्कार छोड़ बैठे। तब दो सौ वर्ष के लगभग हुए कि एक महात्मा शंकर स्वामी (जिसे लोग स्वामी शंकराचार्य भी कहते हैं) ने कटिबद्ध हो शिष्यों सहित बौद्धों से शास्त्रार्थ करने आरम्भ किये। भला नास्तिक लोगों के हेत्वाभास वेद शास्त्रज्ञ के सम्मुख क्या प्रभाव डाल सकते थे ?

एक दो प्रसिद्ध स्थानों पर विजयी होने के कारण शंकर स्वामी का सिंहनाद दूर २ तक गुंजायमान हो उठा। बहुत से राजाओं ने वैदिकधर्म स्वीकार कर लिया। दस बारह वर्ष में ही शंकराचार्य के शास्त्रार्थों के कारण समस्त देश के बौद्धों में हलचल मच गई। शंकराचार्य के शास्त्रार्थों में यह शर्तें होती थीं कि :—

(१) जो पराजित हो अर्थात् शास्त्रार्थ में हारे वह दूसरे का धर्म स्वीकार करे।
(२) यदि साधू हो तो संन्यासी का शिष्य हो जाए।
(३) यदि यह दोनों बातें स्वीकार नहीं तो आर्यावर्त देश छोड़ जाये।

इन तीन नियमों के कारण करोड़ों बौद्ध और जैन पुनः वैदिकधर्म में आए और प्रायश्चित् किया। उनको शंकर स्वामी ने गायत्री बताई। यज्ञोपवीत पहनाए। जो बहुत हठी थे और पक्षपात की अग्नि में जल रहे थे। इस प्रकार के लाखों व्यक्ति आर्यावर्त से निकल गए। राजाओं की ओर से काश्मीर, नैपाल, केपकुमारी, सूरत, बंगाल आदि भारत के सीमान्त स्थानों पर संन्यासियों के मठ बनाए गए और वहां सेना भी रही जिससे बौद्ध वापिस न आ सकें।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि भारत, जिसमें वह धर्म उत्पन्न हुआ और एक समय ऐसा भी आया जबकि सारा भारत बौद्ध था परन्तु अब उस भारत में उस मत का व्यक्ति भी दृष्टिगत नहीं होता। भारत के चारों ओर लंका, ब्रह्मा, चीन, जापान, रूस, अफ़गानिस्तान, काफ़िरस्तान, बलोचिस्तान आदि में करोड़ों बौद्ध हैं।

जैनी अब भी भारत में बहुत ही न्यून अर्थात् ६—७ लाख हैं। यह लोग छिप छिप कर कहीं गुप्तरूप से रह गए। महात्मा शंकराचार्य जी ३२ वर्ष की अवस्था में परलोक सिधार गए। अन्यथा देखते कि वही ऋषि मुनियों का युग पुनः लौट आता। शंकराचार्य की ओर से जन्म के जैनियों और बौद्धों के लिये केवल यही प्रायश्चित था कि एक दो दिन व्रत रखवा कर उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया जाए और गायत्री मन्त्र बताया जाए। परिणामस्वरूप २५ करोड़ मनुष्य प्रायश्चित कर, गायत्री पढ़, यज्ञोपवीत पहन वर्णाश्रम धर्म में आगये। जब कि चार पांच सौ वर्ष तक वह बौद्ध और जैन रहे। बौद्ध लोग वर्णाश्रम को नहीं मानते। खाना पीना भी उनका वेद विरुद्ध है। वह सब प्रकार के मांस खा लेते हैं। चीन के इतिहास और ब्रह्मा के वृत्तान्त से यह बात सब लोग ज्ञात कर सकते हैं। १२०० वर्ष हुए कि यहां पर मुसलमानों ने सूरत और अफ़ग़ानिस्तान की ओर से चढ़ाई की। आर्यावर्त में वैदिक धर्म छूट जाने और पुराणों के प्रचार के कारण सैंकड़ों मत थे। इन वेद विरुद्ध मतों के कारण घर २ में फूट हो रही थी। धर्म के न रहने और वाममार्ग के फैलने से व्यभिचार भी बहुत फैला हुआ था। व्यभिचार प्रसार तथा अल्पायु के विवाहों के कारण बल, शक्ति, ब्रह्मचर्य और उत्साह का नाश हो रहा था। ऐसी अवस्था में एक जंगली जाति का हमारे देश पर विजयी होना कौन सा कठिन कार्य था? हमारी निर्बलता का एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि सोमनाथ के युद्ध में महमूद के साथ १०—१५ हजार सेना थी और हिन्दु राजाओं के पास १०—१५ लाख सेना थी। परन्तु हिन्दु ही पराजित हुए और महमूद विजयी हुआ। आप जानते हैं कि सौ हजार का एक लाख होता है। मानो एक अफ़ग़ान के सम्मुख सौ हिन्दु थे। ऐसे अवसर पर पराजित होने का कारण ब्रह्मचर्य की हानि और धर्माभाव ही था और कोई कारण इसके अतिरिक्त न था। आप ध्यान से विचार कर लें। तारीखे हिन्द में लिखा है कि इस देश में सर्व प्रथम बापा (राजा चिचौड़) एक मुसलमानी पर आसक्त हो कर मुसलमान हो गया। परन्तु लज्जा से खुरासान चला गया और वहां ही मर गया। उसके पीछे उसका हिन्दु बेटा राजगद्दी पर बैठा।

दूसरा इस देश में सुखपाल (राजा लाहौर) धन और राज्य के लोभ से महमूद के समय में मुसलमान हो गया। जिस पर महमूद उस को राजा बना कर चला गया। महमूद के चले जाने के पश्चात् वह पुनः हिन्दु हो गया और ब्राह्मणों ने उसे मिला लिया।

काश्मीर एक बादशाह के अत्याचार से बल पूर्वक मुसलमान किया गया। अभी तक उन की उपजातियां भट्ट कौल आदि हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन सब में से जो २ मुसलमान हुए, प्रायः बल प्रयोग से हुए। कोई प्रसन्नता, आनन्द अथवा इसलाम को पसंद करके मुसलमान नहीं हुआ।

बहुत से लोग जागीर आदि के लोभ से मुसलमान हुए जिन की वंशावलियां स्पष्ट बताती हैं कि पिता पितामह अथवा दो तीन पीढ़ी से ऊपर वे हिन्दु थे।

बहुत से हिन्दु युवक मुसलमानी वेश्याओं के प्रेमपाश में बन्दी हो कर विधर्मी हुए। जो अपने प्रेमियों को इसी दीन की शिक्षा दिया करती हैं। जिन के पहले और अब भी सहस्रों उदाहरण प्रत्येक प्रान्त और भाग में मिलते हैं।

बड़े २ योग्य पण्डित भी वेश्याओं के अन्धकूप में डूब गये। उदाहरणार्थ गंगा लहरी के रचयिता पण्डित जगन्नाथ शास्त्री हैं।

लाखों सूरमा वीर हृदय वाले महात्मा जान पर खेल कर धर्म पर बलि दे गए। सीस दिये किन्तु धर्म नहीं छोड़ा। उदाहरणार्थ देखो शहीदगंज और टाड राजस्थान।

आप जानते हैं जब मुसलमान नहीं आए थे। तो उन की ज़ियारतें, क़बरें, मक़बरे, ख़ानक़ाहें और गोरिस्तान भी इस देश में न थे। जब ८—६ सौ वर्ष से मुसलमान आए तब से ही भारत में क़बर-परस्ती शुरू हुई। जो अत्याचारी मुसलमान हिन्दु वीरों के हाथ से मारे गए। मुसलमानों ने उन को शहीद बना दिया और हिन्दुओं को जहन्नमी (नारकी. शोक शत सहस्र शोक।

हमारे पिता पितामहों की रक्त वाहिनी असिधारा ने जिन अत्याचारियों का वध किया, हमारे पूर्वजों के हाथों से जो लोग मर कर दोज़ख (नरकाग्नि) में पहुँचाए गए। हम अयोग्य सन्तान और कपूत पुत्र उन्हें शहीद समझ कर उन पर धूपदीप जलाते हैं। इस मूर्खता पर शोकातिशोक! इस अपमान की कोई सीमा नहीं रही। हे परमेश्वर! यह दुर्गति कब तक रहेगी?

ऐ हिन्दु भाईयो! सारे भारत में जहां पक्के और ऊँचे २ क़वरिस्तान देखते हो, वह लोग तुम्हारे ही पूर्वजों के हाथों से वध किये गये थे। उनके पूजने से तुम्हारी भलाई कभी और किसी प्रकार सम्भव नहीं। प्रथम अच्छी प्रकार सोच लो।

अगर पीरे मुर्दा बकारे आमदे।
ज़ि शाहीन मुर्दा शिकार आमदे॥

यदि मरा हुआ पीर काम आ सकता तो मृत बाज़ भी शिकार कर सकते। मुसलमानों ने मन्दिर तोड़े, बुत फोड़े। लाखों का वध किया। इस कठोर आघात के कारण लोग मुसलमान हुए। देखो तैमूर का रोज़नामचा (डायरी)।

परन्तु भारत ऐसा दुर्भाग्य शाली न था कि ईरान, रोम, मिश्र और अरब की भाँति कभी न जागता। बीच २ में जगाने वाले उसे जगाते रहे।

मुसलमानों के अत्याचार से ही सती प्रथा प्रचलित हुई ताकि ऐसा न हो कि वे निर्दयी देवियों को पकड़ कर ख़राब करें। रानी पद्मिनी का सती होना और अलाउद्दीन का अत्याचार। इस घटना से सम्बन्धित इतिहास ध्यान से पढ़ो।

पहला प्रायश्चित्त—सब से प्रथम आर्यावर्त में शंकराचार्य जी ने २५ करोड़ बौद्धों का प्रायश्चित्त करा कर उन को वैदिक धर्म में प्रविष्ट कराया।

दूसरा प्रायश्चित्त—महाराजा चन्द्रगुप्त ने किया अर्थात् सल्यूकस-बाबल के अधिपति (यूनान के राजा) की पुत्री से विवाह किया जिस को आज दो सहस्र एक सौ वर्ष हुए।

तीसरा प्रायश्चित्त—राना उदयपुर ने किया जिस ने ईरान के राजा नौशेरवां पारसी की कन्या से, जो कि कुस्तुन्तुनिया के राजा सारस की दोहती (दुहित्री) थी, उस से विवाह किया जिसे १३ सौ वर्ष हुए हैं।

चौथा प्रायश्चित्त—लाहौर के पण्डितों ने राजा सुखपाल का कराया जिस को आठ सौ वर्ष हुए हैं।

पाँचवां प्रायश्चित्त—मरदाना मुसलमान का बावा नानक जी ने कराया जिस को चार पाँच सौ वर्ष हुए और उस के शव को ख़ुर्जा में अग्नि में जलाया।

छठा प्रायश्चित्त—परिडत बीरबल और राजा टोडरमल ने अकबर बादशाह का कराया, और उस का नाम महाबलि रखा। गायत्री सिखाई, संध्या पढ़ाई, यज्ञोपवीत पहनाया और हिन्दु बनाया। गोवध निषेध और मांसाहार से घृणा हो गई। उस ने डाढ़ी के साथ इस्लाम को सलाम कर दिया।* आज्ञा दी कि जो हिन्दु भूल से, अज्ञान से, प्रेमपाश में बन्ध कर अथवा लोभ से मुसलमान हो गया हो। यदि वह अपने हिन्दुधर्म में आना चाहता हो तो वह स्वतन्त्र है। उसे मत रोको। यदि कोई हिन्दु स्त्री किसी मुसलमान के फन्दे में मुसलमानी होना चाहे तो उसे कदापि मुसलमानी न बनने दिया जाए। प्रत्युत सम्बन्धियों को सौंपी जाए। विस्तार से देखो। (दबिस्ताने मज़ाहिब पृ० ३३५, ३३८ शिक्षादश नवल किशोर)

सातवाँ प्रायश्चित्त—गुरु गोविन्द सिंह जी ने कराया। अत्याचारी औरंगज़ेब के समय में उन्होंने समस्त मज़हबियों को सिंह बना कर वैदिकधर्म में सम्मिलित किया। इस के अतिरिक्त उन के दो सिख एक वार मुसलमानों ने पकड़ कर बलात् मुसलमान कर दिये थे। जब समय पाकर वह उन के पास आए तो उन को पुनः हिन्दु बना लिया। सिंह बनाया और धर्म में मिलाया।

आठवाँ प्रायश्चित्त—प्रतापमल ज्ञानी ने कराया। यह कार्य भी औरंगज़ेब बादशाह के समय में हुआ। जबकि एक हिन्दु लड़का मुसलमान हो गया था। उस को शुद्ध करके वैदिक धर्म में मिलाया। (देखो दबिस्तान मज़ाहिब शिक्षा १० पृ० २३९ सन् १२९९ हिजरी नवल किशोर)

नवाँ प्रायश्चित्त—महाराजा रणजीत सिंह ने कराया। स्वयं अपने और अपने कई सरदारों के लिये मुसलमानों की लड़कियां लीं और उन को हिन्दु बनाया।

दसवाँ प्रायश्चित्त—महाराजा रणवीर सिंह जम्मू कश्मीर ने किया जब कि तीन राजपूत सिपाही लद्दाख में मुसलमान हो गए थे। बड़ी प्रसन्नता पूर्वक तीनों को पुनः हिन्दु धर्म में सम्मिलित किया। जम्मू के विद्वान् परिडतों ने रणवीर प्रकाश एक ग्रन्थ बनाया, जिस की दृष्टि से चालीस पचास वर्ष से मुसलमान हुए लोगों को हिन्दुधर्म में सम्मिलित किया जा सकता है। काशी के परिडतों ने भी इस से सहमति प्रकट की और व्यवस्था दी। एक बहुत बड़ी पुस्तक प्रत्येक सभा को जम्मू से बिना मूल्य मिल सकती है।

ग्यारहवाँ प्रायश्चित्त—श्रीमान् स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कराया। अर्थात् क़ाज़ी मुहम्मद उमर साहिब सहारनपुर निवासी को मुसलमान से आर्य बनाया और वैदिकधर्म पर चलाया। वह अब देहरादून में ठेकेदार हैं। जिन का नाम अलखधारी है, और वह देहरादून समाज के सदस्य हैं।

बारहवाँ प्रायश्चित्त—स्वामी जी के परलोक गमन के पश्चात् श्रीमती परोपकारिणी सभा ने कराया। अर्थात् श्री मौलवी अब्दुलअज़ीज़ साहिब को जो पंजाब यूनिवर्सिटी की मौलवी फ़ाज़िल की डिग्री प्राप्त कर चुके हैं और जो अब गुरदासपुर (पंजाब) में ऐक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर हैं†। शुद्ध किया और आर्य बनाया जिन का शुभ नाम अब राय बहादर हरदस राम जी है।

तेरहवाँ प्रायश्चित्त—सन्त ज्वाला सिंह जी ने कराया जिन्हों ने न्यूनातिन्यून चालीस मुसलमानों को वैदिक धर्म में लाकर शुद्ध किया।

---

* वर्तमान इतिहासकारों ने अकबर का हिन्दु होना कहीं नहीं माना—अनुवादक।

† यह घटना आर्य पथिक की अपने काल की है —अनुवादक।

चौदहवां प्रायश्चित्त—१५ वर्ष हुए श्री रामजी दास ईसाई ने सात लड़कों को ईसाई बनाया था। क़सूर के पण्डितों और महात्मा लोगों ने उन को शुद्ध किया। अब वे लड़के अच्छे २ पदों पर हैं।

पन्द्रहवां प्रायश्चित्त—आर्य समाज के सदस्यों ने किया। अर्थात् राजपूताना, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तादि में न्यूनातिन्यून दो सहस्र मुसलमानों, ईसाईयों और जैनियों को शुद्ध करके वैदिक धर्म में लाकर आर्य बनाया। सन्ध्या गायत्री सिखा कर प्रायश्चित्त कराया। गौ ब्राह्मण का हितैषी बनाया। अन्धकार से निकलवाया। क्योंकि यह संख्या प्रतिदिन उन्नति पर है। अतः ठीक संख्या बताना कठिन है।

प्रिय भाईयो! इस विनम्र प्रार्थना को पढ़ कर ५ मिनिट तक हृदय में विचार करो कि यदि आप इसी प्रकार बेसुध रहे तो आप की क्या अवस्था होगी।

आठ सौ वर्ष के अन्दर आप २४ करोड़ से न्यून होते होते २० करोड़ रह गए। ४ करोड़ तुम में से मुसलमान हो गए। आप गणित विद्या जानते हैं। अरब अ़ मुतनासिब को कार्य में लाएं :—

प्रश्न

चार करोड़ हिन्दु ८ सौ वर्षों में मुसलमान हो गए तो २० करोड़ कितने वर्षों में होंगे ?

उत्तर

८०० वर्ष × २० करोड़ ÷ ४ करोड़ = उत्तर ४००० वर्ष में। भाईयो! अवश्य सम्भलो। आँखें खोल कर देखलो। कुम्भकर्ण की निद्रा मत सोवो। धर्म नष्ट हो रहा है।

लोग वेद के धर्म को नष्ट कर रहे हैं। लोभ, लालच, धोखे में फंसा कर तुम्हारे बच्चों को म्लेच्छ बना रहे हैं। यदि आप इसी प्रकार सोते रहे। करवट न बदली तो ४००० वर्ष के पश्चात् एक भी वैदिक धर्म का अनुयायी न रहेगा। सब म्लेच्छ हो जाएंगे। केवल यही एक नदी आप के धार्मिक भवन को गिराने वाली नहीं है। एक और नद भी अभी जारी हुआ है। उसका नाम ईसाई धर्म है।

दो सौ वर्ष का समय हुआ कि ईसाई पादरियों ने यहां आकर इंजील सुनानी शुरू की। उस समय इस देश में एक भी ईसाई न था। तुम्हारे बहुत से अकाल पीड़ित लोगों को मद्रास और अन्य भिन्न भागों में इन पादरियों ने लोभ देकर ईसाई बना लिया। सामायिक जन गणना से ज्ञात हुआ कि इस समय ईसाई बीस लाख हैं।

क्या कभी आपने सोचा कि इस समय तक कितने ईसाई हो चुके हैं? भाईयो! परमेश्वर के लिये आँखें खोलो। नींद से जागो। मुख प्रक्षालन करके स्नान करो। अपनी अवस्था सम्भालो। तुम्हारे धर्मरूपी पेड़ को दोनों ओर से दीमक लग रही है। अपने आप को बचालो। अन्यथा तुम्हारा ठिकाना न मिलेगा। चिह्न तक न रहेगा।

मद्रास आज कल सौभाग्यशाली है। जहां सैंकड़ों घरों ने, जो अकाल के कारण ईसाई होगये थे, ईसाईधर्म छोड़ दिया है। ब्राह्मणों ने उन सहस्रों व्यक्तियों को वैदिकधर्म में मिला लिया है। ईसाई

रो रहे हैं। कुछ बस नहीं चलता। तुम्हें भी चाहिए। दया करो। कृपा करो। अपने भोले भाले बेसमझ बच्चों का जीवन व्यर्थ न गंवाओ। उनको बचा लो। जो शरण आये उसे ठीक करलो। प्रायश्चित करा के शास्त्रोक्त रीति से शंकर स्वामी की भाँति, बाबा नानक की भाँति, चाणक्य ऋषि की भाँति, महाराजा रणवीर सिंह की भाँति मिलालो। अन्यथा स्मरण रखो कि मुसलमान और ईसाई रह करके वे जितनी हत्यायें करेंगे, उन सबका पाप तुम्हारे गले पर होगा। परोपकारी बनो। जगत् का भला करो। बिछड़े हुए भाईयों को प्रायश्चित से शुद्ध करके मिलाओ।

—: o :—

ओ३म्

पुनर्जन्मप्रमाण

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च ॥
ऐ नामे तो आरायशे अनवाने कलाम । वै यादे तो आसायशे हर बे आराम ॥*
दर हय्यजे इमकान तसव्वुर हरगिज । बे नाम तो आग़ाज़ न गीरद अंजाम ॥*

हे जगदाधार स्वामिन् ! आप की सर्वोपरि शक्तिमत्ता और आप की सर्वथा निर्दोष बुद्धिमत्ता का कहना एवं बखान मानव-शक्ति की पहुँच से बहुत ऊपर है । आप का अटल न्याय और नियम भी आप की पवित्र सत्ता के समान ही अटल और विकार रहित है । इस संसार में जो उत्तम व्यवस्था वर्तमान है, एवं इस अखिल ब्रह्माण्ड में जो सुनियोजित अनुक्रम वर्त्तमान है, वह पग-पग पर आप की सत्ता और महत्ता की गवाही पुकार-पुकार कर दे रहा है । जैसा कि किसी ने कहा भी है:—

हमः जर्रात अज माह ता बमाही ।
ब वहदानियतश दादह गवाही ॥†

हमा अजज़ाय कौन अज मरज़ ता पोस्त ।
चूं वा बीनी दलीले वहदते ओस्त ॥+

बड़े-बड़े विद्वान्, सुयोग्य वैज्ञानिक एवं तत्त्ववेत्ता दार्शनिक महानुभाव, तत्वज्ञान और भौतिक विज्ञान के उच्च सिद्धान्तों के आधार पर जिस उन्नत स्थान पर पहुँचे हैं, वह तेरी ऊँची अट्टालिका की

---

* ये दोनों शेर फारसी-भाषा के हैं । इन का अर्थ मूल पुस्तक में नहीं लिखा है । इनका अर्थ इस प्रकार है :—

"हे परमेश्वर ! तेरा नाम वाणी की शोभा को बढ़ाने वाला है । हे परमेश्वर ! तेरा स्मरण सभी दुखियों को सुखी बनाने वाला है । हे परमात्मन् ! यदि कोई कार्य तुझे स्मरण किये बिना ही आरम्भ किया जाये, तो उसके सफल होने की कुछ भी सम्भावना नहीं है ।" —अनुवादक ।

† द्यूलोक से लेकर इस पृथिवी पर्यन्त चन्द्र, सूर्य, ग्रह, उपग्रह, सागर, पहाड़ आदि-आदि इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण तेरी सत्ता, महत्ता और एकता का साक्षी है ।

+ इस ब्रह्माण्ड का अंग, भूत, जड़ और चेतन प्रत्येक पदार्थ, उस सर्वोपरि प्रभु की एकता, सत्ता तथा महत्ता का प्रमाण है । —अनुवादक ।

प्रथम सीढ़ी के समान है। आकाश और पाताल के गुप्त रहस्यों का बखान करने वाले गणितज्ञ तथा ज्योतिषी भी, जितना अधिक विचार करते हैं, वे उतना ही अधिक एवं सूक्ष्म बोध तेरी महिमा का प्राप्त करते हैं। इसी लिये तत्त्वज्ञान के सर्वप्रथम उपदेशकों अर्थात् आर्यावर्त्त के महर्षियों ने अपने अनुभूत—संस्मरणों में आप की महिमा के विषय में लिखा है :—

सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः ।†

समुद्र की लहरों, पर्वतों की गुफाओं, हवा के झोंकों और ग्रहों तथा उपग्रहों की गति-प्रगतियों में, हम जिधर भी देखते हैं, तेरी ही पवित्र रचनाओं की सुन्दरता मन-मोहिनी बन कर, मन को मोह लेती है। हम आश्चर्य मग्न और आनन्दविभोर हो कर विचार करते हैं कि किस २ पदार्थ का वर्णन करें? सत्य भी यही है कि हमें अवश्य ही आश्चर्यान्वित होना चाहिये। कोई ससीम=सीमावान असीम का अनुमान, कोई अल्पज्ञ सर्वज्ञ का विचार, कोई प्राणधारी जीव उस पारब्रह्म एवं महद्—ईश का ध्यान, अपनी शक्ति से अधिक कर भी कैसे सकता है?

विचार का विषय है कि सूर्य हमारी इस पृथिवी से करोड़ों गुणा बड़ा है। फिर एक ही सूर्य नहीं है; अपितु वर्तमान विज्ञान और प्राचीन ब्रह्मज्ञान अर्थात् वेद के अनुसार सूर्य तो बहुत हैं। ऋग्वेद ३—४—६—११ में उल्लेख है :—

बह्वः सूर्याः ।

अर्थात् सूर्य बहुत हैं। * अस्तु, यह इतना बड़ा संसार, और उस में हजारों सूर्य मण्डल एवं हजारों चन्द्र-मण्डल, फिर लाखों प्रकार के शरीरधारी जीव-जन्तु, और उन-उन के कृत्य, मीलों गहरे समुद्र तथा कोसों ऊँचे पहाड़, हम सब का एक मात्र स्वामी और वास्तविक रचयिता जान कर, जब वेद-वेत्ता ऋषियों ने एकान्त स्थान में समाधि लगा कर आप की पवित्र सत्ता और महत्ता का ध्यान एवं विचार किया, तब सहसा ही उन्हें अपने अन्तरात्मा में यह अमोघ एवं दिव्य वाणी सुनाई दी :—

तमीश्वराणाँ परमं महेश्वरं, तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्, विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

जब बड़े-बड़े सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, उपग्रह दिन-रात गतिमान् रहकर भी आप की सत्ता और महत्ता का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते, जब शान्त महासागर जैसे सुविस्तृत सागर भी आप की रचना विभूतियों की तुलना में, एक जलबिन्दु से भी न्यून हैं, जब हिमालय जैसे ऊँचे पर्वत भी मूक एवं अचल खड़े हैं, जब 'कपिल' और 'कणाद' जैसे ऋषि-मुनियों ने भी आप का शरणागत हो कर रहने से भिन्न और कोई उपाय मानवता के कल्याण का अपने उपदेशों में नहीं बतलाया, तब हे जगदीश! यह अल्पज्ञ जीव आप की महिमा का वर्णन क्या कर सकता है?

ऐ कार कुशाये हरचे हस्तन्द, नामे तो कलीदे हरचे बस्तन्द । १

---

† परमेश्वर सूक्ष्म दर्शियों द्वारा सूक्ष्म बुद्धि द्वारा दिखाई देता है। ऋ० ९/११४/३

* नाना सूर्याः ।

१—हे प्रभु! तू प्रत्येक काम को बनाने वाला है। और तेरा नाम प्रत्येक बन्द वस्तु को खोलने के लिये, अर्थात् अज्ञात रहस्यों को प्रकट करने के लिये कुँजी के समान है।

ऐ हेच खत्ते नगश्ता अव्वल, बे बख़्ते नाम तो मुसज्जल ॥ २ ॥
ऐ महरमे आलमे तहय्युर, आलम जो तो हम तही व हम पुर ॥ ३ ॥
ऐ मक़सदे हिम्मते बुलंदाँ, मक़्सूद दिले नियाज़मन्दां ॥ ४ ॥
ऐ सुरमाकशे बुलंदबीनाँ, दर बाज़ कुन दरूं नशीनाँ ॥ ५ ॥
साहब तुई आँ दिगर कुदामंद, सुलतान तुई आँ दिगर ग़ुलामंद ॥ ६ ॥
राहे तो बनूर लायज़ाले, अज़ शिर्क व शरीक हर दो ख़ाली ॥ ७ ॥
दर राह तो हर किरा वजूदस्त, मशग़ूल परसतिश ब सजूदस्त ॥ ८ ॥
ऐ वाहिबे अक्ल व साहबे जां, हुक्मे तो दरजहानस्त यकसां ॥ ९ ॥
हरफ़े बग़लत रिहा न करदी । यक नुक्ता दरो ख़ता न करदी ॥ १० ॥
दर आलम आलिम आफ़रीदन । ब ज़ीं नतवां क़लम कशीदन ॥११॥
ऐ अक्ल मरा किफ़ायत अज़ तो । जुस्तन ज़ि मन व हिदायत अज़ तो ॥१२॥
व आँगह कि नफ़स ब आख़िर आयद । हम ख़ुतबये नाम तो सर आयद ॥१३॥

२—हे भगवन् ! तेरे नाम के बिना तो एक रेखा भी नहीं खींची जा सकती ।

३—हे अद्भुत संसार के ज्ञाता और निर्माता ! यह संसार तुझ से रहित भी है, और परिपूर्ण भी है ।

४—हे पुरुषार्थियों के जीवनोद्देश्य ! और हे भक्तों के हृदय के परम अभीष्ट देव !

५—हे दीर्घदर्शी जनों के उत्तम नेत्रांजन ! तू अन्दर बैठने वालों के लिये द्वार को खोल !

६—साहब तो तू ही है, दूसरे कौन हैं ? सम्राट् तो बस तू ही है, दूसरे सब तो तेरे दास हैं ।

७—तेरा मार्ग न घटने वाले प्रकाश से सुप्रकाशित है । तू एक और अद्वितीय है । न कोई तुझ जैसा है, और न ही कोई तेरा शरीक है ।

८—तेरे मार्ग में जिस जिस का अस्तित्व है, वह प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक प्राणी तेरी ही उपासना में व्यस्त है ।

९—हे बुद्धिदाता ! हे प्राणाधार ! तेरा आदेश और उपदेश सम्पूर्ण संसार के लिये एक ही जैसा है ।

१०—तूने एक अक्षर भी अशुद्ध नहीं रहने दिया । तेरे ज्ञान में एक विन्दु की भी भूल नहीं हुई है ।

११—संसार में तू ऐसा पूर्णज्ञानी सृष्टिकर्त्ता है, कि तेरी सत्ता और तेरी सृष्टि के विषय में कोई भी लेखनी को नहीं उठा सकता ।

१२—हे प्रभो ! मैं तुझ से बुद्धि का दान प्राप्त करके ही बुद्धिमान् बना हूं । जब भी मैं अपने मनमें कामना करता हूं, उसी समय मैं तेरा उपदेश प्राप्त कर लेता हूं ।

१३—जिस समय किसी का प्राणान्त होने लगता है. तब जो भी शब्द सुनाई देता है, वह तेरी महिमा को ही जताता है ।

खुलकुल कुमा फ़िल अरज़े जमीअन ।

पृथ्वी के ऊपर जो कुछ भी है, वह सब तुम्हारे लिये ही उत्पन्न किया गया है ।

पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने से चिकित्सा-शास्त्र का व्यर्थ होना इस बात से सिद्ध होता है कि जब हमने यह स्वीकार कर लिया कि सभी रोग जो भी मनुष्यों और पशुओं को होते हैं, वे पिछले जन्म के कर्मों का ही फल हैं, तब चिकित्सक और वैज्ञानिक सृष्टि के नियमों तथा रोगों के कारणों का विचार एवं अनुसन्धान ही क्यों करेंगे ? और जब यह भी पुनर्जन्मवाद के आधार पर स्वीकारा गया कि अपराधों का दण्ड भोगना आवश्यक है, और उनका टलना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है, स्वयं ईश्वर भी अपनी अदालत से उसको टाल नहीं सकता, तब चिकित्सा करने, और प्राकृतिक नियमों की खोज करने से लाभ ही क्या है ? और कौन है जो हमें कर्म-भोग-चक्कर से छुड़ा सकता है ? ईश्वर की दया और कृपा भी तो नहीं छुड़ा सकती । रोगों के कारणों को जानना भी व्यर्थ, और औषधियों का प्रयोग-विज्ञान भी बेकार । क्या लाभ ?

मौलवी साहब के सातवें उत्तर का खण्डन

मौलवी साहब ! आपको ऐसी नई बातें क्यों और कहां से सूझ रही हैं ? क्या उसी पवित्र आत्मा ने आपके पास सन्देश लाने आरम्भ कर दिये हैं, जो किसी समय फाख़ता—घुगी बनकर किसी समय आसमान से उतरा करती थी ? या जो कबूतरी बन कर, बैल के सींग पर अण्डे दे गई थी ? यदि आप किसी गंवार आदमी को भ्रम में फंसावें, तो शायद वह आपके माया जाल में फंस जावे । परन्तु हम लोगों को तो उस सबके सच्चे सन्मार्ग प्रदर्शक ने ऐसे-ऐसे सभी भ्रान्तवादों से सावधान कर रखा है । अतः हम डंके की चोट से आप को समझाते हैं कि जिसे आप चिकित्सा-शास्त्र कहते हैं अर्थात् आयुर्वेद, वह तो पवित्र यजुर्वेद का उपवेद है । उस में यजुर्वेद के उन मन्त्रों का विस्तृत व्याख्यान है, जिनमें रोग-विज्ञान तथा औषध-विज्ञान का उपदेश दिया गया है। वह व्याख्यान सबके हितैषी और तत्वज्ञानी ऋषियों का किया हुआ है । अतः उस से लाभ उठाना और उसके नियमों के अनुसार आचरण करना तो ईश्वर के आदेशों का पालन करना ही है । यह तो नियम-निर्माता और न्याय-नियन्ता के ही आदेशों का पालन है। इस विषय में हम और आप दोनों ही एकमत हैं ।

जिस प्रकार बदपरहेज़ी करने, या किसी वस्तु का अनुचित प्रयोग करने से रोग अवश्य ही होते हैं, उसी प्रकार संयम पूर्वक रहने एवं औषध इत्यादि का उचित उपयोग करने से रोग दूर भी हो जाते हैं । बदपरहेज़ी एक बुरा काम है । उसका फल ईश्वर दुःख के रूपमें देता है । इसी प्रकार ईश्वर ने अपनी दयालुता से औषधियों में रोगों को दूर करने के गुण रखे हैं । और वेदों में उनके विधि-पूर्वक खाने के निर्देश भी दिये हैं । अतः रोगों के होने पर ईश्वर के आदेशों का पालन करते हुए औषधियों को विधि-पूर्वक खाना भी सर्वथा उचित है । इस संयम का फल ईश्वर सुख के रूप में देता है । और रोगों को दूर कर देता है । जब सब औषधियों में रोग नाशक गुण ईश्वर की तरफ से ही हैं, तब औषधियों की खोज भी आवश्यक है । और आवश्यकतानुसार उनका खाना-खिलाना भी कर्तव्य है । यदि असंयम करना कर्म है । तो क्या संयम करना कर्म नहीं है ? कि संयम का फल ही न मिले ।

करदाये ख़ेश मिसलस्त कि मे आयद पेश ।*

* एक कहावत है कि जैसा अपना किया, सदा ही आगे आता है । —अनुवादक ।

हम और भी एक रहस्य आपको समझा देते हैं। वह यह कि जब तक दुःख की अवधि पूरी नहीं होती, तब तक दुःख दूर नहीं होता। सम्राट् सिकन्दर के साथ अरस्तू और अफ़लातून जैसे सुप्रसिद्ध चिकित्सक मौजूद थे। परन्तु जब शराब ने उसका कलेजा फूंका, तब किसी की औषधि का कुछ भी फल न निकला।

स्वयं हज़रत मुहम्मद साहब की जीवन-घटना है, जब यहूदियों ने उनको विष दिया, तब एक वर्ष तक कष्ट भोगते रहे। उनकी चिकित्सा के लिये, यद्यपि जबराइल जैसे दिव्य वैद्य भी मौजूद थे, तथापि कुछ भी कष्ट कम न हो सका। और न ही उनके वे दान्त फिर पैदा हुए, जो एक बार शहीद हो गये थे।

मूसा एक पैगम्बर था, और उसकी वाणी में हकलापन था। यदि बाईबल की कहानियों को सत्य मान लिया जाये, तो मूसा ने लोगों को अपनी करामातों के हज़ारों चमत्कार दिखाये, परन्तु अपनी वाणी को वह ठीक नहीं कर सका। किसी ने ठीक ही कहा है :—

रंगरेज़ बरीशे ख़ुद दरमान्दा। †

अभी कुछ समय पूर्व की घटना है। जर्मनी का बादशाह बीमार हुआ। बड़े-बड़े नामी विद्वान् और चिकित्सक मौजूद थे। परन्तु किसी की भी चतुराई काम न आई। यदि रचा चिकित्सा-विज्ञान, जिसकी सत्यता के चमत्कार आप जैसे "हवारी" रात दिन स्वयं अपनी ही आँखों से देखते हैं, वास्तव में सच्चा है, तो आपके मौलाना एवं पूज्य वर गुरु, हज़रत, क़ादियानी नबी के सुपुत्र क्यों मर गये? उनके तो स्वस्थ होने की तो जबराइल ने भी भविष्य वाणी की थी।

आप के मिथ्या विचार के खण्डन में शेख़ सादी का कथन बहुत उत्तम है। यथा—

चूं मख़बूत शुद ऐतादुलमिज़ाज। न अज़ीमत असर कुनद न इलाज॥ १॥

पुनर्जन्मवाद को स्वीकार ने से तो मनुष्य का ध्यान चिकित्सा–शास्त्र की ओर और भी अधिक जाना है। यही कारण है कि सब से पहिले आर्यों ने ही चिकित्सा-विज्ञान में सर्वाधिक उन्नति की थी। यद्यपि इन दिनों आयुर्वेद की शिक्षा के लिये पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था नहीं है, तथापि—

एक सुयोग्य डाक्टर ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है :—

ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक योग बहुत कठिन और भयंकर रोगो के निवारण के लिये अब भी चिकित्सा शास्त्र में आयुर्वेद से नकल किये हुए पाये जाते हैं कि उन के सामने यूनानी और अंग्रेजी दोनों ही प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां सर्वथा नगण्य हैं। [विस्तार के लिये देखो नुस्ख़ा ख़ब्त-ए अहमदिया अध्याय तीसरा।]

---

† रंगरेज़ ख़ुद अपनी दाढ़ी के रंग को न सुधार सका। —अनुवादक।

१—जब मनुष्य के मन का साधारण ढंग ही बिगड़ जाता है, तब न कोई मन्त्र काम आता है और न कोई इलाज। —अनुवादक।

मैंने आप के कई मित्रों से सुना है कि आप भी यूनानी चिकित्सा-पद्धति के स्थान पर आयुर्वैदिक-चिकित्सा-प्रणाली को ही पसन्द करते हैं। और उसके अनुसार चिकित्सा भी किया करते हैं।

हां, यदि पुनर्जन्मवाद को न स्वीकारा जाये, तब तो चिकित्सा-प्रणालियों का सम्पूर्ण पुस्तक-भण्डार आग में झोंकने के योग्य ही रह जायेगा। और सभी यत्न व्यर्थ होंगे। क्यों? इस लिये कि दुःख लगाया ईश्वर ने, ईश्वर के दिये—लगाये दुःख को दूर करने के लिये हकीमों, डाक्टरों और वैद्यों के पास जाना, ईश्वरीय आदेशों की अवज्ञा ही होगा। जिसने सर्व प्रथम ईश्वर का आदेश न माना था वह अपराधी शैतान था। यही कारण है कि मुसलमान हकीम, जो चिकित्सा का व्यवसाय करते हैं, वे प्रायः नास्तिक ही होते हैं। मुसलमान विद्वानों का कथन है :—

ब आबे ज़मज़म व कौसर सफ़ेद नतवां कर्द।
गलीमे बख़्त कसे रा कि बाफ़तन्द स्याह ॥ १ ॥
चाके तदबीर को मुमकिन नहीं करना रफ़ू। *
सोज़ने तदबीर गर सारी उमर सीती रहे ॥ २ ॥

इस के साथ ही मिश्कात शरीफ़, किताबुल ईमान बाबुल क़दर फसिल १ पृष्ठ ७४ से १०६ तक, जिल्द १ भी देखो। जिस में स्पष्ट लिखा है कि सम्पूर्ण बुराई, भलाई बदमाशी, व्यभिचार जो कुछ भी किसी मनुष्य ने करना है, वह सब ईश्वर पहले ही लिख देता है। और आत्मा के शरीर में प्रविष्ट होने से पूर्व ही उस के सिफारिश करने वाले तथा सहायक भी नियत हो जाते हैं। यथा :—

"जाहिरा ईं हदीस आं अस्त कि दर आमदन बहिश्त व दोज़ख मनूत व मरबत बअमल नेक व बद नेस्त। महज़ तक़दीर ब कज़ाय इलाही अस्त व वैताला बाज़े अज़खल्क़ खुदरा बराय बहिश्त आफरीदा ख़ाह अमल नेक कुनद या न व बाज़रा बराय दोज़खपैदा करदा कारहाय बद कुनद या न।"*

[पृष्ठ ६६, जिल्द १ मिश्कात शरीफ़।]

मौलवी साहब! जब यह हाल है, तब बतलाइये चिकित्सा-शास्त्र, औषध-शास्त्र या ज्योतिष-शास्त्र किस काम का है?

१—किसी बदबख़्त के काले भाग्य को कोई भी सफ़ेद नहीं कर सकता। चाहे कोई उसे मक्के की मस्जिद के पानी से या बहिश्त की नहर के पानी से ही क्यों न धोये।

२—फ़टी हुई किस्मत को सीकर संवारना सम्भम नहीं है। चाहे उपाय रूपी सूई उसे आयु भर सीती रहे। —अनुवादक।

* प्रकट है कि यह हदीस वह है जो यह बताती है कि बहिश्त और दोज़ख में जाने का शुभ या अशुभ कर्मों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस का कारण भाग्य और ईश्वर का आदेश ही है। ईश्वर ने अपनी सृष्टि में जो मनुष्य उत्पन्न किये हैं, उन में से कुछ बहिश्त में जाने के लिये उत्पन्न किये हैं, और कुछ दोज़ख में जाने के लिये। चाहे कोई भला काम करे या बुरा। —अनुवादक।

ला तहर्रका जर्रतन्इला बा इज़्नल्लाह ।

(अरबी)

यानी ब रजाये खुदाय तो यके बर्ग न जुम्बद ज़ि दरख़्त ।।*

(फ़ारसी)

शेष रहा आप का यह कथन कि "जब हमने माना कि सभी रोग जो मनुष्यों और पशुओं को होते हैं वे सब पिछले जन्म के कर्मों का ही परिणाम व फल हैं, और किसी अपराध के दण्ड स्वरूप हैं, इस से चिकित्सा-विज्ञान व्यर्थ हो जाता है।"

मौलवी साहब ! न तो यह मानना ही ठीक है, और न इसका परिणाम ही ठीक है। ये सब रोग पिछले जन्म के कर्मों का फल नहीं हैं। अपितु उन रोगों को छोड़कर, जोकि जन्म से हैं, शेष सब रोग और कष्ट इत्यादि इसी जन्म के असंयम आदि अशुभ कर्मों के फल हैं। जिस प्रकार अनाज उत्पन्न करने के लिये कृषि-विद्या की शिक्षा आवश्यक है, उसी प्रकार कर्म-फल-भोग की परम्परा पर विचार करने के लिये भी संसार में होने वाले कार्य-कारण सम्बन्धों का यथार्थ ज्ञान भी आवश्यक है। क्योंकि रोग बदपरहेज़ी या बुरे कर्मों के फल हैं, अतः उन से बचने के लिये हमें परहेज़गार बनना चाहिये और शुभ कर्म करने चाहियें। जब इस प्रकार उत्तम नियमों के अनुसार व्यवहार करना सीख जायेंगे, तब निसन्देह हम पुनर्जन्मवाद को भी यथावत् रूप में जानेंगे और स्वीकारेंगे। इस के प्रबल कारण भी हैं।

रोगों या दुःखों के क़ुदरती कारण क्या-क्या हैं ? और कौन-कौन से ? स्पष्ट है कि ये बदपरहेज़ियां तथा संयम शून्यतायें कहां से आईं ? अथवा ये क्या हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर में समझना चाहिये कि जिन से रोग या दुःख होता है, वे सभी कर्म बदपरहेज़ी या असंयम या पाप कहलाते हैं। इस के विपरीत जो परहेज़गारी, संयम आदि हमारे कर्म हैं, वे शुभ हैं। और, उनका फल सुख भी अवश्य ही होता है। पुनर्जन्मवाद का मूलाधार यही है।

इस लिये हमें आदेश दिया गया है कि मुरदा ज़रूर जलाओ। परन्तु गन्दी और बदबूदार हवा को शुद्ध करने के लिये उस स्थान पर हवन भी करो। मकान बनाओ और उस की हवा शुद्ध रखने के लिये नित्यप्रति घरों में हवन भी किया करो। कपड़े पहिनो; परन्तु उन के मैल को साबुन से साफ कर लिया करो। व्यायाम करो। साथ ही स्नान भी किया करो, जिस से कि शरीर के सभी सूक्ष्म-छिद्र=मसाम भी शुद्ध रहें। अन्यथा रोग लग जायेंगे और कष्ट भोगना पड़ेगा। और फिर ईश्वर ने अपनी अपार दयालुता से हज़ारों बनस्पतियां हमारे पालन, पोषण और रोग-विनाश के लिये बना दी हैं जिस से कि जब भी हम कोई भूल करें, तब औषध-प्रयोग द्वारा रोगों और कष्टों को दूर कर सकें। किसी अपराध के करने पर उत्तरदाता भी हम ही हैं। और, ईश्वरीय नियमों से लाभ उठाकर हम अपने आप ही अपना सुधार भी कर सकते हैं।

मौलवी साहब का आठवां उत्तर

आर्यों का सिद्धान्त है कि जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं। और वे ईश्वर

* ईश्वर की इच्छा के बिना तो वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिलता। —अनुवादक।

के प्रदान किये हुए नहीं हैं। अब यदि कोई अन्धविश्वास रहित व्यक्ति यूं कहे कि कुछ आत्माओं के गुण, कर्म और स्वभाव ही ऐसे हैं कि उनको अवश्य ही ऐसे शरीर मिलें जो बुरे परमाणुओं से बने हैं। और उन में रहकर वे दुःख भोगें, धनी और सुखी परिवारों में जन्म न लें। और ऐसा होना उनके पूर्वजन्म के कर्मों का फल भी न हो अपितु जीवात्मा के अनादि गुण, कर्म और स्वभाव ही उस के कारण हों। कुछ जीवात्मा ऐसा स्वभाव रखते हों कि वे स्त्रियों का शरीर धारण करें और कुछ मर्दों का शरीर अपने स्वभाव अनुसार ग्रहण करें। इस में पिछले जन्म के कर्मों का दख़ल भी न हो। और न ही पहले जन्म का कोई दण्ड या पुरस्कार हो। सच है—

मन हम शक़ी, व सईद।

मैं ही भाग्यवान् हूँ और मैं ही अभागा हूँ। न तो कोई अन्य भाग्यवान् है, न भाग्य हीन।

मौलवी साहब के आठवें उत्तर का खण्डन

यहां पर आप ने पुनर्जन्मवाद से नहीं, अपितु ईश्वर से विमुख होकर आर्य समाज का सामना करना चाहा है। परन्तु आप का सफल होना असम्भव है। लीजिये, हम आप की नास्तिकता का भी खण्डन कर देते हैं। निस्सन्देह न तो जीवात्मा ईश्वर ने बनाये हैं, और न ही उन के गुण, कर्म व स्वभाव ईश्वर के प्रदान किये हुए हैं; परन्तु जीव तो कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र हैं। जिस प्रकार कोई भी अपराधी अपने आप ही जेलख़ाने में जाना नहीं चाहता, और न ही जाता है, उसे विवश करके राज्य का आदेश ही जेलख़ाने में पहुँचाता है। ठीक यही अवस्था जीवात्माओं की भी है। कोई भी जीवात्मा ऐसा नहीं है, जो दुःख की कामना करे, न कोई जीवात्मा दुःख को पसन्द करता है, और न ही कोई अपने लिये दुःख का प्रस्ताव करता है। अल्पज्ञ होने के कारण पिछले जन्म के कर्मों का स्मरण भी उसे नहीं रहता। अतः फल प्रदाता तो ईश्वर है। अपने आप ही जीवात्मा फल लेने वाला नहीं है। क़ुरान में भी एक स्थान पर ऐसा ही लिखा है। यथा :—

फमा असाब कुम मिन मुसीबतिन फीमा कसबत अयदेकुम फा असाबहम सय्यात मा अमलू अन्।

अर्थात् तुम्हें जो कुछ भी दुःख प्राप्त होता है, वह सब तुम्हारे ही कर्मों का फल है।

यदि आप के ही उत्तर को सत्य मान लें, जो कि मानना असम्भव है, और ऐसा सोचने में भी पाप है, तब तो अनादि काल से चले आ रहे सौभाग्य और दुर्भाग्य भी आकस्मिक घटनाओं के समान ही होंगे। न ईश्वर की जरूरत रहेगी न किसी मालिक की।

खुद बख़ुद होते हैं, नेको बद यहां।
फिर कहां ? और कौन है रब्बे जहां ॥*

आप ने जो मुहम्मदी हदीस लिखी है, वह तो और भी अधिक नास्तिकता का प्रसार करने वाली है। यदि अवस्था यही है कि सब कुछ भला और बुरा अनादि काल से ही चला आता है, दुर्भाग्य सभी

* यहां तो शुभाचारी और दुराचारी और दुराचारी अपने आपही होते रहते हैं। ऐसी अवस्था में इस संसार का कोई मालिक कहां है ? और वह कौन है ? —अनुवादक।

अनादि हैं। और पवित्र एवं अपवित्र भी अनादि ही हैं। तब तो क़ियामत के निर्णय को देखकर, प्रत्येक जीवात्मा, ईश्वर से, यदि ईश्वर कोई हो, यह कह सकता है :—

चूं ईं बुनियाद बद रा खुद फगन्दी ।
गुनाहे खेश रा बर मा चे बन्दी ॥१॥

मौलवी साहब का नौवां उत्तर

आर्यों का सिद्धान्त है कि जीवात्मायें कभी भी उत्पन्न नहीं होतीं, वे अनादि हैं। वे सदा से ही ही आवागवन के चक्कर में फंसी रही हैं, और सदा ही फंसी रहेंगी। यदि वे कभी कुछ समय के लिए उन्हें जन्म-मरण के चक्कर से छुट्टी मिलती भी है, तो वह केवल बीज-अंकुर के समान होती है। अर्थात् जैसे बीज में उत्पन्न होने का गुण मौजूद रहता है, वैसे ही जीवात्माओं में भी बुराई वर्तमान रहती है। और उसी बुराई के कारण पुनरपिजन्म मरण का चक्कर आरम्भ हो जाता है। और जो लोग जीवात्मा को उत्पन्न अर्थात् बना हुआ-सादि मान कर, पुनर्जन्मवाद को स्वीकारते हैं, उनको भी यही स्वीकारना पड़ता है कि जीवात्मायें सादि नहीं, अनादि ही हैं। क्योंकि जब प्रत्येक जन्म के गुण, कर्म और स्वभाव पूर्व जन्म के गुण, कर्म और स्वभाव का ही फल या परिणाम हैं, तब जीवात्माओं को आदि मानने से, उन के गुण, कर्म और स्वभाव को किस जन्म के कर्मों का फल माना जायेगा ? और इस असंगति को कैसे दूर किया जायेगा ? इसलिए पुनर्जन्म को स्वीकारने के अवश्यम्भावी परिणाम-स्वरूप जीवात्माओं को अनादि और सदा-सदा से ही जन्म-मरण के बन्धन में फंसी हुई मानना होगा। जब जीवात्मा अनादि माने गये, और जीवात्मा की सत्ता भी ईश्वर-प्रदत्त न रही, तथा जीवात्मायें अनादि काल से अनन्त काल तक रहने वाली सिद्ध हो गईं। अब यह भी होना चाहिए कि अपने अस्तित्व और जीवन यापन के लिये भी जीवात्मायें ईश्वर के आधीन और उस पर निर्भर न हों। परन्तु हम देखते हैं कि जैसे हमारा शरीर अन्न, जल और वस्त्र आदि का मोहताज है, वैसे ही जीवात्मायें भी शरीर की अपेक्षा कुछ कम मोहताज नहीं हैं। अब अन्य प्रकार की मोहताजगियों को छोड़कर कुछ विचार इस का करो कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए जीवात्मायें कितनी अधिक मोहताज हैं ? इसी दलील की तरफ़ क़ुरान करीम का भी इशारा है :—

या अय्युहन्नास अन्तम उलफ़ुक़राअ अली अल्लाह व अल्लाह हुव अल्ग़ानी अलहमीद वल्लाह अल्ग़नी व अन्तमुल फ़ुक़राअ ।

अर्थ—ए लोगो ! तुम सब अल्लाह के मुहताज हो। और अल्ला धनी एवं प्रशंसनीय है। अल्ला ही धनी और प्रशंसनीय है। तुम तो मुहताज हो।

मौलवी साहब के नौवें उत्तर का खण्डन

आपकी इस लम्बी तक़रीर का सार यह है कि जीवात्मायें मुहताज हैं। और के विषय में विशेष रूप से मुहताज हैं। अतः वे अनादि नहीं, अपितु सादि हैं और पुनर्जन्मवाद मिथ्या है।

१—जब तूने ही बुराई की यह बुनियाद डाली है, तब अपने अपराध को तू मेरे सिर पर क्यों थोपता है ?
—अनुवादक।

यह युक्ति आपकी मौलिक नहीं है। यह तो क़ादियानि नबी के उस उल्लेख की नक़ल है, जो उन्होंने अपनी पुस्तक "सुरमा चश्म-ए-आर्यां" के पृष्ठ ११६ पर, अन्य पांच युक्तियों के साथ दी है। और जिसका खण्डन हम प्रामाणिक प्रमाणों व युक्तियों के द्वारा अपनी पुस्तक 'नुस्ख़ा ख़ब्त-ए अहमदिया" अध्याय २ में पृष्ठ १५१ से १६० तक कर चुके हैं और यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि जीवात्मा अपनी सत्ता केलिए किसी का मोहताज नहीं है। अपितु वह अनादि स्वतन्त्र है। परन्तु क़ुरान और हदीस के अनुसार तो आप का ख़ुदा भी अपनी सत्ता के लिए मुहताज प्रतीत होता है। देखो लिखा है—

अन अब्दुल्लाह बिन उमर व क़ालक़ाल रसूल अल्लाह सल अल्लाह अलैहे व सल्लम कुतुब अल्लाह मक़ादीउल ख़लायक़ क़ब्ल अन यख़ल्क समावात व ल अरज़ नजमीन अलफ सनत न क़ाल व कान अर्श अल ल्माअ। [अरबी]

अर्थ [फारसी में]—अब्दुल्लाह बिन उमर कि गुफ़तन पैग़म्बर .ख़ुदा नविश्त .ख़ुदायताला अक़दार व अहकाम ख़लकांरा पेश अज़ पैदा करदन् आस्मां हा व ज़मीन हा ब मुद्दत पंजाह हज़ार साल। गुफ़त आंहज़रत व बूद अर्श वै सुबहानह बर आब। *

[मिश्कात जिल्द १, बाबुल् ईमान बिलक़द्र सफ़हा ६५]

इसके साथ ही देखो क़ुरान—

व हुवलज़्ज़ी ख़लक़ुल समावाते व ल्ल अरज़ फी सनत अय्याम व कान अर्श अल ल्माय।

अर्थ फारसी—शेख़ इब्ने मजिर गुफ़ता कि मुराद ब आब आब-ए-दरिया नेस्त बल्कि ईं आबे अस्त ज़ेर अर्श चुनांकि वै सुबहाना ताला ख़ास्ता व तजम्मुल कि मुराद ब आब दरियां बाशद ब मानी आंकि हामिलाने अर्श दर दरिया अन्द। [पृष्ठ ६५]

अतः स्पष्ट है कि ख़ुदा अर्श—तख़त का, और तख़त को उठाने वालों का मुहताज है।

विस्तार के लिये देखो 'नुस्ख़ा ख़ब्ते अहमदिया" यानी रद्दे—सुरमा चश्मे-आर्यं बाब २ पृष्ठ १०४ से १६६ तक।

---

* उमर के पुत्र अब्दुला ने कहा [पृष्ठ २७८ की शेष टिप्पणी]

कि ख़ुदा के पैग़म्बर ने कहा है कि अल्ला ताआला ने आसमान और ज़मीन पैदा करने से पहले पचास हज़ार वर्ष मनुष्यों के लिए आदेश तथा उपदेश लिखे हैं। और उस समय ख़ुदा का अर्श—तख़्त पानी पर था। शेख़ इब्ने मजिर कहते हैं कि उस पानी से नदी के पानी का तात्पर्य नहीं है। अपितु इसका अर्थ वह पानी है, जिस को अल्ला ताआला ने अपने अर्श—तख़त के नीचे चाहा। और जिस ने अर्श को उठाया। यहां पानी का अर्थ अर्श को उठाने वाले लोग ही हैं।

—अनुवादक

बाकी रही कुरान की आयत। यह कोई नया निर्देश नहीं है। न ही यह कोई जबराइल-छाप-आदेश है। वेद में ऐसे और इस से भी हजार गुणा बढ़ कर आदेश मौजूद हैं। देखो—

सर्वंमस्याधितिष्ठति।

अर्थात् चराचर सम्पूर्ण जगत् उसके आश्रय और अधीन है।

प्रजापते न त्वदेता न्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।

अर्थात् वही सब का पालन करने वाला और सब का पति है।

परन्तु इन सब बातों का जीवात्माओं के अनादि या सादि होने का कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

मौलवी साहब का दसवां उत्तर

यदि आत्मायें सादि और ईश्वर की उत्पन्न की हुई नहीं हैं, तो हम पूछते हैं कि क्या बदी और बदकारी जीवात्माओं का, अपना गुण, कर्म, एवं स्वभाव है? और क्या आत्मायें अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार ही बुराई करती हैं? यदि यही बात है, तब तो अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति का नाम ही सुख और आराम है। तथा उन आवश्यकताओं और इच्छाओं के पूरा न होने का नाम ही दुःख और कष्ट है। यदि यह बदी और बदकारी कोई अस्थायी गुण है, जोकि जीवात्मा को आ लगा है, तब तो वह कभी दूर भी हो जायेगा। और जब दूर हो जायेगा, तब जीवात्मा भी शुद्ध, पवित्र होकर भविष्य में सदा ही शुभ कर्मों की ओर ही आकर्षित होंगे। हमें विश्वास है कि अवश्य ऐसा ही होगा। क्योंकि आर्यों ने जीवात्मा को चेतन और समझदार माना है।

आर्यपुरुषो! यदि इतना अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद भी जीवात्मा ने अब तक कुछ नहीं समझा, तब तो वह चेतन नहीं हो सकती। या किसी ईश्वर प्रेमी को ईश्वर की कृपा से यह ज्ञान हो जाए कि ईश्वर की इच्छा तो किसी के लिए निश्चित हो चुकी है। और यह सम्बन्ध सदा के लिए पक्का हो चुका है।

मौलबी साहब के दसवें उत्तर का खण्डन

इस जवाब में भी आप का विचार हमको धोका देने का है। जोकि सत्य प्रेमी सज्जन पुरुषों के लिये उचित नहीं। ख़ैर—

मन अन्दाज क़ुयरत रा मेशिनासम्।*

हजरत! आप ने तो आज तक यह भी नहीं समझा कि जीवात्मा किसे कहते हैं? और समझें भी तो कैसे? स्वयं कुरान भी उस का वर्णन कहीं कर सका। आप की रगों में भी तो वही अरबी ख़ून बहता है। कृपानिधान! अपना धर्म समझ कर मैं आप को समझाने का यत्न करता हूँ। सच यही है कि आप को समझाने के विचार से ही मुझे वह बल प्राप्त हुआ, जिससे मैं इतना बड़ा ग्रन्थ लिख सका। आप के आशीर्वाद ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया।

अल्लाहुम इहदनी रूहुल् क़ुदुस।

श्रीमान् मौलवी साहब! बदी करना जीवात्मा का स्वाभाविक गुण नहीं है। जीवात्मा का

* मैं कुदरत की चाल को पहचानता हूं। —अनुवादक।

स्वाभाविक गुण तो केवल चेतनता है। परन्तु वह अल्पज्ञ है। इसलिये उसे एक ही समय में दो ज्ञान नहीं होते। अनुभव बताता है कि प्रत्येक जीवात्मा सुख की इच्छा करता है प्रत्येक आनन्द का इच्छुक है। दुःख को कोई भी नहीं चाहता। अपितु जीवात्मा दुःख से घबराता है। और अपने सामर्थ्य के अनुसार दुःख को दूर करने का उपाय भी सदा ही किया करता है। इस से यह भी प्रकट होता है कि दुःख जीवात्मा की स्वाभाविक इच्छा तथा आवश्यकता नहीं है। यह अस्थायी है। यही कारण है कि मोक्ष प्राप्त होने पर यह दूर भी हो जाता है। यदि यह उस का स्वाभाविक गुण होता, तब तो कभी भी दूर न होता।

निस्सन्देह आर्यों ने वेद के आदेशानुसार एवं अपनी सत्य-सन्धायक बुद्धि के आधार पर जीवात्मा को चेतन समझा और माना है। इसी वास्ते उसने यह भी जाना है कि जीवात्मा नेकी या बदी के करने में स्वतन्त्र है। परन्तु यही बात आपको ज्ञात नहीं। ठीक है—

आं रा कि अक़्ल बेश ग़मे रोज़गार बेश। †

हां, कुरान ने तो जीवात्मा को पत्थर जैसा जड़ माना है। बहुत ही अधिक विवश और अयोग्य जाना है, अन्यथा वस्तु स्थिति तो यह है कि कोई भी समझदार तथा चेतन सत्ता स्वाभाविक रूप में कभी भी विवश नहीं हो सकती।

जीवात्मा का इतना अधिक अनुभव प्राप्त कर लेने पर भी न समझना, यह उस की अल्पज्ञता का ही प्रमाण है। यदि जीवात्मा बारम्बार जन्म ग्रहण न करे, तब भी प्रायः ऐसी घटनायें घटित हो सकती हैं जिन के कारण उसे ज्ञान न रहे। अनुभव विस्मृत हो जाये। क्योंकि हम इस जन्म में भी देखते हैं कि अनुभव के होने पर भी गर्भावस्था की बातें बचपन में, और बचपन की बातें युवावस्था में एवं युवावस्था की बातें वृद्धावस्था में, और सभी बातें विस्मृति रोग होने पर, विस्मृत हो जाती हैं। हम आप से प्रार्थना करते हैं कि कृपा करके मिश्कात शरीफ़ को पढ़ लीजिये। बहुत बड़े दंगल के बाद, और खुद जैसे जज की मौजूदगी में भी आदम यह भूल गया कि उस ने दाऊद से क्या प्रतिज्ञा की थी। जब मलकुलमौत ने उसे याद दिलाया; तब भी उसे कुछ याद न आया। उसी के विषय में मुहम्मद साहब का कथन है :—

अल् इन्सान मरक्कब मिन् उल् ख़ता उल् निसियां। ‡

[देखो मिश्कात जिल्द १ किताब बिलक़दर फसल ३, पृष्ठ ११८]

वहां स्पष्ट लिखा है :—

"पस हर गाह कि गुज़श्त उम्र आदम मगर चेहल साल कि बाक़ी मांद व उम्रे आदम दर आंचे मशहूर अस्त। हज़ार साल बूद आमद आदम रा मलकुलमौत ता रूह पाक ऊरा क़ब्ज़ कुनद। पस गुफ्त आदम आया बाकी नमांदा अस्त अज़उम्रमन् चेहल साल, पस गुफ्त मलकुलमौत बा आदम आया न दादी तू आं चेहल साल रा कि बकिया उम्र तुस्त पिसर तुराकि दाऊद अस्त। पस मुनकिर शुद आदम। पस मुनकिर शुदंद औलाद ऊ व पैदा शुद मियाने एशां नीज़ इन्कार व फरामोश कर्द

—अनुवादक।

† जिस के पास अधिक बुद्धि है उस को रोज़गार=संसार का दुःख भी बहुत है। —अनुवादक।

‡ मनुष्य तो ग़लतियों और भूलों का पुतला है।

आदम नहीं अल्ला ताला मरा ऊरा अज अक्ल शजरा। पस ख़ुर्द अज़ां शजरा। पस फ़रामोश करदंद औलाद ऊ व पैदा शुदंद दर एशां नीज फ़रामोशी व ख़ता कर्द आदम व ख़ता करदंद वज़ीयतश्रो।" ×

[रवायतुल तरमजी]

अतः यह आप का उत्तर बिल्कुल ग़लत है।

ईश्वर की इच्छा का सदा के लिये किसी के साथ सम्बन्धित हो चुकना भी एक प्रकार से ईश्वर के ऊपर अत्याचार तथा बलात्कार का दोष लगाना है। न्यायकारी ईश्वर की हमारे विषय में जो इच्छा है, वह बिना किसी कारण के नहीं है। और हमारे कर्मों के अतिरिक्त और कोई ऐसा उपाय नहीं है, और न ही हो सकता है। जिस के स्वीकारने से ईश्वर की पवित्र सत्ता पर से पक्षपात का कलंक दूर हो सके। अतः यही पुण्य का उत्तम मार्ग एवं श्रेष्ठ सिद्धान्त है।

मौलवी साहब का ग्यारहवाँ उत्तर

बच्चों का पालन-पोषण किया जाता है और सुशिक्षा के लिये उन को प्रताड़ना भी दी जाती है, तथा वे कष्ट भी सहते हैं। इस कष्ट सहन को दण्ड, या पुरस्कार नहीं कहा जाता। अपितु सभी ने इस का नाम शिक्षा रखा है। ऐसे ही वे सब सांसारिक कष्ट, जो अस्थायी होते हैं, उन के विषय में भी यह क्यों नहीं कहा जाता कि वे भी ईश्वरीय प्रशिक्षण के अंग ही हैं। दण्ड या पुरस्कार के नहीं हैं। हमारे लिये न सही सामूहिक सृष्टि के लिये ही सही। इस उत्तर को बारहवां उत्तर और भी अधिक स्पष्ट करता है।

मौलवी साहब के ग्यारहवें उत्तर का खण्डन

पालन-पोषण भी कर्मफलानुसार ही होता है। अन्यथा बहुत से बच्चे ऐसे भी उत्पन्न होते हैं, जिन का पालन-पोषण होता ही नहीं। और यदि होता भी है, तो समुचित प्रकार से नहीं। वे बहुत ही बुरे हाल में रहते हैं। और कुछ तो उत्पन्न होते ही कष्ट भोगने लगते हैं।

चूं ज़ायद मुबतिला ज़ायद, चूं मीरद मुबतिला मीरद।
बदर्दो रंजो ग़म ज़ायद, ब अन्दोहो बला मीरद॥†

सुशिक्षा प्राप्ति के लिए प्रताड़ना या कष्ट सहन दण्ड तो है, परन्तु पुरस्कार नहीं है। आप ने

× जब आदम की आयु व्यतीत होकर केवल चालीस वर्ष शेष रह गई, तब मलकुलमौत आदम के पास आया। और उसने चाहा कि उसके पवित्र आत्मा को निकाले। तब आदम बोला कि अभी तो मेरी आयु के चालीस वर्ष शेष हैं। तब मलकुल मौत ने पूछा कि क्या तूने ये चालीस वर्ष अपने पुत्र दाऊद को नहीं दिये। आदम ने इन्कार किया और उस के पुत्रों ने भी इन्कार किया। तब इन्हीं लोगों से 'इनकार' भी उत्पन्न हुआ। और आदम भूल गया कि अल्लाताला ने उसे पेड़ का फल खाने से मना किया है। उस ने पेड़ से फल खाया। उस के पुत्र भी भूल गये। और इन्हीं से "भूल" भी पैदा हुई, और आदम ने ख़ता अर्थात् भूल की और उस के पुत्रों ने भी भूल की।

—अनुवादक।

† जब उत्पन्न होता है, तब कष्ट पाता है। जब मरता है, तब भी कष्ट भोगता है। दुःख और कष्ट के साथ उत्पन्न होता है, और दुःख व कष्ट के साथ ही मर जाता है।

—अनुवादक।

संकीर्णता और पक्षपात को छोड़कर कभी भी पुनर्जन्मवाद पर विचार नहीं किया। अन्यथा आप को अवश्य ही ज्ञात हो जाता कि इस जीवन में होने वाले सभी कर्म पिछले जन्म के कर्मों के परिणाम स्वरूप नहीं हैं। इस जीवन में बहुत-से कर्म नये भी होते हैं और उनके दण्ड या पुरस्कार भावी जन्मों में मिलते हैं। जो लोग पाठशालाओं में अध्यापक हैं, वे जानते हैं, कि शरारती लड़कों को पाठशालाओं में दण्ड भी मिला करता है। वह शरारत की सज़ा ही होती है। बिना शरारत वह सज़ा नहीं मिलती वहां बहुत से बच्चे ऐसे भी होते हैं, जिनके पिछले जन्म के कर्मों के संस्कार बहुत उत्तम होते हैं। एक तो वे रुचि से पढ़ते हैं, दूसरे तीव्रबुद्धि होते हैं, तीसरे शरारत नहीं करते, चौथे पाठ याद करने से अध्यापक उन पर कृपा दृष्टि रखते हैं। परन्तु बहुत से बज्रमूर्ख ऐसे भी होते हैं, जो आयु भर पाठशालाओं की खाक छानने और अध्यापकों की डांट फटकार सहते रहते हैं। फिर भी वे इतना नहीं जानते कि ज़ुलेखा स्त्री थी, या पुरुष। मैंने स्वयं देखा है कि बहुत से बच्चे छ-सात वर्ष तक पाठशालाओं में पढ़ते रहे, परन्तु जब निकले तो कोरे के कोरे और मूर्ख ही निकले।

तरबियत ना अहिल रा चूं गिर्दगां बर गुंबदस्त।+

इस उत्तर में आप तो ईश्वर के सिर ही दोष मढ़ेंगे। कज़ा व क़दर को ही मुल्ज़िम ठहरायेंगे, तक़दीर को कलंकित करेंगे, नास्तिक होंगे तो इसे आकस्मिक घटना कहेंगे। परन्तु यह सब बातें असत्य हैं। वास्तविकता यह है कि एक ही जैसी शिक्षा होने पर भी पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार बच्चों के मस्तिष्क पृथक्-पृथक् प्रकार के हैं। अतः उन पर शिक्षा का प्रभाव भी पृथक्-पृथक् प्रकार का ही होता है। खेद है कि लोग ईश्वर पर कलंक लगाते हैं, परन्तु पुनर्जन्मवाद जैसे सत्य सिद्धान्त से जी चुराते हैं। अतः संसार में जो दुःख-सुख भोग होता है, वह अवश्य ही पिछले जन्मों के शुभ कर्मों का फल होता है। उसको ईश्वरीय प्रशिक्षण कहना अनुचित है। अन्यथा बिना किसी उचित कारण के ही किसी को दण्ड और किसी को पुरस्कार देना ईश्वर को अन्यायी, अत्याचारी तथा अपराधी सिद्ध कर देगा। न जाने आपने क्यों ऐसा मज़हब जी जान से प्यारा समझ रखा है, जिससे ईश्वर का अपमान होता है। और जिसके अनुसार चलकर आप किसी भी उचित सिद्धान्त पर समुचित विचार तक नहीं कर सकते। और जिसके विषय में होने वाली शंकाओं का कुछ भी समाधान नहीं कर सकते।

मौलवी साहब का बारहवां उत्तर

हज़रत सैयदना मसीह अलैहुस्सलाम के हाथ से जब एक जन्म का अन्धा अच्छा हुआ तब हुज़ूर अलैहुस्सलाम से उनके साथियों ने पूछा कि यह लड़का अन्धा क्यों हो गया था ? क्या अपने अपराधों के कारण ? अथवा अपने माता पिता के अपराधों के कारण ?

हज़रत मसीह अलैहुस्सलाम ने उत्तर दिया कि न अपने अपराधों के कारण, और न अपने माता पिता के अपराधों के कारण अपितु यह लड़का इसलिए अन्धा उत्पन्न किया गया था, कि इससे ईश्वर की महिमा प्रकट हो। और ईश्वर के प्यारे रसूल, बनी इसराइल के घराने के अन्तिम नबी हज़रत मसीह की महत्ता और सत्यता प्रकट हो। इस किस्से को लिखने से मेरा अभिप्राय केवल यह है

+अयोग्य मनुष्य को शिक्षा देना, वैसा ही है, जैसा गुंबद का अखरोट होता है। अर्थात् उसको शिक्षा से कुछ भी लाभ नहीं होता। जैसाकि गुंबद पर अखरोट नहीं ठहरता। —अनुवादक।

कि कर्म फल के अतिरिक्त सुख और दुःख के कारण और भी बहुत होते हैं। पुनर्जन्मवादियों के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि पुनर्जन्म के कर्म ही सुख या दुःख का कारण होते हैं ?

मौलवी साहब के बारहवें उत्तर का खण्डन

आपने इस निराधार और व्यर्थ इन्जीली किस्से को भी बिना प्रमाण और बिना पते के ही लिख डाला। यह भी न सोचा कि इस किस्से के लिखने से हज़रत मुहम्मद साहब से हज़रत मसीह साहब की महिमा बढ़ जायेगी। क्योंकि क़ुरान के अनुसार अपनी सत्यता दर्शाने के लिए उनके पास तो कोई एक आध चमत्कार भी नहीं है। ख़ैर ! इन सभी बातों की हम उपेक्षा कर देते हैं और आपकी इस निराधार कहानी का खण्डन स्वयं इंजील में से ही दिखाते हैं।

ईसा का चेला मरकिस लिखता है—

"उस येरेहू नामक अन्धे ने उससे कहा—हे वली ! मैं चाहता हूं कि अपनी आँखें पाऊँ। यसू ने उस से कहा कि जा तेरे ईमान ने तुझे बचाया। और उसने वहीं आँखें पाईं।"

[मरकिस बाब १०, आयत ५०—५१]

परन्तु युहन्ना इसके विपरीत लिखता है :—

"यसू ने ज़मीन पर थूका। और थूक से मिट्टी गून्धी। और वह मिट्टी अन्धे की आँखों पर लेप की। और उससे कहा कि जा और सलवाम के हौज़ पर जाकर स्नान कर। जाकर उसने स्नान किया और सुजाखा बनकर आया। [युहन्ना बाब ६, आयत ६—७]

इस के साथ ही स्वयं युहन्ना की इंजील से ही यह भी सिद्ध होता है कि उन दिनों वहां एक हौज़ में ऐसी तासीर थी कि उसमें स्नान करने मात्र से ही बहुत से रोग दूर हो जाते थे।

[देखो युहन्ना बाब ५ आयत १—६]

अतः यह कोई चमत्कार नहीं है। आजकल भी इस प्रकार के हज़ारों फ़रेब होते हैं। हमने तकज़ीब बराहीन-ए-अहमदिया में इस प्रकार के फ़रेबों का हाल विस्तार पूर्वक लिखा है। देखो चमत्कारों का अध्याय।

अस्तु ईश्वर के प्यारे रसूल, और बनी इसरायल के घराने के अन्तिम नबी की कोई भी महिमा प्रकट न हुई। अपितु पोल खुल गई। जिस से सिद्ध हो गया कि इसी प्रकार की चतुराइयों से भरे हुए चमत्कार हज़रत मसीह के होते थे। वास्तविक बात वही है जो कि युहन्ना ने लिखी है। प्रतीत होता है कि उसकी आँखें दुखती होंगी। मसीह ने मिट्टी में दवाई मिलाकर, और थूक में गून्धकर लगाई, जिससे वह सोजी कम होगई। इसके साथ ही हौज़ के पानी में स्नान करने का उत्तम प्रभाव भी हुआ। सार यह कि चमत्कार का होना मिथ्या ठहरा। परन्तु इस से यह भी ज्ञात हुआ कि उस समय के सभी लोग पुनर्जन्मवाद को स्वीकारते थे। और वे ऐसे कष्टों को बुरे कर्मों का फल समझते थे। यही कारण है कि मसीह से कोई उत्तर न दिया जा सका। और उसने साधारण, अनजान लोगों की तरह से ही ईश्वर को दोषी ठहराया। ऐसे ही लोगों के विषय में किसी ने सच कहा है—

हमारी जान गई, आपकी अदा ठहरी।

इतने धोखे देने पर भी आपका सफल न होना, यह भी तो आपके पिछले जन्म के कर्मों का ही फल है।

मौलवी साहब का तेरहवां उत्तर

प्राकृतिक नियमों और ईश्वर के बेअन्त कारखाने में हज़ारों कारण हैं। उदाहरणतया उन कारणों पर विचार करो जिनका वर्णन औषध-विज्ञान में पाया जाता है। उन लक्षणों और उन प्रयोगों का भी विचार करो, जिन के द्वारा हम किसी रोग के कारणों का पता लगाते हैं। और फिर उनको दूर करने के सफल उपाय भी करते हैं। बीमारियों के कारणों को जानने से हम ग़रीबी, दौलतमन्दी, और हुकूमत के कारणों का सामूहिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस संक्षिप्त भूमिका के पश्चात् निवेदन है कि इस भेदभाव का कारण, जिससे एक लड़का बीमार और दूसरा स्वस्थ होता है, विषम और विरोधी तत्त्व हैं। इस लिये कि मनुष्य का और पशु का जीवात्मा या तो तत्त्वों का सार है, अथवा ऐसा मान लिया जाता है कि तत्वों के साथ जीवात्मा का गहरा सम्बन्ध है। प्रथम अवस्था में प्रकट है कि जैसे तत्व होंगे, वैसी ही जीवात्मा होगी और दूसरी अवस्था में जैसे तत्वों के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध होगा, वैसे ही स्वास्थ्य और बीमारी के फल जीवात्मा को मिलेंगे। और जैसे स्थान पर जीवात्मा एकत्रित होंगे, वैसे ही सुख दुःख भोगेंगे।

प्रथमावस्था में जीवात्मा का अस्तित्व भी तत्वों से बना हुआ सिद्ध होता है। पूर्वजन्म के कर्मों का फलभोग की बात ही कहां है? और दूसरी अवस्था पर यदि कोई यह आक्षेप करे कि जीवात्माओं ने ऐसे स्थान पर सम्बन्ध ही क्यों जोड़ा? जहां उनको दुःख उठाना पड़ा। तो उसका उत्तर सर्वथा स्पष्ट है। क्योंकि आर्यों के कथनानुसार जीवात्मा स्वतन्त्र है। और जीवात्माओं को किसी भी प्रकार की कोई रोक टोक नहीं है। फिर यह बात भी विचारणीय है कि जब जीवात्मा के सामने सदा के लिये उन्नति का मार्ग खोल दिया गया तब भी उस पर कोई अत्याचार न हुआ, अपितु दया हुई। यह भी विचारणीय है कि यद्यपि आजकल जीवात्मा को कष्ट होता हुआ प्रतीत होता है, इस लिए कि उस का सम्बन्ध त्रुटिपूर्ण और दुःखी शरीर के साथ है। परन्तु इसी शरीर में उसे बड़ी-बड़ी सफलताओं को प्राप्त करने का अवसर भी दिया गया है। अतः यह दया ही है, अत्याचार नहीं। हां, ऐसे अवसर भी होते हैं, जब आज्ञापालन न करने पर जीवात्मा को दण्ड भी मिलता है। ईश्वर दयालु, कृपालु और न्यायकारी है। चाहे पकड़ले, चाहे क्षमा करदे। वह अपने कामों में सर्वथा स्वतन्त्र है।

मौलवी साहब के तेरहवें उत्तर का खण्डन

आप ने जो चिकित्सा-विज्ञान का दृष्टान्त दिया, उसमें रोग के कारणों का पता लगाया जाता है। इस विषय में कुछ थोड़ा सा विचार करने पर भी पुनर्जन्मवाद का स्पष्ट समर्थन दिखाई देता है। निस्सन्देह प्रत्येक रोग का कोई न कोई कारण अवश्य ही होता है। क्योंकि बिना कारण के तो कोई रोग होता ही नहीं। प्रायः देखा जाता है कि रोगों का कारण बदपरहेज़ी या पदार्थों का दुरुपयोग होता है। यही कारण हैकि संयमशील एवं सावधान रहने वाले मनुष्यों को रोग बहुत ही कम होते हैं। बदपरहेज़ी भी तो हमारे कर्म ही हैं। वे किसी दूसरे के कर्म तो नहीं। जिस प्रकार इस दृश्यमान् जगत में, जोकि वास्तव में कार्य-कारण परम्परा का ही एक रूप है, हमारे बुरे कर्मों के फल आतशिक आदि रोगों, तथा विभिन्न प्रकार के कष्टों के रूप में प्रकट होते हैं, जिनसे कि किसी महामूर्ख मनुष्य के सिवा और कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। उसी प्रकार जन्म से अन्धा, लूला, लंगड़ा, अमीर, गरीब इत्यादि होना भी कर्मों का परिणाम है। क्योंकि इसका कारण हमें स्मरण नहीं है, या यूं समझलें कि इनके कारण को

हम भूल गये हैं, जैसे कि आदम अपने वचन को भूल गया था। ऐसा होने पर भी वह कारण तो है ही। और वह पिछले जन्म के कर्म हैं।

इस के आगे आप के कथन के दो भाग हैं। प्रथम भाग यह है कि "यह तो मनुष्य अथवा पशु का जीवात्मा तत्त्वों का सार है।" इस का उत्तर यह है कि यदि जीवात्मा तत्त्वों का सार होता, तो उस में चेतनता न होती। आप के कथन की ध्वनि भी यही निकलती है कि जीवात्मा जड़ है। यदि जीवात्मा तत्त्वों का सार ही है, जैसा कि आप कथन करते हैं, तब कैसा दण्ड ? और कैसा पुरस्कार एवं कहां बहिश्त या दोज़ख़ ? कैसी क़यामत ? और कहां सरात का पुल ? कैसा न्याय ? कैसी क्षमा ? और किस का ईमान ? मौलवी साहब ! सारांश हमारे कथन का यह है कि असल के विरुद्ध तो कभी कुछ भी नहीं होता। और न ही हो सकता है। आप ने हमारे इस विचार परिवर्तन में होश खोकर एवं घबरा कर, ऐसा मार्ग अपनाया है कि क़ुरान तथा ईमान से भी हाथ धो बैठे। ठीक है नक़ली दीन वालों का वास्तविकता वादियों के सामने यही हाल होता है। मौलवी महोदय ! आप क्या सोच कर मुसलमानों की इमदाद के लिये आगे बढ़े थे। क्या इन को भी नास्तिकों की तरफ़ से ही जीवात्मा को प्रकृति से बना हुआ, और तत्त्वों के विकीर्ण होने पर, नाश होने वाला मनवा कर, आप नास्तिक बनाना चाहते हो ?

मुबारक बाद, मर्गे-नौ बा उस्ताद।*

दूसरा भाग यह है कि आप कल्पना कर लेते हैं कि तत्त्वों के साथ जीवात्मा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आप की यह कल्पना सर्वथा असम्भव है। क्यों कि इस का भी फलितार्थ नास्तिकता ही है। सुनिये—जीवात्मा का तत्त्वों=प्रकृति के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अपितु ईश्वर के अनादि नियमों के अनुसार ही उस का सम्बन्ध है। हम कई बार निवेदन कर चुके हैं कि जीवात्मा फल को भोगने में स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु परतन्त्र है। और इस बात के हज़ारों अनुभव सिद्ध प्रमाण वर्तमान हैं। अन्धे, गूंगे, लूले, बहरे, कोढ़ी, इत्यादि प्रत्येक रोग के रोगी को कौन-कौन सी सफलतायें प्राप्त करने के अवसर सुलभ हैं। हाय री निर्दयता ! और हाय री-क्रूरता !! ईश्वर तुझ से सब की रक्षा करे। ऐसे-ऐसे भीषणतम दुःखों को भी ईश्वर की दया मानना, क़ुरान और आप की बुद्धिमत्ता का ही प्रमाण है। जज़ाक अल्लाह। ईश्वर की यह दया ठीक वैसा ही है, जैसी कि मिश्कात शरीफ में भी लिखी है। तद्यथा—

"काफ़िर रां ब गुनाहान मोमिन अज़ाब कुनंद गोया मुसलमान दर आतिशे दोज़ख़ दरबन्द गर्द बूद। व ईं यहूदया निसारानी रा दर बदी बे ब आतिश फ़रस्तादन्द।" †

[मिश्कात बाबुल हिसाब, फसल १, पृष्ठ ३६७ जिल्द ४, नवलकिशोर प्रेस का संस्करण]

इस प्रकार आप ने भी सत्यता अर्थात् पुनर्जन्मवाद से आँखें मूंद कर, इस बात को

---

*यह नई मौत उस्ताद को ही मुबारक हो। —अनुवादक।

† क़ाफ़िरों को मोमिनों के पापों के बदले में दण्ड मिलेगा। और मुसलमानों को दोज़ख की ज्वाला से बचाया जायेगा। और उनके बदले में यहूदियों तथा निसरानियों को डाला जायेगा। —अनुवादक।

स्वीकारा है कि "ईश्वर दयालु कृपालु और न्यायकारी है। वह चाहे पकड़ ले, चाहे क्षमा कर दे। और वह अपने कार्यों में सर्वथा स्वतन्त्र है।"

यदि वस्तुतः आप के इस लेख में सत्यता की कुछ भी गन्ध वर्तमान है, तो न जाने अत्याचारी और किस को कहा जायेगा? अतः ये सब बातें चालबाजियां और व्यर्थ बनावटें मात्र ही हैं। वास्तविकता तो यही है कि जीवात्मायें ईश्वर के आदेश एवं अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही प्राकृतिक शरीरों से संबन्धित होती हैं। और कर्मानुसार ही सुख या दुःख भी प्राप्त करती हैं। यदि आप के कथनानुसार ही इस अन्याय तथा अत्याचार को सहन करने को विवश जीवात्मा ऐसे अत्याचारी, नहीं-नहीं, कुरानी व क़ादयानी नवी की किम्वदन्ती के अनुसार, दयालु, कृपालु, और तथा कथित न्यायकारी ईश्वर से कह सकती है :—

दरमियाने दर क़अरे दरिया तख़्ता बन्दम कर्दा ई।
बाज़ मेगोई कि दामन तर मकुन होशियार बाश ॥ १ ॥

मौलवी साहब का चौदहवाँ उत्तर

विभिन्न देशों के जलवायु का जीवात्मा के विभिन्न गुणों पर जो प्रभाव होता है, उसका अनुभव हम प्रतिदिन करते हैं। अपितु विभिन्न पेशों, विभिन्न मकानों, और उन मकानों में जलवायु के आवागमन व सफाई की विभिन्नता के अनुसार; तथा विभिन्न प्रकार के पदार्थों के खाने, पीने, पहनने से, विभिन्न प्रकार के प्रसंगों में जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव में बहुत अधिक विभिन्नता देखने में आती है। फिर हम यह भी देखते हैं कि बिगड़ी हुई अवस्थायें, उन उपायों से सुधर जाती हैं, जिनका वर्णन चिकित्सा विज्ञान में तथा भौतिक-विज्ञान में पाया जाता है।

जिन लोगों की सन्तान बीमार उत्पन्न होती है, उन की चिकित्सा, देखरेख के नियमों के अनुपालन, जलवायु के परिवर्तन, कुछ काल के लिये सम्भोग-परित्याग इत्यादि उपचारों से स्वस्थ सन्तान का पैदा होना, बिगड़ी हुई और दूषित कलों की उस अवस्था का, जिन कारणों से दोष उत्पन्न हुआ था, उन कारणों का विवरण होने पर, उपायों से सुधरना, इत्यादि से प्रकट होता है कि या तो जीवात्मा इन ही प्राकृतिक तत्वों का सार है, अथवा इन तत्वों से या कारणों से जीवात्मा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन में कुछ विशेष परिस्थितियों में हम परिवर्तन वा विशेष परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं। तथापि हम पूर्वजन्म के कर्मों की दुहाई नहीं देते। क्योंकि ऐसे कथन के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं। और अप्रमाणिक कथन विद्वानों का काम नहीं।

मौलवी साहब के चौदहवें उत्तर का खण्डन

आप ने जितनी विभिन्नताओं और परिस्थितियों का उल्लेख किया है, यह और ऐसी ही और भी हजारों परिस्थितियां जिन से जीवित प्राणियों पशुओं आदि का कुछ सम्बन्ध है, वे सब की सब, पूर्णतया कर्म-फलानुसार ही प्राप्त होती हैं। उन-उन के प्राप्त होने के कारण कर्म ही हैं। क्योंकि जीवात्माओं का जो सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक तत्त्वों से निर्मित शरीरों के साथ, अथवा

१—तूने ही तो मुझे नदी के बीच में बन्द किया है। फिर भी तू मुझे यही कहता है कि सावधान हो, अपना दामन पानी से तर न कर। —अनुवादक।

विभिन्न प्रकार के कारणों के साथ है, वह सब एक, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, विद्या और विज्ञान के भण्डार, न्यायकारी और पूर्ण, परमेश्वर की व्यवस्थानुसार ही है। किसी भी परिस्थिति में कर्म-सम्बन्ध से विमुक्ति सम्भव ही नहीं है। कोई मूर्ख से मूर्ख पुनर्जन्मवादी भी यह न स्वीकारेगा कि सभी कार्य पूर्वजन्म के कर्मानुसार होते हैं। नहीं, नहीं ऐसा कदापि नहीं, अपितु मनुष्य बहुत से नये कर्म भी किया करता है। और क्रिया प्रतिक्रिया के नियमानुसार इन नये कर्मों का फल भी मिलता है। परन्तु चिन्तनीय विषय तो यह है कि कौन सा फल इस जन्म के कर्मों का है ? और कौनसा फल पुनर्जन्म के कर्मों का है ?

इस समस्या का समाधान केवल इसी प्रकार होता है कि जो कर्म और उस का फल ज्ञात है, अर्थात् जिस कर्म का कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात है, वह इस जन्म का कर्म है। और जिस कार्य का कारण ज्ञात नहीं है, अदृश्य है, वह पिछले जन्म के कर्मों का परिणाम है। यह एक ऐसा विद्या और विज्ञान का क्षेत्र है, जिस में कोई भ्रान्ति या दुश्चिन्ता शेष नहीं रहती। इस विषय का खण्डन हम तेरहवें उत्तर के प्रसंग में भी कर चुके हैं। यहां भी इतना लिख देते हैं कि ईश्वर ऐसी कृपा अवश्य करेगा कि जिस प्रकार आपने विशेष अवस्थाओं में कर्म फलों के अनुसार परिणामों का होना स्वीकारा है, उसी प्रकार आप साधारण परिस्थितियों में भी कर्मफल का मिलना स्वीकार लोगे। क्योंकि ईश्वर ने आप को विद्या-बुद्धि प्रदान की हुई है। आप तो हकीम हैं। बड़े खेद की बात है कि आप हज़ारों बातें, बिना किसी उचित हेतु के ही अटकलपच्चू ढंग से मान लेते हैं। मौलवी साहब ! ऐसा हठ आप जैसे विद्वान् पुरुषों को शोभा नहीं देता।

मौलवी साहब का पन्द्रहवाँ उत्तर

पूर्वजन्म के कर्म किसी भी रूप में इस भेद-भाव का कारण नहीं हैं। जिस भेदभाव को देख कर पुनर्जन्मवादियों ने पुनर्जन्मवाद पर विश्वास किया है। क्योंकि हम प्राकृतिक जगत् में देखते हैं कि सभी पदार्थ इस की सुख सुविधा के लिये हैं। रोशनी, पानी, मिट्टी, बिजली, बनस्पतियां, पशु सब कुछ इस के काम में लग रहा है। परन्तु मनुष्य नाम का यह पुतला इन पदार्थों में से किसी के भी काम का नहीं है। तब क्या यह अद्भुत शक्ति का पुञ्ज सर्वथा व्यर्थ है ? यह जो इतने बड़े संसार का उपभोक्ता और प्रशासक सर्वथा ही अनुपयोगी है ? सर्वथा नहीं। अपितु जैसे ऋषियों को ईश्वरीय-ज्ञान के द्वारा और बुद्धिमानों एवं विज्ञान वेत्ताओं को प्रकृति निरीक्षण के द्वारा ज्ञात हुआ है कि यह सूक्ष्म शक्तियों का समुच्चय ईश्वर की उपासना के लिये रचा गया है। परन्तु यह भी प्रकट है कि जब तक मनुष्य के पास उपभोग के ये सब पदार्थ न हों, तब तक मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। अतः सिद्ध हुआ कि ये सभी पदार्थ मनुष्य को उपासना के लिये दिये गये हैं। और ये सभी पदार्थ उपासना में सहायक हैं। कुरान में इसी विषय का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है :—

"या अय्युहन्नास अ अबद व अरबकं अल्लज़ी खलक़ कुम् व ल्लज़ीन मिन क़ब्लकं लालकं तत्तक़ून अल्लज़ी जाल लकुम् अल् अरज् फराशा वालसमाय बिनाय व अन्ज़ल मिन उल् समाय माअन् फ़ाखुरज बमिनउल् समरात रिजक़ा उल् कम् फला तजालू अल्ला अनदा दन।"

और फरमाया कि :—

"व मा खिलक़्तुल जिन्न इल् उल् लावदून ।"*

जब ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना मनुष्य का कर्तव्य ठहरा, और यह सब पदार्थ मनुष्य को केवल मात्र इस लिये दिये गये हैं कि वह सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर ईश्वर की भक्ति कर सके, तब इस सब ईश्वरीय दान को दण्ड या कर्मफल का परिणाम किसी भी रूप में नहीं माना जा सकता। क्योंकि यदि इसे पूर्वजन्म के कर्मों का फल वा परिणाम माना जाये, तो ईश्वर पर अत्याचार का दोष लग जायेगा। इन पदार्थों का होना ईश्वर-भक्ति के अनुष्ठान के लिये आवश्यक भी था। और इधर ये ही पदार्थ दूसरी ओर कर्मों की मजदूरी भी बन गये। हां, उनका मिलना अधिक मात्रा में मिलना, वा उत्तम रूप में सरलतापूर्वक मिलना, कभी-कभी कर्मों के पश्चात् होता हो, तो यह भी सम्भव है, असम्भव नहीं।

मौलवी साहब के पन्द्रहवें उत्तर का खण्डन

यहां भी आप धोखा देने की चेष्टा से न चूके, और किसी न किसी प्रकार धोखा देने का प्रयत्न करते ही रहे। आप के इस प्रकार भ्रान्त विचारों तथा कुमार्ग में भटकने से हमें बहुत खेद होता है। मौलवी साहब! अवश्य और सैंकड़ों बार अवश्य पुनर्जन्मवाद का अटल सिद्धान्त और पूर्वजन्म के कर्म ही इस संसार में दृश्यमान भेद प्रभेद के वास्तविक कारण हैं। और मानव जीवन के लिये उपयोगी आराम के सब सामान भी अर्थात् रोशनी, पानी, मिट्टी और बनस्पतियां आदि भी इस संसार में सभी लोगों को सुलभ नहीं हैं। पशुओं की सुलभता का तो कहना ही क्या? कोई सोना चाहता है; परन्तु उसे चारपाई नहीं मिलती। बिछौना भी नहीं। पहिनना चाहता है, परन्तु न कपड़ा मिलता है, न जूता। पढ़ना चाहता है, परन्तु रोशनी, तेल, पुस्तक कुछ भी नहीं है। गरम लू शरीर को जला रही है। शौरे-वाली धरती की धूल शरीर को बिगाड़ रही है। पीना चाहता है, परन्तु खारा पानी पीना पड़ता है। मीठा जल भी सुलभ नहीं है। सिवाये बबूल के कांटों व पत्तों के सिवा खाने को साग पात भी नहीं मिलता। हजारों आदमी आये दिन अकाल की भेंट चढ़ जाते हैं। यदि फल और वनस्पतियां मिलतीं तो यह हाल क्यों होता? इस के विपरीत कुछ लोगों को सोने के लिये चारपाई; बिछौना, फ़र्श, सेवक, और गरम ऋतु में पंखा आदि सभी कुछ प्राप्त हैं। इससे भी बढ़कर खस की टट्टियां लगी हैं। पहिनने के लिये उत्तम प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र ऐसे हैं कि जो क़ुरानप्रतिपादित बहिश्त में मिलने असम्भव हैं। प्रतिदिन नये-नये पहिरान बदलते हैं। जो चाहते हैं, सो पहिनते हैं। जूते उत्तम से उत्तम जरी, रबड़ आदि सैंकड़ों प्रकार के मौजूद हैं। झाड़ और फानूस घर में लगे हैं। रोशनी इतनी अधिक है कि स्वयं

---

* हे लोगो! आज्ञाकारी बने रहो अपने उस परमात्मा के जिस ने तुम को और तुम से पहलों को बनाया। और उसकी आज्ञानुसार आचरण करने का लाभ यह होगा कि हम दुःखों से बचे रहेंगे। उसी परमात्मा ने भूमि को तुम्हारे लिये बिछौना (विश्राम स्थान, गोल) बनाया है, और आकाश को बनाया है। और उसी ने बादलों से पानी उतारा। और फिर उस में से निकाले कई प्रकार के फल तथा अन्न तुम्हारे लिये। अतः सावधान रहो, और परमात्मा के कामों में किसी को भी उसका शरीक न बनाओ, और जिन तो केवल इस लिये ही हैं कि वे परमात्मा के आज्ञाकारी बने रहें। —अनुवादक।

बिजली ही उन के कमरों में जगमगा रही है। विश्राम के लिये सब प्रकार की सुख सुविधाओं से परिपूर्ण उत्तमोत्तम घर हैं और बाग़ बाग़ीचे हैं। नहरें चल रही हैं। कहते हैं :—

बदेह साक़ी मये बाक़ी कि दर जन्नत न ख़ाही याफ्त।
किनारे आबे कुन आबाद गुलगश्ते मुसल्ला रा॥ १ ॥

सब अर्क़, सब शरबत, मीठा पानी और गंगाजल मौजूद है। संकेत मात्र पर आज्ञाकारी सेवक उपस्थित हैं। स्वयं मनुष्य, जोकि "सर्वश्रेष्ठ" रचना, प्रकृति का यह अद्भुत चमत्कार और सूक्ष्म शक्तियों का पुंज आप के लेखानुसार है, वह गधों, बैलों, घोड़ों और ऊँटों के स्थान पर, उनकी गाड़ी में जोते जाते हैं। और उन की इच्छानुसार काम कर रहे हैं। और कहते हैं :—

गर अज़ नेस्ती दीगरे शुद हलाक, मरा हस्त बतराज़ तूफ़ान चे बाक॥ २ ॥

हवारी साहब! अब समझे या नहीं ? कि ये सभी पदार्थ कर्मों के अनुसार ही मिले हैं। हां, कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं, जो सभी को एक समान रूप से मिले हैं, और जो जीवन यापन में सबके एक ही जैसे सहायक हैं,

यथा—सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, भूमि, आकाश, पानी। अतः कह सकते हैं कि ये पदार्थ कर्म फलानुसार नहीं मिले हैं। परन्तु अन्य सब पदार्थों की प्राप्ति तो सभी को कर्म फलानुसार ही होती है। एक प्रकार से तो कुछ दबी दबी और लड़खड़ाती सी वाणी से आपने भी यह तथ्य स्वीकार कर लिया है। यथा—

"हां उन का मिलना, अधिक मात्रा में मिलना, वा उत्तम रूप में सरलता पूर्वक मिलना, कभी कभी कर्मों के पश्चात् होता हो, तो यह भी सम्भव है, असम्भव नहीं।"

अब एक मनुष्य को जन्म-काल से ही ये सब पदार्थ मिले हों, उत्तम भी हों, प्राप्तकर्त्ता के प्रयत्न का तो न अवसर है, न प्रसंग, बतलाईये—उसके कौन से कर्म हैं, जिन से ये सब पदार्थ मिल गये ? क्या पुनर्जन्मवाद के सिवा कोई और उत्तर है ? कदापि नहीं हो सकता। पुनर्जन्मवाद या पूर्व जन्म के कर्मों के अतिरिक्त दूसरा कोई भी कारण संसार में दृश्यमान् भेदों का सम्भव ही नहीं है।

अब रही क़ुरान की आयत और आपका परिणाम। यदि इसका अर्थ वही है, जो आपने निकाला, तब तो दोनों की ही भूल है। जब वे ईश्वर की भक्ति केलिए ही उत्पन्न हुये थे, अर्थात् उनके उत्पन्न करने का मुख्योद्देश्य ही यह था कि वे ईश्वर की भक्ति करेंगे, तब वह उद्देश्य पूरा क्यों न हुआ ? आप यहां शैतानी ढकोसला हमारे सामने धरोगे। अतः ज्ञात हुआ कि आप और आपका क़ुरान दोनों ही भूल में हैं।

अब आपकी उन अनुचित और व्यर्थ तावीलों—व्याख्याओं की पोल भी प्रकट किए देता हूँ, जिनके आधार पर आप क़ुरान को एक उत्तम-विद्या-पुस्तक सिद्ध करना चाहते हैं। आप ने "इलारिज

१—ए शराब पिलाने वाले! यह बची हुई शराब भी मुझे दे दे। क्योंकि जन्नत में तो शराब मुझे न मिलेगी।
—अनुवादक।

२—यदि मृत्यु से किसी का सर्वनाश हो चुका है, तो उस से मुझे क्या ? मेरा हाथ जब सितार पर है तो मुझे तूफ़ान से क्या डर है।
—अनुवादक।

फराशन" इन शब्दों का यह अर्थ किया है कि उसने भूमि को तुम्हारे लिए विश्राम स्थान, बिछौना और गोल बनाया। श्रीमान् जी ! यह "गोल" आपने किस शब्द का अर्थ कर डाला ? इस चौदहवीं सदी में आपको यह इलहाम खूब सूझा। आप बहुत बढ़ गए। क्या यही नमूना है मुहम्मदी ईमान का ?

आप "अनज़िल मिन उलसमा माय" इन शब्दों का अर्थ करते हैं—"और बादलों से पानी उतारा" क्या अर्श के नीचे वाला दरिया आप भूल गए। या आपके मतानुसार वह हदीस एवं कुरान की आयत रद्दी हो चुकी है ? जो हो। आपका यत्न तो केवल मात्र धोकेबाज़ी का ही है। सत्य की खोज से तो आपका दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

अब सार कथन का यह है कि जिन पदार्थों को आप "मज़दूरी" कहते हो, वे मज़दूरी नहीं, अपितु कर्तव्य-पालन के आवश्यक उपकरण हैं। कर्मों की मज़दूरी तो शरीर की बनावट और उसका अन्धा, लंगड़ा, लूला होना, गरीब होना, ऐसे स्थान पर पैदा होना, जहां कभी एक दिन भी आराम न हो, या जहां सब प्रकार के सब आराम हों। इन सब का सम्बन्ध कर्मों से है। और ये भेद-प्रभेद पूर्ण सब शरीर और सब परिस्थितियां कर्मों के भेद के कारण ही होती हैं। यही वह भेद है, जोकि पुनर्जन्म-वाद को सिद्ध करता है। इसी विषय का बहुत विस्तृत उत्तर हम 'नुस्खा-ख़ब्त-ए-अहमदिया' नामक अपनी पुस्तक में भी दे चुके हैं।

मौलवी साहब का सोलहवां उत्तर

यदि यह भेद, जिसके कारण पुनर्जन्मवादी लोग भ्रांति में पड़ गये हैं, पिछले जन्म के कर्मों का ही फल होता, तब तो हमें अवश्य ही इतनी देर की बात याद होती। अपितु हमें अनादि काल से अब तक की सभी बातें याद होतीं। इतने लम्बे समय की सहस्रों बातें और घटनायें एक ही बार में भूल क्यों गये ? अब पारितोषिक प्राप्त करने वाले को यह ज्ञान ही नहीं है कि यह किस शुभ कर्म के बदले में मिला है ? किसी दण्ड प्राप्त करने वाले को भी यह ज्ञात नहीं है कि उसे किस बदकारी के बदले में फांसा गया है। लड़कपन की बातें विस्मृत हो जाती हैं, और याद नहीं आतीं। इस पर यह कह सकते हैं कि उस अवस्था में मनुष्य की बुद्धि, दोषपूर्ण, अविकसित और निकम्मी होती है। दूसरे जैसाकि आर्यलोग भी मानते हैं कि सभी मनुष्य जन्म से तो शूद्र ही उत्पन्न होते हैं।

तीसरे वह अवस्था भी थोड़े ही समय की है। और कुछ बड़े कार्यों से उसका सम्बन्ध नहीं है। परन्तु मुसलमान इस जन्म से पूर्व जीवात्माओं पर अहेदउस्त का ज़माना अर्थात् दृष्टान्त काल का व्यतीत होना स्वीकारते हैं। परन्तु प्रथम तो वह एक दृष्टान्त की और आश्चर्य की बात है, दूसरे वह समय बहुत ही थोड़ा-सा समझा जाता है। फिर भी विचार करो कि अभी तक भी उसका कितना प्रभाव शेष है ? कि सभी जीवात्माओं के स्वभाव में उसी असर के कारण अब तक भी सभी मनुष्य, विचार भेद, बुद्धिभेद, खान-पान और रहन-सहन का भेद होने पर भी एवं परस्पर रागद्वेष पूर्ण व्यवहार करने पर भी, इस विषय में सहमत हैं कि हमारा कोई परमेश्वर है। चाहे कोई उसे अल्ला कहे, कोई ओम कहे, कोई यहूदा कहे, यज़दान कहे। किसी के मुख से दहर के नाम से प्रसिद्ध हुआ और किसी के मुख से शक्ति।

ईश्वर के कृपापात्र नबियों को लोगों ने देखा। उनके अद्भुत चमत्कार भी देखे। फिर भी

लोगों ने उनपर विश्वास न किया। और उनके उपदेशों को ग्रहण न किया। परन्तु ईश्वर को लोगों ने बिना देखे ही ऐसे मान लिया, जैसे कि वह सामने मौजूद है। लोगों की ईश्वर विषयक इस सहमति का कारण युक्तियां या प्रमाण नहीं है। क्योंकि हम प्रतिदिन देखते हैं कि शास्त्रार्थों और युक्तियों-प्रयुक्तियों से तो वादविवाद करने वाले पक्ष-विपक्षों में झगड़े एवं वैर विरोध बढ़ते हैं। आपस का प्रेम इन से नहीं होता। इन का लाभ तो इतना ही है कि कभी कभार अपने उत्पन्न करने वाले का नाम सुन लिया जाता है।

फिर देखते हैं कि विभिन्न मत-मतान्तरों के अनुयायी ईश्वर को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये कैसी-कैसी कठोर तपस्यायें करते हैं। क्या इस प्रकार के उत्कट प्रेम की अवस्था किसी परम पवित्र ज्योति को बिना देखे, केवल सुनने मात्र से ही उत्पन्न हो सकती है? यदि ऐसा होता, तो लोग उन सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों और पुरुषों की सुन्दरता की बातों को सुनकर भी वैसे ही प्रसन्न तथा उत्कट प्रेम में अभिभूत हो जाते, जिनको उन्होंने कभी भी नहीं देखा। और उनकी भी वही अवस्था होती जोकि अपने प्रेम पात्रों को देखने पर परम-प्रेमियों की होती है। हमारे एक शुभकर्मी सैयद व मौला का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जीवात्माओं ने कभी न कभी अवश्य ही ईश्वर-दर्शन प्राप्त किया है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि निस्सन्देह जीवात्माओं को कभी न कभी ईश्वरीय-ज्योति के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। इस काल में न सही, उस दृष्टान्त-काल–आलमे मिसाल में ही सही। चाहे इस समय हमारे शरीर के परमाणु उतने अधिक शक्तिशाली न रहे हों, जैसे कि उस समय थे। हो सकता है कि उस समय हमारे शरीर भी छोटे-छोटे ही रहे हों। यही लेख मौलवी फिरोजुद्दीन ने भी पृष्ठ २५८ से २६२ तक लिखा है।

मौलवी साहब के सोलहवें उत्तर का खण्डन।

इस उत्तर से आपका अभिप्राय यह है कि यदि यह संसार में वर्तमान भेदभाव पुनर्जन्मवाद के कारण हैं, तो यह बहुत आवश्यक है कि हमें इतने सुदीर्घकाल की सब बातें, अपितु अनादि काल से अब तक की सब बातें, अवश्य ही याद हों। हम हज़ारों बातें और घटनायें भूल क्यों गये? हकीम जी! निसन्देह इस भेदभाव का कारण तो पुनर्जन्मवाद ही है। और यह भेदमयी अवस्था ही हमारे पिछले जन्म के कर्मों का दण्ड, पुरस्कार, या मजदूरी है। और स्मरण न रहने के कुछ कारण इस प्रकार हैं :—

१—जीवात्मा अल्पज्ञ है। एक देशी है। सर्वज्ञ नहीं है।

२—इस को एक ही समय में दो बातों का ज्ञान नहीं होता।

३—एक रोग का नाम नसयान है। नसयान के कारण भी मनुष्य सब कुछ भूल जाता है।

४—गर्भावस्था की बातें बाहिर, बचपन की बातें युवावस्था में, और युवावस्था की बातें बुढ़ापे में भूल जाती हैं।

५ देखने और स्मरण रखने के उपकरण बदल जाते हैं।

६—यदि एक चित्र के ऊपर दूसरा, और इसी प्रकार एक ही चित्र पर बारम्बार लगातार हज़ारों चित्र बना दिये जायें; तो कोई एक भी चित्र बना न रहेगा। और चित्र की रेखायें भी स्पष्ट न

होंगी। प्रकार से बनाये गये किसी एक भी चित्र की कुछ भी स्मृति अल्पज्ञ जीवात्मा को न रहेगी। ऐसा चित्र तो ईश्वर ही स्मरण रखेगा।

मैंने एक बार एक मनुष्य को देखा। वह शहतूत के वृक्ष पर चढ़कर बैठा हुआ शहतूत खा रहा था। अचानक ही वह पांच गज़ की ऊंचाई से गिर पड़ा। उसके गिरते ही मैं उस के पास गया कि उसको चोट लगी होगी। एक दो मिन्ट के बाद वह होश में आया। मैंने पूछा-तू कैसे गिर पड़ा ? वह बोला मुझे मिरगी के दौरे पड़ा करते हैं। परन्तु वह मिरगी नहीं, नशे की-सी एक अवस्था बन जाती है। उसे न तो गिरने का ध्यान था, न किसी और बात का कुछ पता। मेरे बताने पर उसने जाना कि गिर पड़ा था।

एक स्त्री बेहोश थी। बेहोशी में ही उसके एक बच्चा पैदा हुआ और वह मर गया। उस स्त्री को उसकी कुछ भी याद न रही। आप का दृष्टान्त काल अर्थात् अलस्त का ज़माना मानना, या मुसलमानों का ऐसा मानना भी कुरान के विरुद्ध है। यथा :—

व अल्ला अखरज कुम मिन बतून। इमहातकुम तालसून मसी अन॥

अर्थ :—और अल्लाह ने निकाला तुम को माताओं के पेट से। तुम कुछ नहीं जानते थे।

यदि आप इस आयत को रद्द न मानेंगे, तो आप का वह दृष्टान्त-काल—अलस्त का ज़माना रद्दी हो जायेगा। अथवा उसकी स्मृति की विस्मृति स्वीकारनी होगी। आपका यह दृष्टान्त-काल का विचार एक प्रकार का वहम और जंजाल ही है।

जो लोग दहर को मानते हैं, वे न तो उसमें ज्ञान मानते हैं और न ही उसमें इच्छा का होना स्वीकारते हैं। अतः वे तो नास्तिक हैं। ऐसे ही सब जैन और बौद्ध भी नास्तिक हैं। क्योंकि वे तो ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते ही नहीं।

अब अपने नबियों के अद्भुत कार्यों और चमत्कारों को भी विचार लो। सो वे तो भानमती के तमाशे हैं। इस विद्या और विज्ञान के युग में क्या कोई बुद्धिमान् मनुष्य उन बेसिरपैर की बातों को सुनकर विश्वास कर सकता है ? सैयद अहमद खां बहादुर ने अच्छा किया कि स्पष्ट कह दिया—

हमारे नबी के पास चमत्कार आदि कुछ न थे। और जब ऐसे बड़े सरदार के पास भी चमत्कार न थे, तब यह निसन्देह सत्य है कि पिछले—प्राचीन नबियों के पास भी न चमत्कार थे, न अद्भुत शक्तियां।

जिन महामनुष्यों ने ईश्वर को समझा, बुद्धि, सुशिक्षा और विज्ञान के आधार पर, अथवा ऐसे जन जो पिछले जन्म में योगी रहे हों। अथवा कोई भी इन उपायों के बिना ईश्वरको नहीं समझ सकता। कुरान में ईश्वर का जो स्वरूप वर्णन किया गया है, वह तो बुद्धि की कसौटी पर एक सैकिण्ड भी नहीं ठहर सकता। यही हाल उस खुदा का भी है, जिस का वर्णन इंजील में किया गया है। परन्तु धन्य है, वह वर्णन जिस में लिखा कि जिस बुद्धि से सम्पूर्ण विद्वान् और तत्त्वदर्शीजन आपके सनातन शुद्ध स्वरूप की उपासना करते हैं, और जिन प्रमाणों से ऋषिमुनि आप को पहचानते हैं, हे परमात्मन्! हम को भी वही बुद्धि प्रदान करो। यथा —

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनंकुरु॥

जिन लोगों को नियमानुसार सुशिक्षा, प्रेरणा और उपदेश के द्वारा भी ईश्वर पर विश्वास न हो

सका, उन्हों ने कभी ईश्वर-प्राप्ति के लिए कष्ट सहन किया हो, इस बात का कोई एक उदाहरण भी संसार में नहीं मिलता। अतः आपका कथन निराधार है। आपके नबी से तो जामी साहब ने अधिक उत्तम लिखा है :—

न तनहा इश्क़ अज़ दीदार खेज़द। बसाकीं दौलत अज़ गुफ्तार खेज़द ॥†

महात्माओं से उनकी महिमा, और सर्वशक्तिमत्ता को सुनकर हज़ारों लाखों मनुष्य ईश्वर के परम प्रेमी बन चुके हैं। परन्तु आपका दृष्टान्त-काल सर्वथा प्रभाव शून्य है। आपके क़ालू बल्लाके इकरार नामे से भी कोई प्रभावित नहीं हो सकता। क्योंकि न तो वह देखने की वस्तु है, न अनुभव करने की उसकी कोई शकल है, न सूरत। अस्तु, देखने की बात सर्वथा ही मिथ्या तथा व्यर्थ की लनतरानी-व्यथ प्रलाप है। और यदि आप ही के कथनानुसार जीवात्मा प्राकृतिक तत्वों का सार हो, तब तो आप का यह इकरारनामा और भी व्यर्थ हो जाता है।

मौलवी साहब का सतारहवां उत्तर

यदि पुनर्जन्मवादी और अनन्त काल तक रहने वाले आनन्द के मानने वाले आर्य लोग, मोक्ष के बाद मिलने वाले अनन्तकाल व्यापी आनन्द से वंचित रह जायें, तो शायद रह जायें। इस लिये कि उनके स्वभाव और उन की उपासना में वह उत्कट भावना और कामना ही नहीं रही। उन के आत्मा ने अनन्तकाल स्थायी आनन्द का विचार ही त्याग दिया। इस विश्वास ने उन के स्वभाव को ही बदल दिया। सम्भव है कि इन पर वह दया न हो और इन के प्रति न्याय का वह व्यवहार न हो, और न ही ईश्वरीय न्याय इन की सिफारिश करे। इत्यादि।

मौलवी साहब के सतारहवें उत्तर का खण्डन

इस उतर का पुनर्जन्मवाद से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आप हम को कमनसीब या बद नसीब जो चाहो सो कह लो। बदनसीब का यह मिथ्या ढकोसला मुसलमानों का घड़ा हुआ है। और इस का सम्पूर्ण प्रभाव पुनर्जन्मबाद को न मानने पर भी मुसलमानों के लिये जान का जंजाल हो रहा है। हाफ़िज़ साहब का कथन है :—

दर कूए नेकनामी मा रा गुज़र नदारन्द।
गर तू नमे पसन्दी तग़यीर कुन क़ज़ा रा ॥ १ ॥

जिस प्रकार वर्तमान विज्ञान-शास्त्र और रसायन शास्त्र ने झूठी रसायन विद्या और मजहबी चमत्कारों का नाम व निशान मिटा दिया है, उसी प्रकार पवित्र वेद के शुभ उपदेशों ने शारीरिक, कामुकतापूर्ण और नाशवान् बहिश्त की हूरों और उस के लौण्डों का अन्त करके यह स्पष्ट दर्शा दिया है कि मुक्ति कर्मों का फल ही है। और क्योंकि कर्म सान्त व सीमित होते हैं।

---

† अकेले प्रियतम के देखने से ही प्रेम उत्पन्न नहीं होता! प्रत्युत यह विभूति तो आपस में वार्तालाप करने से प्राप्त होती है।
—अनुवादक।

१—यदि नेकनामी की गली में हमारा जाना नहीं हो सकता, और यदि तू मुझे पसन्द नहीं करता, तो तू हमारे भाग को बदल दे।
—अनुवादक।

अतः मुक्ति भी सान्त और सीमित ही होगी । परन्तु यह ध्यान रहे कि उस की सीमित अवधि भी क़ुरान और इंजील के ख़ुदा की सम्पूर्ण आयु से भी करोड़ गुणा बढ़कर है। मौलवी साहब क्या आप का स्वभाव सर्वथा ही बदल दिया गया है । जो आप सभी वस्तुओं को ईश्वर मानने के बाद भी, स्वर्ग, नर्क और मोक्ष को अनन्त काल स्थायी मान रहे हो । क्या जिस बहिश्त के बनने और उस में जाने की प्रक्रिया का अभी आरम्भ ही हुआ है, और जिस में से पहिले भी आदम जैसे नबी और मौत के दारोग़ा जैसे फरिश्ते को निकाला जा चुका है, वहां आप अनन्तकाल-स्थायी सुख और सदा रहने वाले आनन्द का उपभोग कर सकते हैं ? ईश्वर के लिये विचार कीजिये।

मौलवी साहब का अठारहवाँ उत्तर

आर्यों के मन्तव्यानुसार यह आवागमन ही एक जहन्नुम है। और यही कुछ दिन की उस स्वतन्त्रता सहित, जिस में जीवात्मा शरीर से अलग रहेगा, बहिश्त है। अन्यथा न कोई बहिश्त, न जहन्नुम और न स्वर्ग, न नर्क। सभी जीवात्मा अनादिकाल से अब तक परतन्त्र हैं, और सदा परतन्त्र ही रहेंगे। अतः हम को बहुत अधिक आश्चर्य है। यदि सभी जीवात्मा इसी प्रकार परतन्त्र रहे । आर्यों का यह भी मन्तव्य है कि जीवात्माओं का निर्माता ईश्वर नहीं है । और न ही जीवात्मा ईश्वर के प्रतिबिम्ब हैं। अस्तु, आर्य सज्जनो ! बताओ कि इस प्रकार का अतिकठोर अनुशासन किस दयालु और न्यायकारी का काम है ? कुरान करीम कैसा सुन्दर कथन करता है :—

व ला यज़ुल्म रब्बक अहदन ।

अर्थ—तेरा ईश्वर तो किसी पर भी अत्याचार नहीं करता।

मौलवी साहब के अठारहवें उत्तर का खण्डन

ऐसी व्यर्थ बातों से किसी सत्य सिद्धान्त को छिपाया नहीं जा सकता। सुनिये हम आप को इस का इलज़ामी व तहक़ीक़ी दो तरह का उत्तर सुनाते हैं।

१—तहक़ीक़ी उत्तर

"आवागमन" एक बहुत अधिक व्यापक शब्द है। जिस में सभी प्रकार के दण्ड और सभी प्रकार के पुरस्कार शामिल हैं। अतः हम स्वर्ग और नर्क को भी अवश्य ही स्वीकारते हैं। "स्वर्ग" का अर्थ है सुख विशेष। और "नर्क" का अर्थ है, दुःख विशेष। किसी ईमानदार विद्वान् ने भी ठीक इस से मिलता-जुलता ही कथन किया है। तद्यथा :—

बहिश्त आं जा कि आज़ारे न बाशद। कसे रा बा कसे कारे न बाशद॥ १ ॥

हिन्दुस्थान को जन्नत का निशान कहते हैं। और कश्मीर को भी जन्नत नज़ीर कहा जाता है। परन्तु अर्बस्थान तो दोज़ख निशान है। और अफ्रीका का महा मरुस्थल जहन्नुम मकान हैं। और कुरान के बहिश्त के विषय में एक विद्वान् ने स्वयं कुरान के शब्दों में बहुत उत्तम वर्णन किया है, जोकि इस प्रकार है :—

१—जहां किसी को कष्ट नहीं है, और जहां एक मनुष्य को दूसरे से कुछ भी काम नहीं है, अर्थात् जहां कोई भी किसी के आधीन नहीं हैं, उसी स्थान का नाम स्वर्ग—बहिश्त है। —अनुवादक।

गोयन्द दर बहिश्त हौज़ व कौसर बाशद । व आंजां मयेनाब व शहद व शकर बाशद ॥१॥
पुर कुन कदह ज़ि बादह व बर दस्तम नेह । नक़द ज़ हज़ार निसियाह बेहतर बाशद ॥२॥

दूसरा तहक़ीकी उत्तर

मनुष्य शरीर के बिना कर्म-फल अर्थात् दण्ड एवं पुरस्कार को भोग ही नहीं सकता । अतः जहां और जिस स्थान पर जाकर मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार सुख या दुःख का उपभोग करता है, वही दोजख या जन्नत है । किसी स्थान विशेष का नाम स्वर्ग या नर्क नहीं ।

तीसरा इलज़ामी उत्तर

बहिश्त में छोटी और बड़ी श्रेणियां हैं । सांसारिक मनुष्यों के समान ही वहां पर राग और द्वेष भी हैं । वहां के स्त्री पुरुष सम्भोग भी करते हैं । मांस नहीं खाते हैं । शराब पीते हैं । इसी कारण से सैयद साहब ने ठीक ही कहा है कि इस बहिश्त से तो टूटे फूटे मकान एवं उपकरण ही उत्तम हैं ।

चौथा इलज़ामी उत्तर

एक ईमानदार मौलवी का कथन है :—

कब हक़ परस्त जाहिद जन्नत परस्त है ।
हूरों पै मर रहा है, यह शहवत परस्त है ॥३॥

हमने इस विषय की एक पृथक् पुस्तक लिखी है । उस का नाम "राहे नजात" है । उसमें वेद और क़ुरान के अनुसार प्राप्त होने वाले मोक्ष की पारस्परिक तुलना बहुत विस्तार के साथ की गई है । क़ुरान ने तो बहिश्त का नाम भी शद्दाद की कहानी से ही सुना है । और उस कहानी में वर्णित वास्तविक बहिश्त के मुक़ाबिले में एक काल्पनिक बहिश्त का चित्र खींचा है । क़ुरान में जिस प्रकार के मोक्ष, और जिस प्रकार के बहिश्त का वर्णन है, उसके विषय में ईमानदार मुहम्मदियों ने भी यही अनुमान लगाया है । देखिये :—

साक़ी ब बहिश्त ईं हमा मुश्ताक़ी चीस्त । जन्नत मय व साक़ी बुवद बाक़ी चीस्त ॥ ४ ॥
ईंजास्त मय व साक़ी आंजास्त हमीं । पस दर दो जहां बखुर्मी व साक़ी चीस्त ॥ ५ ॥

१—कहते हैं कि बहिश्त में हौज़ है, नहर है, शराब है, शहद है और शक्कर भी है । (यदि ऐसा ही है, तो)

२—प्याले को शराब से भर दो । और मेरे हाथ पर रखो । कुछ नक़द पूंजी हज़ारों रुपये के ऋण से बहुत उत्तम है । —अनुवादक ।

३—यह उपासक सत्य का उपासक कहां है ? यह तो जन्नत का ही उपासक है । यह तो हूरों पर मर रहा है । क्योंकि यह बहुत अधिक व्यभिचारी है । —अनुवादक ।

४—ए साक़ी ! हमें इस बहिश्त की क्या इच्छा है ? अर्थात् कुछ भी इच्छा नहीं है । बहिश्त में साक़ी=शराब पिलाने वाला होता है । और शराब होती है । शेष और क्या है ?

५—इस जगह शराब भी है, और शराब पिलाने वाला भी है । ये दोनों ही वहां पर भी हैं । बस, दोनों ही स्थानों में प्रसन्नता तथा शराब पिलाने वाले से भिन्न और क्या है ?

साक़ी क़दहे मय कि आंगह ईं खाक सरिश्त। खत बर सरेमा जुमस्ती व इश्क तो नविश्त॥ ३॥
मामूर बूद बशाहिद व मय व बादा जहां। माऊद बूद ब कौसर व हूर बहिश्त॥ ४॥

पांचवां उत्तर

क़ुरान में जिस जन्नत व दोज़ख़ का वर्णन है, वह सर्वथा ही काल्पनिक तथा मिथ्या है। उस की कुछ भी वास्तविकता नहीं है। जिस प्रकार अलिफ लैला की कहानियों में दूध और शराब व शहद की नहरों तथा अपने आप ही मुंह में आ जाने वाले फलों की अद्भुत और असम्भव बातों से वे सब कहानियां भरी पड़ी हैं, वैसी ही स्थिति क़ुरान के उल्लेखों की भी है। [देखो कहानी तोते और जोगी।] अत: ऐसे बहिश्त या दोज़ख़ को न तो हम स्वीकारते हैं और न ही कोई बुद्धिमान् मानता है। जिस में सोंठ की शराब, अंगूर की शराब, और इसी प्रकार बियर, रम, ब्राण्डी, विस्की अव्विया नम्बर एक, आदि-आदि मौजूद हैं।

मौलवी साहब! क्योंकि जीवात्मा सदा ही काम करते हैं और, वे काम बुरे या भले होते हैं, जिन के बदले में ईश्वर उन को दण्ड या पुरस्कार देता है। ईश्वर न तो बेकार है, और न ही पथभ्रष्ट। फिर सदा ही चलते रहने वाले कर्म-प्रवाह से इन्कार करना भी व्यर्थ ही है। परन्तु ये सारे ही दोष क़ुरान में प्रतिपादित ईश्वर पर लागू होते हैं। वह अत्याचार करता है। और कहता यह है कि तेरा ईश्वर किसी पर अत्याचार नहीं करता। यह एक ऐसी ही बात है जैसे कोई मक्के के परमेश्वर को सर्वव्यापक मानना और, काबे को मत्था टेकना। यह दृष्टान्त उस शराबी के समान है, जो शराब पीकर कहता है कि मैंने कोई शराब नहीं पी, मेरे मुंह से बदबू तो नहीं आती। क़ुरान का ख़ुदा या तो लोगों के साथ उपहास करता है, जैसे कि काफ़र जटल्ली और मुल्ला दो प्यादा किया करते थे, अन्यथा इस में कोई भी सन्देह नहीं कि वह वास्तव में एक बहुत बड़ा अत्याचारी है। साथ ही मकार भी है।

मौलवी साहब का उन्नीसवाँ उत्तर

यदि आवागमन के सिद्धान्त को मान लिया जाये तो उस के अनुसार वह (ईश्वर) दयालु, कृपालु और शुभचिन्तक भी नहीं। क्योंकि उस की हज़ारों कृपाओं के बदले में आर्य लोग कह देंगे कि उन को तो अपने कर्मों की मजदूरी मिल रही है। अतः ईश्वर की मनुष्य पर कोई भी कृपा नहीं है। परन्तु सभी वही पुस्तक है, जिस में लिखा है कि मुक्ति की प्राप्ति ईश्वर की कृपा से ही होगी, और बचाया इन को दोज़ख़ के अज़ाब से। यह फज़ल—कृपा हुई तेरे रब की। [सूरत दुख़ान]

मौलवी साहब के उन्नीसवें उत्तर का खण्डन

इस उत्तर में आपने कुछ बातों में उसी सतारहवें तथा अठारहवें उत्तर को ही दोहराया है। यदि मुक्ति कर्मों से मिलती है, तो कृपा की बात व्यर्थ है। और यदि मुक्ति की प्राप्ति ईश्वर की कृपा से

३—ए साक़ी! जब शराब का प्याला अपना प्रभाव दिखाता है, तब मस्त होकर वह तेरे प्रेम की कहानी को ही लिखता है।

४—इस लोक में शराब आबाद रहे। और बहिश्त में भी नहर तथा हूर बनी रहे।

—अनुवादक।

होती है, तो कर्मों की व्यर्थता स्पष्ट है। क़ुरान की इस आयत का उत्तर हम क़ुरान से ही देते हैं। क़ुरान सूरत जासिया :—

"व ख़लक़ अल्लाह अल समावात व अल-अरज़ बिल् हक़ व उल्तजजी कुल नफ़स बमा कस्बत व हम लायजुल्मून।" (अरबी)

अनुवाद हुसेनी—व बयाफरीद ख़ुदा आसमानहा व ज़मीनहा रा बरास्ती व अदल वमिन तक़ज़ाय अदालत आंस्त कि मियान मोहसिन व मोहस्सीब मोहिद व मुशरिक तफावत बाशद। व दीगर बराय आंकि पादाश दादह शवद! हर नफ़से बां आंचे कसब कर्दा अज़ ख़ैर व शर व ऐशां यानी अमल कुनिन्दगान सितम-दीदा न शवन्द यानी नुक़्से सवाबे अबरार व अज़दयारे अक़ाब अशरार वक़ूअ़ नयाबद बल्कि हरकसरा फराखुद अमल व जज़ा ख़ाहद दाद।* (फारसी)

[जिल्द २, पृष्ठ ३१७]

अतः स्पष्ट है कि क़ुरान की यह आयत पवित्र वेद के आदेश की ही नक़ल है। निस्सन्देह संसार की रचना न्याय के आधार पर ही की गई है। न्याय होगा। सभी को अपने अपने कर्मों का फल मिलेगा। दण्ड और पुरस्कार सब कुछ कर्मों के अनुसार ही होगा, न्यूनाधिक कुछ नहीं।

हर आंकि तुख़्म बदी किश्त व चश्मे नेकी दाश्त।
दिमाग़ बेहूदा पुख़्त व ख़्याल बातिल बस्त ॥ १ ॥
हर कि ओ अमल न कर्द व इनायत उम्मीद दाश्त।
दाना न कर्द आबला व दख़ूल इन्तज़ार कर्द ॥ २ ॥
न बुर्दह रंज गंज मुयस्सर नमे शवद।
मुज़्द आं गरिफ़्त जाने बिरादर कि कार कर्द ॥ ३ ॥

---

* और ईश्वर ने आकाश तथा पृथिवी को सत्य एवं न्याय के लिये बनाया। और न्याय यह मांग करता है कि कृतज्ञ तथा कृतघ्न में एवं शरीक और लाशरीक में भेद किया जाये। दूसरे यह कि बदला—प्रतिफल दिया जाये। अर्थात् किसी भी कर्मकर्त्ता पर कोई अन्याय न हो। नेक लोगों की नेकी तथा बुरे लोगों की बुराई आपस में गड़बड़ न होने पाये। तथा च प्रत्येक मनुष्य को उस के कर्मों का फल दिया जायेगा। —अनुवादक।

१—जिसने बुराई का बीज बोया है, और वह नेकी की आशा करता है, वह बेहूदा है, और उस का विचार मिथ्या है।

२—प्रत्येक वह मनुष्य जिसने कर्म नहीं किया, और ईश्वर की कृपा की आशा करता है, वह उस मनुष्य के समान है, जिस ने दाना तो बोया नहीं, परन्तु फल की प्रतीक्षा करता है।

३—जो कष्ट नहीं उठाता, उसे धन-कोष प्राप्त नहीं होता। ए मेरे भाई! फल तो वही प्राप्त करता है, जो कर्म करता है। —अनुवादक।

एक विद्वान् ने कहा है :—

सुलतान बिला अदल कन्नहरे बिला माअे ।*

मौलवी साहब का बीसवां उत्तर

आर्य सज्जनो ! ईश्वर को दया और कृपा करने से किस ने रोका ? उस से बढ़कर कौन है ? उस का शासक कौन ? उस ने कब इक़रार के बिना ही वईद—वायदा कर दिया कि वह कभी भी किसी पर दया न करेगा ? हम तो कहते हैं कि यदि उस ने कठोर डरावा दिया भी है, तब भी वह मोक्ष प्रदान कर सकता है। क्योंकि वह सब प्रकार की बुराइयों से रहित है, और भली प्रकार से यह जानता है कि यदि वायदों को पूरा न करना झूठ है, तब भी वईद† के विरुद्ध आचरण करना झूठ नहीं है, अपितु वह तो दया और कृपा ही है।

ला यसाल अमा यफ़अल व हम यसालीन ।

अर्थ—ईश्वर जो कुछ करता है, उस के विषय में न कोई आलोचना हो सकती है, और न ही कोई प्रश्न उठ सकता है। परन्तु मनुष्य जो कुछ करते हैं, उस के विषय में तो आलोचना भी हो सकती है, और प्रश्न भी उठ सकता है।

मौलवी साहब के बीसवें उत्तर का खण्डन

आप का यह उत्तर मिथ्या और पाप कारक है। क्या आप इतनी-सी दलीलबाज़ी के भरोसे पर ही पुनर्जन्मवाद जैसे युक्ति और प्रमाण-सिद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त का खण्डन लिखने बैठे थे ? यह काम आपकी योग्यता से बहुत अधिक बड़ा है। इससे एक बात और भी हमें ज्ञात होगई कि आप ने अपने दूषित विचार के अनुसार हातिम ताई की कहानी के हमाम बाद गर्द वाले बादशाह जैसा एक सर्वथा काल्पनिक बादशाह ख़ुदा मान रखा है। इस लिये आप जो भी चाहते हैं, वही दोष और कलंक उसके सिर मढ़ देते हैं। ईश्वर कभी भी ऐसा नहीं हो सकता कि उसको अपनी सत्यता प्यारी न हो। जो सत्य पर दृढ़ न हो। जो सिफारिशों, क्षमाओं, और रिश्वतों के लालच से अथवा पक्षपातवश न्याय की तुला को, जिधर चाहे उधर ही झुका देता है। कोई ऐसा आदमी तो कभी भी ख़ुदाई के योग्य नहीं हो सकता।

यदि ख़ुदा की ग़लती पर आलोचना नहीं की जा सकती तो मुहम्मद साहब ने काबे के मूर्त्ति-पूजकों से लड़ाई झगड़े और ख़ून-ख़राबे क्यों किये थे ? यदि ख़ुदा की बातों की समालोचना नहीं हो सकती तो मुहम्मद साहब ने ईसा के ख़ुदा का बेटा होने के विषय में जहाद—धर्मयुद्ध करके, ईसाइयों का बध क्यों करवाया ?

यदि ख़ुदा की बातों पर प्रश्न या समालोचना नहीं हो सकती तो तुम लोग, या सभी ईश्वरवादी लोग कृष्ण और राम को ईश्वर मानने से इन्कार क्यों करते हो ?

---

* जो न्यायकारी नहीं है, वह राजा ऐसा ही है, जैसे बिना पानी की नहर। —अनुवादक।

† वईद—यदि पहले कोई वायदा न किया जाये और फिर भी नेकी की जाये, तो ऐसी नेकी को वईद कहते हैं। —अनुवादक।

यदि ख़ुदा जो चाहे, वही कर सकता है, तो सभी उत्तम गुणों का अन्त, पापों की उन्नति और बदचलनियों का बाज़ार गर्म होगा, और स्वयं ऐसे ख़ुदा की जान ही वबाल बन जायेगी।

न सग दामने कारवाने दरीद । कि दहक़ान नादां कि सग परवरीद ॥१॥

शायद आपने सुना नहीं :—

ख़ताये बुज़ुरगाँ गिरिफ़्तन ख़तास्त ।१।

अर्थात् बुज़ुर्गों की ग़लती पकड़ना भी ग़लती है। परन्तु—

व लेकिन ब जाये मुनासिब रवास्त ।२।

आप ने तो 'वायदा' और 'वईद' इन दोनों ही शब्दों के अर्थ नहीं समझे। या आपने जान बूझकर ही लोगों को पापी बनाने का ठेका ले रखा है?

वायदा—इकरार करना, नेकी करने का।

वईद—बुरा वायदा, दण्ड देने का वायदा।

ये दोनों ही एक दूसरे के लिए आवश्यक हैं, और इन दोनों का आपस में समवाय सम्बन्ध है। एक स्थान पर ईश्वर जाने, कैसे आपने सच्ची बात लिख दी है। यथा—"कभी-कभी चश्म-पोशी, सन्तोष या उपेक्षा करना बहुत भारी हानि के कारण होते हैं। चोर, विद्रोही और रास्ता लूटने वाले को यदि दण्ड न दिया जाये, और उस पर केवल दया ही की जाये तब कितना नुक़सान होता है।

[तसदीक़ पृष्ठ—३५]

अस्तु इन दोनों के ही विरोध का नाम झूठ है। और जो इन दोनों के विरुद्ध आचरण करता है, वह झूठा है। उसका आदेश या कथन डरावा नहीं है। वह तो निश्चित् और अवश्यम्भावी है। हां क़ुरान में बहिश्त और दोज़ख़ के विषय में जो-जो उल्लेख हैं, वे सब तो अवश्य ही डरावा और भुलावा हैं। उनका बच्चों के बहलावे से बढ़कर कुछ भी महत्व नहीं है। साधारण बोलचाल में जिस को हौआ कहते हैं। इसी वास्ते ऐसी बातें विश्वास करने योग्य एवं प्रामाणिक नहीं हैं। क्योंकि इनका आधार सत्य पर प्रतिष्ठित नहीं है। अपितु ये डरावे बहलावे ही हैं। तभी तो ग़ालिब ने लिखा है :—

ख़ूब मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख़्याल अच्छा है॥

मौलवी साहब का इक्कीसवां उत्तर

यह पुनर्जन्मवाद जैसे एकेश्वरवाद के विरुद्ध है, और शिर्क† का कारण है, वैसे ही यह शिक्षा-

---

१—कुत्ते ने सौदागर का दामन न फाड़ा था। प्रत्युत मूर्ख गंवार ने जिसने कुत्ते को पाला था।
—अनुवादक।

१—बुज़ुर्गों की ग़लतियों को पकड़ना भी एक प्रकार की ग़लती ही है। —अनुवादक।

२—परन्तु उचित अवसर पर बुज़ुर्गों की ग़लतियों को पकड़ना उचित है। —अनुवातक।

†—इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर से भिन्न किसी भी जड़ या चेतन तत्व की अनादि सत्ता को स्वीकारना, या ईश्वर के कर्मों में किसी को सांझेदार मानना 'शिर्क' कहलाता, और अक्षम्य अपराध समझा जाता है। अतः यह 'शिर्क' एक पारिभाषिक शब्द है।
—अनुवादक।

चार तथा सदाचार का भी घोर शत्रु है। यह एकेश्वरवाद के विरुद्ध तो इस लिये है कि जैसे पुनर्जन्म-वादी दयानन्दियों का मत है, कि जीवात्मा ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं हैं। और न ही परमाणु उसके बनाये हुए हैं। समय अर्थात् 'काल' भी उसका बनाया नहीं है। जिस प्रकार ईश्वर अपनी सत्ता से स्वयं विद्यमान और स्वयम्भू है, वैसे ही जींव और प्रकृति भी स्वयम्भू हैं। ये लोग तो एक ब्रह्मवाद के मानने वाले भी नहीं हैं, जैसे कि इन ही के भाई बन्धु वेदान्तियों का विचार है। तो क्या किया जाये ? कि असल एक के विश्वासी हो एकेश्वरवाद को मानते हैं।

और शिष्टाचार एवं सदाचार का शत्रु यह सिद्धान्त इस लिये है कि पुनर्जन्मवाद के आधार पर कोई भी मनुष्य अपने किसी सहायक, शुभचिन्तक, परम प्रेमी, सहानुभूतिशील बन्धु के विषय में यह विश्वास कर ही नहीं सकता कि उसने मुझ पर कुछ कृपा की है। या दया दिखाई है। अपितु प्रत्येक पुनर्जन्मवादी अपने प्रत्येक कृपालु की कृपा के बदले में कह सकता है कि इस कृपालु ने कुछ भी कृपा नहीं की है। इस ने तो हमारी पूर्वकृत कृपाओं का बदला ही चुकाया है।

मुझे याद है कि एक राजा को बिच्छू ने काटा। एक मिस्मरेज़्म जानने वाले ने, जिस को इन लोगों की भाषा में मन्त्र झाड़ने वाला कहते हैं, झाड़ा=मन्त्रोपचार किया। जब उस भावुक राजा का आराम हो गया और उपचार करने वाले को यह इनाम मिला कि उस का पहरा देना बन्द कर दिया गया, तब पुनर्जन्मवादी सहज विश्वासी लोग बोल उठे—"देखो ! इस बिच्छू ने किस प्रकार इस सिपाही का ऋण चुकाया है। ?"

मौलवी साहब के इक्कीसवें उत्तर का खण्डन

न तो पुनर्जन्मवाद एकेश्वरवाद के विरुद्ध है, और न ही यह शिर्क का कारण है। और न ही यह शिष्टाचार या सदाचार का शत्रु है। इसके कारण भी सुस्पष्ट हैं। क्योंकि पुनर्जन्मवाद से इस बात का पूर्ण निश्चय होता है कि समस्त संसार को कर्मों के अनुसार फल देने वाला एक वही धर्मात्मा है। और एक ही परमात्मा है। जिस ने अपने अनादि न्याय के अनुसार विभिन्न प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की है। उसी एक परमात्मा पर पूरा भरोसा रखना यही तो वास्तविक तौहीद—ऐकेश्वरवाद है। अन्यथा इन पदार्थों को बनाने अर्थात् अभाव से भाव को उत्पन्न करने से तो ईश्वर का अपना अस्तित्व भी स्थिर नहीं रहता; अपितु बिलुप्त हो जाता है।

शिर्क इस वास्ते नहीं कि किसी और से मनोवांछित फल मांगना, और ईश्वर से भिन्न किसी और का ही नाम जपना, किसी और पर ही भरोसा करना, ईश्वर से भिन्न किसी को कृपा करने वाला समझना, किसी की खातिर—प्रसन्नता के लिये एस सृष्टि की उत्पत्ति मानना, जैसे कि मुसलमान कलमे में भी मुहम्मद साहब को शरीक करते हैं। और उसकी सिफ़ारिश के बिना मोक्ष का होना असम्भव मानते हैं। एक मात्र इस को ही इस संसार की उत्पत्ति का हेतु स्वीकारते हैं। हदीस क़ुदसी में लिखा है :—

लौलाक अमा खलक़त इलामिलाक़ व माइरसालनाक अल रहमतुल आलमीन ॥

अर्थ—ए मुहम्मद यदि तू न होता, तो जमीन व आसमान को मैं पैदा न करता। और तू नहीं भेजा गया, परन्तु संसार में दया के वास्ते।

ये सभी बातें सुस्पष्टतया शिर्क हैं। मुसलमान भी ऐसी बातों को स्वीकारते हैं। अतः वे भी मुशरिक अर्थात् दूसरों को ईश्वर का शरीक मानने के दोषी हैं।

जिबराईल, मेकाइल व इज़राईल इत्यादि सब ईश्वर के शरीक़ हैं। और ईश्वर उन का मोहताज है। और वह अर्श=तख़्त पर विराजमान है। और सब से बड़ा शरीक़ और सच पूछो तो कुरान के कथनानुसार, सृष्टि की रचना का मुख्य कारण हज़रत अज़ाज़ील हैं। जिसे ख़ुदा का घर बताते हैं, वह बैत अल्ला (काबा), ख़ुदा के दर्शन के लिये, हज़रत बराक़ पर सवार होकर, तथा सीढ़ी लगाकर शबेमेराज को आसमानों पर गये, ये बातें स्पष्ट रूप में कुफ्र और शिर्क को फैलाने वाली और सत्यता एवं एकेश्वरवाद को मिटाने वाली हैं। और साथ ही मूर्त्तिपूजा को फैलाने वाली भी हैं। आर्य लोग तथा सभी पुनर्जन्मवादी गण शिष्टाचार तथा सदाचार के सर्वाधिक प्रतिपालक तथा पक्षपाती हैं, क्योंकि इनका मुख्य आधार शुभकर्म ही हैं। यह मिथ्या है कि किसी के उपकार के बदले वे यह कहें कि इसने हमारे पहले उपकारों का बदला दिया है। ऐसा कदापि नहीं है। अपितु नये काम भी होते हैं। यही कारण है कि सब से अधिक व्यवहार शिष्टाचार तथा सदाचार का इन पुनर्जन्मवादियों में ही है। आप ने जो किसी राजा की कहानी सुनाई, वह आप के दार्शनिक ज्ञान का प्रमाण है। हज़रत! राजा लोग भोले होते हैं। उनको आप जैसे शाही हकीमों ने जन्त्र, मन्त्र, तावीज़, गण्डे, और कब्रों पर विश्वास दिलाया हुआ है। वे सब भूतप्रेत के विश्वासी तथा जिन व परी के सताये हुए हैं। यह सब अपराध आप जैसे सूरत-ए-जिन पढ़ने वाले मुल्लानों का है। अन्यथा सभी बुद्धिमान् और विद्वान् तथा विशेषरूप से आर्य लोग ऐसी व्यर्थ एवं बुद्धिशून्य बातों पर कभी भी विश्वास नहीं करते। और न ही भोले भाले राजाओं को ऐसी बातें सुनाते हैं। ये ऐसी ही निराधार कहानियां हैं, जैसे कि हज़रत मुहम्मद साहब की पैग़म्बरी पर गोह, गधे, हिरनी और ऊंट ने गवाही दी। और आप जैसे भक्तों ने कहा—सुबहान अल्ला।

हां, यही कहानी मूसा नबी के विषय में चरितार्थ होती है। लिखा है कि मूसा अलैहस्सलाम एक झरने (चश्मे) पर पहुँचे, जोकि बुन नामक पहाड़ पर था। वहां उन्हांने वज़ू किया और नमाज़ पढ़ी, थोड़ी देर विश्राम किया। अचानक ही एक घुड़सवार वहां आया और पानी पी कर चला गया। और अपनी रुपयों की थैली उसी झरने पर भूल गया। उस के जाने पर एक चरवाहा वहां आया, और उस ने वह थैली उठाई और चला गया। उस के भी चले जाने पर एक बहुत वृद्ध पुरुष वहां आया। वह बहुत अधिक विवश, दुर्बल, और अशक्त था। उस की पीठ पर लकड़ियों का एक बड़ा भार लदा हुआ था। उसने अपना भार भूमि पर रख दिया। पानी पी कर वह झरने के पास ही लेटा, और सो गया। इसके कुछ काल पश्चात् वही घुड़सवार, अपनी रुपयों की थैली को खोजता हुआ फिर वहां आया।

बूढ़े को देखकर उसने समझा कि मेरी थैली इस ने ही ली होगी। अतः सवार ने बूढ़े से अपनी थैली मांगी। बूढ़े ने थैली के विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर सवार ते बूढ़े को ऐसा मारा कि वह मर गया। मूसा यह सब घटना-क्रम देख रहा था। उसे बहुत अधिक आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि हे ईश्वर! इसमें क्या रहस्य है? और क्या यह न्याय है? आदेश हुआ कि यह लकड़हारा

बूढ़ा सवार के पिता का हत्यारा था। और चरवाहे के पिता का इतना ही ऋण सवार के पिता ने देना था। उसी समय हमारा आदेश हुआ कि हत्यारे से बदला लिया जाये। और ऋण भी चुकाया जाये। ऐ मूसा! मैं ज्ञानवान् भी हूँ और न्यायकारी भी।

मौलवी साहब का बाईसवां उत्तर

पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर बहुत अधिक स्वार्थी है। क्योंकि वह बिना मजदूरी के किसी पर भी दया और कृपा नहीं करता।

मौलवी साहब के बाईसवें उत्तर का खण्डन

ऐसा कभी भी न कहो। इस शुभ सिद्धान्त को मानने से ही उस मालिक का सच्चा सन्मान होता है। वे प्रभु कभी भी स्वार्थी सिद्ध नहीं होते। अपितु दयावान्, सत्य न्यायकारी, पक्षपात रहित, रिशवत आदि भ्रष्टाचारों से घृणा करने वाले, किसी की सिफारिश को न सुनने, और न मानने वाले, सबके स्वामी और सभी के परमपिता सिद्ध होते हैं। क्योंकि वे बिना मजदूरी अर्थात् बिना काम किये किसी को कुछ भी फल नहीं देते जो शुभ कर्म करता है, उसे वे पुरस्कार देते हैं। जो अशुभ कर्म करता है, उसे वे दण्ड देते हैं।

परन्तु क़ुरान में जिस ईश्वर का वर्णन है, वह तो नीचे लिखे कारणों से स्वार्थी पाया जाता है:—

१—उसने हम को हमारे कर्मों के बिना ही विभिन्न प्रकार का बना दिया। बेबस और मुहताज पैदा किया तथा दुःख दिया। जैसा कि कुरान में भी लिखा है :—

लक़द ख़िलक़कम अतवारन्।

निस्सन्देह उसने तुम को विभिन्न प्रकार का बनाया। अतः आपका ख़ुदा तो स्वार्थी है, पागल है, अत्याचारी है।

२—कुछ लोगों को अफ्रीक़ा के जंगल में उत्पन्न किया। जिनको किसी प्रकार का भी आराम नहीं। गर्मी के मारे जल भुनकर कबाब हो रहे हैं। और कुछ को स्वर्ग समान काश्मीर तथा स्वर्गोपम कुल में जन्म दिया। जहां वे उत्तमोत्तम मेवे खाते तथा आनन्द उठाते हैं। यदि यह सब कुछ बिना किसी कारण के हैं, जैसाकि क़ुरान में लिखा है—

लायसाला अम्मा यफ़अल व हुमा यसालून।

अर्थ—जो कुछ ईश्वर करता है, उसपर किसी को किसी प्रकार की आलोचना या प्रश्न न करना चाहिये।

परन्तु मनुष्यों के किये कामों पर तो आलोचना या प्रश्न हो ही सकते हैं। अतः वास्तव में क़ुरान का ईश्वर स्वार्थी और नादान है। इसके अतिरिक्त क़ुरान एक और अन्धविश्वास फैलाता है। यह अन्धेर पर अन्धेर है :—

ख़लक़ लकम मा फ़िल् अरज़ जमीअन।

अर्थ—जो पृथ्वी में है, तुम्हारे लिए उत्पन्न किया।

३—जब कोई कर्म नहीं, और कोई कारण भी नहीं, किसी प्रकार का कुछ भी तो हेतु नहीं,

फिर भी कुरान के ख़ुदा ने किसी को नेक बख़्त और किसी को बदबख़्त बना दिया। अर्थात् किसी को बहिश्ती बना दिया और किसी को दोजख़ी। जैसा कि कुरान में लिखा है :—

मिनहम् शक़ी व सईद।

अर्थ—अर्थात् इनमें से कोई भाग्यवान् है और कोई भाग्य रहित। यह तो बड़े अत्याचार और अन्धेर की बात है। और स्वार्थ से तो किसी को इन्कार हो ही नहीं सकता। अतः क़ुरानकार अवश्य ही अत्याचारी और स्वार्थी है।

४—यह विचार स्वयं तुम्हारी, तुम्हारे भाईबन्धु, हवारियों, अपितु सभी मुहम्मदियों की जानक वबाल है। क्योंकि क़ुरान में लिखा है :—

या अय्युहन्नास अ अबद वरबकुम अल्ज़ी खल्क़कुम् मिन क़बलकम् तअ्आलकम तत्तकून।

अर्थ—अरे लोगो ! आज्ञाकारी बने रहो अपने उस रब के, जिसने तुम को और तुमसे पहले को बनाया। और आज्ञाकारिता का यह फायदा होगा कि तुम दुःखों से बचे रहोगे। दूसरे स्थान प लिखा है :—

व मा खिलक़त अलजनवल् उन्स इल्ला यावदून।

अर्थः—जिन और उन्स इस लिये उत्पन्न किये गये कि वे ईश्वर के आज्ञाकारी बने रहें। अर्थ यहां अपना वह वाक्य फिर पढ़ो। कि ईश्वर बहुत अधिक स्वार्थी है कि बिना मज़दूरी किसी पर भी दय और कृपा नहीं करता।

५—कुरान कहता है :—

ख़त्म अल्ला अला क़ुलूबहम व अला समअ हम व अला अबसार हम् गशाव वलहम अज़ाब अज़ीम।

[सूरे बकर]

कुरान की ऐसी-ऐसी शिक्षाओं से शैतान और रहमान में कोई भेद नहीं मालूम होता।

विवरण के लिये देखो नुसख़ा ख़ब्त अहमदिया पृष्ठ २५१ से २५५ परन्तु आपने स्वयं भी इस स्वीकार किया है। यथा—

युतिया मनयेशा

अर्थात् देता है, जिसे चाहता है।

[पृष्ठ १६, उत्तर १६]

अतः यह स्पष्ट ही स्वार्थपरता, अत्याचार और मूर्खता है। जिससे इनसाफ का सरासर होता है।

मौलवी साहब का तेईसवां उत्तर

कभी-कभी हम बिना किसी कारण के ही उपकार किया करते हैं। और कभी उपकार के लि आचरण करते हैं या उपकार नहीं करते। इस दो प्रकार के विरुद्धाचरण से ज्ञात होता है कि उस

करना हमारा स्वाभाविक गुण नहीं। हम कभी स्वार्थवश होकर उपकार करते हैं और कभी-कभी बिना स्वार्थ अर्थात् सर्वथा निष्काम भाव से भी उपकार किया करते हैं। अतः यदि ऐसे ही ईश्वर भी कभी कहीं, किसी पर बिना किसी स्वार्थ के ही कृपा करे, तो आर्य लोग ईश्वर को निष्काम भाव से काम करने वाला क्यों नहीं स्वीकारते ?

मौलवी साहब के तेईसवें उत्तर का खण्डन

निस्सन्देह आपने सर्वथा ठीक भूमिका बान्धी है। तथापि मनमें बैठे हुए पक्षपात के कारण आपने इसका परिणाम उलटा ही निकाला है। अथवा यूं कहें कि आप को उचित परिणाम निकालना भी नहीं आता। सुनिये—निस्सन्देह हमारे अन्दर बिना किसी कारण के उपकार करने की प्रवृत्ति वर्तमान् है। और कभी-कभी उसके विरुद्ध भी आचरण करते हैं। बिना किसी स्वार्थ के उपकार करने का भाव ईश्वर में भी वर्तमान् है। परन्तु आपने तो सकाम उपकार तथा निष्काम उपकार का तो अर्थ ही नहीं समझा।

उपकार का अर्थ है—किसी प्रकार के बदले की भावना के बिना ही नेकी करना। अस्तु, ईश्वर ने हमारे वास्ते भूमि, चान्द, सूरज, सितारे, सियारे, हवा, आग, पानी, वेद इत्यादि बहुत से पदार्थ दिये। हमने इनके बदले में ईश्वर को कुछ भी नहीं दिया। न ही हम कुछ दे सकते हैं। हमारे कर्मों से भी इनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। कर्म-फल-भोग की परम्परा तो बात ही दूसरी है। उपकार या दया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो विशुद्ध रूप में न्याय के आधार पर प्रतिष्ठित है।

शम्स तबरेज़ का कथन है :—

दरख़्त व किश्त बर आयद ज़ि ख़ाक व आं गोयद।
कि ख़ाजा हरचे बकारी तुरा हुमां रोयद ॥ *

जिस प्रकार सभी मजहबों के लोग यह मानते हैं कि जो बुरे कर्म अब किये जाते हैं, उन का फल भावी जन्म या दुःख होता है, उसी प्रकार वर्तमान् जन्म या दुःख किन कर्मों का फल है ?

मौलवी साहब का चौबीसवां उत्तर

पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने का अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि किसी को भी ईश्वर के प्रति कुछ भी प्रेम या आकर्षण न रहेगा। यद्यपि आप भी स्वीकारते हैं कि ईश्वर से प्रेम करना चाहिये। क़ुरान का कथन है :—

वल्लज़ीना आमनू अशद हबल्लाह।

अर्थ :—ईमान लाने वाले तो ईश्वर से बड़ा प्रेम रखा करते हैं। और यह बात कि पुनर्जन्मवाद के स्वीकारने पर ईश्वर से प्रेम नहीं रह सकता, इस लिये है कि जिस जज के विषय में अपराधी को यह निश्चय हो जाये कि मेरे कानून को तोड़ने तथा अपराध करने पर यह जज मुझ पर कुछ भी दया न करेगा, और अवश्य ही दण्ड देगा, वह जज अपराधी को प्यारा न लगेगा। हां, यदि

* प्रत्येक वृक्ष जो मिट्टी से निकलता है, वह यही कहता है कि ए ख़ाजा ! जो कुछ तू बोयेगा वही उगेगा। —अनुवादक।

अपराधी को यह समझ आये कि शायद हाकिम से भूलचूक हो जाये, या वह अपराधों की अपेक्षा करे वहां आज नहीं, तो कल सही, प्रेम का होना सम्भव है।

मौलवी साहब के चौबीसवें उत्तर का खण्डन

आप का यह उत्तर एक बहुत बड़ी भ्रान्ति के आधार पर है। क्योंकि ईश्वर से जिस प्रकार मिलाप या प्रेम की आशा आप करते हैं, उस प्रकार की आशा रिश्वत देने वाले लोग, रिश्वत खोर हाकिमों से किया करते हैं। और वर्तमान भारतीय दण्डविधान के अनुसार दोनों ही अपराधी हैं देखो—धारा १७० भारतीय दण्डविधान।

क़ुरान के मन्तव्यानुसार क़ुरान का ईश्वर किसी प्रकार भी रिश्वतख़ोर हाकिम से कम नहीं है अतः पवित्र वेद के सिद्धान्त के अनुसार सर्वव्यापक परमात्मा, जोकि हाकिमों का भी हाकिम है, के सामने मुहम्मदियों और मुहम्मदियों के ख़ुदा दोनों की ही कठिनाई है। जिस प्रकार क़ुरान के मन्तव्य अनुसार मूर्तियां और मूर्तिपूजक दोनों ही जहन्नुम में जायेंगे। अतः इस प्रकार के नक़ली तथा मूर्खता-पूर्ण विश्वासों से सभी को बचना चाहिये। जब किसी अपराधी के विरुद्ध यह प्रमाणित हो जाये कि उसने क़ानून को तोड़ा, तथा अपराध किया है, तब इसके बाद उस पर दया क्या है? यही कि उसके सुधार के लिये उसे उचित दण्ड दिया जाये। खेद है कि क़ुरान के ख़ुदा को तो हज़रत शेख़सादी जितनी भी बुद्धि नहीं।

निकोई बा बदां करदन चुनांअस्त।
कि बद करदन बजाए नेक मर्दां॥ *

आप का ईश्वर से इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण आशायें करना, संसार को मूर्खता और अपराध की शिक्षा एवं प्रेरणा देने के समान है। प्रमादी न बनो। जो रूई ग़फ़लत की आपने अपने कानों में ठूंस रखी है, उसे निकाल दो। और यह भी स्मरण रखो कि अपराध को स्वीकार करने से अपराध को पर्याप्त दण्ड मिलता है, छुटकारा नहीं होता। आँखों से प्रमाद और भ्रान्ति की पट्टी उतार दो और अपने मन मन्दिर में से मिथ्या विचारों का सारा कूड़ा करकट दूर कर दो। क्योंकि—

ऐ नेकी न करदह व बदीहा करदह।
दरहक्के व उफ़्वे ख़ुद तमन्ना करदह॥१॥
होशियार कि ईं वहम तू हरगिज़ न बुवद।
ना करदह चू करदह व करदह न करदह॥२॥

---

* बुरे मनुष्यों के साथ नेकी का व्यवहार करना, ऐसा ही है, जैसे कि नेक मनुष्यों के साथ बदी का व्यवहार करना। —अनुवादक।

१—ऐ कि तूने कोई नेकी नहीं की और अब तक बदियां ही की हैं और इस पर तू अपनी क्षमा की इच्छा करता है।

२—तू सावधान हो और इस प्रकार की भ्रान्ति में कभी भी न फंस कि जो कुछ किया हुआ है, वह न किया हुआ हो जायेगा। और जो न किया हुआ है, वह किया हुआ हो जायेगा। —अनुवादक

वास्तव में ईमानदार लोग तो उसी जज को पसन्द करते हैं और उसी से प्रेम भी किया करते हैं, जो दयावान् एवं न्यायकारी हो। और बदमाश लोग उस से प्रसन्न रहते हैं, जो सिफारिश पसन्द और रिश्वतख़ोर हो। क़ुरानकार ने जहां बुद्धि से काम लिया, या जहां न्यायप्रिय नौशेरवां का ध्यान आ गया, तो वहां साफ़ लिखा है :—

आ अदलू व हुवल क़ुर्बत्तक़्वा। [अरबी]

अर्थ फ़ारसी में—

अदल कुनद कि अदल नज़दीक तुरास्त ब परहेज़गारी।

अर्थ—अर्थात् तू न्याय किया कर, क्योंकि संयमशीलता की अपेक्षा न्याय तेरे अधिक समीप है।

इस पर मौलवी हसन वायज़ का कथन कैसा उत्तम है :—

अदल कुन जांकि दर विलायते दिल। दर पैग़म्बरी ज़नद आदिल ॥ १ ॥

अदल मशाता एस्त मुल्क आराय। दीन औ दौलत ज़ अदल मानद बजाय ॥२॥

[पृष्ठ १३६ सूरत मायदा]

मौलवी साहब! आप का यह लिखना कि—"यदि अपराधी को यह समझ आये कि शायद हाकिम से भूलचूक हो जाये, या वह अपराधों की अपेक्षा करे, वहां आज नहीं, तो कल सही, प्रेम का होना सम्भव है।"

बहुत ही अधिक खेद बढ़ाने वाला है। आलस्य और प्रमाद मनुष्य में तो होना सम्भव है; परन्तु सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी ईश्वर में कभी नहीं। ईश्वर से उपेक्षा, आज सही कल सही, इस प्रकार की ढील ढाल और टालमटोल का होना सर्वथा असम्भव है। तभी तो धर्मात्मा मनुष्य ईश्वर से प्रेम करते हैं। सच्चे प्रेम का सब से बड़ा कारण सत्य न्याय ही तो होता है। अन्यथा, जहां पर अन्धेर है, वहां न्याय तथा प्रेम का क्या काम? देखिये ईश्वरीय ज्ञान हमें क्या बतलाता है :—

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

—ऋग्वेद १/६/१८/६

इस मन्त्र में परमेश्वर का नाम ही महबूब अर्थात् 'मित्र' और उसी का नाम 'अर्य्यमा' अर्थात् न्यायकारी है। वही 'वरुण' अर्थात् दयालु और 'इन्द्र' अर्थात् महाराजाधिराज है। उस का नाम 'बृहस्पति' अर्थात् सब का मालिक और 'विष्णु' अर्थात् सर्वव्यापक है।

मौलवी साहब! ईमान से कहना, क्या क़ुरान में ऐसी महिमा मौजूद है? क़ुरान का ईमान, जिस का आपने हवाला भी दिया है—

१—न्याय क़र, क्योंकि दिल के प्रदेशों में केवल कोई न्यायशील ही पैग़म्बरी क़र सकता है।

२—किसी भी देश को सजाने के लिये न्याय कंघे के समान है। धर्म और धन सम्पत्ति भी न्याय से ही स्थिर रहते हैं।

—अनुवादक।

वल्लज़ीना आमनू अशद हुबल्लाह ।

इस का कारण वही कुरआनी हूर, बहिश्ती लौण्डे, अनार जैसी बड़ी और कठोर छाति और चाहे जनख़दां=द्रढ्ढा हैं। अथवा रिज़वान के सेब और जिनों के अंगूर इस का कारण हैं। ईमानदार मुहम्मदी ने इस विषय में क्या उत्तम कहा है :—

तलाश हूर की है, भेस पारसाई का ।
बना हुआ है यह ज़ाहिद भी इक खुदाई का ॥*

और यही सवाल आप ने अठाईसवें उत्तर में भी रखा है। अतः हमारा यह खण्डन उससे सम्बन्ध रखता है।

मौलवी साहब का पच्चीसवां उत्तर

ईश्वर की ऐसी न्यायकारिता के विश्वास के अनुसार, जिस में ईश्वर की दया, कृपा, उस दान तथा उपकार की कोई भी आशा न रही, उस की सेवा में दुष्ट लोगों की प्रार्थना तथा याचना अनुचित तथा व्यर्थ हो जायेंगी। ईश्वर क्षमा करे। कुरान में कैसा प्यारा वाक्य मौजूद है —

ला तक़नतू मिन रहमतुल्ला इन् अल्ला य ग़फर उज़्ज़नूब जमीअन् ।

इत्यादि।

मौलवी साहब के पच्चीसवें उत्तर का खण्डन

मौलवी साहब! 'न्याय' और 'दया' दोनों परस्पर विरोधी शब्द नहीं हैं। उस की दया चन्द्र आदि का उत्पन्न करने, और ज्ञान देने अर्थात् पवित्र वेद का प्रकाश करने से सुस्पष्ट है। जै वेद में है :—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

यजु० ३१/७

सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापक परमात्मा ने जगत् पर कृपा करके, इस की भलाई के लिये का प्रकाश किया। जिस से कि अज्ञान से निकल कर, ज्ञान की ओर अग्रसर हों। और आध्या प्रकाश से मन की आँखों को सुप्रकाशित करें।

अब्र-ओ बाद-ओ मह-ओ खुरशेद दरकार अन्द ।
ता तू नाने बक फ़ आरी व बग़फ़लत न खुरी ॥ १ ॥

---

* तलाश तो हूर की है, और भेस भले लोगों जैसा बना रखा है। यह भक्तराज भी एक बहु ढोंगी है। —अनुवाद

१—मेघ, वायु, चन्द्र, सूर्य और आकाश सभी काम में लगे हुए हैं। ताकि तू रोटी अपने हाथ प और आलसी बनकर न खाये।

ईं हमः अज़ बहर तो सरगश्ता व फर्मा-बर्दार ।
शर्त इन्साफ़ न बाशद कि तू फ़र्मा न बुरी ॥ २ ॥

हां, आप ने जो कुरान का वाक्य लिखा है कि :—

ला तक्नतू मिन रहमतुल्ला

इत्यादि ।

अर्थात् सावधान हो । ईश्वर की दया से कभी भी निराश न हो । ईश्वर तो सभी पापों को क्षमा करता है ।

मौलवी साहब ! मैं हैरान हूँ कि आप कैसे विश्वास रखते हैं ? कि यह आयत ईश्वर की तरफ से है । क्योंकि आप तो स्वीकारते हैं कि ईश्वर न्यायकारी है । न्याय उसी को कहते हैं कि जो जितना करे, उस को वैसा और उतना ही फल देना । फिर क्षमा कैसी ?

हज़रत ! क्षमा, सिफारिश और रिश्वत ये सब ऐसे मन्तव्य हैं कि जिन से सर्वेश्वर और स्वयम्भू परमात्मा पर अन्याय व अत्याचार का कलंक लगता है । कुरान की इस आयत में जो शिक्षा दी जा रही है, वह तो संसार में पापों की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाली तथा सदाचार के मूल आधार को नष्ट करने वाली है ।

मनोयोगपूर्वक पढ़िये सूरत उल्ज़मर सिपारा २४ में—

कुल यअबादी अल्लज़ीन असरफवा अला अन्न फसहम, लातकनतू मिन रहमत इन् अल्ला यग़फ़र अल्ज़नूब जमी अन् अनः हुवल ग़फ़ूर अर्रहीम ॥

इसी के अनुरूप सैयद नासिर अली कहता है :—

मुहीते रहमते ओ दामने आलूदा मे ख़ाहद ।
गुनाहे रा कि अज़ दस्तम नमे आयद ख़ता करदम् ॥*

एक और विद्वान् मौलवी कहता है :—

ऐ आँकि पदीद गश्तम् अज़ कुदरत तो । परवर्दह शुदम बनाज़ व न्यामत तो ॥१॥
सद साल ब इम्तिहाँ गुनाह ख़ाहम कर्द । या जुर्म मनस्त बेश या रहमत तो ॥२॥

२—ये सब तेरे लिये चिन्तित हैं । और तेरे आज्ञाकारी हैं । यह बात न्याय की नहीं है कि तू उस ईश्वर का आज्ञाकारी न हो, जिस ने ये सब तेरे लिये बनाये हैं । —अनुवादक ।

* भगवान की कृपा का दायरा आलूदा दामन, पापी व्यक्ति, चाहता है । अतः जो पाप मैं नहीं करता उसके लिए, मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि मैं ने ग़ल्ती की है ।

१—ऐ वह ! जिस की कृपा से मैं ने जन्म लिया और आप का दया से ही पाला पोषा गया हूं ।

२—मैं एक सौ वर्ष तक तेरी परीक्षा लेने के लिये गुनाह करूंगा । और यह देखूंगा कि तेरी दया अधिक हैं, या मेरी गुनाह करने की शक्ति अधिक है । —अनुवादक ।

एक और विद्वान् का कथन है :—

खाह ज़ शराब खाना खुदरा तबाह कुन ।
खाह ज़ बिना नामाये खुद रा सियाह कुन ॥ १ ॥
दुज़्दी कुनो फ़सादो फ़रेबो कुमार बाज़ ।
ऐ तालिबे बहिश्त खुदारा गवाह कुन ॥ २ ॥
कुन क़त्ल खल्क आलम व हज़र अज़ सलातो सोम ।
रिन्दाना ज़ी व पेश सनम सिजदागाह कुन ॥ ३ ॥
गर एतबार नेस्त कि चूं गश्ता अन्द मुबाह ।
मसहफ़ बख़ां व दूर ज़ दिल इश्तबाह कुन ॥ ४ ॥
आवुर्दा अस्त मुयदये लातक़नतू शफ़ीअ ।
मन ज़ामिनम् हर आंचे तवानी गुनाह कुन ॥ ५ ॥

मौलवी हुसैन उपदेशक का कथन है :—

चूं तू दादी मुयदये लातकनतू । मन चिरा तरसम ज़ असियां व अतू ॥१॥
चूं तू हर बशिकस्ता रा साज़ी दुरुस्त । पस ख़ताहा बर उम्मीदे उफ़्वे तुस्त ॥२॥

कुरान सूरत इन्फेतार :—

या अय्युहल इन्साना मा ग़रक । [अरबी]

१—चाहे तू शराब से अपने घर को तबाह कर । और चाहे व्यभिचार के द्वारा तू अपने जीवनपत्र को काला कर ।

२—चोरी कर, फ़िसाद फैला, धोखा दे, जुआ खेल । लेकिन ऐ बहिश्त की प्राप्ति के इच्छुक ! तू पहले खुदा को अपना गवाह बना ले ।

३—चाहे तू संसार भर की हत्या कर, और दान देने से भी परहेज़ कर । रिन्दों की तरह जी और प्रेमी ईश्वर के सामने सिर झुका, तथा उसे नमस्कार कर ।

४—यदि तुझे इस बात का विश्वास नहीं है कि गुनाह इसी रीति से क्षमा किये जाते हैं, तो तू कुरान को पढ़ और अपने मन से प्रत्येक प्रकार के सन्देह को दूर कर ।

५—शफ़ी अर्थात् क्षमा करने वाला बहुत ही शुभ समाचार लेकरके आया है । अर्थात् कुरान की आयत 'लातक़नतू' इत्यादि उतरी है, जिस में स्वयं ईश्वर यह कहता है कि—मैं ज़ामिन हूं । तू डर मत जितना चाहे, और जितना कर सके, तू उतना गुनाह कर ।

—अनुवादक ।

१—जब तूने यह शुभ समाचार दे रखा है कि डरो नहीं, तब मैं पाप और अपराध करने से क्यों डरूं ?

२—क्योंकि तू प्रत्येक बिगड़े और टूटे को संवारने वाला है । इस लिये मेरे सभी पापों और अपराधों के लिये तू ही आशा की किरण है ।

—अनुवादक ।

एक और मौलवी फ़रमाते हैं :—

'मायेम पुर गुनाह, तू दरियाय रहमती ।
जायेकि फज़ल तुस्त चे बाशद गुनाहे मा ॥१॥
गुनाहे मन अज़ नामदे दर शुमार ।
तुरा नाम के बूदे आमुर्ज़गार ॥२॥

नासिख़ का कथन है :—

बख़शिश की है उम्मीद अलीये कबीर से ।
होता हूं मुर्तकिब जो गुनाहे कबीर का ॥३॥

हाफ़िज़ कहता है :—

क़दम दरेग़ मदार अज़ जनाज़ये हाफ़िज़ ।
अगरचे ग़र्क़ गुनाह अस्त मी रवद बहिश्त ॥४॥

ऐ क़ादियानी पैग़म्बर के साथियो ! और हे मुहम्मदी मुसलमानो ! ऐसा विश्वास तो फ़िसाद का स्रोत तथा झगड़े की जड़ है। यही कारण है कि अरब, रूम, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान व बिलोचिस्तान में जहां-जहां भी मुसलमानों की बहुसंख्या तथा कुरान का प्रचार है, वहां-वहां बहु-विवाह, क़ब्रपूजा, पीरपूजा, हत्या, पशुहत्या, अन्धविश्वास, संकीर्णता, पक्षपात और स्त्रियों के खरीदने व बेचने का रिवाज बहुत है। मौलवी साहब यह संसार न्याय के आधार पर ही स्थिर है। व्यर्थ आदेशों के आधार पर नहीं।

मौलवी साहब का छब्बीसवां उत्तर

बुरे काम करने और आज्ञा पालन न करने के कारण पुनर्जन्मवादियों के पास तो छुटकारे का कोई मार्ग ही नहीं है। न ही कोई उनका सहायक है। ईश्वर के दरबार से भी उन्हें किसी प्रकार की कृपा की कुछ भी आशा नहीं है। इस लिए कि अदालत से सज़ा का आदेश निकल चुका है और दण्ड

१—हम तो पापों से परिपूर्ण हैं, तू दया का सागर है। जहां पर तेरी दया है, वहां हमारा पाप क्या बिगाड़ सकता है।

२—यदि मेरा नाम पापियों में न गिना गया होता, तब तेरा नाम दयावानों में कैसे गिना जाता ? अर्थात् यदि मैं पापी न होता तो तू दयालु भी न होता।

३—मुझे अलिये कबीर अर्थात् ईश्वर की दया का पूरा भरोसा है, मैं जो बड़े-बड़े पाप करता हूं, उस का कारण यही है।

४—हाफ़िज़ के जनाज़ा से इनकार का कदम मत रख अर्थात् दूर मत हो। यद्यपि वह पापों से भरपूर है फिर भी वह अवश्य ही बहिश्त में जायेगा।

—अनुवादक

भोगने की व्यवस्था भी बन चुकी है। वहां से क्षमा की कुछ भी आशा नहीं है। परन्तु कैसी शुभ सूचना है उस किताब में, जिस में लिखा है—

ईश्वर के सिवा ऐसा और कौन है, जो दुःखी व्यक्ति के दुख के समय में उसकी प्रार्थना को सुने और स्वीकारे। तथा दुःखी के दुःख को दूर करे।

मौलवी साहब के छब्बीसवें उत्तर का खण्डन

आप का यह विचार भी सर्वथा मिथ्या है। जिस प्रकार एक दोषी को न्यायाधीश के न्याय पर भरोसा होता है, वह सज़ा के बाद, अथवा जेल में सज़ा भोगने के पश्चात् स्वतन्त्र हो जाता है और उसके मनमें यह दृढ़ विश्वास भी रहता है कि उसे बिना किसी अपराध के फिर न पकड़ा जायेगा। न दण्ड दिया जायेगा। यही नियम सदाचार का प्रचारक और रक्षक भी है। आपका विश्वास ऐसा नहीं, वह तो व्यर्थ है। अस्तु, जिसका हिसाब ठीक है उसे लेखानिरीक्षक से क्या डर है? हां, कुरान की शिक्षा से तो निरन्तर हानि है, लाभ कोई भी नहीं। केवल बालकों जैसी जी बहलाने की बातें हैं। यथा—दूध की नहरें, शहद की नहरें, मटके के बराबर बेर। उसमें लिखा है कि मैंने बहुत से जिन और आदमी नर्क के लिये पैदा किये हैं, और मैंने उनसे नर्क भरना है। देखो सूरत ऐराफ़—

हदीस में यह भी लिखा है कि एक दिन हज़रत घर से निकले। तब उन के दोनों हाथों में दो पुस्तकें थीं। पूछने पर कहने लगे कि यह पुस्तक जो मेरे दाहिने हाथ में है, इस में सभी जन्नत (स्वर्ग) वालों के नाम लिखे हैं। और यह जो दूसरी पुस्तक मेरे बायें हाथ में है, इस में सभी दोज़ख़ (नर्क) वालों के नाम उन के बापों के नामों व उन की जाति आदि सहित लिखे हैं। इस के पश्चात् लिखा है :—यदि तुम लोग पाप न करोगे तो खुदा दूसरे वर्ग को पाप करने के लिये पैदा करेगा। जिस में कि उनको दोज़ख़ में भेजा जा सके। और खुद अपनी दया, तथा क्षमा करने की शक्तियों को भी प्रकाशित कर सके और उसकी ये शक्तियां व्यर्थ न पड़ी रहें।

नोट :—मौलवी साहब के सत्ताइसवें उत्तर का खण्डन 'नुस्ख़ा ख़ब्ते-अहमदिया' में पृष्ठ २८२ में कर चुके हैं। और अट्ठाइसवें उत्तर का खण्डन भी चौबीसवें उत्तर के खण्डन में हो चुका है। क्योंकि वास्तव में ये दोनों एक ही हैं। —लेखक।

मौलवी साहब का २९वां और ३०वां उत्तर

उपकार करने वाले, पालन-पोषण करने वाले, मालिक, परोपकारी, दयावान ऐसे किसी भी मनुष्य को बुरा कहना बहुत ही बड़ी बुराई है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। परन्तु पुनर्जन्मवादी लोग अपने उपकार करने वालों को बदकार और बुरा समझते हैं। अपितु उनपर सवार भी होते हैं। और उनसे मार पीट आदि कठोर व्यवहार भी किया करते हैं। क्योंकि यदि उनके उपकारी जन बुराई ही न करें, तो वे आवागमन और जन्म-मरण के चक्कर में कैसे आवें? परन्तु जन्म-मरण के चक्कर में तो ज़रूर ही आना है, अतः सिद्ध है कि वे बदी भी किया करते हैं।

हम दयानन्दी आर्यों से पूछते हैं कि उनके पूर्वज महात्मा, नेक और प्रेम करने वाले थे, और हैं, अथवा वे पापी और बदकार थे, और हैं? यदि वे भले थे और हैं, एवं बुराई उनमें है ही नहीं तो इसके

अवश्यम्भावी परिणाम स्वरूप सदा के लिए उन्हें मुक्त हो जाना चाहिये। और फिर कभी भी आवागमन में, जोकि जहन्नुम और सज़ा का घर है, न आना चाहिये। फिर दूसरे लोग आप के उपकारक, प्रेमी और बाप दादा आदि पूर्वज बन जायें और वे भी इसी प्रकार मोक्ष प्राप्त करलें। यहां तक हो कि एक निश्चित समय में सभी जीवात्मा मोक्ष प्राप्त करलें। और फिर ईश्वर के पास सृष्टि को बनाने व चलाने का कुछ भी सामान बाकी न रहे। ईश्वर क्षमा करे। और यदि वे नेक नहीं थे, न हैं, तब तो उन में से कोई भी विश्वास के योग्य न रहा। भला बदकार का एतबार क्या ? मुसलमान तो सभी नबियों की महानता को स्वीकारते हैं। और जो आक्षेप ईसाइयों तथा यहूदियों के इतिहास के आधार पर मुसलमानों पर किये जाते हैं, उनमें आक्षेप करने वाले स्वयं धोखे में हैं, या वे दूसरों को धोखा देना चाहते हैं। यही आक्षेप मौलवी फिरोज़ उद्दीन ने भी पृष्ठ २८० व २८१ पर किया है।

मौलवी साहब के २९वें तथा ३०वें उत्तर का खण्डन

बहुत खेद का विषय है कि आपको इतने अधिक अनुचित शब्दों का प्रयोग करने पर भी न तो उत्तर देने का तरीका आता है, और न ही आप समय के मूल्य और महत्व को समझते हैं। आप के २९वें और ३०वें उत्तर वास्तव में एक ही हैं, दो नहीं। हम भी समझ गये हैं कि संख्यावृद्धि के इस प्रपंच का कारण क्या है ? केवल इस लिये कि कादियानी मसीह के चेले चांटों में नाम हो जाये। और अपरिचित मुसलमानों में भी प्रसिद्धि मिले। परन्तु आप का यह विचार कच्चा और व्यर्थ है। आपके उत्तर को तीन भागों में बांटकर, हम इसका उत्तर देते हैं।

[१]

हमारे पूर्वजों के विषय में आक्षेपों का उत्तर—

हमारे पूर्वज वे ही हैं, जिन्हों ने वेदों में प्रतिपादित धर्म के अनुसार जगत् कर्त्ता परमात्मा की उपासना जगत् के उद्धार और परोपकार के लिये क्रियात्मिक उत्साह प्रदर्शित किया, जिन्होंने मानव-तन प्राप्त करके, मानवता के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया, जिन का उच्च जीवन अब तक भी मानवता का पथप्रदर्शक है और जिन की महिमा के गीत सर्वत्र गाये जाते हैं, जिन के आदेशों के अनुसार चल कर लोग अपने आचार-विचार को सुधारते हैं। यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि मोक्ष अनन्त काल के लिये अर्थात् सदा के लिये ही हो। क्यों कि अनन्त काल तक अर्थात् सदा ही एक रस रहने वाला सुख एवं आनन्द तो एक मात्र परमात्मा का ही है, और उसीके योग्य है। प्रत्येक जीवात्मा तो अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही फल पाता है। और सुख या दुःख उठाता है।

"करदये ख़ेश मिसल अस्त कि मे आयद पेश।" अर्थात् यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि जैसी करनी कोई करता है, वैसी ही उसके सामने आती है।

मैं इस अवसर पर अपने दो पूर्वजों के कथन उन्हीं के शब्दों में, इस सन्दर्भ में लिखना उचित समझता हूं। श्री रामचन्द्र जी श्री लक्ष्मण जी से कहते हैं :—

"लक्ष्मण ! पूर्वजन्म में मैंने अवश्य ही बारम्बार ऐसे कर्म किये हैं, जिन के कारण मैं आज दुःख में फंस गया हूँ। राज से भ्रष्ट हुआ, इष्ट मित्रों से बिछुड़ गया, पिता की मृत्यु हुई, माता पिता से वियोग हुआ, हे लक्ष्मण हमें ये सब शोक पूर्वजन्म के पापों के फल स्वरूप ही प्राप्त हुए हैं।"

[बाल्मीकी रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ६३ श्लोक ४, ५]

श्री कृष्ण जी महाराज की गीता में लिखा है :—

"हे अर्जुन ! मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं योग विद्या के बल से उन सब को जानता हूं ! परन्तु तू नहीं जानता। प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने शुभ या अशुभ कर्मों का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है।

[२]

मुहम्मदी-मत के पूर्वजों के विषय में—

'चोर की दाढ़ी में तिनका' यह एक प्रसिद्ध कहावत है। जब आपने हमारे पूर्वजों को गाली दी तब अपने घर की बुराइयों और उसकी बराबरी का भी ध्यान आ ही गया। ख़ैर ! हम बताते हैं कि कैसे थे वे लोग जिन्हें आप अपने पूर्वज स्वीकारते या स्वीकारना चाहते हैं।

गर तू कहेगा एक तो हम अब कहेंगे सौ, हरचन्द अहले ज़ब्त हैं पर बेज़बां नहीं।*

१—आदम—देखो—तौरेत, पैदाइश, अध्याय ३, आयत ६ से १७ तक।

२—काबील और हाबील—आदम के पुत्र। देखो तौरेत, अध्याय ४, आयत १ से १६ तक।

३—नूह नबी—देखो तौरेत, अध्याय ६, आयत २१ से २७ तक।

४—लूत नबी—तौरेत, पैदाइश, अध्याय १६, आयत ३० से ३८ तक।

५—इब्राहीम [ख़लील अल्ला] तौरेत, अध्याय १२, आयत १३ से १६ व २० आयत २ से १२ तक मिश्कात शिफ़ाअत का अध्याय।

६—इसहाक़नबी—तौरेत, पैदायश, अध्याय २६, आयत ६ से ६ तक।

७—याक़ूब नबी—तौरेत, पैदायश, अध्याय २७, आयत १ से ३२ तक।

८—मूसा नबी—तौरेत, ख़रूज, अध्याय ३२, आयत १६ व २६ से ३१ तक। व गिनती, अध्याय ३१ आयत १७, १८, ३५ व इसतसना अध्याय २१, आयत १ से १४ तक। मिश्कात बाब शफ़ाअत व क़ुरान।

९—हारू' नबी—तौरेत, ख़रूज, अध्याय २२, आयत १ से ६ तक व २४।

१०—दाऊद नबी—समुअल—२, अध्याय ११, आयत २ से २६ तक, व अध्याय १२, आयत १ से २३ तक। व क़ुरान सूरत 'स्वाद'।

११—सुलेमान नबी—सलातीन-१, अध्याय ११, आयत १ से ११ तक।

१२—आमनूं-दाऊद नबी का पुत्र—समुअल—२, अध्याय १३, आयत १ से १८ तक।

१३—ईसा नबी—मती, अध्याय १० आयत २४, २५ व यूहन्ना अध्याय ७ आयत ५ से ११, व मती अध्याय १२, आयत १४, १५ व १६ ११/२० व मरकस १४/२५ व मती १६/२६, १२/४६, १.२/१८, यूहन्ना ११/२०, ७.४/२०, १२/४, १.२/१.२ व लूक़ा १२।

१४—मुहम्मद साहब—क़ुरान, सूरत अख़राब, व अन्फाल, व इनाम व नजम व हज व मदारिजुन्-नबूत जिल्द २ पृष्ठ २८३, सूरत निसा व कीमियाये स-आदत पृष्ठ २८७ व शफा क़ाज़ी अब्बास पृष्ठ २१२ अरबी व रोज़तुल अहबाब मक़सद-१ अध्याय—२ और तकज़ीब बुराहीन अहमदिया पृष्ठ २७७ से २६५ तक।

---

* यदि तू एक कहेगा, तो हम अब सौ कहेंगे। यद्यपि हम सहनशील हैं, परन्तु हमारे मुंह में भी ज़बान है।

—अनुवादक।

मुसलमानों ने अपने नबियों का विवरण तौरेत, जबूर, इंजील और यहूदियों के इतिहास से प्राप्त किया है। और ये सभी पुस्तकें क़ुरान के मतानुसार इलहामी [ईश्वर-प्रदत्त] हैं। प्रत्येक मोमिन इन के इलहामी होने पर विश्वास रखता है। अतः इनका प्रमाण, जो मुहम्मद साहब से पूर्व हो चुके हैं, तथा जिन का मुहम्मद साहब ने अनुकरण किया है, वे क़ुरान से हज़ार गुना अधिक प्रामाणिक हैं। जब तक मुहम्मदी इन नबियों की कोई पुराने समय की बनी हुई ऐतिहासिक पुस्तक, क़ुरान से अतिरिक्त, प्रस्तुत न करें, इस विषय में कि वे बदचलन न थे, तब तक इन के नबी और पूर्वज पापी होने से बच नहीं सकते। मौलवी साहब ! आप मुसलमानों को धोखा मत दीजिये। अपने मुंह से महिमा को स्वीकारना; और बात है। और उत्तम चालचलन सिद्ध करना तो बात ही दूसरी है।

[३]

सभी पुनर्जन्मवादी अपने उपकारकों को बदकार और बुरा जानते हैं। इत्यादि।

यह सर्वथा मिथ्या है। यह आप की धोखा देने वाली बात है। हम न ऐसा मानते हैं, न कभी मान ही सकते हैं। अपितु हमारा यह सिद्धान्त तो इस के विपरीत है। सुनो और कान खोल कर सुनो—

जीवात्मा और शरीर का प्राकृतिक नियमों और कर्मफल के विधिविधानों के अनुसार संयोग होने पर मनुष्य बनता है और मनुष्य की सन्तान उत्पन्न होने पर माता व पिता आदि सम्बन्ध व्यावहारिकता के नाते कल्पित होते एवं व्यवहार में आते हैं। संसार में बुरे मनुष्यों की उत्तम सन्तान एवं उत्तम मनुष्यों की बुरी सन्तान भी देखने में आती है। सत्यस्वरूप परमात्मा ने न्याय के आधार पर— "न खाहन्द पुरसीद पिदरत कीस्त ? बल्कि खाहन्द पुरसीद कि एमालत चीस्त* ?" के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया है। जीवात्मा तथा शरीर का वियोग होने पर ये सभी सम्बन्ध टूट जाते हैं। जीवात्मा के साथ रिश्ते नाते नहीं जाते, केवल वे कर्म ही उस के साथ जाते हैं, जो जीवात्मा ने शरीर में रह कर किये थे। हम आपको समझाते हैं कि जीवात्मा हमारे माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। अतः हमारे माता-पिता जीवात्मा के माता-पिता नहीं। उनका शरीर ही हमारा माता-पिता है। वह भी तब तक, जब तक कि उन शरीरों में जीवात्मा का निवास है। जब जीवात्मा निकल गया, तब शरीर यहां जल गया। मिट्टी में मिट्टी जा मिली। शरीर से जो कुछ भी और जैसा भी सम्बन्ध था, उस का भी अन्त होगया।

चूं रफ्त तन व रवां पाक मन व तो।
ख़िश्ते दो निहन्द बर मोग़ाक मन व तो ॥१॥
वांगाह न बराये ख़िश्त गोरोगिरां।
दर कालबदे कशन्द ख़ाक मन व तो ॥२॥

* (ईश्वर) यह न पूछेगा कि तेरा बाप कौन है ? वह तो यही पूछेगा कि जो तू ने किए हैं, वे कर्म क्या हैं ?
—अनुवादक।

१—जब मेरा और तेरा शरीर छूट गया और पवित्र जीवात्मा शरीर में से निकल गया। तब लोगों ने दो ईंटें मेरी व तेरी क़ब्र के ऊपर रख दीं।

२—जब क़ब्रों पर रखने के लिये ईंटें भी नहीं मिलतीं, तब मेरे और तेरे शरीर पर मिट्टी ही डाल देते हैं।

जि़नहार क़दम ब ख़ाक आहिस्ता निह ।
काँ मुर्दमक चश्म निगारे बूदा अस्त ॥३॥

अब लीजिये उत्तर इस लेख का कि "जीवात्माओं की संख्या सीमित है । मोक्ष होते-होते जीवात्माओं की संख्या किसी समय समाप्त हो जायेगी । और फिर सृष्टि के निर्माण का सामान ही ईश्वर के पास न रहेगा ।"

विदित हो कि हम जीवात्माओं की कोई सीमित संख्या नहीं स्वीकारते । परन्तु ईश्वर अपने ज्ञान से जानता है । न कभी आत्माओं का अन्त होगा, न प्रकृति का । न सामान समाप्त होगा और न ही सृष्टिक्रम का अन्त होगा । जैसे अब है, ऐसे ही अनन्त काल तक अनादि और अनन्त परमात्मा, अनादि और अनन्त जीवात्माओं तथा प्रकृति का राजा बना रहेगा । और ये उसके पुजारी बने रहेंगे । परन्तु यह सम्पूर्ण आक्षेप तो क़ुरान के ईश्वर पर लागू होता है । क्योंकि उसकी तो शक्ति भी थोड़ी है । जब तक आदम पैदा न हुआ था, अनादिकाल से तब तक सृष्टि-रचना का कुछ भी सामान क़ुरान प्रतिपादित ईश्वर के पास न था । वह हाथ पर हाथ धरे बिना पूंजी के बनिये की तरह तराज़ू और बट्टे आगे धरे हुए हैरान व परेशान बैठा था कि क्या करूं ? बड़ी कठिनाई से ग़रीब ने आत्म-हत्या की । और अपने ही टुकड़े करके फैला दिये । "हमा ओस्त या हमा अज़ ओस्त"* हो गया । तब वह ख़ुदा कहलाने लगा । खेद है कि तुम्हारा ख़ुदा ऐसा शक्ति-शून्य और टटपूंजिया ख़ुदा है । ठीक ही है:—

चूं निको बनिगरी आईना हमा ओस्त ।
न तनहा गंज बल गंजीना हमा ओस्त ॥+

क़ुरानी मन्तव्य के अनुसार क़यामत के बाद भी वह सामान न रहेगा । जीवात्मा समाप्त हो जायेंगे । प्रकृति समाप्त हो जायेगी । ख़ुदाई कारख़ाना ही टूट फूट जायेगा । क्योंकि—

सब नबियों, वलियों और फरिश्तों के जीवात्मा तथा सभी भले और बुरे मनुष्यों के आत्मा नष्ट हो जायेंगे । तब ग़रीब और शक्ति शून्य क़ुरान का ख़ुदा अर्श के चौबारे में मूर्खों की तरह बैठा रहेगा । जैसे कि—

हनूज़ चश्मानश निगरानस्त कि मुल्कत बा दीगरानस्त ।†

ईश्वर क्षमा करे । यह क़ुरान का ग़रीब बेचारा हीनता का मारा, जल्दी ही मिट जाने वाले एक हल्के से निशान की तरह, मदारी बना । अपने पेट से अन्तड़ियां निकाल कर दिखाने और ख़ुदा कहलाने लगा । परन्तु जब तमाशे का हाथी आया, तब गधा, बिल्ला, सूअर, कुत्ता, पाख़ाना आदि यह सब कुछ इस ख़ुदा को बन जाना पड़ा । क्यों ? इस लिये कि—

"हमा ओस्त या हमा अज़ ओस्त"

के बिना बेचारे का छुटकारा ही सम्भव न था । ईश्वर पाप को शान्त करे । मौलवी साहब ! ऐसे मदारी, तमाशा दिखाने वाले, छलिये, काल्पनिक और पागल का क्या भरोसा ? शान्तं पापम् ।

३—सावधान ! मिट्टी पर चलते समय धीरे-धीरे चलो । क्योंकि यह मिट्टी कभी प्रेमियों की आंखों का सुर्मा थी । —अनुवादक

* सब कुछ वही है । या सब कुछ उसी से है । —अनुवादक

+ जब तू अच्छी तरह से देखेगा तब ज्ञात होगा कि दर्पण भी वही है । और केवल धन हीं नहीं, अपितु धन का कोष भी वही है । —अनुवादक

† अभी तक उसकी आँखें यह देख रही हैं कि उसका देश दूसरों के अधिकार में है । —अनुवादक

मौलवी साहब का इक्कतीसवां उत्तर

मैं ने बड़े-बड़े राजाओं महाराजाओं से अपने ही कानों से सुना है, भाग्यवशात् इस पुनर्जन्मवाद को मानने के कारण वे सत्य ही कहते थे कि—

"तपों राज और राजों नर्क।"

अर्थात् तपस्या करने से राज्य की प्राप्ति होती हैं और राज्य करने से नर्क की प्राप्ति होती है। कठिन और असाध्य तपस्याओं, अनुष्ठानों और उपासनाओं के परिणाम स्वरूप तपस्वी को राजा का पद प्राप्त हो जाता है। फिर राजा बनने का ही परिणाम यह निकलता है कि वह मनुष्य दोजख (नर्क) के लायक ठहरता है। इस कथन का दूसरा वाक्य कि "राजों नर्क।" इस लिए भी सच है कि राजाओं और महाराजाओं के व्यवहार प्रायः अन्याय और अत्याचार पूर्ण होते हैं। उन से पूरा-पूरा न्याय होना असम्भव है। भोग, विलास और अपव्यय इत्यादि की सैंकड़ों प्रकार की बुराइयों में फंसे रहते हैं। यही नहीं मेरे जैसा अनुभवी तो यह भी साक्षी दे सकता है कि यह दूसरा वाक्य पूर्णतया सत्य है। क्योंकि दोजख का दृश्य मुझे इन राजाओं महाराजाओं में दिखाई देता है।

मौलवी साहब के इक्कत्तीसवें उत्तर का खण्डन

आप के इस उत्तर का खण्डन हम क्या करें ? आपके इस कथन का तो प्रत्येक शब्द स्वीकारने के योग्य है। इसमें तो आपके कथन के साथ ही आपका अनुभव भी है। अवश्य ही राजाओं को ऐसा ही होता है। क्योंकि आप तो राजाशाही हकीम थे ही। भगवान् का धन्यवाद है। अन्त में आपके मुंह से सच्ची बात भी निकली तो सही। निस्सन्देह जो राजा और बादशाह अत्याचारी होते हैं, उनको नर्क ही मिलता है। "तपों राज और राजों नर्क" सत्य है। अतः महमूद, तैमूर, औरंगजेब, नादिर, ग्यासुद्दीन, अलाऊद्दीन, सिकन्दर लोधी, अहमद शाह अब्दाली जैसे क्रूर, अत्याचारी और भोगी विलासी लोगों को अवश्य ही नर्क मिलता है। उनके बुरे कर्मों के बदले में। परन्तु जब आपने यह स्वीकार कर लिया और समझ भी लिया कि अवश्य यही अत्याचार और विलासिता का फल दुःख के रूप में मिलता है। तब यह भी सोचें कि जिन को अब राज सुख मिलता है, वह क्यों मिला है ? स्पष्ट है—

ज कौमे कि नेकी पसंदद खुदाय। दिह खुसरवी आदिल ओ नेकराय ॥१॥

और इसके प्रतिकूल—

चु कौमे ब असियां शवद मुब्तिला। जफाकार शाहे फरस्तद खुदा ॥२॥

और यह भी स्पष्ट है कि—

शामते आमाल आलम सूरते नादिर गिरिफ्त ॥३॥

१—जो जातियां नेकी को पसन्द करती हैं, ईश्वर उनको न्यायकारी और सब का हितैषी राज्यशासन प्रदान करता है।

२—जो जातियां भ्रष्टाचार में फंस जाती हैं, न्यायकारी ईश्वर उनके लिये अत्याचारी शासक भेजता है।

३—संसार के बुरे कर्मों के फल ने नादर जैसे क्रूर शासक का रूप धारण किया।

—अनुवादक।

अत्याचारी और न्यायकारी दोनों प्रकार के राजा अपने-अपने कर्मफलानुसार ही होते हैं। परन्तु क्योंकि अधिकार प्राप्त होने पर दोनों ही कर्म करने में स्वतन्त्र होते हैं, अतः स्वतन्त्रता पूर्वक एक न्याय करता है, और दूसरा अत्याचार करता है। और दोनों को ही ईश्वर की ओर से उनके कर्मों का फल मिलता है। अतः जो कुछ बड़े छोटे, या अमीर व गरीब के विभिन्न भेद संसार में दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब कर्मफलानुसार ही हैं। यह सब कुछ सुव्यवस्था के अनुसार हो रहा है। अचानक या दुर्घटनावश कुछ नहीं है। इसी का नाम पुनर्जन्मवाद है।

हमने माना कि सुख और दुःख कर्मों के फल हैं, परन्तु यह क्यों नहीं कहा जाता कि यह इसी जन्म और इसी संसार के कर्मों का फल है? यही कहना उचित और लाभदायक भी है। क्यों कि इससे दण्ड अथवा पुरस्कार का जो भी कारण है, उसका भी ज्ञान बना रहता है। इस ज्ञान का होना आवश्यक भी है। परन्तु पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने से तो ऐसा स्मरण रहता ही नहीं। और पुनर्जन्मवादी इसको आवश्यक भी नहीं मानते। रही यह बात कि बच्चे में वह कौनसी बात है, जिसके कारण बच्चे को दण्ड मिला? या जिसके कारण बच्चे को फल मिला? यहां हम दो उत्तर देते हैं :—

१—कर्म दो प्रकार के होते हैं। एक वे कर्म जिनका फल प्राप्त करने के लिए कर्त्ता का बुद्धिमान वयस्क, और जान बूझकर नियमों का उल्लंघन करने वाला होना आवश्यक नहीं है। यथा— एक अबोध बालक आग में हाथ डाल दे, वा जहरीला दूध पी जाये। ऐसी अवस्था में फल तो मिलेगा ही। बहुत नहीं, तो थोड़ा ही सही। तथापि यदि इस रीति से किसी को कुछ सहन करना पड़ता भी है, तो उसका बदला उस बड़े फल से भली प्रकार चुक जाता है, जिसे शहादत कहते हैं।

दूसरे कर्म वे हैं, जिनमें नियम को तोड़ना, अपराधी का बुद्धिमान्, वयस्क, इच्छापूर्वक जान बूझकर अपराध करना आवश्यक है। ऐसे नियमों को शरीयत का कानून, नीतिकारों का कानून या राजकीय क़ानून कहते हैं। अतः ज्ञात हुआ कि बच्चों को जो दण्ड मिलता है, वह प्राकृतिक नियमों को तोड़ने का परिणाम होता है, जो नियम बच्चों ने स्वयं तोड़े या उनके माता, पिता और अभिभावकों ने।

२—बच्चे भी यह कह सकते हैं कि वे भी जानबूझकर ही किसी बुराई को किया करते हैं। और उसकी सज़ा भोगते हैं। ऐसी अवस्था में बुराई को करने वाली उनकी आत्मा होती है। उनकी आत्मा चेतन है, होशियार है, और वह जैसी बच्चों के बचपन में होती है, वैसी ही उनकी जवानी में भी होती है।

या इस लिए कि जिस प्रकार के वे बच्चे हैं और जिस प्रकार के उन बच्चों के शरीर प्राकृतिक तत्त्व हैं, एवं उनकी जो शक्ति है, उसी प्रकार की और उसी शक्तिवाली उनकी आत्मा भी है। फिर जैसे छोटी-सी त्रिऊंटी भी आत्मा तथा बुद्धि का एक अंश अपने पास रखती है, और उस बुद्धि के विपरीत आचरण भी करती है, इसी प्रकार वे बच्चे भी होते हैं, जिनको हम बीमार या दुःखी देखते हैं। हो सकता है कि अपनी पहुँच और अपनी शक्ति के अनुसार उन्होंने भी किसी नियम या नियमों को तोड़ा हो।

जब हम बुद्धिमानों, नीतिकारों और बड़ी समझ वालों को भी अपनी-अपनी समझ तथा शक्ति के अनुसार, किसी नियम को तोड़ते हुए देखते हैं, और उस का दण्ड भी भोगते हुए पाते हैं, तब भला छोटे बच्चे भी ऐसा क्यों न करते होंगे। हम यह भी कह सकते हैं, कि बच्चों को

कष्ट होता है वह कोई विशेष या अधिक कष्ट नहीं होता। वे भी अपने माता, पिता, अभिभावकों और अपने इसी जन्म के कर्मों के फल भोगते हैं। हो सकता है कि ऐसे बच्चों को अपने भावी जीवन में उन्नति के विशेष अवसर तथा उपकरण मिल जायें।

मौलवी साहब के बत्तीसवें उत्तर का खण्डन

इस उत्तर में आप ने स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकारा है कि सुख और दुःख कर्मों के फल ही होते हैं। अतः बच्चे भी उत्तम नियमों के उलंघन करने से कर्मों के बन्धन में फंस जाते हैं। "लड़के भी, हम कहते हैं, कि जान बूझकर अपराध किया करते हैं, और इस का दण्ड भी भोगते हैं।" इत्यादि। अतः आप के पिछले सारे इन्कार यहां पर आप को लज्जित कर रहे हैं। यह एक वास्तविकता है कि कर्म परम्परा के विचार में फल और दण्ड की बात को स्वीकार करने के सिवा दूसरा और कोई मार्ग है ही नहीं। फल कहो, सज़ा कहो, दण्ड या पुरस्कार कहो, इन सभी शब्दों से पुनर्जन्मवाद विषयक हमारे मन्तव्य की पुष्टि होती है। यह तो आपने मान ही लिया कि संसार में वर्तमान विभिन्न प्रकार के भेदों के मूल कारण कर्म ही हैं। अब विचारणीय यह है कि पुनर्जन्मवाद से क्यों? और कैसा इन्कार? हम ने मौलवी साहब के उत्तर में संख्यायें अंकित कर दी हैं, जिस से वे भली प्रकार विचार कर सकें और हमें व्यर्थ ही लम्बे लेख के उद्धरण न देने पड़ें। हमें तो सत्य का अनुसन्धान करना है, व्यर्थ में काग़ज़ काला करने से क्या लाभ?

आप के आक्षेप संख्या—१ का उत्तर यह है कि बच्चे को जो दुःख मिला, वह इसी जन्म के कर्मों का फल इस लिये नहीं है कि यहां पर केवल मात्र फल ही प्रकट है। उस फल का बीज प्रकट नहीं है। अतः वह बीज पिछले जन्म के कर्म ही हैं। संख्या—२ का उत्तर यह है कि बच्चे ने उत्पन्न होने से पूर्व गर्भावस्था में ही उंगली मार कर अपनी आंखें कैसे फोड़ लीं? किस प्रकार अपने पांव तोड़ लिये? वह गर्भ में ही गूंगा और बहरा कैसे बन गया? वह क्यों ग़रीब और कंगाल के घर में आ गया? वास्तव में वह क्या चाहता था? इन सब प्रश्नों का उत्तर आप क़ियामत तक कुछ भी नहीं दे सकते सिवाये इस के कि आप पुनर्जन्मवाद के सत्य सिद्धान्त को स्वीकार कर लें।

वह जन्म लेते ही दुःख में क्यों पड़ा? अथवा जन्म लेते ही वह सुख में क्यों आया? ये सब ऐसी बातें हैं, जिन का कोई उचित कारण जन्म के पहले ही मौजूद होना, आवश्यक है। बच्चे का गर्भावस्था में ही ऐसा कोई कारण होना चाहिये, जिसे सुख दुःख का कारण माना जा सके। और यदि ऐसा कोई कर्म नहीं है, तब तो पुनर्जन्मवाद सिद्ध ही है। क्या आप आग में जलकर या विषपान करके मरने वाले बच्चे को शहीद समझते हैं? क्या बिना इच्छा के कर्मों से भी संसार में पुण्य और पाप की प्राप्ति हो सकती है? कदापि नहीं। अतः वे किसी भी प्रकार के पुण्य या पाप के अधिकारी नहीं। और जो बच्चे गर्भावस्था में ही मर जाते हैं, या जो गर्भपात होने से मर जाते हैं, उन को तो शायद आप बहिश्त से भी ऊपर, ईश्वर की समीपता का पद देते होंगे? क्या आप के विचार एवं क़ुरान की आयतों के अनुसार आग या विष से बच्चों का मरना उत्तम है? क्योंकि वे शहीद होते हैं। आप की बुद्धि वास्तव में बहुत ही अधिक प्रशंसनीय प्रतीत होती है। बर ईं अक़्ल ओ दानिश ब बायद गिरीस्त।*

अबोध, बेज़बान और फूल जैसे बच्चों के आग, विष या अन्य कारणों से मरने को आप थोड़े

* आप की बुद्धि पर तो रोना आता है। —अनुवादक।

कष्ट से मरना समझते हैं और कुछ भी खेद-जनक नहीं समझते। किसी ने आप ही जैसे के लिये कहा है :—

कभी बेदर्द ताउसे गुलिस्तां ज़िबह करवाये।
बला से तेरी गर इक बेज़बां की जां पै बन आये॥ १॥
तेरी तफ़रीह तबा का यह अजब अच्छा तमाशा है।
वह तड़पे हैं तेरे लब पै अहो अहो है ! अहा अहा है॥ २॥

जब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि बच्चों को होने वाला कष्ट किसी न किसी प्राकृतिक नियम को तोड़ने का फल है, तब यह तो माना। विचारणीय यह रहा कि गर्भ में या उत्पन्न होने में उन्हों ने कौन सा क़ानून तोड़ा ? मौलवी साहब ईमान से कहना, क्या पुनर्जन्मवाद के सिवा कोई दूसरा उत्तर सम्भव है ?

मौलवी साहब का तेत्तीसवां उत्तर

यद्यपि नेकी का प्रभाव उत्तम ही होता है। फिर भी जब कभी नेकी पर अभिमान किया जाता है, या दिखावे के रूप में नेकी की जाती है, तो वह तो अपराध है। दुर्बलों को घृणा की दृष्टि से देखना भी बुरा ही है। इसी प्रकार बदी का प्रभाव तो बुरा ही होता है, परन्तु जब कोई बदकार, अपनी बुराई पर विचार करता है, और ईश्वर को साक्षी करके, सच्चे हृदय से विनम्रता पूर्वक लज्जित होता एवं पश्चाताप करता है, तब वह बुराई के बुरे प्रभाव से बच जाता है। अतः नेक तो अपनी नेकी को नष्ट कर देता है, और बुरा बुराई से सुरक्षित रहता है। जिस को हम आप सभी साधारणतया नेक समझते हैं, वे वास्तव में बुरे एवं दुःखी हैं। इसी प्रकार जिन को हम आप बुरे समझते हैं, वे भले और सुखी हैं। यदि आप अपने अन्ध-विश्वास के कारण यह कहें कि नेक मनुष्य को जो दुःख मिला है, वह उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है, तथा बुरे मनुष्य को जो सुख मिलता है, वह भी पूर्वजन्म के ही कर्मों का फल है, तो हम उसे वहम और ग़लत ही कहेंगे। समझने में भूल तो सभी से सम्भव है।

मौलवी साहब के तेतीसवें उत्तर का खण्डन

आप ने नेक और बद का जो उदाहरण दिया, इसे हम मान लेते हैं। परन्तु आप ने जो भ्रम फलाना चाहा है, उस का तो हम खण्डन ही करेंगे। भाई ! पूर्वजन्म के कर्म न सही, पिछले कर्म ही सही। जब उसने नेकी की, फिर उस नेकी पर अभिमान किया। अथवा पहले अभिमान किया और फिर नेकी की। तब न्याय तो यही बताता है कि नेकी का फल नेक है, और बुराई वा अभिमान का फल बुरा है। इसी प्रकार प्रार्थना का फल भी उत्तम होता है। हम देखते हैं कि प्रथम कर्म किये जाते हैं और फिर उन के फल मिलते हैं। यहां आपने अपने मुंह से तो नहीं; परन्तु अपनी लेखनी से स्वीकार

१—कभी तू ने बाग़ों के सुन्दर पक्षियों के गले कटवा डाले। ओ निर्दयी ! यदि एक बेज़बान की जान संकट में पड़ जाती है तो तेरी बला से।

२—यह तो तेरे दिल बहलावे का एक अद्भुत और अच्छा सा तमाशा ही है। वह तड़पता और मरता है, तू देख कर ओहो ! और वाहवा !! ही कहता रहता है।

—अनुवादक।

कर लिया है कि दुःख और सुख पिछले कर्मों के फल ही होते हैं। परन्तु यह भी तो सम्भव है कि जिस पर अभिमान का सन्देह किया जा रहा है, उसने इस जन्म में कभी भी अभिमान न किया हो। इसी प्रकार किसी ने इस जन्म में प्रार्थना भी कभी न की हो। तब अभिमान और प्रार्थना इन कर्मों का, इस जन्म से तो कोई सम्बन्ध ही न रहा। अतः पिछले जन्म के कर्मों को ही स्वीकारना होगा। आप ने स्वीकार ही लिया कि समझने में भूल सभी से सम्भव है। हम जानते हैं, आप तो भूलते ही रहते हैं।

अल इन्सान मुरक्कब मिनल खतावल निसियां।*

मौलवी साहब का चौंतीसवाँ उत्तर

नेकियां बहुत प्रकार की होती हैं। ऐसे ही नेकियों के फल भी नाना प्रकार के होते हैं। लोगों की अवस्था प्रायः यह है कि एक प्रकार की, या हजारों प्रकार की नेकी करते हैं, और जिस-जिस प्रकार की नेकी करते हैं, उसी-उसी प्रकार के प्रतिफल भी प्राप्त करते हैं। परन्तु वे ही एक या हजारों प्रकार की नेकियां करने वाले लोग नाना प्रकार की बदियां भी तो किया करते हैं। और पूर्वोक्त प्रकार से ही बदियों के नाना प्रकार के बुरे फल भी प्राप्त किया करते हैं। फिर कुछ नेकियां तो तुरन्त ही अपना फल देती हैं, और कुछ नेकियों का फल देर में मिलता है। ऐसी अवस्था में दर्शक और विचारक भ्रांति में फंस जाते हैं। और वे किसी नेक को बद, या बद को नेक समझने लगते हैं। इस उत्तर को एक दृष्टान्त से कुछ अधिक स्पष्ट करता हूँ :—

एक बार मैं एक सभा में भाषण दे रहा था। एक सज्जन ने पूछा कि जब सभी आराम एक मात्र ईमान से प्राप्त हो सकते हैं, और नाना प्रकार के दुःख केवल कुफ्र एवं कुरानी आदेश को न मानने के कारण ही होते हैं, तब अंग्रेज इस संसार में शासक एवं धनवान् क्यों हैं? तब मैंने उसे तथा सभा में उपस्थित जनों से निवेदन किया कि ईमान की सब से छोटी बातों में कुरान के अनुसार :—

अमाततुल अज़ी इनतरीक़।

इस का भाव है कि रास्तों को साफ रखना और कष्ट देने वाले पदार्थों को रास्तों से दूर रखना=करना चाहिये। ईमानदारों की प्रशंसा में कुरान का कथन है :—

व इन्न लैसल् इन्साना इल्ला मा सई व इन्न सईद सौफ़ युदी।

प्रत्येक मनुष्य को अपने ही प्रयत्न व परिश्रम का फल मिला करता है। और वह अपने परिश्रम के फल को देखेगा।

मेरे उपस्थित सज्जनो! ईमान के इन आदेशों के अनुसार अंग्रेजों ने आचरण किया। और तुमने इन आदेशों के अनुसार आचरण करने से मुंह मोड़ा। जिन लोगों ने इस्लाम के ईमान के इन सिद्धान्तों को अपनाया, वे इनका लाभ भी उठा रहे हैं। और तुमने इन्हें न माना। अतः तुम भी अपनी करनी का फल भोग रहे हो। जैसे यह एक सांसारिक दृष्टान्त है, ऐसा ही ईश्वर की व्यवस्था के विषय में भी समझना चाहिये।

—अनुवादक।

* मनुष्य तो खता और भूल का पुतला है।

वला तनाज़ाउ अफ़तफ़शललू औतद हबरीहकुम ।

आपस में लड़ाई-झगड़ा न करो। आपस में लड़ने से तुम कमज़ोर हो जाओगे। और तुम्हारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी।

इस पवित्र आयत में तुम को यह आदेश दिया गया है कि आपस के सब झगड़े-बखेड़े छोड़ दो। अन्यथा तुम निर्बल होकर बरबाद हो जाओगे। ईश्वर के इस आदेश की ओर तुमने ध्यान न दिया। ईश्वर की कृपा से तुम सब भाई-भाई थे। परन्तु परस्पर एक दूसरे के शत्रु बन गये। सार इस कथन का यह है कि तुम लोग अपने ही विरुद्धाचरणों के कारण अनेक प्रकार के संकटों में फंस गये हो।

हां, तुम नमाज़ें पढ़ते हो, रोज़े रखते हो, ज़कात भी दे देते हो, हज भी कर आते हो, इन सब से बढ़कर 'एकेश्वरवाद' पर विश्वास भी रखते हो। और इन आदेशों का पालन अंग्रेज नहीं करते। अतः अपने इन शुभ कर्मों का लाभ भी तुम्हें ही होगा, अंग्रेज़ों को नहीं। अस्तु, जो मनुष्य जिस प्रकार का बीज बोयेगा, वह उसी प्रकार फल प्राप्त करेगा।

लालकुं ततफक्करून फी उद्दुनिया व लाख़रत।

अर्थ—तू कह कि तुम इस लोक और परलोक की चिन्ता करो।

इसके अनुसार ही हमारे रसूल के साथियों और सभी भले लोगों ने दीन और दुनियां दोनों की ही भलाई का बीज बोया। तथा दोनों का ही लाभ उठाया।

मौलवी साहब के चौतीसवें उत्तर का खण्डन

मैं हैरान हूं कि आपने इस अन्तिम उत्तर को अपनी इस पुनर्जन्म की पुस्तक में क्यों लिखा? यहां अन्त में आकर, आप अपने वे सब व्यर्थ उत्तर क्यों और कैसे भूल गये? जो पहले लिखे थे। कर्मों के फलों का मिलना तो आप ने मान ही लिया। अब आपका वह ईश्वरीय कृपा का ढकोसला कहां गया? निस्सन्देह, नेकी और बदी का फल अवश्य मिलता है। यह नियम अटल है। आपने जो दृष्टान्त दिया है।

इस में आपने कहां? क्या भूल की है? यह हम आपको बताते हैं।

अमाततुल अज़ी अनत्तर्क।

इस आयत के अनुसार आचारण मुसलमानों ने कभी भी नहीं किया। खुद खुदा के घरमें अर्थात् अरब में भी इसके अनुसार आचरण न होता था। मुहम्मद साहब से पहले जैसे अरब का नाम 'क़ताउलतरीक़' या 'ताज़ी' अर्थात् लुटेरा प्रसिद्ध था, वह आज भी वैसा ही है। और जब तक वैदिक-धर्म को स्वीकार करके अरब वाले अपना जीवन न सुधारेंगे, तब तक ऐसा ही रहेगा। बताइये, आपकी इस आयत पर कहां आचरण होता है? या बस ज़बानी जमाख़र्च से ही काम निकालते हो?

अफ़ग़ानिस्तान, रूम, ईरान, बलोचिस्तान, तातार, मिस्र इत्यादि जिन-जिन देशों में इस्लाम का ज़ोर था, या है, वहां कभी भी इस आयत के अनुसार व्यवहार न किया गया। फिर इस्लाम की तारीफों के निराधार पुल बान्धने से लाभ क्या? दूसरी आयत भी आप ने व्यर्थ ही लिखी। क्योंकि इसके अनुसार भी किसी ने कभी व्यवहार न किया। यदि मुसलमान बादशाह प्रेम और शान्ति से रहते, तो इतने अधिक अन्याय और अत्याचार संसार में कभी न होते। अन्य लोगों की बातें जाने दो, स्वयं

मुहम्मद साहब के जहादी झगड़े ही इस बात का प्रमाण हैं। भला बुद्धि से इस्लाम का काम ही क्या है?

तीसरी आयत का लिखना और भी अधिक व्यर्थ है। "आपस में न लड़ो। इससे तुम दुर्बल हो जाओगे। और तुम्हारी अप्रतिष्ठा होगी।"

हज़रत मुहम्मद साहब के मर जाने पर कितना झगड़ा हुआ? ख़िलाफ़त की बाबत क्या कुछ गुल खिले? हज़रत अली, मुआविया, आयशा, तलहा, ज़बीर, और उस्मान इत्यादि मुहम्मद साहब के साथियों ने इस आयत के अनुसार कैसा आचरण किया? क्या उनको आप जैसी समझ भी न थी? मौलवी साहब!

शेरे कालीन दीगर और शेरे नेस्तां दीगरस्त।+

आपने जो दो आयतें और लिखी हैं, वे तो "कर्म-भोग-चक्र" तथा "वैदिक-पुनर्जन्मवाद" के सर्वथा ही अनुकूल हैं। अर्थात् "प्रत्येक मनुष्य को अपने ही प्रयत्न व परिश्रम का फल प्राप्त होता है। और वह अपने परिश्रम के फल को देखेगा।" तथा—

"तू कह कि इस लोक और परलोक की चिन्ता करो।"

जब मनुष्य को अपने पुरुषार्थ का फल मिलता ही है, और भविष्य में भी मिलेगा, तथा—जिस ने जैसा बीज बोया, उसने वैसा ही फल उठाया, जब ये कथन सत्य है, तब जीवन में मिलने वाले सभी सुख दुःख किसी न किसी पुण्य या पाप के फल अवश्य ही हैं। यह जन्म पिछले जन्म के कर्मों का ही फल है।

मौलवी साहब का पैंतीसवां उत्तर

किसी भी भले मनुष्य के दो रूप होते हैं। अपने एक रूप में वह ईश्वर से प्यार करता है। और दूसरे रूप में वह भले काम शुद्धाचारविचार आदि का अनुष्ठान करता है, अतः वह ईश्वर का प्यारा भी होता है। भले मनुष्य पर संकटों का आना भी सम्भव है। ईश्वर को प्यार करने के कारण उस पर कष्ट आयेंगे। और ईश्वर का प्रेम पात्र होने के कारण उसे पुरस्कार अर्थात् सुख भी मिलेंगे। दुःख का कारण यह है कि ईश्वर उसका प्यारा है। यथा ईश्वर की प्राप्ति और वियोग का दुःख। सुख का कारण यह कि वह ईश्वर का प्यारा है।

मौलवी साहब के पैंतीसवें उत्तर का खण्डन

ईश्वर किसी को आज़माता नहीं। क्योंकि आज़माना मूर्ख अथवा अपरिचित जनों का काम है। सर्वज्ञ का यह काम नहीं। अस्तु भले तथा बुरे मनुष्यों को जो भी दुःख वा कष्ट प्राप्त होते हैं, वे बुरे कामों के परिणाम स्वरूप ही होते हैं। इसी प्रकार, जो सुख मिलते हैं, वे भी कर्मफलानुसार ही होते हैं। यद्यपि आप के इस उत्तर का पुनर्जन्मवाद के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। परन्तु आप का काल्पनिक सम्भव, कभी भी सम्भव नहीं। हम आप के बतलाये हुए नियम से यह कल्पना भी कर सकते हैं कि शैतान पर ईश्वर की ओर से जो डाँट-फटकार और दया का व्यवहार हुआ या होता है,

+कालीन पर शेर की बात और है, तथा जंगल में रहने वाले असली शेर की तो बात ही दूसरी है।

—अनुवादक।

उस का कारण प्रेम है, शत्रुता और कुफ्र उस का कारण नहीं। और नबियों को जो बहिश्त की प्राप्ति हो चुकी है, या होने वाली है, उसका कारण नबियों के पाप हैं, उन के सदाचार तथा ईश्वर प्रेम नहीं। क्योंकि इन दोनों ही बातों से ईश्वर की इच्छा तथा प्रसन्नता प्रकट होती है।

इब्न अब्बास फरमूदा कि अमर बमानी अख़बार अस्त यानी हरकिरा ख़ाहद ईमान आरद हर आईना ईमान आरद व हरकिरा ख़ाहद कि काफ़िर शवद बेशक काफिर गरदद।* [फ़ारसी]

मा तशाऊन इल्ला अनयशाअ अल्ला। [अरबी] आंचे मशीयत अज़ली बदां मुतअल्लिक़ शुदह अज़ सिम्त तग़ैय्युर मुबर्रा व अज़ सिफ़त तबदील मारास्त।†

हर किरा ख़ाही बरां हर किरा ख़ाही बख़ां।
हुक्म हुक्म तुस्त व कस रा चारा जुज़ तस्लीम नेस्त॥+

[देखो तफसीर हुसैनी सूरत कह्फ पृष्ठ ६, सन् १८७४ ई० नवल किशोर प्रेस]

जिस से स्पष्ट है कि क़ुरान के मन्तव्यानुसार सम्पूर्ण शरारतों, बेईमानियों, कुफ्र और शिर्क का आविष्कारक एवं प्रवर्तक व संचालक वही ख़ुदा है, जिस का वर्णन क़ुरान में किया गया है

ज़िनहार अज़ करीन बद ज़िनहार।×

* इब्न अब्बास ने कहा कि 'अमर' का अर्थ खबर होता है। अर्थात् जिस को चाहा कि ईमान लावे, वह सब प्रकार से ईमान लाता है। और जिस को चाहा कि काफ़िर हो जाये, वह अवश्य ही काफिर हो जाता है। —अनुवादक।

† जो कुछ किसी के भाग्य में आरम्भ से ही निश्चित् हो जाता है, उस को फिर किसी भी उपाय से बदला नहीं जा सकता। —अनुवादक।

+ जिस को चाहा अन्दर बुला लिया और जिस को चाहा बाहर निकाल दिया। तेरी आज्ञा को स्वीकारने के सिवा किसी के पास भी कोई दूसरा उपाय नहीं है। —अनुवादक।

× बुरे मित्र से सावधान रहो। बुरे मित्र से सावधान। —अनुवादक।

हुज्जतुल हिन्द नामक पुस्तक के लेखक

शेख अब्दुल्ला के आक्षेप

[पृष्ठ १४५ व १४६]

मौलवी—हिन्दुओं के धर्म में क़ियामत के विषय में कोई भी उल्लेख नहीं है।

आर्य—क़ियामत का सिद्धान्त जिस प्रकार क़ुरान में लिखा है, और जो आप का अभिप्राय है, वह मन्तव्य तो हिन्दुओं का वास्तव में नहीं है। और वह स्वीकारने योग्य भी नहीं है। क़ियामत के दिन ईश्वर का हिसाब किताब करना, वह भी अपनी बुद्धि एवं विद्या के आधार पर नहीं, अपितु मुनकिर, नकीर और करामिन कातबीन की विनय, प्रार्थना, गवाही आदि के अनुसार। यह उस के सभी कालों में न्यायकारी और दयालु होने के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। और यह मानना कि किसी काल विशेष, स्थान बिशेष या परिस्थिति विशेष में उस का कोई गुण, कर्म वा स्वभाव स्थगित हो जाता है, यह तो ईश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार न करने जैसा है। अतः क़ियामत के दिन ख़ुदा का हिसाब किताब, इजलास, ईश्वर के सिंहासन पर पैग़म्बर साहब का पेशी करना, फ़रिश्तों का फ़ौजी सलाम देना, इस के पश्चात् तख़्त [अर्श] वाले ईश्वर का आठ फ़रिश्तों के कन्धों पर सवार हो कर, बीमार या बूढ़े बादशाहों की तरह फिर कर, सब के पास से गुज़रना, तथा इसी प्रकार की सभी बातें सर्वथा मिथ्या एवं निर्मूल हैं।

मौलवी—कहते हैं कि जब कोई पापी मरता है, तब यमराज, जिस को हिन्दू धर्मराय भी कहते हैं, उसके सैनिक पापी की रूह [आत्मा] को धर्मराज के पास ले जाते हैं। और धर्मराज प्रत्येक रूह को, जो जिस के योग्य होती है, उस को वैसा ही नया शरीर देता है। उस शरीर में रहकर वह रूह अपने कर्मों के फल को भोगती है। फिर उसे किसी दूसरे शरीर में प्रविष्ट किया जाता है।

[सौत अल्लाउलजबार जिल्द 1 पृष्ठ ४१ के आधार पर।]

आर्य—आपने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। केवल साधारण लोगों से सुन सुनाकर लिख दिया। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अपितु सर्वव्यापक परमात्मा को किसी भी सैनिक, चपरासी, या अरदली की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। हां, इस्राएल, मेकाईल, व जब्राईल, इत्यादि सैनिकों का सूबेदार क़ुरान का ईश्वर है। और वह कभी कुरसी पर तथा कभी तख़्त पर बैठता है।

धर्मराज, धर्मराय और यमराज या जमराज ये सब नाम उसी एक ईश्वर के हैं। और वायु का नाम भी यम है। अतः जब जीवात्मा [रूह] एक शरीर को छोड़कर किसी दूसरे शरीर में जाता है, तब वायु में होकर ही जाता वा आता है। इसलिये यदि अलंकारिक रूप में वायु को ईश्वर का सैनिक कहा जाये, तो कह सकते हैं। वह परमात्मा सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ होने के कारण सभी स्थानों में सभी का सम्यक् न्याय प्रति-क्षण कर रहा है। प्रत्येक रूह के विषय में, वही धर्मराय, या धर्मराज, उस के कर्मों के अनुसार शासन कर रहा है। वही अन्तर्यामी होने से सबके पाप और पुण्य का ज्ञाता, दिलों का मालिक है। महर्षि मनु ने भी उसे गुप्त भेदों के ज्ञाता और मन के रहस्यों को जानने वाले के नाम से पुकारा है। और मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने भी ऐसा ही लिखा है। [देखो मनुस्मृति अध्याय ८, श्लोक ६२]

ईश्वर के न्याय में किसी भी सहायक सिफ़ारिश करने वाले, या वकील की कुछ भी पहुँच नहीं है। न ही उसके सामने बोलने की शक्ति किसी ऋषि, मुनि, नबी, वली, आदि में है।

सरगशताबूद ख़ाह नबी, ख़ाह वली। दर वादिये मा श्रावरी मायफ़अल बी ॥†

मौलवी—इस प्रकार वह लाखों जन्म ग्रहण करता है। यहां तक कि वह मक्खी, मच्छर, कुत्ता, चिऊंटी, सूअर, इत्यादि प्रत्येक प्रकार का पशु, अपितु वृक्ष, घास, बूटी भी, और कई लोगों के मतानुसार पत्थर भी बन जाता है। और बहुत से जन्म लेकर जब पापों से रहित हो जाता है तब उसकी मुक्ति अर्थात् निजात हो जाती है। अर्थात् वह सर्वथा ही नष्ट होकर, अपनी सत्ता खोकर, ईश्वर में मिल जाता है।

आर्य—यह ठीक है कि प्रत्येक जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख और दुःख को भोगता एवं विभिन्न प्रकार के शरीरों में जाता-आता है। परन्तु प्रत्येक जीव के लिये बिना किसी कारण के सभी शरीरों या योनियों में जाना जरूरी नहीं है। वैदिक-धर्म का मूलाधार जीव का कर्म एवं ईश्वर का न्याय ही है। किसी व्यर्थ विचार या अन्धविश्वास का यहां कोई काम नहीं। परन्तु मुहम्मदी मत तो कर्म सिद्धान्त और ईश्वर के विशुद्ध न्याय को स्वीकार ही नहीं करता। कहता है—

ब आबे जमजम व कौसर सफ़ेद न तवां कर्द।
गलीम बख्त कसे रा कि याफ्तन्द सियाह ॥*

विभिन्न प्रकार की योनियों में जाना कोई हर्ज की बात नहीं। न ही ऐसा होना सामान्य ज्ञान के विरुद्ध है। सभी शरीर न्यूनाधिक मात्रा में एक ही प्रकार के पंचभौतिक तत्वों से मिल कर बने हैं। सब रूहें अलौकिक तथा चेतन हैं। मक्खी, मच्छर, चिऊंटी, सूअर, कुत्ता, सभी को अपनी जान प्यारी है। सभी अपनी सन्तान से प्रेम करते हैं, और शत्रु से घृणा। सभी को भोजन की आवश्यकता है। कामवासना सभी को सताती तथा अभिभूत कर लेती है। लालच का भाव भी मनुष्यों व पशुओं में एक ही-सा पाया जाता है।

शहद की मक्खी के जीवन और उसकी दिनचर्या का मनोयोग पूर्वक अनुसन्धान करो। या दिल लगा कर 'निगारे-दानिश' नामक ग्रन्थ का स्वाध्याय करो। जिससे आपको भी बुद्धि की प्राप्ति हो, तथा काम करना सीखो। ऐसी ही बात दूसरी मक्खी की बुद्धिमत्ता, तथा सावधानता के विषय में भी है। मक्खियों का शहद एकत्रित करना, चिऊंटियों का जाड़े के लिए अन्न एकत्रित करना, सभी देशों में एक ही सा है। ऐसा कौन है, जो उनकी बुद्धिमत्ता से इन्कार कर सके ? अन्धेरे में भी लगातार काम करना और एक राजपथ बनाना, धैर्य पूर्वक बारम्बार यत्न करना, और सफल होना, इस योग्य तो है ही कि तैमूर जैसे सम्राट् भी उन की शिष्यता स्वीकार करें। लोग कहते हैं कि चिऊंटियां आपस में बातें भी किया करती हैं। और आत्मरक्षा में भी वे बहुत अधिक निपुण होती है। इस बात का कथनकार भी ऐसा है कि आप इन्कार ही न कर सकें। अर्थात् कुरान और मुहम्मद साहब। सूरत नहल में लिखता है :—

क़ालत नमलत या अय्युह नमल अदखलू मसकनकम ला यह तनकुम सुलेमान व जनो हम। व हम ला यशअरून फित्रनसम जाहकन मिन क़ौलहा। [अरबी]

† कोई चाहे नबी हो, या वली हो, सभी उसके कार्यों को देख-देखकर आश्चर्य-चकित रहे हैं। अनुवादक।

* भाग्य के दुशाले को, यदि वह किसी को काला मिला है तो जमजम और कौसर के पानी से सफेद नहीं किया जा सकता।

अर्थ—[फारसी]—गुफ्त मोरचा ए मोरचगान दराईद बख़ानहाय ख़ुद ता दरहम न शिकनद शुमारा सुलैमान व लशकर हाय ओदानिस्ता पस सुलेमान क़सम कर्द अज़गुफ्तार मोरचा।†

तफसीर हुसैनी से सिद्ध होता है कि चिऊंटियां भी ईश्वर की भक्ति किया करती हैं। सौभाग्य-वती वे दिन रात ईश्वर भक्ति में लीन रहती हैं। अतः ये सब योनियां मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सदाचारी तथा ईश्वर-भक्त हैं। जो मनुष्य दीर्घदर्शी नहीं है, उससे तो चिऊंटी ही अच्छी है।

मोर गिर्द आवुरद बताबिस्तां। ता फरागत बुवद ज़मिस्तानश॥+

फिर उसी सूरत नमल में लिखा है—

फक़ाल अहतत ब आलम तहत बहव हैवतकमिनसबाम्बिया यक़ीन। [अरबी]

अर्थ [फारसी]—पस गुफ्त (हुद हुद) जानवर दर गिरफ्तम व चीज़ें कि दर न गिरफ्ता ब आं व आवुरदम तू अज़ कबीलये बसा ख़बरे तहक़ीक़ रा।×

इस से पहिले लिखा है कि सुलेमान मुर्गों, जिनों, और मनुष्यों की भाषा जानता था।

कुरान में लिखा है कि पशु, पक्षी, वृक्ष, पहाड़, सितारे, सूर्य, चन्द्र सभी ईश्वर की उपासना करते हैं। और उसको सिर झुकाते हैं।

सूरते हज—अलमान अल्लाह यलजलद-लाह मन अल समावात व मिनल अरज़ व अलशम्स व अल क़मर व अलनजूम व अलजबाल वअलशजर व अलदवाव व कसीर मन उन्नास।

[अरबी]

अर्थ [फारसी]—आया न दीदी कि सिजदः मे कुनन्द ख़ुदाय ताला रा आनां कि दर आसमानहा मानद व आनां कि दर ज़मीन अन्द व आफ़ताब व माह व सितारहा व कोहहा व दरख़तान व चारपायान व विसियारे अज़ मरदुमान।*

इसी विषय में एक विद्वान् का कथन है—

व आंगाह ता बीनी अज़ ऐन शहूद। जुमिला ज़र्रान्त जहां रादर सजूद॥×

शेख़ सादी का कथन है—

याद दारम कि शवे दर कारवाने हमा शव रफ्ता बूदम व सहर दर किनार बेशये ख़ुफ्ता शोरीदये कि दरां सफ़र हमराह मा बूद सहर गाहान नाराये बज़द व राहे बयाबान गिरिफ्त व यक

---

† कहो ऐ चिऊंटियों! लपने घर से बोलो, जिससे टुम को कष्ट न हो। सुलेमान और उसके लश्कर को भी मालूम होगया। और सुलेमान ने उनसे बातचीत करके कसम करा ली।

+ चिऊंटियां गर्मियों में खाता-दान एकत्रित कर लेती है, जिससे कि सर्दियां सुखपूर्वक व्यतीत हो सकें।

—अनुवादक।

× और हुद हुद जानवर को मैंने कार्यों ऐ लगाया कि उसने बहुत से गुप्त भेद प्रकट किये। —अनुवादक।

* क्या तू नहीं जानता कि जितने भी पदार्थ आसमान में और ज़मीन पर हैं, सूर्य, चन्द्र, तारे, पहाड़ वृक्ष, चारपाये, और बहुत से मनुष्य परमपिता परमात्मा को सिर झुकाते हैं। और स्तुति एवं प्रार्थना करते हैं।

अनुवादक।

× आंखे खोल और देख, जिस से कि तू इन गवाही देने वाली आँखों से देख सके कि संसार का प्रत्येक कण उस ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना कर रहा है।

—अनुवादक।

नफ़स आराम न याफ्त। चूं रोज़ शुद गुफ्तमश ईं चे हालत बूद गुफ्त बुल बुलां रा दीदम कि बनालिश दर आम्दा बूदंद अज़ दरख़्त व कुब्रकान अज़ कोह व गूकान अज़ आब व बहायम अज़ बेशा अन्देशा करदम कि मुरव्वत न बाशद हमह दर तसबीह व मन दर ग़फलत खुफ्ता कुजा रवा बाशद।+

बैल और गधे भी मनुष्यों से अच्छे हैं :—

गावान ओ ख़रान बार बरदार। बे अज़ आदमियान मर्दुम आज़ार ॥१॥

प्रायः हिंसक पशु और अन्य पशु भी मनुष्य से उत्तम हैं :—

बनन्क़ आदमी बेहतरस्त अज़ददाब, दवाब अज़तु बेह गर न गोई सवाब ॥२॥

आलसी मनुष्य की अपेक्षा सांप अच्छा है :—

अज़ां मार बर पाये राअ़ी जनद, कि तरसद् सरश रा बकोबद ज़ संग ॥३॥

यद्यपि पत्थर आदि की योनियों में जाना हम नहीं मानते और न ही कोई अन्य बुद्धिमान ऐसा स्वीकारता है, क्योंकि प्रथम तो ऐसा मानना वेद विरुद्ध है, दूसरे वे जड़ हैं। तीसरे जहां इच्छा, द्वेष, ज्ञान, प्रयत्न, सुख और दुःख नहीं पाये जाते वहां [रूह या जान] आत्मा नहीं होता। अतः उन में आत्मा का निवास या जाना-आना हम नहीं मानते।

परन्तु इस्लामी साहित्य के अनुसार तो मनुष्य ऊंट, सूअर, बन्दर, गोह, चिऊँटी, हुदहुद, गधा, बिल्ली, कुत्ता, हाथी, वृक्ष, पहाड़, नमक, पाषाण-खण्ड सभी में रूह का निवास पाया जाता है। ये सब भी मुसलमानों के समान ही कलमा पढ़ते हैं। अरबी-भाषा जानते व बोलते हैं। प्रामाणिकता-पूर्ण नमस्कार करते हैं। मानों ये सभी मुसलमान और मुसलमानियां हैं। मुफ्ती शाहदीन साहब ने अपनी पुस्तक "हक़ीक़ते—रूह" में लिखा है :—

"शरीअत में अवस्था यहां तक पहुँच गई है कि वृक्षों और पर्वतों ने भी नबियों के साथ बात-

---

+ मुझे याद है कि एक बार व्यापारियों के एक दल के साथ मैं रातभर यात्रा करता रहा। और सवेरा होने पर एक जंगल में सो गया। एक पागल जो उस यात्रा में हमारे साथ ही था, उस ने मार्ग के बीच में ही ईश्वर की उपासना करनी—नमाज़ पढ़नी, आरम्भ कर दी। और एक क्षण भर भी दम न लिया। जब फिर दिन निकला तब मैं ने उस से कहा कि यह क्या बात थी? वह बोला कि मैंने देखा कि बुलबुलें वृक्षों पर, और चकोर पर्वतों पर, मेंडकें पानी में, चिड़ियां जंगल में, ईश्वर की उपासना में संलग्न हैं। तब मैं ने विचारा कि यह उचित नहीं है कि सब जीव-जन्तु और पक्षी आदि तो ईश्वर की उपासना करें और मैं ग़फ़लत की नींद में पड़ा सोता रहूं।

—अनुवादक।

१—भार ढोने वाले बैल और गधे उन मनुष्यों से अच्छे हैं, जो अन्य मनुष्यों को सताया करते हैं।

२—वाणी की मिठास और उत्तम वार्तालाप के कारण ही मनुष्य पशुवर्गों से उत्तम समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य उत्तमता से बात चीत भी नहीं करता, तब तो पशु ही उससे अच्छे हैं।

३—सांप इस लिये कृषक के पांव को काटता है कि वह भयभीत रहता है कि कहीं वह उसके सिर को पत्थर से कुचल देगा।

—अनुवादक।

चीत की, और उन के आदेश माने। जिस से ज्ञात होता है कि उन में भी जीवात्मा का निवास था। और वे भी ज्ञानवान् थे। [पृष्ठ ३२]

जो हमारा सिद्धान्त है, उसका आधार तो ईश्वर का न्याय एवं सत्य है। जहां-जहां पर ज्ञान तथा इच्छा वर्तमान है, वहां-वहां ही जीवात्मा है। उनकी अवस्थाओं में भेद दृष्टिगोचर होने का कारण उन-उन के कर्म हैं। शरीर कर्म करने का साधन है। शरीरों में जो भेद पाया जाता है, वह ईश्वर के न्याय को सिद्ध करता है। यदि पुनर्जन्मवाद को न स्वीकारा जाये, तो ईश्वर को अत्याचारी अथवा उसकी सत्ता को अस्वीकार करके, मनुष्य को पूर्णतया नास्तिक होना पड़ता है। वही अवस्था होती है, जो पुनर्जन्मवाद के विरोधीजनों की देखने में आती है। जो वेदको न मानकर नास्तिक बना, जिसने पुनर्जन्मवाद के रहस्यों को न समझा, उसे ईश्वर की न्याय व्यवस्था से भी हाथ धोना पड़ा। वह पापी बन गया, या अपने आपको ही ईश्वर कहने लगा।

मौलवी—यह पुनर्जन्मवाद केवल कुछ विद्वानों का अनुमान और काल्पनिक सिद्धान्त है। यद्यपि यह सर्वथा मिथ्यावाद है, तथापि अब यह सभी हिन्दुओं का मन्तव्य बन चुका है।

आर्य—आपने पृष्ठ १४६ पर तो यह लिखा है कि प्रायः विद्वानों का मत है कि 'नफ़्स [मन, आत्मा] क़दीम है।" और यहां लिखते हैं कि कुछ विद्वान् पुनर्जन्मवाद को मानते हैं। ऐसा ही "अशा अतुल्सुनत" पुस्तक के पृष्ठ ८२ पर भी लिखा है। परन्तु मौलवी साहब ! क्या यह शुभ बात नहीं है, कि इस सिद्धान्त का अनुमान विद्वानों ने किया है। वास्तव में विद्वान् ही इस योग्य होते हैं कि इस प्रकार के सिद्धान्तों का निर्णय तथा प्रचार कर सकें। और "प्रायः विद्वान् आत्मा को प्राचीन मानते हैं।" उम्मी=गंवार नहीं।

यदि आपके कथनानुसार हिन्दुओं ने किसी का अनुकरण किया भी है, तो विद्वानों का ही तो अनुकरण किया है, जाहिलों, मूर्खों और गंवारों का अनुकरण तो नहीं किया।

वास्तव में इस सिद्धान्त का न तो विद्वानों ने आविष्कार किया है, और न ही यह किसी मनुष्य की कल्पना है, अपितु यह प्राकृतिक नियमों की जान तथा वेद का उपदेश है। जिन विद्वानों ने प्राकृतिक नियमों और वेद पर विचर किया, तथा जिन्हों ने ऋषियों के उपदेश सुने, उन सभी ने इस सत्य सिद्धान्त को स्वीकार किया। जो मूर्ख थे, उन्हों ने न समझा, न माना।

यह एक प्रकट सत्य है कि आत्मा [रूह] और कर्म को स्वीकारने के पश्चात् पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने के सिवा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। हां, तब, जब कोई सुबुद्धि से काम ले तो सरात का पुल, सिफ़ारिश से क्षमा, जहाद, हूरें, बहिश्त तथा दोजख़ आदि की बातें व्यर्थ हैं। जो मुहम्मदियों की कल्पनायें, उलटी उड़ाने तथा वहम बाजियां हैं, वे ही अविश्वास के योग्य हैं। न कि यह युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध एवं सुसंगत सिद्धान्त—पुनर्जन्मवाद।

हर आं कस कि रू अज तनासुख़ बताफ़्त।
ब हरजा कि शुद हेच इज्ज़त न दाश्त ॥१॥

१—जो मनुष्य पुनर्जन्मवाद को नहीं स्वीकारता, वह जहां कहीं भी जाता है, वहां ही उसका आदर नहीं होता।

तनासुख ज़ बस रहे अदल-ओ-सवाब।
अगर आक़िली रु अज़ीं दर मताब ॥२॥
ब फ़ेल अस्त कारे तनासुख बरास्त।
कसे कीं शिनासद खुदा रा शिनाख्त ॥३॥

महामान्यवर सैयद अहमद खां साहब के आक्षेपों के उत्तर

—:०:—

अपनी पुस्तक "तहज़ीबुल-इख़लाक़' जिल्द १, नम्बर ७ तारीख़ १ रबी-अ-उलसानी, सन् १३१२ हिज्री पृष्ठ ११७—१२३ में सैयद साहब ने यद्यपि अपने एक मुसलमान मित्र की प्रार्थना पर, जिसके मन में पुनर्जन्मवाद के विषय में कुछ सन्देह थे, एक लेख लिखा है। और अपने विचारानुसार प्रबल रूपमें पुनर्जन्मवाद का खण्डन कर दिया है, परन्तु उनका कोई एक भी समाधान सारयुक्त नहीं है।

कथन—रूह के एक शरीर से सम्बन्ध त्यागकर दूसरे शरीर से सम्बन्ध जोड़ने को पुनर्जन्म कहते हैं। जो पुप्रर्जन्मवादी लोग हैं, उनका कथन है कि जिस प्रकार जोंक अपनी दुम को एक स्थान पर जमा लेती है, फिर जब तक अपने मुंह को किसी दूसरे स्थान पर न जमा ले, तब तक अपनी दुम को वहां से नहीं हटाती, और उस स्थान को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार रूह भी जिस शरीर से उसका सम्बन्ध हो गया है, उसे तब तक नहीं छोड़ती, जब तक कि उस का किसी दूसरे शरीर से सम्बन्ध नहीं हो जाता। शरीर से रूह के सम्बन्ध त्यागने का नाम ही मौत है। इससे सिद्ध होता है कि रूह किसी ऐसे शरीर से सम्बन्ध स्थापित करती है, जिससे पहिले किसी अन्य रूह ने सम्बन्ध न जोड़ा हो अन्यथा एक ही शरीर से दो, तीन या अधिक रूहों का सम्बन्ध स्थापित होना माना जायेगा। और उस कार्यक्रम में बाधा पड़ जायेगी। जिसके आधार पर पुनर्जन्मवादी गण पुनर्जन्म को मानते हैं।

खण्डन—यह वही पुराना और रद्दी आक्षेप है, जिसका खण्डन सैंकड़ों बार किया जा चुका है। रूह का किसी शरीर के साथ जो सम्बन्ध होता है, वह रूह की अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार नहीं होता। अपितु वह ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार होता है। प्रत्येक रूह [आत्मा] को उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा की ओर से, न्याय पूर्वक, कर्मों के अनुसार, विभिन्न प्रकार के शरीरों में दण्ड या पुरस्कार अर्थात् कर्म फल मिला करता है। वहां ऐसा अन्धेर नहीं है, जैसा इस्लामी राज्यों में होता है, कि व्यर्थ में ही अपने मूर्खतापूर्ण आवेश को शान्त करने के लिए लाखों हिन्दुओं के सिर काट दिये जायें।

२—पुनर्जन्मवाद को स्वीकारना, न्याय भी है, और पुण्य भी। यदि तुम बुद्धिमान् हो, तो किसी भी अवस्था में पुनर्जन्मवाद का परित्याग न करो।

३—यदि कोई पुनर्जन्मवाद को स्वीकारता है तो उसे समझना चाहिये कि वह उत्तम कर्म कर रहा है, और सन्मार्ग पर चल रहा हैं। जो मनुष्य पुनर्जन्मवाद को जानता समझता है, वह ईश्वर को भी जानता समझता है।

—अनुवादक।

अतः रूह का एक ही समय में एक से अधिक शरीरों के साथ सम्बन्ध जुड़ता ही नहीं।

कथन—जो लोग पुनर्जन्मवादी हैं। वे प्रत्येक जानदार शरीर में रूह का होना मानते हैं। इस लिए उन में सब सम्प्रदाय बन गये हैं। एक वह सम्प्रदाय है, जो कहता है कि जब रूह एक शरीर को छोड़ती है, तब वह दूसरे शरीर में चली जाती है। चाहे वह शरीर उस प्रथम शरीर की ही जाति या कोटि का न भी हो। अर्थात् यह सर्वथा सम्भव है कि गधे की रूह, गधे के मरने पर मनुष्य के शरीर में आ जाये। और मनुष्य की रूह मनुष्य के मरने पर गधे में चली जाये।

अहमद इब्न हाबित और अहमद इब्न बायूस, जो कि उस का शिष्य था, और अबु मुस्लिम खुरासानी, और मुहम्मद इब्न जकरिया राजी, तयब और फरामत का भी यही मत था। प्रकट में यही मत हिन्दुओं का भी है। परन्तु राजी ने अपनी कुछ पुस्तकों में लिखा है कि जब पशु मार डाले जाते हैं, तब उनकी रूहें मनुष्य योनि में चली जाती हैं।

दूसरे सम्प्रदाय का कथन है कि एक प्रकार की रूह किसी दूसरे प्रकार की रूह के (जानवर के) शरीर में नहीं जाती। अर्थात् मनुष्य की रूह मनुष्य के ही शरीर में जाती है। गधे की रूह गधे के शरीर में। शेर की रूह शेर के शरीर में। इसी प्रकार अन्य सब।

अतः यदि पुनजन्मवाद स्वीकारा जाये; तो एक प्रकार की रूह का दूसरे शरीर से सम्बन्ध उस समय होगा, जबकि वह मां के पेट में, अण्डे में, या सड़े हुए, गुन्धे हुए प्राकृतिक पदार्थों में हो, जिससे कि कीड़े मकौड़े पैदा होते हैं। तथा किसी अन्य रूह का उस के साथ सम्बन्ध न हो चुका हो।

खण्डन—यह सत्य है कि पुनर्जन्मवादी प्रत्येक जीव में रूह [आत्मा] का अस्तित्व मानते हैं। वे स्वार्थी मतवालों की तरह अपने मत वालों को भला, और दूसरे मत वालों को हत्या कर डालने या फांसी, सूली पर चढ़ा देने योग्य नहीं कहते। जिन का यथार्थ ज्ञान से कुछ भी सम्पर्क नहीं है, न कभी रहा है, और जो अनुकरणवादी होने के कारण, कभी भी सत्पथ की ओर पग नहीं बढ़ाते।

ऐसे इस्लामियों में यदि दो सम्प्रदाय चल गये हों, तो असम्भव नहीं है। और यदि अधिक सम्प्रदायों का होना मिथ्यापनका प्रमाण हो, तब भी सर्वप्रथम इस्लाम की ही क्षति है। कुछ भी मानिये। इस से सिद्धान्त के विषय में कुछ भी भेद नहीं होता है और न ही पुनर्जन्मवाद की सिद्धि में कोई कमी रहती है। अरब वालों की बात को छोड़कर सभी पुनर्जन्मवादियों में पुनर्जन्म के विषय में कोई एक भी ऐसा मतभेद नहीं है, जिस से उनके सिद्धान्त पक्ष में कोई किसी भी प्रकार की त्रुटि होती हो। जैसी कि मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों में बहिश्त दोजख; कियामत; मेराज और शफाअत आदि मन्तव्यों के विषय में बहुत अधिक उग्र मतभेद मौजूद हैं।

कथन—यहूदी; ईसाई, जमहूर तथा मुसलमान पुनर्जन्म को नहीं मानते और मुसलमान तो पुनर्जन्मवादियों को काफ़िर समझते हैं।

खण्डन—मुसलमानों का किसी को काफ़िर कहना ऐसा ही व्यर्थ और अशिष्टतापूर्ण है, जैसा

कि और सभी मतों वाले मुसलमानों को क़ाफ़िर कहें। आप किस मुंह से मुसलमानों के पक्ष का समर्थन कर रहे हैं? मुसलमानों ने तो आप के भी मुसलमान न होने की व्यवस्था दे रखी है। सुन्नी मुसलमान शियों को सर्वथा क़ाफ़िर कहते हैं। इसी प्रकार शिया सम्प्रदाय वाले भी सुन्नियों को काफ़िर बताते हैं।

मुसलमान हम को काफ़िर कहते हैं। इस विषय में हम साधु बुल्लेशाह के शब्दों में उत्तर देते हैं :—

बुल्लिया! तैनू क़ाफ़िर क़ाफ़िर कहन्दे ने। तूं हांजी हांजी कहन्दा रहो॥*

सुप्रसिद्ध विद्वान् और अन्वेषक नसीरुद्दीन तूसी निज़ाम मो-अतज़ला ने क़ाफ़िर कहा। उन्होंने उस के उत्तर में ये शेर लिख दिये :—

निज़ामे बेनिज़ाम अर काफ़िरम खानद। चिराग़े किज़्ब रा न बुवद फ़रोग़े॥१॥
मुसलमां खानामश ज़ीराकि न बुवद। सज़ावारे दरोग़े जुज़ दरोग़े॥२॥

अरब के मुसलमान स्वयं अरबी होने के कारण अपने आप को कोई बहुत बड़ा दीनदार समझते हैं, और संसार के सभी विद्वानों एवं बुद्धिमानों को काफ़िर कहते हैं। और संसार के सभी बुद्धिमान् अरब वालों को ताज़ी, अराबी, बरदा फ़रोश, लुटेरा, चोरों का दल आदि-आदि कहते हैं।

हम काफ़िर ही भले हैं। अमीर ख़ुसरू के शब्दों में :—

काफ़िरे इश्क़म मुसलमानी म रा दरकार नेस्त।+

कथन—अस्तु, जो लोग पुनर्जन्मवादी हैं, उन का कर्तव्य है कि वे अपने पक्ष को सिद्ध करें। पुनर्जन्मवाद की सिद्धि में दो प्रकार की युक्तियां दी जा सकती हैं। अक़ली और नक़ली। अर्थात् बौद्धिक युक्तियां और ग्रन्थों के प्रमाण। ग्रन्थों के प्रमाण तो एक प्रकार से व्यर्थ ही हैं। क्योंकि दूसरे मज़हब वाले लोगों को उन्हें स्वीकारने पर बाध्य नहीं किया जा सकता। स्वयं उसी पक्ष वाले भी उन ग्रन्थों के प्रमाणों पर शंका कर ही सकते हैं।

शेष रही बौद्धिक युक्तियां। यदि युक्तियों से यह सिद्धान्त सिद्ध हो जाये, तब तो इसे मानना ही होगा। बौद्धिक युक्ति के भी दो आधार हैं। प्रथम सत्य अनुभूति, प्रत्यक्ष ज्ञान, यथा—ज़ैद हमारे सामने खड़ा है। हमें विश्वास है कि ज़ैद मौजूद है।

---

* ओ बुल्ले! वे काफ़िर-काफ़िर कह कर तेरा अपमान करते और उपहास उड़ाते हैं। कोई बात नहीं, तू हांजी हांजी कहकर सुनता चलाचल। —अनुवादक।

१—यदि यह व्यवस्था शून्य=बे निज़ाम, निज़ाम मुझे काफ़िर कहता है, तो यह कोई अच्छी बात नहीं है। मिथ्यावाद के दीपक का प्रकाश नहीं होता है।

२—मैं तो उसे मुसलमान ही कहता हूं। झूट बोलने वाले को तो झूठ के सिवा और कुछ भी प्रिय नहीं होता। तथा सत्य बोलने वाले को भी सत्य से अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं होता। —अनुवादक।

\+ हम तो तेरे प्रेम के काफ़िर हैं। हमें मुसलमानियत की कुछ भी ज़रूरत नहीं है। —अनुवादक।

दूसरा आधार बौद्धिक प्राथमिकता है। बौद्धिक प्राथमिकता का भाव यह है कि देखा और तुरन्त, बिना अधिक सोच विचार के ही यथावत् जान लिया। यथा—दस तीन से अधिक हैं। अथवा यह कि—भाव और अभाव, सादि और अनादि, उचित और अनुचित इत्यादि ये परस्पर विरोधी गुण एक ही पदार्थ में नहीं रह सकते।

पुनर्जन्म के पक्ष में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है। जब मनुष्य या पशु का कोई बच्चा जन्मता है, तब उस के शरीर पर कोई भी ऐसा निशान नहीं होता, जिस से समझा जा सके कि किसी दूसरे शरीर में से रूह उस के अन्दर आ गई है। और वह उत्पन्न होने पर, या बचपन में, या बड़ा होकर, या मरते समय भी यह नहीं बताता, न विश्वास दिलाता है कि किसी दूसरे शरीर की रूह उस में आ गई थी। स्वयं देखने वाले भी यह नहीं जान सकते कि इस में किसी दूसरे शरीर की रूह आई है।

बौद्धिक प्राथमिकता की भी कोई युक्ति, इस विषय में कि इस मनुष्य के बच्चे या गधे के बच्चे में किसी दूसरे शरीर से रूह आई है, कुछ भी सहायक नहीं है। अतः बौद्धिक युक्तियों के आधार पर भी पुनर्जन्मवाद की सिद्धि असम्भव है।

खण्डन—यह ठीक है कि अपने पक्ष को सिद्ध करना पुनर्जन्मवादियों का काम है। और इस में भी सन्देह नहीं कि ग्रन्थों के प्रमाणों से दूसरे मतवालों को सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। परन्तु धृष्टता क्षमा कीजिये, आप नक़ली-मत से डर कर, इस प्रकार की बातें न करें। वैदिक-धर्म कोई नक़ली-मत नहीं है। वह तो सत्य, सिद्ध, तर्कानुमोदित और सृष्टिक्रम के अनुकूल विशुद्ध-विज्ञान है। उस में कोई भी बात ऐसी नहीं कि कथन मात्र से ही स्वीकारी जाये।

हमें खेद है कि बिना समझे ही, उचित युक्तियों से नहीं, अपितु भ्रान्तियों, हेत्वाभासों और आत्म-प्रवंचनाओं में फंस कर आपने लिख दिया कि प्रथम प्रमाण बौद्धिक युक्तियों से पुनर्जन्मवाद की सिद्धि असम्भव है।

बौद्धिक युक्तियों का सर्वप्रथम आधार सत्य अनुभूतियों को निश्चित् करके, आप कहते हैं कि कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण पुनर्जन्मवाद के पक्ष में मौजूद नहीं है। हज़रत ! रूह के शरीर बदलने में, प्रत्यक्ष प्रमाण का न होना, रूह के अभौतिक होने का प्रमाण है। पुनर्जन्मवाद से इन्कार का हेतु यह कैसे बन सकता है ? क्योंकि रूह का शरीर में आना, या जाना दोनों ही प्रत्यक्ष नहीं हैं। परन्तु बिना रूह के तो शरीर में कार्य-क्षमता आती ही नहीं। मृतक-शरीर तो ज्ञान शून्य ही होता है। रूह का गुण और कर्म तो मुख्यतया ज्ञान ही है।

अब रहा उस का न बताना। यह भी पुनर्जन्मवाद को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त नहीं है। क्योंकि जब रूह संसार में आई, तब उस में बोलने की शक्ति ही न थी। मस्तिष्क के साथ रहने से वह ज्ञान की सभी बाह्य स्मृतियों को भूल जाती है। नौ मास तक गर्भ में निवास करके, एवं दो-तीन अपितु पाँच वर्ष तक बाल्यकाल में वर्तमान शरीर के सम्बन्ध वश भी उसके रहे सहे संस्मरण बिखर जाते हैं। हम देखते हैं कि जो लोग एकांतवास करते हैं, और अपनी मानसिक वृत्तियों का निरोध कर लेते हैं,

उन की स्मरण-शक्ति बहुत अधिक तीव्र हो जाती है। वे अपना पढ़ा हुआ नहीं भूलते। एवं जिन के विचार सांसारिक जंजालों में उलझे रहते हैं; उनको एक घंटा पूर्व की बात भी याद नहीं रहती और उन की स्मरण-शक्ति बहुत अधिक दुर्बल होती है। कोई मनुष्य कभी इस प्रकार का यत्न भी नहीं करता। कि वह किसी जीव के स्वभाव आदि के विषय में कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त करे। अन्यथा रूह की प्रवृत्तियों का सूक्ष्मता से अध्ययन करके यह भी ज्ञात हो सकता है कि रूह का सम्बन्ध पहिले किस प्रकार के शरीर या शरीरों से था ?

उदाहरणतया तीन मनुष्य हैं। एक पहिले अमीर था। वह अब भी अमीर है। दूसरा पहिले ग़रीब था, अब अमीर है। तीसरा पहले अमीर था गरीब हो गया है। यदि वे तीनों ही सर्वथा एक ही जैसा लिबास पहन कर किसी यात्री के निकट चले जायें, तो यात्री उन की बाह्य वेषभूषा से तो उन की सधनता या निर्धनता को न जानसकेगा, परन्तु जिस समय वह उनकी उठ-बैठ, बोल-चाल आदि चेष्टाओं का अध्ययन तथा विचार करेगा, तब वह अवश्य ही उनकी वास्तविक स्थिति को जान लेगा।

सुकरात के विषय में प्रसिद्ध है कि उसने एक बहुत साधारण योग्यता के दास व्यक्ति से रेखा-गणित के बहुत कठिन प्रश्नों के सत्य उत्तर प्राप्त करके दिखाये थे। सम्भवतः आपने भी यह कथा पढ़ी होगी। अथवा उस अन्धे फ़कीर का दृष्टान्त तो आपने सुना ही होगा, जिस ने बादशाह वज़ीर और चपरासी को उन-उन की बातों से ही पहचान लिया था और पूछने पर कहा था कि हजूर ! प्रत्येक मनुष्य अपनी बात से पहचाना जाता है।

अस्तु प्रत्यक्ष प्रमाण का तो पुनर्जन्मवाद के विषय में ही नहीं; रूह के अस्तित्व और रूह की सभी शक्तियों के विषय में भी अभाव ही है। क्योंकि प्रत्यक्ष तो स्थूल पदार्थों का ही सम्भव है। सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञान के लिए तो अन्य उपायों तथा प्रमाणों का ही उपयोग होता है। रूह की सूक्ष्म शक्तियों को छोड़िये। ताप सर्वत्र विद्यमान है। आकर्षण शक्ति सर्वत्र अपना काम कर रही है। क्या इन के विषय में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है ? क्या इन को आँखों से किसी ने देखा है ? सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी के विषय में भी तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण स्थिर नहीं किया जा सकता। वास्तविकता यह है कि सभी अध्यात्मवादियों के विचारानुसार यह प्रत्यक्ष प्रमाण की बात केवल मात्र बच्चों के खेल जैसी ही है, इस का कुछ भी अधिक महत्व नहीं है।

अब रहे बौद्धिक प्रमाण। वे तो सभी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सत्य सिद्ध करते हैं। बुद्धि से यह भी भली प्रकार सिद्ध होता है कि रूह इस शरीर में रहकर अपना काम कर रही है। इस पर निम्न-लिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं :—

१—रूह (आत्मा) शरीर के साथ ही उत्पन्न हुई थी, या उससे पहले वर्तमान थी ?
२—यदि रूह शरीर से पूर्व ही वर्तमान थी, तो वह कहां थी ?
३—रूह शरीर के बिना सदैव रह सकती है, या कुछ काल तक रह सकती है ?
४—शरीर से पृथक् हो कर रूह कहां जाती है ?

यदि यह मान लिया जाए कि रूह शरीर के साथ ही उत्पन्न होती है, और वह प्रकृति से असम्बद्ध व पृथक् भी न थी, तब तो रूह भी प्रकृति का ही एक गुण बन जाएगी और रूह के स्वतन्त्र अस्तित्व का ही लोप हो जाता है। जिस प्रकार वह शरीर के नष्ट होने पर नष्ट भी हो गई। ऐसी अवस्था में दण्ड, पुरस्कार, बहिश्त, दोजख, पुण्य, पाप, मोक्ष और ईश्वर-दर्शन सभी व्यर्थ हो जाते हैं और अध्यात्मवाद तथा परलोक विषयक सभी सिद्धान्त धरे के धरे रह जाते हैं। ऐसा मन्तव्य बहुत बड़ी भ्रान्ति तथा नास्तिकता का कारण है।

यदि यह स्वीकारा जाए कि रूह शरीर से पहले ही वर्तमान थी, तब प्रश्न होगा—कहां थी ? किस अवस्था में थी ? रूह की वर्तमान अवस्था का बोध प्राप्त करने के लिये हमें शरीर के साथ रूह के सम्बन्ध पर विचारना चाहिए। रूह चेतन है। वह बेकार रहने वाली नहीं है। सम्पूर्ण भौतिक जगत् में दृष्टि दौड़ाने से तथा जहां तक बुद्धि की पहुँच है, प्रतीत होता है कि शरीर धारण किये विना, रूह भला या बुरा कुछ भी काम नहीं कर सकती। भौतिकवादी इस्लाम ने तो मोक्ष की अवस्था में भी उसे बिना शरीर के न छोड़ा। क्योंकि हूरों और शराब आदि विषयों का बिना शरीर के उपयोग ही न होगा। अतः वह पहले शरीर धारती है। बिना इस के संसार का काम ही नहीं चलता। या चलना ही असम्भव है। इस रूप में वह शरीर के नष्ट होने पर भी, स्वयं अपनी ही स्वतन्त्रशक्ति से विद्यमान रहेगी। और रूह की प्राचीनता सिद्ध हो जायेगी। क्योंकि वह नाशवान नहीं है। ऐसा मानते ही पुनर्जन्मवाद विरोधियों के सभी तर्क व्यर्थ हो जायेंगे और साथ ही यह भी सिद्ध हो जायेगा कि रूह अपने मालिक की सामर्थ्य से तो कुछ समय तक विना शरीर के रह सकती है, किन्तु सदैव नहीं।

उदाहरणतया गेंद, या तोप का गोला, या कोई और भार वाली वस्तु बिना आधार के नहीं ठहर सकती। यदि आप गेंद को ऊपर की तरफ फेंके, तो केवल इतनी देर तक कि जितनी देर तक, फेंकने वाले की शक्ति का आधार उसे मिला है, वह ऊपर रहेगी। और उस शक्ति के समाप्त होते ही वह भूमि पर आ गिरेगी। जब ऊपर फेंकने की शक्ति कम या अधिक होगी; तब गेंद के आकाश में ठहरने का समय भी कम या अधिक होगा। अतः सिद्ध है कि जो अस्थाई शक्ति होती है, वह हमेशा नहीं रह सकती।

रूह बेकार या निश्चेष्ट भी नहीं रह सकती। ये सब बौद्धिक युक्तियां हैं। इन पर विचार करने से पुनर्जन्मवाद का पक्ष सत्य सिद्ध होता है। जब सभी दार्शनिक इस विषय में एक मत हैं कि मनुष्य भी एक प्रकार का पशु ही है। तब जैसी रूह मनुष्यों में है, वैसी ही पशुओं में भी है। बुद्धि का भेद या मस्तिष्क का विकार दूसरी बात है। जैसे छोटा बालक, मस्तिष्क रोगी, शाह दौला के चूहे, पागल मनुष्य, एक हब्शी, गौंड, और पत्तों से तन ढांकने वाला, अरब के बद्धु, अलीगढ़ का एक नेचर-पन्थी, या किसी अन्य देश का कोई सभ्य विद्वान् उसी प्रकार सब पशु और मनुष्य भी आपस में मिलते जुलते हैं। और सभी में बुद्धि आदि की न्यूनता तथा अधिकता आदि के कुछ भेद भी पाये जाते हैं। एवं सभी में रूह भी विद्यमान है, जोकि चेष्टाओं और जीवन का हेतु है।

कथन—पुनर्जन्मवादियों की प्रथम युक्ति यह है कि रूह प्रकृति के साथ सम्बन्ध के बिना

रह ही नहीं सकती। प्रथम तो इस बात का ही क्या प्रमाण है कि रूह बिना प्राकृतिक सम्बन्ध के नहीं रह सकती, दूसरी बात यह है कि क्या रूह कभी प्रकृति से पृथक् थी भी, या नहीं ? यदि थी तो यह कथन कि रूह बिना प्राकृतिक सम्बन्ध के नहीं रह सकती, मिथ्या ठहरता है। दूसरी अवस्था में हम देखते हैं कि किसी के मरने पर उसके शरीर अर्थात् शारीरिक तत्वों का लोप या सर्वथा अभाव तो नहीं होता। अतः इन प्राकृतिक तत्त्वों के रूह को छोड़ देने का भी कोई कारण नहीं है।

खण्डन—आप ने समझा ही नहीं। उनकी युक्ति यह है कि रूह (आत्मा) प्रकृति से असम्बद्ध रहकर या उसके बिना काम नहीं कर सकती। अर्थात् शुभ या अशुभ कार्य नहीं कर सकती। और रूह का बेकार रहना भी बुद्धि संगत नहीं है। निष्कर्ष यह है कि वह मोक्ष-प्राप्ति-पर्यन्त अवश्य ही कर्म-अनुसार विविध प्रकार की योनियों में जाती आती और कर्म करती रहती है। रूह का यह योनियों में जाना आना अपनी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं; अपितु ईश्वर के आदेश एवं उसकी ही व्यवस्था के अनुसार होता है। इस प्रकार रूह शुभ कर्म करके पुण्य कमाया करती है। बतलाइये आप इसका क्या विरोध कर सकते हैं ? जब आप स्वयं भी प्राकृतिक तत्वों का सर्वथा लुप्त होना अस्वीकारते हैं, तब तो सिद्ध हो गया कि आप भी प्रकृति की प्राचीनता, नहीं नहीं उसकी अनादि सत्ता को स्वीकारते हैं। ईश्वर का धन्यवाद है कि आप ने सत्साहस दिखलाया और वेद का एक मन्तव्य तो स्वीकार लिया । ईश्वर करेगा कि आप धीरे-धीरे सभी वैदिक सिद्धान्तों को मान लेंगे।

कथन—उन की दूसरी युक्ति यह है कि रूह (आत्मा) अनन्त है, अतः रूह एक शरीर से दूसरे शरीर में आती जाती रहती है।

इस से बढ़कर पोच युक्ति कोई दूसरी नहीं हो सकती। क्योंकि रूह और संसार दोनों को ही अनन्त स्वीकारने से रूह का एक से दूसरे शरीर में आना जाना ही असम्भव हो जाता है। और यदि उनके कथन को माना भी जाए तो रूह को विभिन्न शरीरों में आने जाने की आवश्यकता ही क्या है ? यदि यह कहा जाता कि रूह तो अन्त वाली है, और संसार अनन्त है, तब तो रूह के एक शरीर में आने, तथा उसे छोड़ कर अन्य शरीर में जाने का कोई कारण भी हो सकता था । परन्तु अपने सिद्धान्तों के अनुसार, उन के लिये यह सर्वथा असम्भव है कि वे रूह को सान्त व सीमित सिद्ध कर सकें।

खण्डन—यह किसी भी पुनर्जन्मवादी की युक्ति नहीं है। क्षमा कीजिए, आपने धोखा खाया है। अथवा बिना समझे ही आत्मा और पुनर्जन्मवाद के विषय पर लेखनी उठाने में आपको भ्रान्ति हुई है । और अन जाने ही आपने धोखा दिया है। पुनर्जन्मवादियों की युक्ति इस प्रकार है :—

आत्मा अमर है। आत्मा का नाश कभी नहीं होता। अभाव से आत्मा का भाव नहीं हुआ है। क्योंकि अभाव से भाव कभी हो ही नहीं सकता। और न ही कभी भावपदार्थ का सर्वथा अभाव होता है। अस्तु आत्मा सदैव बना रहने वाला पदार्थ वा तत्त्व है। साथ ही आत्मा जड़ नहीं है। वह चेतन और कर्मशील है। शरीर के बिना आत्मा आनन्द का उपभोग तो कर सकता है, परन्तु कोई शुभ या अशुभ कार्य नहीं कर सकता।

प्रकृति भी अनादि पदार्थ है, जैसा कि सभी विद्वान् स्वीकारते हैं। और ईश्वर की सत्ता एवं

सृष्टि रचना का उसका गुण भी अनादि है। अतः ईश्वर सदैव प्रवाह रूप से सृष्टि की रचना करता है। और इसको महाकल्प तक स्थिर रखता है। फिर इसको इसके कारण रूप अर्थात् प्रकृति के रूप में बदल देता है। इसी को कहते हैं कि प्रलय कर देता है। क्योंकि आत्मा या प्रकृति अभाव से तो भाव में आये ही नहीं हैं, अतः वे ही प्रकृति के प्रमाणु बारम्बार नाना प्रकार के शरीरों के रूप में प्रकट होते रहते हैं। और वे ही आत्मा बारम्बार बनने वाले शरीरों को धारण करते तथा त्यागते रहते हैं। आत्मा आते हैं और कर्मों के शुभ या अशुभ फल भोग कर चले जाते हैं। अब इस में आपको क्या शंका है? और आप वैदिक पुनर्जन्मवाद को कैसे अस्वीकारते हैं?

कथन—उन की तीसरी युक्ति का आधार पुण्य, पाप तथा मनुष्यों का भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वभाव है। वे कहते हैं कि मनुष्यों के स्वभाव और उन की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न हैं। कोई शिष्ट और सदाचारी है। कोई रोगी है। कोई स्वस्थ और सम्पन्न है। कोई निर्धन एवं दलित, पीड़ित, शोषित और दुखी है। किसी को सभी प्रकार के सुख और मौज मजे प्राप्त हैं। यदि सब मनुष्यों को बिना किसी विशेष कारण के ही इस स्थिति में उत्पन्न किया गया है, और रखा जा रहा है, तो यह ईश्वर के न्याय के विपरीत है। अतः वे कहते हैं कि ईश्वर ने आरम्भ में सभी मनुष्यों को एक ही जैसी स्थिति में उत्पन्न किया था। और उनको कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी। जब उन्हों ने अच्छे या बुरे कर्म किये, तब उन को उन-उन के कर्मों के अनुसार दण्ड या पुरस्कार रूपी फल मिला। और उस फल को भोगने के लिये उन को विभिन्न प्रकार की योनियों में डाला या भेजा गया। तभी से यह अनुक्रम चलता चला आ रहा है।

उन के इस कथन से, उन का यह सिद्धान्त सर्वथा ही असत्य प्रमाणित हो जाता है कि मनुष्य का आत्मा गधे की योनि में या गधे का आत्मा मनुष्य की योनि में आता जाता रहता है। क्योंकि ईश्वर ने सभी पशुओं को एक विशेष प्रकार का स्वभाव प्रदान करके उत्पन्न किया है। वे ऐसा कोई भी शुभ कार्य कर ही नहीं सकते, जो उन के स्वभाव में नहीं है। इसी प्रकार वे कोई ऐसा बुरा काम भी नहीं कर सकते जो उन के ईश्वर-प्रदत्त स्वभाव के प्रतिकूल है। अतः वे तो दण्ड पाने या पुरस्कार लेने के अधिकारी ही नहीं हैं। अतः ऐसा कोई भी कारण नहीं है कि किसी पशु का आत्मा पुण्य-वा शुभ कर्म करके, मनुष्य का शरीर प्राप्त कर सके। और यदि किसी मनुष्य का आत्मा पशु योनि में चला जाये, तो यह सम्भव ही नहीं कि वह वे ही सब कर्म कर सके, जो उस पशु के स्वभावानुसार नियत हैं। अतः न तो पशुओं के आत्मा पशु-योनियों से छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं। और न ही मनुष्यों के आत्मा पशु-योनियों में जा सकते हैं।

एक कहानी प्रसिद्ध है। एक राजा के राज्य में एक बहुत बड़ा तालाब था। जब वह राजा मरा, तो ब्राह्मणों ने उस के बेटे से कहा कि महाराज ने मछली की योनि में जन्म लिया है। और वह मछली इसी तालाब में रहती है। अतः जब तक वे किसी दूसरी योनि में न जायें, तब तक कोई भी इस तालाब की मछलियों को न मारे। राजा ने आदेश दे दिया कि कोई भी इस तालाब की मछलियों को न मारे। एक व्यक्ति ने पण्डित जी से पूछा कि महाराज! योनि-परिवर्तन तो शुभ और अशुभ कर्मों के आधार पर होता है। ये मछलियां न शुभ कर्म करती हैं और न ही अशुभ कर्म करती हैं। ये सब

तो बस एक ही जैसा काम करती हैं। अतः हमारे महाराज मछली की योनि को छोड़ कर किसी दूसरी योनि में किस प्रकार जायेंगे ? परन्तु पण्डित जी के शास्त्र ने इस का कुछ भी उत्तर न दिया।

शेष रही यह बात कि मनुष्य का आत्मा दूसरे मनुष्य में चला जाता है। और कर्मों के अनुसार मनुष्यों की नाना प्रकार की अवस्थाओं तथा परिस्थितियों का निर्माण हो जाता है। इस विषय में पहले तो हम यह पूछेंगे कि मनुष्य की स्थिति में भला या बुरा होने की अवस्था में जो-जो परिवर्तन होने के होते हैं, और मनुष्यों को जो नाना प्रकार के रोग भी होते हैं। एवं कोई सुख में तथा कोई दुःख में रहते हैं, प्रायः वे ही सब स्थितियां पशुओं की भी होती हैं। और पशुओं का जैसा स्वभाव, उन के रचनाक्रम के अनुसार निश्चित् है, उन का वह स्वभाव भी कभी नहीं बदलता, सदा वैसा ही रहता है। शेर मनुष्य को फाड़ डालता है। बिल्ली हमेशा चूहे खाती है। अतः पशुओं के जो-जो स्वभाव और कर्म निश्चित् हैं, उन में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। वे कोई पुण्य भी प्राप्त नहीं कर सकते। न ही पाप कर सकते हैं। फिर भी उन की स्थितियों में परिवर्तन क्यों होते हैं ?

इस के अतिरिक्त कोई मनुष्य हो, या पशु, वे जो कुछ भी कार्य करते हैं, वह अपने शरीर की विशेष बनावट के अनुसार तथा अनुरूप ही करते हैं। इसे 'जातीय प्रकार' कहते हैं। कोई भी इस जातीय प्रकार को बदल नहीं सकता। क़ुरान मजीद भी इस की गवाही देता है। जहां ख़ुदा ने फ़रमाया है :—

कि ईश्वर की सृष्टि को बदला नहीं जा सकता। अतः यदि किसी मनुष्य का आत्मा किसी दूसरे मनुष्य के शरीर में आ भी जाये, तब भी इससे कुछ भी लाभ नहीं। क्योंकि वह तो वे ही तो चेष्टायें करेगा, जो कि उसके शरीर की रचना एवं स्वभाव के अनुसार होंगे। एवं जिन को बदल सकना उसके वश में नहीं है। न ही अपने नियत स्वभाव के अनुसार आचरण करने से उसे पुण्य या पाप लगता है।

उदाहरणतया—कोई नपुंसक व्यक्ति न तो व्यभिचार कर सकता है, और न ही ऐसा करने से उसे पुण्य या पाप होता है। अतः यह एक मिथ्या विचार है कि मानव-जीवन या पशु-जगत् में जो परिवर्तन होते हैं, या विविधतायें पाई जाती हैं, उनका कारण पूर्वजन्म के कर्म हैं।

ईश्वर का न्याय उसकी सम्पूर्ण सृष्टि पर विचार करने से ज्ञात होता है। उसने अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में, उन-उनकी अवस्थाओं और आवश्यकताओं के अनुसार, सभी पदार्थ और उपकरण अत्यन्त सुलभ बना दिये हैं। यदि मनुष्य किसी छोटे से छोटे, या बड़े से बड़े जीव के विषय में विचार करे, या मनुष्य के विषय में विचारे, जोकि ईश्वर की सर्वोत्तम रचना प्रसिद्ध है। तब कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि इस में अमुक त्रुटि, या आवश्यकता है। ये परिवर्तन मनुष्यों या पशुओं किसी में भी हों, वे सब उन स्वाभाविक नियमों के अनुसार ही होते हैं, जिनके आधार पर ईश्वर ने इस संसार को रचा है। इन परिवर्तनों के आधार पर, ईश्वर को दयावान् या निर्दयी समझना, केवल अज्ञान है। और यह प्राकृतिक जगत् में काम करने वाले स्वाभाविक नियमों से अनभिज्ञता है।

खण्डन—हज़रत ! पुनर्जन्मवादी लोग ऐसा नहीं मानते। और न ही इस प्रकार के मन्तव्यों को सत्य समझते हैं। पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्तों के अनुसार दो प्रकार की योनियां मानी जाती हैं। एक कर्म

योनि और दूसरी भोग योनि। कर्म योनि में कर्म किये जाते हैं। और भोग योनि में कर्मों की सजा भुगतनी पड़ती है। जिस योनि में सोचने समझने तथा भले और बुरे को समझने का विवेक दिया गया हैं, उसे कर्म योनि कहते हैं। और जिसमें सोचने, समझने और भले बुरे का विवेक नहीं दिया गया है, वे भोग योनि हैं। इस नियम से मनुष्य कर्म योनि है। और अन्य सब भोग योनियां है।

क्योंकि पशु भोग योनि हैं, और वे भले या बुरे काम नहीं कर सकते। जिस प्रकार जेलखाते के क़ैदी, क़ैद की अवधि पूरी होने पर जेल से छोड़ दिये जाते हैं, न कि किसी शुभ कर्म के करने से। इसी प्रकार दण्ड की अवधि पूरी होने पर पशुओं के शरीर में रहने वाले आत्माओं को भी छुटकारा मिल जाता है। और फिर वह मनुष्य जीवन के जिस स्तर से पतित हुआ था, फिर उसी स्तर के मनुष्य शरीर में पैदा किया जाता है। ऐसा होने का कारण पशु जीवन के शुभ कर्म नहीं हैं।

राजा की जो कहानी आपने लिखी है, वह मूर्खों की रची हुई है समझदारी की बात यह हो सकती है कि राजा साहब ने अपने पिता की मृत्यु पर शोकवश, पुण्य के लिये, जल तथा स्थल के सभी शिकार बन्द कर दिये थे। महाराजा के योनि-परिवर्तन के विचार से नहीं, अपितु जीव रक्षा के विचार से। पण्डित जी के शास्त्रों में तो स्पष्ट उल्लेख है कि दण्ड भोगने के पश्चात् आत्मा पुनरपि मानव देह में जन्म ग्रहण करता है। परन्तु खेद है कि किसी मूर्ख ने आपको भ्रान्ति में डाल दिया है।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि मनुष्यों की परिस्थितियों में जो-जो भेद होते हैं, वे उन-उनके स्वभाव की बुराई तथा भलाई के कारण होते हैं। तथा जिस प्रकार मनुष्य को कई प्रकार के रोग लग जाते हैं, और उनके कारण कोई सुख में तथा कोई दुख में रहता है, वे ही सब स्थितियां पशुओं की भी होती हैं। एवं सृष्टि के रचनाक्रम के अनुसार पशुओं तथा मनुष्यों में अधिक समानतायें वर्तमान हैं। और वे सदा एक सी स्थिति में रहते हैं। इत्यादि। जब स्थिति यह है, तब न जाने आप पशुओं में आत्मा (रूह) के अस्तित्व को क्यों नहीं स्वीकार लेते?

आपने जो कुरान की आयत प्रस्तुत की है कि ईश्वर की रचनाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता, तथा लिखा है कि यदि मानलें कि किसी मनुष्य का आत्मा किसी दूसरे मनुष्य शरीर में आ भी गया हो, तो इससे कोई भी लाभ नहीं। इत्यादि। यदि ऐसा मानें तब तो मनुष्य भी पशुओं के समान ही पुण्य या पाप कुछ भी न कर सकेंगे। और भलाई या बुराई कुछ भी न कर सकेंगे। ये दोनों ही कल्पनायें मिथ्या हैं। अतः आप का पक्ष सर्वथा मिथ्या है।

शरीरों और शरीर के अंगों की विशेष प्रकार की रचना को रचने वाला कौन है? किस ने मनुष्य को अन्धा, लूला, कोढ़ी, लुंजा, गंजा, पागल आदि बना दिया? यदि इन सब को उत्पन्न करने वाला ईश्वर है? और अवश्य ईश्वर ही है, तब दयालु और न्यायकारी होने पर भी उसने इनको बिना किसी कारण के ऐसा क्यों बना दिया? इसका उत्तर एक ही है कि आत्माओं को एसे दोषपूर्ण शरीर; अपने-अपने कर्मों के फल स्वरूप, और ईश्वर की न्याय-व्यवस्था के अनुसार ही प्राप्त हुए हैं। ऐसा न मानने पर तो ईश्वर की न्यायकारिता और दयालुता ही नष्ट हो जाती है। क्या आप अपनी मान्यता के अनुसार नेचर को कोई दूसरा ईश्वर समझते हैं? यदि नेचर ईश्वर का गुण है, तब तो आप का

नेचरी ईश्वर कभी भी अन्याय का कलंक लगने से न बचेगा। वह तो किसी को दण्ड या पुरस्कार भी न दे सकेगा।

निस्सन्देह ईश्वर की रचनाओं को विचार का विषय बनाने से ईश्वर की न्यायकारिता का ज्ञान होता है। परन्तु आपने जो युक्ति दी है, उससे तो ईश्वर का अन्याय ही प्रकट होता है। क्या नपुंसकता एक कमी नहीं है? क्या अन्धता एक कमी नहीं है? क्या लंगड़ापन, लूलापन और पैदायशी बीमारियां कमियां नहीं हैं? और यदि ये कमियां तथा त्रुटियां, जैसाकि प्रकट ही है कि ये कमियां हैं, तब आपके ही कथनानुसार ईश्वर की निर्दयता सिद्ध होती है। अन्यथा इन कमियों और त्रुटियों का कोई कारण भी होना ही चाहिए। और हमारे मन्तव्य के अनुसार वह कारण पुनर्जन्मवाद ही है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी कहा जाता है, वह सब मिथ्या है। ईश्वर की नेचर अर्थात् उसका स्वभाव, उस की इच्छा, उस की व्यवस्था या तकदीर कुछ भी कहें, इन शब्दों के पर्दे में ईश्वर की उस निर्दयता को नहीं छिपाया जा सकता, जोकि पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारने की अवस्था में प्रकाशित होती है। अतः पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारना और नेचर, इच्छा, व्यवस्था, तक़दीर आदि शब्दों का ईश्वरीय व्यवस्था के विषय में मनमाना उपयोग करना अनुचित है।

—: ० :—

चौथा प्रकरण

ब्रह्मसमाजियों के आक्षेप*

और उनके उत्तर

ब्रह्मसमाजी—पुनजन्मवादी स्वीकारते हैं कि ईश्वर आत्माओं का रचयिता नहीं है, और वे भी ईश्वर के समान ही अनादि और अपनी स्वतन्त्र सत्ता से विद्यमान हैं। पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने के कारण ऐसा मानना उनके लिए आवश्यक भी है। क्योंकि इस जन्म में आत्मा जो कुछ भी करता या भोगता है, वह सब पिछले जन्म के कर्मों का फल था। पिछले जन्म में जो कुछ किया और भोगा वह उससे पिछले जन्म के कर्मों का फल था। इसी प्रकार अनन्तकाल से एक कर्म-फल प्रवाह चलता चला आरहा है। इसमें आत्मा की उत्पत्ति या आरम्भ मानने का स्थान वा अवकाश ही नहीं है। आत्मा स्वयमेव अनादि सिद्ध हो जाता है।

प्रतिवाद—"रचयिता" शब्द का अर्थ आपने ठीक नहीं समझा। इसी लिए आप को भ्रांति हुई। आत्माओं के लिये 'रचना' शब्दका प्रयोग किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। क्योंकि वे तो अप्राकृतिक पदार्थ हैं। हां, वे अनादि अवश्य हैं। परन्तु ईश्वर के कार्यों में आत्मा हस्तक्षेप नहीं कर सकती। जिस प्रकार नित्य होने पर भी आत्मायें ईश्वर के कार्यों में सांझेदार नहीं हैं, उसी प्रकार कर्तृत्व शक्ति के रखने, देखने, सुनने, समझने, बूझने या कृपा और दया का सामर्थ्य रखने पर भी आत्मायें ईश्वर के ईश्वरत्व में सम्मिलित नहीं हैं। हां, वे ईश्वर की अनादि एवं नित्य प्रजा तो अवश्य हैं। ईश्वर प्रजाओं का अनादि एवं नित्य महाराजा है। परन्तु यह विचार सर्वथा मिथ्या है कि आत्मा इस जन्म में जो कुछ भी करते या भोगते हैं, वह सब पिछले जन्म के कर्मों का ही फल है। क्योंकि इस जन्म के सुख और दुःख या इस की शारीरिक बनावट एवं स्वभाव आदि गुण तथा परिस्थितियां तो अवश्य ही पिछले जन्म के कर्मों का प्रतिफल हैं, परन्तु जो कुछ आत्मा इस जीवन में करते हैं, वह सब पुराने कर्मों का प्रतिफल नहीं है। उसमें नये कर्म भी होते हैं। अतः आत्मा के भोग भी कुछ पुराने कर्मों के फल

---

* आज तक पुनर्जन्मवाद के खण्डन में ब्रह्म समाज की ओर से दो लघु पुस्तिकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। १–रद्दे तनासुख (पुनर्जन्मवाद का खण्डन) और–तनासुख की असलियत (पुनर्जन्मवाद की वास्तविकता)। ये क्रमशः सन् १८९० ई० में और सन् १८९३ ई० में मुद्रित हुई हैं। प्रथम पुस्तक के लेखक कोई श्री अग्निहोत्री जी हैं। दूसरी पुस्तिका एक पंजाबी ब्रह्मसमाजी ने लिखी है। परन्तु इस दूसरी पुस्तक में सभी बातें और युक्तियां प्रथम पुस्तिका जैसी ही हैं। अतः हम प्रथम पुस्तिका का ही खण्डन करते हैं। दूसरी पुस्तिका का खण्डन भी इसी में शामिल है।

—अनुवादक।

होते हैं। और, कुछ नए कर्मों के फ़ज़ भी होते हैं। आप सम्भवतः धार्मिक पुस्तकों के अभिप्राय को भी ठीक-ठीक नहीं जानते। नहीं तो ऐसा कभी भी न लिखते। देखो तोरेत में लिखा है कि ईश्वर ने आदम को अपनी सूरत पर बनाया। फिर ईश्वर ने कहा कि देखो आदम हम में से एक के समान हो गया। हदीस में उल्लेख है :—

अन्नल्लाह खल्क़ आदम अले सूरत। *

तथापि आदम ईश्वर के ईश्वरत्व में सांझीदार नहीं।

ब्रह्म समाजी—जो पदार्थ स्वतः वर्तमान हो, और अपनी सत्ता के लिये किसी का मुहताज न हो, उसके लिये यह भी आवश्यक है कि वह पूर्ण हो और स्वयम्भू हो। जो वस्तु स्वयम्भू नहीं होती, वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने केलिये भी अवश्य ही किसी दूसरे की मुहताज होती है। यथा पृथिवी का सूर्य और चन्द्र आदि से सम्बन्ध है। यदि सूर्य और चन्द्र न हों, तो यह पृथिवी अपने वर्तमान रूप में स्थिर नहीं रह सकती। मेघों का अस्तित्व भी पानी और ताप आदि के आधार पर वर्तमान है। इसी प्रकार जीवधारियों में बनस्पतियों का अस्तित्व पृथिवी, जल और वायु के आधार पर, पशुओं की सत्ता पृथिवी, बनस्पतियों और वायु के आधार पर स्थिर है। एक वस्तु की सत्ता की विद्यमानता के लिए किसी दूसरी वस्तु तथा उसकी सत्ता का साथ ही होना भी आवश्यक है। इनमें से किसी एक की भी स्वतन्त्र सत्ता किसी दूसरी सत्ता के अभाव में स्थिर रह ही नहीं सकती। जंजीर की कड़ियों की तरह एक-एक सत्ता अपने अस्तित्व के लिए दूसरों के साथ संयुक्त और सम्बन्धित है। कोई भी वस्तु स्वतः सिद्ध, स्वतन्त्रता से विद्यमान् एवं स्वयम्भू नहीं है। अपितु प्रत्येक पदार्थ अपनी सत्ता के लिए किसी दूसरे पर निर्भर है। और जिस पर निर्भर है, उस पर उस पदार्थ का कुछ भी अधिकार नहीं है। इस प्रकार एक मात्र ईश्वर के अतिरिक्त और किसी भी पदार्थ की स्वतः सिद्ध, स्वतन्त्र और स्वयम्भू सता इस संसार में वर्तमान नहीं है। स्वयम्भू और पूर्ण होने से ही उसकी सत्ता का नाम ईश्वर है। क्योंकि अपने अस्तित्व के लिये वह किसी और के आधीन नहीं है। अपितु जो पदार्थ अपनी सता के लिये दूसरों के मुहताज है, वह उन सब को भी अपनी सामर्थ्य में यथोचित व्यवस्था करके उत्पन्न करता है। तथा उन पदार्थों में यथोचित सम्बन्ध भी स्थापित करता है। अब यदि तुम्हारा आत्मा ईश्वर के समान ही अनादि है, नित्य है, चेतन है, स्वयम्भू है, तब वह ईश्वर की रची हुई अन्य वस्तुओं का मुहताज क्यों है? वह भी ईश्वर के सामने ही स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर, और पूर्ण क्यों नहीं है? वस्तु स्थिति क्या है? आपका आत्मा आत्मनिर्भर तो नहीं है। अपितु जैसे आपका शरीर पृथ्वी, सूर्य, वायु, जल, वनस्पतियों आदि का मुहताज है, वैसे ही आपका आत्मा भी ज्ञान, विद्या, जानकारी, शक्ति; उत्साह आदि के लिये दूसरों का मुहताज है। अतः वह स्वतन्त्र, स्वयं सिद्ध, अनादि और नित्य कैसे ठहर सकता है?

प्रतिवाद—निस्सन्देह आप का यह कथन सत्य है कि जो वस्तु स्वयं सिद्ध होती है वह अपने अस्तित्व के लिये किसी और की मुहताज नहीं होती। वह अपने स्वभाव में पूर्णतया स्वयम्भू भी होती है। यही कारण है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति अपनी अपनी सत्ता के लिये किसी के भी मुहताज नहीं

* ईश्वर ने आदम को अपनी ही सूरत पर बनाया। —अनुवादक।

हैं और इसी लिये ये अनादि तथा नित्य पदार्थ हैं। हां, दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने, दूसरों का ज्ञान प्राप्त करने आदि कार्यों के लिये तो इन को भी दूसरों पर निर्भर करना व रहना ही होगा। आप ने स्वयं तो धोखा खाया, सो खाया। अब न जाने क्यों आप दूसरों को भी भ्रान्तिजाल में फंसा देना चाहते हैं ? सुनिये विज्ञान के विशेषज्ञ प्रो० हकसले साहब का कथन है कि इस वर्तमान जगत् में जो मुफ़रिद शरीर हैं, न तो वे मादूम होते हैं और न ही उन की मात्रा बढ़ती है। मुफ़रिद शरीरों का तोल भी सभी अवस्थाओं में स्थिर रहता है। वह अदलता बदलता नहीं। इस से सिद्ध होता है कि इस सुव्यस्थित विश्व में प्रकृति का कभी भी अत्यन्ताभाव नहीं होता। न ही कभी उस की मात्रा घटती या बढ़ती है। उन की मात्रा जितनी है वह उतनी ही रहती है।

आपने भी अपनी पुस्तक के पृष्ठ २४ पर न जाने क्यों ? और कैसे ? सच्ची बात लिख दी है। यद्यपि आप से इस प्रकार की आशा ही न थी। उस समय में विज्ञान की उन्नति होने के कारण, जो नया अनुसन्धान हुआ है, उसके अनुसार, इस सृष्टि को दो भागों में विभक्त किया गया है। १—रचे हुए पदार्थ। २—बिना रचे हुए [अर्थात् स्वयम्भू] पदार्थ। श्रीमान् जी ! आँखें खोलिये और समझ लीजिये जिनको आप बिना रचे हुए पदार्थ कहते हैं। उन को ही हम अनादि और नित्य पदार्थ कहते हैं।

मान्यवर ! जब किसी भी पदार्थ का सर्वथा अभाव कभी भी नहीं होता, केवल रूप परिवर्तन मात्र होता है, तब यह बात कैसे आश्चर्य की है कि आप ईश्वरीय ज्ञान और चमत्कारों को स्वीकारते हैं और विद्या एवं विज्ञान के कार्यों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। आप ही जैसों के विषय में सादी ने कहा है :—

तू बर औजे फ़लक चे दानी चीस्त।
चूं न दानी कि दर सराये तो कीस्त ॥*

अतः स्पष्ट है कि आत्मा और प्रकृति अपनी सत्ता में किसी के भी मुहताज नहीं हैं। शरीर के मुहताज होने का यह कारण है कि वह कार्य है [प्राकृतिक परमाणुओं से मिल कर बना हुआ एक संघात है।] और इसको बनाने वाला परमात्मा है। इसी लिये पृथिवी सूर्य; चन्द्र, मेघ, वनस्पतियां, पशु आदि भी सब मुहताज हैं, क्योंकि सब के सब ईश्वर की रची हुई रचनायें हैं। निस्सन्देह प्राकृतिक अस्तित्व के लिये दूसरी सत्ताओं का होना आवश्यक है। परन्तु प्रकृति और आत्माओं की सत्ता के लिये किसी अन्य पदार्थ की सत्ता आवश्यक नहीं है। क्योंकि वे कार्य अथवा सम्मिश्रण नहीं है। इसी लिये वे शारीरिक बनावट से भी मुक्त हैं। संसार के सभी प्राकृतिक पदार्थ, अपने महान् रचयिता की रचनायें होने के कारण, जंजीर की कड़ियों की तरह आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि "खुदा"

*तू आसमान के समाचारों को क्योंकर जान सकता है ? जबकि तू यह भी नहीं जानता कि तेरी सराय में क्या हो रहा है ? —अनुवादक।

शब्द का प्रयोग एक मात्र उसी अर्थ के लिये है, जो आपने समझा तथा ग्रहण किया है, तब खुदावन्द, खुदाविन्द, क़दखुदा, देहखुदा और नाख़ुदा शब्दों के आप क्या अर्थ करेंगे ? वास्तविकता यह है कि मनुष्यों ने ईश्वर के बहुत से नाम अपनी-अपनी समझ और धारणा के अनुसार रख लिये हैं। जैसे :— जब्बार, क़हार, खैरुलमाकरीन, रब्बुल्-अफवाज, वैसे ही खुदा, अहिरमन, यज़दां, गिरिधारी, माखनचोर, छलिया, मुरारी, राम, कृष्ण, क्राइस्ट, और मसीह। इस का कारण यह है कि ईरान के प्राचीन निवासी पुनर्जन्मवादी थे। उन्होंने जब देखा कि सभी आत्मा अपने-अपने कर्मों और ईश्वर के आदेश के अनुसार इस संसार में आते हैं। और ईश्वर बिना किसी के आदेश के खुदबखुद, अपने ही अधिकार से इस संसार में आता है। इस लिये उस खुदबखुद आने वाली ताक़त का नाम खुदा है। वे लोग कुछ वेदान्तियों की ही तरह ईश्वर का भी आवागवन मानते थे। या अवतारवाद का सिद्धान्त मानते थे। परन्तु उनका मन्तव्य मिथ्या है। और खुदा को जिस प्रकार का आप बतला रहे हैं, वैसा तो वह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्यों ? बिना माता पिता के वह खुदा एक बेटा भी पैदा नहीं कर सकता। अतः वह माता पिता का मुहताज हो गया। खुदा बिना सूर्य के पृथिवी को नहीं बना सकता और पृथिवी आदि के बिना सूर्य, चन्द्र, और वायु व ताप व पानी के बिना मेघों को भी नहीं बना सकता। अतः वह सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, वायु ताप आदि सभी का मुहताज हो गया। इन सब के अतिरिक्त इस रोशनी के जमाने में भी आप जैसे विज्ञान से अनभिज्ञ, तथा अभाव से भाव मानने वाले पैग़म्बरों का भी मुहताज है। क्योंकि उस ने बड़े बड़े सुशिक्षित विद्वानों को छोड़कर आप को ही अपाना पैग़म्बर बनाया है। वह तो छोटी-छोटी बातों में भी दूसरों पर निर्भर तथा दूसरों के आधीन हो गया। इस प्रकार तो वह खुदा ही न रहा। क्योंकि आपने जो उदाहरण दिया है, उस के अनुसार हमारा शरीर, पृथिवी, सूर्य, वायु, जल, तथा वनस्पति का, एवं आत्मा, ज्ञान, विद्या, जानकारी, हमाओस्त, शक्ति, साहस आदि का मुहताज है। इतना ही नहीं, इस प्रकार तो खुदा एक-एक कण का मुहताज है। पृथिवी व सूर्य का मुहताज, चन्द्र सितारों का मुहताज, आकाश और ताप का मुहताज, पैग़म्बरों का मुहताज, माता पिता का मुहताज, प्रकृति का मुहताज। परन्तु वास्तव में वह मुहताज नहीं है। यह एहतियाज (आवश्यकता) नहीं है। न ही ईश्वर अपनी सत्ता, तथा उस सत्ता की महत्ता में किसी का मुहताज है और न ही आत्मा या प्रकृति अपनी सत्ता के लिये किसी के मुहताज हैं। ईश्वर अपने अनादि गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार, प्रकृति से इस जगत् की रचना करता है और आत्माओं को उन-उन के कर्मों के अनुसार फल देता है। आत्मा ईश्वर को यथावत् रूप में नहीं जान सकता। क्योंकि आत्मा अल्पज्ञ है। प्रकृति भी अपनी व्यवस्था करने और कुछ बनने या बनाने में असमर्थ है। क्योंकि वह जड़ है। ईश्वर सब कुछ यथावत् जानता है क्योंकि वह सर्वज्ञ होने के कारण ही सब का स्वामी तथा व्यवस्थापक भी है। आत्माओं को अनन्त सुख प्राप्त करने के लिये ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी पड़ती है। इस के बिना आत्माओं का निर्वाह सुखपूर्वक नहीं हो सकता। परन्तु अपने अस्तित्व के लिये आत्माओं को किसी की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उस की सत्ता अनादि अर्थात् नित्य है। आत्मा कोई कृत्रिम, बनावटी, मिश्रित, विकार-युक्त या आरम्भ वाली वस्तु नहीं है। यह एक अटल नियम है कि जिसका आरम्भ होता है, उस का अन्त भी अवश्य ही होता है। आप अपने आपका, या यूं कहें कि अपनी रूह का आरम्भ तो

स्वीकारते ही हैं। फिर आप को अनन्त और अमर जीवन की प्राप्ति आप के ही सिद्धान्त के अनुसार किस प्रकार हो सकती है ?

हाफिज़ शिराज़ी ने आत्मा की अमरता का कैसा सुन्दर प्रतिपादन किया है ?

माजराये मन व माशूक़ मरा पायाँ नेस्त ।
आंचे आग़ाज़ नदारद न पज़ीरद अंजाम ॥ *

जब अभाव से भाव की उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त ही मूर्खता पूर्ण सिद्ध हो चुका, तब यह और भी दृढ़ता पूर्वक प्रमाणित हो गया कि आत्मा अवश्यमेव अनादि और नित्य है । वे कृत्रिम या नाशवान् नहीं हैं।

ब्रह्म समाजी—यदि पुनर्जन्मवाद को स्वीकार किया जाये, तो आत्मा को अनन्त काल पर्यन्त नर्क में रहना होगा। और वह कभी भी पाप से मुक्त न हो सकेगा।

आर्य—आपका यह विचार सर्वथा मिथ्या है। पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने से ही आत्माओं के लिये उत्थान या पतन का मार्ग खुलता है। वास्तव में यह मार्ग सदा ही खुला हुआ है। पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने से ही ईश्वर का न्याय भी स्थिर रहता है। पुनर्जन्मवाद की सिद्धि में यह सम्पूर्ण विश्व, इस की रचना, व्यवस्था, विविधता और इस का सम्पूर्ण कार्य—कलाप, प्रमाण है । सभी प्राकृतिक कार्यों में पुनर्जन्मवाद वर्तमान है। मेघमालायें पुनर्जन्मवाद को सिद्ध कर रही हैं । पृथिवी की रचना और इसके सभी विकारों एवं परिवर्तनों से पुनर्जन्मवाद का समर्थन होता है । सागरों के, ज्वार-भाटे भी पुनर्जन्मवाद के साक्षी हैं। सूर्य के परिवर्तन, चन्द्र-मण्डल का बस कर उजड़ना, पुनर्जन्मवाद का निशान है। इस सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय भी पुनर्जन्मवाद का जीता जागता उदाहरण है।

बीज का बोना, वृक्ष का होना, वृक्ष से फिर बीज का होना, यह पुनर्जन्मवाद की ही शिक्षा है। तथा इन सब पदार्थों में वर्तमान् पुनर्जन्मवाद का व्यवहार ही ईश्वर की सिद्धि में सब से बड़ा प्रमाण है। परन्तु जो लोग पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारते हैं, एवं इस सत्य सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते, वे नीचे लिखे हुए दोषों से कभी बच ही नहीं सकते :—

१—ईश्वर को भी अपने ही स्वभाव के अनुसार अत्याचारी, धोखेबाज, निर्दयी समझना।

२—ईश्वर-सिद्धि में असमर्थता अर्थात् युक्तियों और प्रमाणों से ईश्वर की नित्य और पूर्ण सत्ता को सिद्ध न कर सकना।

३—ऐसे अन्ध विश्वास में फंसना जोकि उसके सिवा किसी की भी शंकाओं का समाधान नहीं कर सकता तथा ईश्वर की सारी सर्वशक्तिमत्ता एवं महत्ता को मिथ्या सिद्ध करना।

४—पापाचार की वृद्धि तथा सदाचार की हानि करना। क्योंकि यदि जीवात्मा को प्रकृति से उत्पन्न होने वाला पदार्थ माना जायेगा, तो जीवात्मा का विकार-युक्त, जड़ एवं अनित्य होना सिद्ध हो जाएगा। और दण्ड या पुरस्कार को प्राप्त करने वाला ही कोई न बचेगा। जो कोई ऐसा स्वीकारता वह विद्या और विज्ञान के विरुद्ध आचरण करता, तथा संसार में मक्कारी फैलाता है। क्योंकि यह तो प्रकट ही है कि जिस का आरम्भ होता है, उसका अन्त भी होता है। तथा जो जिसके होने से होता है,

* मेरे और मेरे प्रेमी के हाल का कोई भी अन्त नहीं है। दोनों की ही कथा अनन्त है। क्योंकि जिस का आरम्भ नहीं होता उसका अन्त भी नहीं होता। —अनुवादक।

वह उसके न होने से नष्ट भी हो जाता है। जब प्रकृति नाशवान् है, तब उसके नष्ट होने पर आत्मा भी नष्ट हो जायेगा। और कोई भी पाप या पुण्य को भोगने वाला न रहेगा, और न ही कोई दण्ड का अधिकारी बचेगा।

५—जो पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारता है, वह मूर्ख, विद्या और बुद्धि का शत्रु है। क्योंकि वह सत्य सिद्धान्त को तो त्यागता है, और सर्वथा मिथ्या एवं असिद्ध सिद्धान्त अभाव से भाव, तथा भाव से अभाव को स्वीकारता है।

६—वह आत्माओं केलिये अन्तहीन जहन्नुम (नर्क) का ही प्रस्ताव करता है क्योंकि वह तो दूसरी बार उन्नति करने का कोई भी अवसर ही नहीं देता। क्योंकि संसार में पापी बहुत हैं, और उनका कोई पुनर्जन्म भी न होगा, अतः पाप और बुराई से बचने और घृणा करने का कोई प्रसंग ही न आयेगा। और सम्पूर्ण संसार अन्त हीन जहन्नुम (नर्क) के खुले मार्ग पर बढ़ता चला जायेगा। जैसा कि ब्रह्म सामाज के प्रचार से भी प्रकट है।

"मनुष्य को अमर जीवन प्रदान किया गया है। जिस में सांसारिक जीवन तो एक अंश तथा भूमिका मात्र ही है। वह अपने कर्मों के लिये बुद्धि के अनुसार उत्तरदायी है। वर्तमान समय के कर्मों के परिणामों से भावी जीवन में बचने का कोई भी उपाय नहीं है। प्रत्येक पाप और अपराध का दण्ड मिलना तथा भोगना अटल है।"

अतः यह ब्रह्म समाज सम्पूर्ण संसार को अन्तहीन जहन्नुम (नर्क) में पहुँचाने के लिये रेल तैयार कर रहा है।

आप का यह विचार कि आत्मा अनन्तकाल तक बिना शरीर के ही रहेंगे और उत्तरोत्तर उन्नति करते चले जायेंगे। हमें तो ईसाईयों की ही भ्रान्त धारणा की नक़ल मालूम होती है। उन का ही मन्तव्य है कि मरने के पश्चात् प्रत्येक पापी अनन्त उन्नति करता चला जायेगा। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि किस बात में उन्नति होगी। उत्तर स्पष्ट है, उस काम में जो उस ने किया है, जिस को करने का स्वभाव है, जो उस के पास हैं। अर्थात्—पाप। पापी अन्तहीन काल तक उन्नति करता चला जायेगा, इस का फलार्थ तो यही निकला कि वह अन्तहीन काल तक जहन्नुम (नर्क) में जा कर रहेगा। वस्तुतः इस देवधर्म या ब्रह्म धर्म ने भी खुल्लमखुल्ला पापियों के लिए ईसामसीह वाले अन्तहीन जहन्नुम (नर्क) का ही प्रबन्ध किया है। साथ ही और भी एक अनिष्टकारी उपदेश दे डाला है कि धर्मात्मा जन भी अन्तहीन स्वर्ग में जायेंगे। हम आप की इस भ्रान्ति का भी स्पष्टीकरण एवं विश्लेषण कर देना चाहते हैं।

श्रीमान् पैग़ंबर साहब! ईश्वर एक, अखण्ड, पूर्ण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् एवं ज्ञानस्वरूप है। अब आप के कथनानुसार आत्मा भी सदाचार एवं पूर्णता में उन्नति करते चले जायेंगे। आप तो स्कूल में मास्टर रह चुके हैं। कृपा करके वर्ग [जज़रुल्मुकाब] का नियम प्रयोग कीजिये। तब आप को समझ आ जायेगा। वह यह कि आत्मा तो अनन्तकाल तक उन्नति करते चले जायें और ईश्वर उन्नति प्राप्त है। अतः एक समय ऐसा आ ही जाएगा जब आपके मन्तव्यानुसार आत्मा ईश्वर से भी लाखों गुणा आगे बढ़ जायेगी।

देखिए इस मिथ्याविश्वास और भयंकर नास्तिकता से कैसे-कैसे अनिष्टकारी विचार उत्पन्न होते हैं। परन्तु किसी ने सच कहा है—

ईं ख्यालस्तो मुहास्तो जनूं *

जिस प्रकार बेचारे ईसाई अपने कल्पना-लोक में ही अन्तहीन जहन्नुम (नर्क) का विचार प्रस्तुत करते हैं। उसी प्रकार आप भी पापियों के लिये उत्तरोत्तर उन्नति तथा धर्मात्माओं के लिए भी उसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति बता कर एक ओर अन्तहीन जहन्नुम (नर्क) तैयार कर रहे हो और दूसरी ओर वेदान्तियों से भी बढ़ कर अनिष्टकारी शिक्षा फैला रहे हो। अर्थात् नये, बड़े और बहुत से खुदा बनाने जा रहे हो।

८, ६—ब्रह्म समाजी—एक और युक्ति जो कि पुनर्जन्मवाद की निस्सारता को प्रकट करती है। वह यह कि पुनर्जन्मवादियों के मतानुसार ईश्वर की सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार एकमात्र स्वार्थ ही है। जिस के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को उस- उस के कर्मों का फल मिलता है। इस के सिवाये प्रेम या उपकार आदि सद्भावों का वहां कुछ भी महत्व नहीं है। क्योंकि जब प्रत्येक मनुष्य को वही मिलना है, जो उसका अधिकार है, तब उसमें प्रेम या कृपा के लिये कुछ भी शेष नहीं रहता। यदि मैं किसी भूखे को भोजन दूं, या किसी ग़रीब को रुपये की सहायता दूं, या किसी मूर्ख को शिक्षा प्रदान करूं, तो पुनर्जन्मवाद के अनुसार वह यही सोचेगा कि जो कुछ उसे मिला है, वह उसके पिछले कर्मों का ही प्रतिफल है। यद्यपि उसका ऐसा सोचना सर्वथा ही अनुचित है। क्योंकि यदि पिछले जन्म में वह मूर्ख था, तो उस ने मुझे शिक्षित नहीं किया, जिस का मैंने इस जन्म में बदला चुकाया। और यदि यह कहा जाये कि यह उसके किसी अन्य कार्य का बदला है, तब भी यह बदला ही रहता है, प्रेम, उपकार या कृपा से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। अतः यह विचार मनुष्य की उस पवित्र आत्मिक भावना पर कुठाराघात करता है, जिसका आधार ईश्वर प्रेम है। और जो अभिमान या प्रतिफल के विचार से सर्वथा मुक्त है।

आर्य—हम आपकी इस युक्ति पर भी विचारते हैं और इस की निस्सारता को दर्शाते हैं, जिससे कि यह जाना जा सके कि पुनर्जन्मवाद को स्वीकारना स्वार्थवाद है, या आप का भ्रान्तवादी। विदित हो कि यदि आत्मा अनादि नहीं हैं, तो वे अवश्य ही सादि माने जायेंगे। और कभी न कभी उनका आरम्भ वा उत्पन्न होना माना जायेगा। और यह भी माना जायेगा कि उस समय से पूर्व आत्मा न थे। अतः ईश्वर ने उनको उत्पन्न किया। परन्तु प्रश्न यह है कि क्यों उत्पन्न किया? किस वस्तु से उत्पन्न किया? आत्माओं की अपनी कोई आवश्यकता न थी। वे तो थे ही नहीं। अब यदि कहो कि ईश्वर की अपनी कोई आवश्यकता होगी, उसकी अपनी शक्ति का प्रकाश कहो, प्रेम व महिमा का प्रदर्शन कहो, और भी जो चाहो, वह कहलो। ऐसी कोई भी बात स्वार्थपरता से ख़ाली नहीं हो सकती। और ईश्वर में इस प्रकार की आवश्यकता का आरोप करना बहुत बड़ा दोष है। अतः आपका धार्मिक विश्वास स्वार्थ-परता से दूषित है। ऐसी अवस्था में आपका काल्पनिक और दिखावटी परमेश्वर तथा उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था स्वार्थपरता से दूषित हो जाती है। अब कहिये—

मरा खांदी व खुद बदाम आमदी। नजर पुख्ता तर कुन कि खाम आमदी॥†

प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने कर्मों का फल ही मिलता है। और प्रत्येक मनुष्य इस संसार में

---

*यह एक व्यर्थ विचार तथा पूरा पागलपन है। —अनुवादक

† तूने मेरे लिये जाल फैलाया था, परन्तु तू खुद ही उसमें आ फंसा है। पक्का होने की डींग न मार, क्यों कि तू तो कच्चा सिद्ध हो गया है। —अनुवादक।

वही प्राप्त करता है, जो उस का अधिकार है। इस वैदिक-सिद्धान्त पर आप यह आक्षेप करते हैं कि इससे कृपा, प्रेम, या उपकार कुछ भी शेष नहीं रहता। आपने तो सभी दोष भी ईश्वर के सिर मढ़ दिये और उस सर्वशक्तिमान एवं सर्वगुणागार की सीमा निर्धारित कर दी। यही कारण है कि आप अविद्या की गहरी खाई में जा गिरे। ईश्वर के गुण केवल प्रेम और कृपा ही नहीं हैं अपितु न्यायकारी, मालिक, दयालु, अनुपम्, सर्वाधार, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, निर्विकार, सर्वशक्तिमान् आदि नाम भी उसके गुणों के ही प्रकाशक हैं। और केवलमात्र प्रेम तो स्वार्थ के बिना होता भी नहीं है। जिस के साथ प्रेम किया जाये वह भी स्वार्थ से रहित नहीं हो सकता। हां, यह दूसरी बात है कि वह प्रेम शुभ है, या अशुभ है। परन्तु स्वार्थ रहित तो वह हो ही नहीं सकता। आपने जब अपना विवाह किया था, तब वह प्रेम पूर्वक ही किया होगा, तथापि उसमें भी स्वार्थ मौजूद था। सन्तान की कामना उससे पृथक् है। लोक व्यवहार का विचार इनके अतिरिक्त है। यदि ईश्वर में केवल प्रेम ही प्रेम माना जाये, तब भी वह स्वार्थ से रहित न रहेगा। हां, यदि पागलों, वेदान्तियों और सूफ़ियों के समान यह कहो कि—

चूं नेको बनिगरी आइना हमा ओस्त। न तनहां गंज बल गंजीना हमा ओस्त ॥१॥
मन व तू दरमियाँ कारे न दारेम। बजुज़ बेहूदा पन्दारी न दारेम ॥२॥

इस अवस्था में नवीन वेदान्त का दूषित सिद्धान्त भी आप को स्वीकारना पड़ेगा। अतः ऐसा मूर्खता पूर्ण प्रेम आप को ही मुबारक हो। इसके अतिरिक्त जो वस्तु "कुछ नहीं" उसके साथ प्रेम करना भी तो मूर्खता ही है। क्योंकि आत्मा पहिले न थे। सम्मिश्रणों से एक पदार्थ [जौहर] बनाया। और उसके साथ प्रेम किया। नाश रहित का नाशवान् के साथ, और नित्य का अनित्य के साथ प्रेम या कृपा-व्यवहार स्वीकारना सर्वथा मिथ्या और मूर्खता है। क्योंकि—

शुमारन्द अहलेदीन ईं नुक्ता रा रास्त। कि कज बा कज गरआयद रास्त बा रास्त ॥१॥

यही अवस्था कृपा की भी है। परन्तु जब अभाव से भाव करना, जो कि विद्या और विज्ञान के विरुद्ध है, और अन्धकार-युग का मन्तव्य है, वह आपका सिद्धान्त है, तब तो कृपा भी अपने आप ही व्यर्थ है। क्योंकि किस पर कृपा? क्या अभाव पर, जो कि है ही नहीं? परन्तु ये दोनों ही शब्द आपके मन्तव्यानुसार एक प्रकार से व्यर्थ ही हैं। संसार की अवस्था विविधता पूर्ण है। यहां दुःखी अधिक हैं, सुखी कम। इससे स्पष्ट है कि यहां न कृपा है, न प्रेम। सभी ओर अन्याय और अन्धेर है। घोर निर्दयता

१—यदि अच्छी तरह से देखें तो दर्पण भी वही है। वह केवल धन ही नहीं है, धन कोष भी है।

२—मैं और तू के बीच में और कोई भी चीज नहीं है। और यदि कोई कहे कि है, तो वह मूर्खता ही है, समझदारी नहीं। —अनुवादक।

१—सभी धार्मिक विद्वान् इस बात को भली प्रकार से जानते और मानते हैं कि टेढ़ा टेढ़े के साथ ही चलता है। और सीधा सीधे के साथ ही चलता है। —अनुवादक।

और हृदय-हीनता दृष्टिगोचर होती है। और इस सब कुछ का कारण है पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारना। क्योंकि बिना किसी कारण और बिना किसी अपराध के किसी को अन्धा, किसी को कोढ़ी, किसी को गूंगा, किसी को लुंजा बना दिया गया है। किसी को नर्क तुल्य अफ्रीका में पैदा कर दिया और किसी को स्वर्गतुल्य हिन्दुस्थान में।

इस प्रकार के सम्पूर्ण विवरण पर विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रेम और कृपा का व्यवहार कहीं किसी पर भी नहीं हो रहा है। निर्दयता, क्रूरता, निष्ठुरता और उत्पीड़न की ही भरमार है।

इस के विपरीत ईश्वर के अन्य सभी गुणों को विचारें, तो उन का प्रकाश यहां सर्वत्र पाया जाता है। समस्त संसार जानता है कि यहां प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मों का फल मिलता है। और प्रत्येक मनुष्य अपने किये का प्रतिफल पाता है। जो कोई जैसा करता है, वैसा ही उसके आगे आता है। जिस ने खेत नहीं बोया, उस ने फसल भी नहीं काटी। जिस ने शराब न पी, उस को नशा भी नहीं हुआ। जिस ने अपराध नहीं किया, वह जेलखाने में नहीं गया, जो उपासना नहीं करता, उस के मन के मैल नहीं धुलते! जो स्नान नहीं करता; उस के शरीर की दुर्गन्ध दूर नहीं होती। जो शिक्षा प्राप्त नहीं करता वह विद्वान् नहीं बनता। जो अपनी स्त्री से सम्भोग नहीं करता, वह सन्तानवान नहीं होता। अतः प्रकट है कि सभी को कर्मों का फल यथायोग्य प्राप्त होता है। जब तक इस के प्रतिकूल प्रमाण न मिले, तब तक यह मूर्खता पूर्ण ढकसोला कि बिना कर्मों के ही फल मिलता है, और बीज के बिना ही खेत उगता है, कोई भी बुद्धिमान् किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकता। हां, जिन लोगों के मस्तिष्क में शाह दूला के चूहों की तरह अविद्या और मूर्खता भरी पड़ी है, उन को अधिकार है कि वे ऐसे निराधार और निस्सार मन्तव्यों को मानें तो माना करें। सभी मतों के विद्वानों का तो यही सिद्धान्त है कि :—

१—प्रत्येक मनुष्य अपने इच्छापूर्वक और जान बूझ कर किये गये कर्मों का उत्तरदाता स्वयं ही है। वर्तमान में जो कर्म किये जायेंगे, उन के प्रतिफल के भविष्य में उपभोग से कोई भी किसी की रक्षा नहीं कर सकता। प्रत्येक पाप का दण्ड भोगना अटल और आवश्यक है।

[अज रिसाला ब्रह्म समाज]

२—व इन लैसुल इन्सान इल्लामा सआ।
अर्थ—और यह कि मनुष्य को वही मिलता है, जो कमाया। (क़ुरान)

३—अन्नमा तजज़ून मा कुन्तम तालमून।
अर्थ—वह बदला पाओगे, जो करते थे। (क़ुरान)

४—अरब देश के निवासियों का मुहम्मद साहब से पहले ही यह सिद्धान्त था :—
अल दुनिया मज़रतुल आख़िरत।
अर्थ—दुनिया आख़िरत की खेती है।

५—शेख़ सादी का कथन है :—

हर आंकि तुख़्म बदी किश्त व चश्म नेकी दाश्त।
दिमाग़ बेहूदा पुख़्त व ख़्याल बातिल बस्त॥ १ ॥

६—औरंगज़ेब जैसे ज़ालिम बादशाह का भी यह विश्वास था :—

गंदुम अज़ गंदुम बिरोयद जौ ज़ जौ, अज़ मकाफ़ाते अमल एमन मशौ ॥२॥

[अज़ रुक्आत आलमगीरी]

७—मती की इञ्जील में लिखा है :—

क्योंकि इब्ने आदम अपने बाप के जलाल में अपने फ़रिश्तों के साथ आयेगा, तब प्रत्येक को उस के कर्मों के अनुसार बदला देगा। [मती १६—२७]

तुम धोखे में मत पड़ो। ख़ुदा ठट्ठों में नहीं उड़ाया जाता। क्योंकि आदमी जो कुछ बोता है, वही काटेगा। [ग्लेतों ६—७]

८—बाबा नानक जी कहते हैं :—

जेते सृष्टि उपाई वेखां, बिन कर्मां के मिलै नहीं ॥

एक बात आप की और भी भ्रमपूर्ण है. जिन ब्राह्मणों के घर में जन्म लेकर, और इतने समय तक ब्राह्मण रहकर भी आप ने नहीं जाना। अफ़सोस ! यदि कोई भूखे को भोजन खिलाये, या किसी ग़रीब को रुपया दे, या किसी को शिक्षा प्रदान करे, तो यह बात बहुत उत्तम और परोपकार की है। वह पिछले कर्मों का फल नहीं है, अपितु यह नया कर्म है। इस का फल उपकार करने वाले को ईश्वर देगा। इस विषय में यह विचारना सर्वथा भ्रान्त है कि यह उसके पिछले जन्म के कर्मों का फल है। परन्तु बड़े खेद की बात है कि आप अज्ञानवश या जानबूझ कर धोखा देते हैं। और कर्म तथा फल को अथवा कर्म और परिणाम को आपस में गड़-बड़ कर देते हैं। यह आप की समझ का क़सूर है। आप के ऐसे दूषित और भ्रमपूर्ण विचारों के कारण ही धार्मिक पवित्रता की जड़ आप के मन में से कटती जाती है। और आप विद्या तथा विज्ञान के विरोधी बन कर, लोगों को ज्ञान के प्रचार से रोक कर, उन को मूर्ख बना रहे हो। परन्तु आर्यसमाज डंके की चोट से विद्या का नक़ारा बजा रहा है। और वास्तव में विद्या का अधिकाधिक प्रचार ही आर्य-धर्म का प्रचार है। और आर्य समाज का तो यह नियम भी है कि "विद्या की वृद्धि तथा अविद्या का नाश करना चाहिये।"

ब्रह्मसमाजी—पुनर्जन्मवाद का विश्वास करने से स्वयं ईश्वर भी प्रेममय नहीं रहते । वास्तव में यह मिथ्या विचार स्वार्थ के आधार पर ही स्थिर है। हम जो सच बोलते हैं। अथवा झूठ और चोरी आदि दुष्कर्मों से बचते हैं। क्या इस से ईश्वर का कुछ अपना भला होता है ? जिस के बदले में वह हमारे इन शुभ कर्मों के बदले में, पुनर्जन्मवादियों के मतानुसार, हमें इस संसार में धनवान बना देता है। या किसी ऊँची सांसारिक पद मर्यादा पर पहुँचा देता है। या जायदाद और सवारियां भेंट में हमें दे देता है। कदापि नहीं।

१—जो बुराई का बीज बो कर के भलाई के उत्पन्न होने की आशा करता है, उसका दिमाग़ ख़राब है, और उस का विचार मिथ्या है।

२—गेहूं से गेहूं पैदा होता है और जौ से जौ पैदा होता है। कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है। तू ग़ाफ़िल (प्रमादी) न बन।

—अनुवादक।

हम मद्यपान न करने से, व्यभिचार न करने और चोरी झूठ इत्यादि पापों से बचकर ईश्वर की किसी अपनी आवश्यकता को पूरा नहीं करते। कि जिस के बदले में वह हम को घोड़े, और सवारियां दे, या रुपया और वैभव बदले में, या शुकराने के रूप में हमारी भेंट करे। अतः इन लोगों का यह मानना कि हम जो कुछ अच्छे कर्म करते हैं, उनका फल अर्थात् बदला ईश्वर से प्राप्त करते हैं, यह एक ऐसा तुच्छ विचार है, जोकि ईश्वर को भी एक स्वार्थी दुकानदार के समान बना देता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

आर्य—ईश्वर केवल प्रेममय ही नहीं है। अपितु वह न्यायकारी भी है। सत्य यह है कि अच्छे नौकर पर ही मालिक का प्रेम होता है। और वह उस के ऊपर ही अच्छे कर्मों का फल ही होता है। अन्यथा—

निकोई बा बदां करदन चुनानस्त। कि बद करदन बजाये नेक मरदां॥*

यदि ईश्वर केवल प्रेममय होता तो संसार में दुःख, दर्द, रंज व मुसीबत का नाम व निशान न होता। क्योंकि कौन नेक बाप यह चाहता है कि मेरी औलाद दुःखी हो। अतः ऐसा विचार सर्वथा निस्सार है कि ईश्वर केवल प्रेममय ही है, और कोई भी गुण उस में नहीं है। आप का इतना कथन तो सच है कि हमारे अच्छे कर्मों से ईश्वर का अपना कुछ भी भला नहीं होता। वास्तव में यह कथन आर्य धर्म के अनुसार ही है। परन्तु यह विचार तो कोरे नास्तिकपन का है कि ईश्वर हमारे शुभ कर्मों का फल नहीं देता। और यदि देता है, तो वह स्वार्थी बन जाता है।

भाई! यदि ईश्वर शुभ कर्मों का फल नहीं देता तो अशुभ कर्मों का फल भी क्यों देने लगा? क्योंकि वह तो पवित्र स्वरूप है। अतः आप नेक और बद दोनों प्रकार के कर्म करने के अंगों से हाथ धो बैठिये। यह संसार तो केवल फल की कामना से प्रेरित होकर ही शुभ कर्म करता है। अन्यथा यदि नेकी और बदी दोनों का ही परिणाम एक समान है, तो कर्म करना व्यर्थ ही ठहरता है। अतः आप के मतानुसार तो यही परिणाम निकलता है कि ईश्वर न तो नेकी करने की प्रेरणा देता है और न ही बुराई से घृणा करने का आदेश देता है। अब बतलाइये कि वह ईश्वर ही क्या रहा? क्या वह जैनियों के ईश्वर जैसा ही अन्यथा सिद्ध नहीं बन गया? नास्तिकों का भी तो ऐसा ही विश्वास है। इस विश्वास को अपनाकर क्या आप भी नास्तिक नहीं बन गये?

पण्डित जी! नहीं-नहीं, पैग़म्बर जी! आप यह बतलाइये कि ऐसे ईश्वर से, जो न तो बदी की सजा दे सकता है, न नेकी का शुभ फल दे सकता है, किसी को क्या लाभ हो सकता है? उस से किसी का सम्बन्ध ही क्या है? अतः उस स्तब्ध, व्यर्थ, अन्यथा सिद्ध और काल्पनिक ईश्वर से, जिस को आपने प्रेमी या जनूनी मान रखा है, कौन प्रेम कर सकता है?

हमारा तो यह सर्वविदित स्पष्ट सिद्धान्त है कि ईश्वर हमारा जज, हाकिम और मालिक है। वह बुरे कर्मों का दण्ड तथा भले कर्मों का पुरस्कार देता है। यदि वह फल देने वाला नहीं है, तो क्या कोई मनुष्य संसार में दण्ड भोगना पसन्द करता है? यदि नहीं करता तो फिर भी बुरे कर्मों का दण्ड क्यों मिलता है? और कौन देता है? खेद है कि आप जानबूझ कर भी सत्य की हत्या करते हैं।

---

* बुरे मनुष्यों के साथ भलाई करना ऐसा ही है, जैसा भले मनुष्यों के साथ बुराई करना।

—अनुवादक।

ब्रह्मसमाजी—पहले बहुत से लोग जो ईश्वर को प्रेममय जानकर उन से प्रेम करते रहे हैं, वे यद्यपि रिवाज के रूप में इस को स्वीकारते रहे हैं, परन्तु इस की वास्तविकता को वे नहीं जानते। इस विषय पर ध्यान देने का प्रथम तो उन को अवसर ही न मिला, दूसरे वे ध्यान दे भी न सकते थे। अन्यथा सम्भव था कि इस विषय की निस्सारता उन के सामने भली प्रकार प्रकट हो जाती।

आर्य—भाई साहब ! पुनर्जन्मवाद को स्वीकारने से ही ईश्वर के साथ सच्चा प्रेम हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह कारण था सृष्टि के आरम्भ से लेकर, आजतक सभी भक्तजन इस शुभ और पवित्र सिद्धान्त को मानते और इस का उपदेश करते रहे। अग्नि, वायु, ब्रह्मा, नारद, सनक, सनन्दन अर्थात् सनकादिक, महादेव, जनक, कपिल, याज्ञावल्क्य, व्यास, सुखदेव, रामचन्द्र, कृष्ण, जरतुश्त इत्यादि प्राचीन भक्त और ऋषि और भक्त तथा इस कलियुग में फ़ीसा-ग़ोरस, अफ़ज़ातून, सुक़रात, और ख़ास आर्यावर्त्त के रामानन्द, रामानुज, शंकर, कबीर, दादू, नानक, चैतन्य, सदना, वल्लभ, छज्जू, मीराबाई, अंगद, अमरदास, राम दास, अर्जुन दास, हरगोविन्द, हर राय, तेग बहादुर, गोविन्द सिंह, बन्दा सिंह, मौलवी रूमी, फरीदुद्दीनअत्तार, शम्सतब्रेज़, मन्सूर इत्यादि सभी इस सिद्धान्त को शुभ एवं उपयोगी समझते, सोचते, मानते और उपदेश करते रहे। "इन सब को अवसर नहीं मिला। ये सब रिवाज के अनुसार मानते रहे।" परन्तु आप पर इस की निस्सारता प्रकट हो गई ? यूं क्यों न कहा कि हम को पैग़म्बरी के इलहामी फ़रिश्ते ने कान में विद्या और विज्ञान के विरुद्ध शिक्षा दी है ?

क्योंकि आप संस्कृत नहीं जानते। केवल उर्दू और थोड़ी-सी अंग्रेजी पढ़कर, इञ्जील की शिक्षा आप ने प्राप्त की है। अतः ईसा की शिक्षा से आप को पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारना भाता है। परन्तु खेद है कि फ़रिश्ते को यह याद न रहा कि जब स्वयं ईश्वर को भी बाइबिल के मतानुसार, निरापराध होने पर भी मनुष्य के पाप के बदले में सूली पर चढ़ाया गया, तब मनुष्यों की तो गिनती ही क्या है ? जब ईश्वर भी पुनर्जन्मवाद के अनुसार जन्म-मरण के चक्कर में आया, उसने भी पाप किये और सूली पर चढ़ा, तब पैग़म्बरों की क्या हालत ?

श्रीमान् पैग़म्बर साहब ! सभी भक्त अपने-अपने भक्तिभाव में सच्चे थे। और उन की दृढ़ता का आधार यह पवित्र पुनर्जन्मवाद ही था। परन्तु आप की तो शिक्षा ही दूषित है। वे लोग रिवाज के अनुसार किसी बात को मानने वाले न थे। वे जिस बात को भी मानते थे, सोच-समझ कर, परीक्षा करके मानते थे। और सच्चे हृदय से मानते थे। यहां तक कि उन में से कुछ विद्वानों को अपने भक्तिभाव और ज्ञान की उच्चतम भूमिकाओं में पहुँच कर, यह भी ज्ञात हो गया था कि वे पिछले जन्म में कौन थे ? परन्तु ज़िद्दी आदमी को हम क्या कहें ?

ब्रह्मसमाजी—यदि ईश्वर प्रेममय न हो, तो मनुष्य की श्रेष्ठता उस से कहीं बढ़कर है। क्योंकि इस की श्रेणी में ऐसे मनुष्य भी मिलते हैं, जिन में प्रेम तथा मंगल का श्रेष्ठ स्वभाव विद्यमान है।

आर्य—ऐसा तो हम भी कहते हैं कि यदि ईश्वर न्यायकारी नहीं, तो ऐसे ईश्वर की अपेक्षा मनुष्य ही अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि नौशेरवां, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र, विक्रमादित्य इत्यादि महाराजा गण बहुत अधिक न्यायकारी प्रसिद्ध हैं। यदि आप के कथनानुसार ईश्वर प्रेमी ही है, तो संसार में तो इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। यह तो बहुत ही खेद की बात है।

१—करोड़ों आदमी हैज़े से मरते हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
२—लाखों आदमी तपेदिक़ से मरते हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
३—लाखों मनुष्य जन्म के अन्धे, लंगड़े, लूले पैदा होते हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
४—बड़े-बड़े देश नाना प्रकार के कष्टों को भोग रहे हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
५—वेश्याओं के घरों में लड़कियां पैदा होती ही हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
६—लाखों चोर, बदमाश, व्यभिचारी, ग़रीबों को लूट रहे हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
७—मूसा, दाऊद, सुलेमान, नूह आदि नबियों ने लाखों मनुष्य, स्त्रियां और बालक मरवाये। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
८—मुहम्मद साहब और उनके उत्तराधिकारियों ने संसार में जो तलवार के तूफ़ान पैदा किये, और लाखों मनुष्यों के सिर तन से जुदा किये, क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
९—चंगेज़ ख़ां, हलाकू ख़ां, तैमूर, महमूद, औरंगज़ेब, अहमदशाह, नादिरशाह, सिकन्दर इत्यादि प्रसिद्ध हत्यारों को, जो भीषणवम हत्या-काण्ड प्रस्तुत करने की शक्ति मिली, क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?
१०—इन सब बातों से पृथक् यह कि आप उसी प्रेमी ईश्वर के पैग़म्बर बन कर आये। आप सारा दिन संसार को, और विश्वेष रूप से आर्य समाज को गालियां देते रहते हैं, तथा बहुत अधिक अपशब्दों का व्यवहार करते हैं। क्या यह ईश्वर का प्रेम है ?

भाई ! ऐसे प्रेमी और मंगल देव ईश्वर का संसार में तो कहीं कुछ भी पता नहीं चलता। आप के पास, या किसी और के पास, कोई प्रमाण हो तो दीजिये।

ब्रह्म समाजी—ज्ञात होता है कि पुनर्जन्मवाद का सिद्धान्त उस समय निकला होगा, जब कि लोगों पर ईश्वर के प्रेममय होने का रहस्य पूर्णतया प्रकट न हुआ होगा। हां, यह उसी समय का मूर्खता-पूर्ण ढकोसला है, जब कि हमारे पूर्वज, ईश्वर को केवल सच्चिदानन्द जानकर और केवल अपनी ही ओर से, अर्थात् योग और समाधि के द्वारा, उनके आनन्द को प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते थे। और जिस समय भक्ति एवं पुराणों का युग नहीं आया था। और जब पौराणिक योग या समाधि के उपायों में ईश्वर को दयामय या प्रेममय जानकर प्रार्थना करने का भाव प्रचलित न हुआ था। हां, इस समय भी प्राचीन योग और समाधि के अनुयाई ईश्वर को वैसा ही दयामय नहीं मानते, जैसाकि भक्त श्रेणी के लोग मानते हैं। और वे लोग अपने योग तथा समाधि के अनुष्ठान में प्रार्थना के नियमों का पालन भी नहीं करते।

आर्य—आपका विचार सर्वथा मिथ्या और सत्यशास्त्रों से अनभिज्ञता का परिणाम है। अन्यथा ईश्वर के सम्पूर्ण गुण, कर्म और स्वभाव का विचार और विश्वास जैसा वैदिक-युग से शास्त्रीय युग तक था, वैसा पौराणिक काल में सर्वथा ही न था। पुराणों में तो ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव का यथार्थ तथा पूर्ण उल्लेख भी नहीं है। ज़रा आंखें खोलकर देखिये—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः

स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥* यजु ४०।८

तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि ।
वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
सहो ऽसि सहो मयि धेहि ॥†

(यजुर्वेद १९।९)

शास्त्रों में से योग-शास्त्र में पुनर्जन्मवाद के पक्ष में बहुत अधिक पुष्ट प्रमाण दिये गये हैं । इस में उपासना और प्रार्थना का प्रकार भी बहुत उत्तम रूप में दर्शाया है । सन्ध्या अर्थात् ब्रह्मयज्ञ में किस उत्तमता से परमात्मा की भक्ति और प्रार्थना का विधान है ? देखो पंच-महायज्ञ-विधि ।

२—अस्तु योग और समाधि के रहस्यों को न जानकर और संस्कृत विद्या से भी अनभिज्ञ होने पर भी व्यर्थ गप्पें हांकना, आपकी दूषित विचार-धारा का अन्ध-प्रलाप है । निस्सन्देह प्राचीन काल के सभी भक्त, जो संस्कृत-भाषा के उत्तम विद्वान् थे, वे ईश्वर को अपने एवं सम्पूर्ण दृश्य जगत का केवल-मात्र कर्त्ता व स्रष्टा मानते थे । क्योंकि वे वैदिक तत्वज्ञान के विशेषज्ञ थे । आप की तरह वे विद्या, विज्ञान और आधुनिकतम भौतिक विज्ञान से भी कोरे न थे और न ही वे गाली गलौच से काम निकालते थे ।

क्योंकि आप संस्कृत भाषा को भी नहीं जानते, अतः आप तो पुराणों को भी नहीं जानते । यही कारण है कि आप झूठी-प्रशंसा से लोगों को भ्रान्ति जाल में फंसाते और अपना काम निकालते हैं । इस प्रकार आप एक नया नास्तिक मत वा नया बौद्धमत फैलाना चाहते हैं । आप जैसे धोखे का जाल बिछाने वाले फ़क़ीरों के विषय में ही सादी का कथन है :—

---

* वह सर्वत्र विद्यमान् है । संसार को उत्पन्न करने वाला, निराकार, घाव आदि से रहित, नस नाड़ी के बन्धन से रहित, शुद्ध, पवित्र, पाप से रहित, दोष शून्य, ज्ञानी, सब पदार्थों को देखने वाला, मन के अन्दर की बात जानने वाला, सबसे बढ़ कर हर जगह रहने वाला, अपनी सत्ता के लिये दूसरे की अपेक्षा न करने वाला, प्रजा की शान्ति के निमित्त सदा रहने वाले जीवों के लिये ठीक-ठीक पदार्थों का विशेष रीति से उपदेश करता है ।

† तू तेज है, मुझ में तेज धारण कर ।
तू वीर्य है, मुझमें वीर्य धारण कर ।
तू बल है, मुझमें बल धारण कर ।
तू ओज है, मुझमें ओज धारण कर ।
तू मन्यु है, मुझमें मन्यु धारण कर ।
तू सह है, मुझमें सह धारण कर । —अनुवादक ।

तर्क दुनिया ब मर्दुम आमोज़न्द ।
खेशतन रा सीम-ओ-ग़ल्ला अन्दोज़न्द ॥*

पुराणों के प्रेम ने ईश्वर को मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, घोड़ा, कुत्ता, हंस प्रभृति अवतार धारण करवाये हैं।

पुराणों के प्रेम ने गोपियों को कृष्ण के साथ कल्लोल कराये हैं। पुराणों के प्रेम ने ईश्वर को मोहिनी रूप धारण करवा कर शिव जी का अपमान करवाया। पुराणों के प्रेम ने ब्रह्मा जी पर व्यभिचार के दोष लगवाये, पुराणों के प्रेम ने कुब्जा की कहानी सुना कर कृष्ण जी को कलंक लगाये। पुराणों के प्रेम ने वावन अवतार धर उससे झूठ बुलवाये तथा छल और फरेब करवाये और सारे संसार को मूर्तिपूजक एवं मूर्ख बना दिया। कोई बदमाशी, कोई खराबी, कोई बदचलनी ऐसी है जो पुराणों के लिये उन के और आप के प्रेमी ईश्वर ने नहीं की। ऐसा भाव सतयुग आदि युगों में प्रचलित न हुआ था और न अब होगा। हां, आप का काल्पनिक और पौराणिक, प्रेमी-भाव फ्रांस में, या अकबर के मीना बाज़ार में, या नाच घर में, या रासलीला में होता है। किसी समय लखनऊ के फिरंगी महल या वाजिद अली शाह के मोती बाग में होता था। या कभी-कभी मुहम्मद शाह रंगीले के समय में होता था। या गोकुलिये गुसाइयों के यहां, या बहुत अधिक प्रेम और वह आप का बहुत प्रेमी भाव वाम मार्गियों में अधिक होता है। ऐसी प्रार्थना, ऐसी भक्ति, ऐसे प्रेम से हम को और सम्पूर्ण सत्यप्रेमी पुरुषों को घृणा है।

ब्रह्म समाजी—ऐसी अवस्था में तो पापी को ऐसे ईश्वर से आत्मा उद्धार के लिए किसी प्रकार की भी आशा नहीं रह सकती।

आर्य—किसी न्यायकारी जज से, अपराधी को अपराध करने के पश्चात् क्या आशा हो सकती है? केवल यही कि उसे यथोचित दण्ड मिले, न कि छुटकारा। हां रिश्वत खोर, अत्याचारी, स्वार्थी, आंख के अन्धे से आप छुटकारे की आशा कर सकते हैं। अपराधी का सुधार तथा अपराध का दण्ड दोनों को ही सम्मुख रखना जज का कर्तव्य है। परन्तु पापी और अपराधी को दण्ड न देना तो खुले रूप में दूसरों को अपराधों के लिए उत्साहित करना है। तथा च, प्रायः देखा गया है कि न्याय और नीतिरहित राजा के राज्य में अपराध बहुत बढ़ जाते हैं। विद्वानों का कथन है—

हर आंगह कि ब दुज़्द रहमत कुनी।
बबाज़ुए खुद कारवां मेज़नी ॥१॥
निकोई बा बदां करदन चुनानस्त।
कि बद करदन बजाये नेक मरदां ॥२॥

---

* जो ढोंगी सन्त होते हैं, वे अन्य लोगों को तो वैराग्य का उपदेश दिया करते हैं और अपने लिये अन्न तथा धन एकत्रित करते रहते हैं। —अनुवादक।

१—उस समय जब कि तू चोरों और लुटेरों पर दया करता है, तब तू अपने हाथों से ही व्यापारियों और यात्रियों के काफ़ले को मारता है।

२. बुरे मनुष्य के प्रति भलाई का व्यवहार करना ऐसा ही है, जैसे भले लोगों के साथ बुराई करना।
अनुवादक।

न दानिस्त आंगह कि रहमत करद बर मा।
कि ईं जोरस्त बर फ़रज़न्दे आदम ।।३।।

पापी, अनाचारी, भ्रष्टाचारी बनकर ईश्वर से उद्धार की आशा करना, एक वाममार्गी की कहानी के समान है।

एक वाममार्गी ब्राह्मण से किसी ने पूछा कि क्यों जी मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारों से कभी मुक्ति हो सकती है? क्योंकि ये पाँचों तो सारे भ्रष्टाचार का मूल आधार हैं। ऐसी अवस्था में यह वाममार्ग मत सच्चा क्यों कर हो सकता है?

उसने उत्तर दिया—ईश्वर दुष्टों, शराबियों और व्यभिचारियों की मुक्ति करना चाहता है। भला क्या इन की मुक्ति का सामान न होना चाहिए? केवलमात्र इन की मुक्ति के लिए ही इस मत का आविष्कार हुआ है। कि विधिपूर्वक मद्य-मांस आदि ग्रहण करें, और, मुक्त हो जायें।

हज़रत! पापियों का उद्धार, न्यायकारी परमात्मा के दरबार से बिना दण्ड-भोग के नहीं हो सकता। ईश्वर तो ईश्वर ही है। उसके न्याय और नियम में तो कोई क्षमा, सिफ़ारिश, या रिश्वत चल ही नहीं सकती। आप किसी रोगी को बिना दवाई के अर्थात् रो-रो कर प्रार्थना करने मात्र से ही स्वस्थ तो कीजिए जिस से किसी को कुछ विश्वास भी हो। अन्यथा व्यर्थ ही स्यापे की नायन की तरह लोगों को रुलाने और स्वयं ऐश उड़ाने से क्या लाभ? स्मरण रखो। धोखे में न पड़ो। ईश्वर ठट्ठों में नहीं उड़ाया जायेगा। क्योंकि मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा।

ब्रह्म समाजी—जब ईश्वर से किसी सहायता की आशा न हो तो उस से किसी सहायता के लिये प्रार्थना याचना करना वास्तव में एक अनुचित कर्म है। और जो लोग जानबूझकर, केवल दूसरों को दिखाने के लिये ही उपासना या प्रार्थना करते हैं, वे दुष्ट हैं, धोखेबाज़ हैं, और वे ईश्वर का निरादर करते हैं।

आर्य—ईश्वर से प्रत्येक मनुष्य को, और विशेषतया सच्चे उपासकों को बहुत आशायें हैं। परन्तु निराशा केवल मक्कारों के लिए है। जब हम इन्द्रियों से कर्म करते हैं, और मन से सच्चे परमात्मा की उपासना व प्रार्थना करते हैं, तब अवश्य ही सफल होते हैं। मन को शान्ति मिलती है। ज्ञान की प्राप्ति होती है। अन्धकार कम होता है। सत्य-धर्म में विश्वास और ईश्वर में प्रीति होती है। हां, झूठी प्रार्थना और मक्कारी की प्रार्थना करने वालों की बातें अवश्य ही अनुचित हैं। जो लोग स्यापे की नायन के समान और लोगों को रुलाते तथा स्वयं मौज उड़ाते हैं, क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं? जो लोग इस प्रकाश के युग में भी पैग़म्बर बनकर सरल हृदय मनुष्यों को पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं, क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं?

जो लोग प्राचीन विद्वानों के ग्रंथों में से उत्तम उपदेशों को चुनकर, उनको अपने इलहाम के रूप में प्रकट करते हैं, और ईश्वर के सच्चे भक्तों को गालियां दे रहे हैं, क्या वे मक्कार और शरीर (शरारती) नहीं हैं?

३—क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टों पर दया करना और मानव जाति पर अत्याचार करना एक ही जैसा है?

—अनुवादक।

जिनके उत्साह सम्पन्न और बुद्धिमान शिष्य, जोकि भ्रमवश उनके जाल में जा फंसे थे, वे स्वयं आत्म-प्रेरणा से या किसी के समझाने पर, उनके जाल से निकल कर आर्यसमाज में शामिल हो गए, और फिर उनकी भली प्रकार से पोल खोलने लगे, क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं ?

जो लोग दूसरे लोगों के सरल हृदय लड़कों को शिक्षा से घृणा दिलाकर, साधु बनाते हैं, और अपने लड़कों को यथापूर्व ही कालिजों में पढ़ाते हैं, क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं ?

जो लोग दूसरों के बच्चों से भीख मंगवाते हैं, और स्वयं बैंकों में रुपया जमा करवाते हैं, मजे उड़ाते हैं, तथा उनके चेले भीख मांग कर लाते हैं, और वे स्वयं गुरु बनकर आनन्द करते हैं, क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं ?

जो लोग एक समय गला फाड़-फाड़ कर भगवे कपड़े की बुराई किया करते थे, और अन्त में जब बिना उसके काम नहीं चल सका तो स्वयं भी भगवे कपड़े पहनने लगे। क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं ?

जो लोग पहले गुरुडम के विरोधी थे, और फिर स्वयं गुरु बन बैठे। और मूर्खों तथा सरल हृदय लोगों को अपने अपवित्र पांव का धौन पिलाते हैं, क्या वे नापाक (अपवित्र) और दुष्ट नहीं ? जो हिन्दुओं को अपने जाल में फंसाने के वास्ते जनेऊ पहनते तथा चोटी रखते हैं और एकादशी को चावल बांटते हैं। क्या वे मक्कार और दुष्ट नहीं हैं ?

हज़रत ! याद रखिये कि लोगों को दिखलाने के लिये उपासना में रोना—पीटना सर्वथा धोखे बाजी, और दुष्टता है।

कलीदे दरे दोज़खे आं नमाज। कि बर रूये आलम गुज़ारी दराज ॥*

यही कारण है कि इस उन्नीसवीं शती में आप को नये इलहाम और नये पन्थ का नया पैग़म्बर बनने और ब्रह्म समाज को छोड़ कर देव-समाज बनाने की आवश्यकता पड़ी या तरकीब सूझी है। खेद है कि संन्यासी कहला कर भी आप को ज्ञान प्राप्त न हुआ। और सच्चे ज्ञान रहस्य का लेश मात्र बोध भी आप को न हो सका।

ब्रह्म समाजी—जब ईश्वर प्रेममय नहीं है, और सिवाये हमारे कर्मों के फल के, अपनी ओर से कुछ भी नहीं दे सकते, तो फिर पुनर्जन्मवादी लोग जो पापों में डूबे हुए हैं, वे तो ईश्वर से बहुत अधिक घृणा करते होंगे ?

आर्य—पुनर्जन्मवादी गण न तो कभी ईश्वर को बुरा कहते हैं, और न ही उस से घृणा करते हैं। क्योंकि वे ईश्वर को दयालु तथा न्यायकारी मानते हैं हां, पुनर्जन्मवाद को अस्वीकारने पर यह अवस्था अवश्य ही होती है उदाहरण के लिये देखो (पुनर्जन्मवाद को न मानने की अवस्था में मौलवियों के कथन)।

इसी से यह भी अनुमान कर लो कि ब्रह्म समाजियों तथा ईसाइयों का क्या हाल होगा ? यही कारण है कि न्यायकारी से कोई भी नाराज नहीं होता। हां, जिस प्रकार अंग्रेजी न्याय प्रिय

* नमाज दोज़ख के द्वार की कुंजी के समान है जो बहुत समय तक लोगों को दिखलाने के उद्देश्य से पढ़ी जाती है।
—अनुवादक।

राज्य में, जब कोई खून करता है, तब पकड़ा जाने पर फांसी मिलने के डर से सरकार को न्याय प्रिय जान कर आप के विचारानुसार अवश्य ही बुरा कहता होगा। क्या ही अच्छा होता, कि अंग्रेजी राज्य न होता। तो उत्तम था। परन्तु स्मरण रखिये—

गर दुआये तिफ़्लां मुस्तजाब बूदे। यक मुअल्लिम दर आलम जिन्दा ना मांदे।*

जब दया के साथ ही न्याय भी होता है, तभी दया आनन्ददायक होती है। न्याय के बिना दया करना तो सर्वथा ही अत्याचार और अंधेर है। क्या आप ने सुना नहीं ? कि—

आँ पीर लाशा रा कि सिपुरदन्द जेरे खाक।
खाकश चुनां बखुर्द कज़ो उस्तखा न मांद॥१॥
जिन्दास्त नाम फर्रुख नौशेरवां बा अद्‌ल।
गरचे बसे गुज़श्त कि नौशेरवां न मांद॥२॥

ब्रह्म समाजी—विद्या की खोज के अनुसार जबकि केवल मनुष्य के शरीर में ही आत्मा [रूह] है, और पशु-पक्षियों तथा वनस्पतियों के शरीरों में कहीं उसका नाम निशान भी नहीं है, फिर भी पुनर्जन्मवाद को मान कर यह कहना कि मनुष्य की आत्मा अपने बुरे कर्मों के फल से गौ, बैल, गधे, घोड़े, सुअर, घास, पौदों और वृक्षों के शरीर में प्रविष्ट हो जाती है, यह एक ऐसा विचार है, जो घटनाओं, अनुभव और वास्तविकता सभी के विरुद्ध है। अतः यह झूठा और व्यर्थ विचार है।

आर्य—आपके इस लेख से तो हमको आपकी रही सही विद्वत्ता का भी हाल मालूम हो गया। आप ने केवल पुनर्जन्मवाद को ही नहीं छोड़ा, आपने तो विज्ञान के सर्वसम्मत सिद्धान्तों से भी इन्कार कर दिया। इसके साथ ही पुनर्जन्मवाद की सत्य शिक्षा से भी आपने अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर दी। विद्या की खोज के अनुसार केवल मात्र मनुष्य के शरीर में ही नहीं, अपितु पशु-पक्षियों में भी आत्मा है। शायद आपने तो पाश्चात्य-जगत् के सुप्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता डारविन का भी नाम न सुना होगा। उन का कथन है कि मनुष्य की शरीर रचना सब प्रकार से बन्दरों जैसी ही है। ऐसा ही अन्य विद्वान् भी मानते हैं। किसी ने सच कहा है कि विद्या के विना मनुष्य बिना दुम का बन्दर है। इस पुस्तक के आरम्भ में हमने भी यह भली प्रकार दर्शाया है कि मनुष्यों और पशु-पक्षियों में भी आत्मा का निवास है। पशु-पक्षियों में आत्मा को अस्वीकारना बहुत बड़ी भूल है।

दर्शन-शास्त्र के अनुसार आत्मा का लक्षण यह है :—

जिस में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, और ज्ञान ये गुण हों, वह जीवात्मा कहलाता है।†

---

* यदि बच्चों की एक प्रार्थना स्वीकार हो जाती, तो संसार में कोई एक भी शिक्षक जीवित न बचता।

—अनुवादक।

१—वह लाश, जो पृथ्वी में गाड़ दी गई, मिट्टी ने ऐसी खाई कि उसकी हड्डी तक भी शेष न रही।

२—न्यायकारी होने के कारण ही नौशेरवां का यशस्वी नाम अभी तक भी जीवित है। यद्यपि नौशेरवां को गुज़रे बहुत वर्ष हो चुके हैं।

—अनुवादक

† इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति। न्याय-दर्शन। १। १०

—अनुवादक।

यह लक्षण मनुष्यों और पशुओं, दोनों पर एक समान ही घटित होता है। विद्याहीन मनुष्य से तो हज़ारों पश ही उत्तम हैं। दर्शन-शास्त्र ने स्पष्ट बतला दिया है कि मनुष्य एक बोलने वाला पशु है। और अन्य सब पशु साधारण हैं। परन्तु पशु तो दोनों ही हैं। अतः अपने बुरे कर्मों के फल भोग के लिये, आत्मा को अपने कर्मों के अनुसार ही पशु योनियों में भी अवश्य ही जाना पड़ता है। इस में कोई भी सन्देह नहीं। परन्तु जहां आत्मा के होने का प्रमाण नहीं है, वहां पुनर्जन्मवाद का सम्बन्ध भी नहीं है। देखो—प्रथम प्रकरण। क्योंकि यह बात विद्या, बुद्धि, अनुभव और वास्तविकता तथा सच्चे धर्म वेद से सर्वथा विपरीत है। विज्ञानवेत्ता डारविन ने जब यह रहस्य प्रकट किया, तब से सामान्य लोगों ने उसे बन्दर की औलाद कहना शुरू कर दिया। परन्तु वह महा विद्वान् कुछ भी न घबराता था। अस्तु, आप का विचार न तो विज्ञान के अनुसार है, न दर्शन-शास्त्र और मनोविज्ञान के अनुसार। अतः आप का विचार सर्वथा ही मिथ्या है।

ब्रह्म समाजी—सच-मुच यह बात अत्यन्त लज्जास्पद है कि कोई मनुष्य वास्तविक घटना क्रम के विपरीत, पुराने, झूठे और अन्धविश्वास पूर्ण विचार के आधार पर अपने माता पिता आदि पूर्वजों तथा अपने सहयोगियों को कुत्ता, बिल्ला, गधा, घोड़ा, सूअर और सांप इत्यादि माने तथा उन पर सवारी करे, या उनका सिर कुचले।

आर्य—आप के इस आक्षेप का कारण विद्या नहीं, अपितु मूर्खता है। परन्तु फिर भी हम आप को समझाने का प्रयत्न करते हैं। सुनिये :—

मनुष्य की उत्पत्ति आत्मा से होती है, या शरीर से ? संसार के सभी विद्वानों का मत यह है कि जब पुरुष और स्त्री परस्पर सम्भोग करते हैं, तभी वीर्य स्त्री के गर्भाशय में जाता है। और वहां स्त्री के रज से मिलकर पोषण प्राप्त करता है। तब उस में आत्मा का प्रवेश होता है। यही कारण है कि सम्भोग के पश्चात् पुरुष का शरीर दुर्बल हो जाता है। आत्मा दुर्बल नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि वह वस्तु जिस से मनुष्य उत्पन्न होता है, वह माता पिता का शरीर ही है, माता या पिता का आत्मा नहीं। परन्तु इस कार्य का कर्त्ता सृष्टि के नियमों के अनुसार आत्मा ही है। और शरीर आत्मा का उपकरण है। अस्तु, जिस शरीर से उत्पत्ति हुई थी, वह तो यहां जलाया गया। उस का गधा या घोड़ा बनना और मारा जाना सर्वथा असंगत है। और यह तो सभी विद्वानों का सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि आत्मा का लिंग न तो स्त्री लिंग है, न पुंल्लिग। अर्थात् आत्मा न स्त्री है, न पुरुष। स्त्रीलिंग या पुंल्लिग का भेद शरीर गत है, आत्मागत नहीं। अतः आत्मा और शरीर का मेल एक विशेष नियम के अनुसार प्रत्येक शरीर में है। आत्मा सहित शरीर का नाम ही बुजुर्ग है। जब आत्मा और शरीर का पारस्परिक मेल टूट जाता है, तब वह 'बुजुर्ग' नाम भी टूट गया।

वे पुराण जिन को आप भक्ति की खान मानते हैं, उन का भी यही सिद्धान्त है। परन्तु आप व्यर्थ बातों की ओर जा रहे हैं। अतः ज्ञात हुआ कि न तो कोई बुजुर्गों पर सवार होता है और न ही कोई उन का सिर कुचलता है। हां, ये सभी आक्षेप आप के मत पर लागू होते हैं। अतः आप की यह चेष्टा बहुत अधिक लज्जास्पद है कि आप अपनी माता का खून पीते हैं। क्योंकि आपके सिद्धान्तानुसार तो दूध भी खून ही है।

तीसरी लज्जाजनक बात यह है कि आप अपने बुजुर्गों के चमड़े के जूते पहनते हो। क्योंकि पशुओं ने जो घास आदि चारा खाया, वह वास्तव में आप के बुजुर्गों की मिट्टी ही तो है। उसी से चमड़ा बना। और उसी चमड़े से आप के जूते बने।

चौथी उसी मिट्टी से सब बुरे लोगों और बुरी स्त्रियों के शरीर भी बने हैं। और उसी मिट्टी से सूअर, तथा सूअरी, कुत्ते आदि के शरीर भी बने हैं। अतः बतलाओ कि आप ये सब घोर लज्जाजनक चेष्टायें क्यों करते हो? जब तक आप पवित्र वेद का मार्ग ग्रहण न करोगे, तब तक इस भंवर से आप को छुटकारा न मिलेगा। इसी विषय में मौलवी निजामी ने लिखा है :—

कि दानद कि ईं खाक अंगेख़्ता। बख़ूने च दिलहास्त आमेख़्ता ।।*

एक बार मैं यात्रा में था। तब एक प्रसंग में मैंने पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने का वर्णन किया। तब एक मौलवी साहब उत्तेजित होकर, पहले तो मुझे गालियां देने लगे कि यह काफ़िर है और क़ुरान के विरुद्ध शिक्षा देता है। अन्त में जब मैं ने युक्तियों और प्रमाणों से उन्हें समझाया, तब समझ गये और कायल हो गये। परन्तु क़ुरान की शिक्षा के कारण सच्ची बात को स्वीकार करने से झिझकते रहे। वह हाल ब्रह्मसमाजियों का भी है। ये लोग यदि विज्ञान, दर्शन-शास्त्र और तर्क-शास्त्र के आधार पर विचार करें तो अवश्य ही सत्यबोध प्राप्त कर लेंगे। परन्तु ये लोग तो अपने मनमाने और मिथ्या विचारों के विषय में किसी प्रकार के अनुसन्धान की आवश्यकता ही नहीं समझते। यही कारण है कि ये अपने चेलों को भी विद्या की प्राप्ति से हटाते हैं। पुनर्जन्मवाद को न मानकर, और ब्रह्म या देव-धर्म को स्वीकार करके बहुत से वर्तमान दोषों का मुंह देखना, और बहुत-सी लज्जाजनक बुराइयों में लिप्त होना पड़ता है।

१—आत्मा को आरम्भ वाला तथा अन्त वाला मानना पड़ता है। क्योंकि जिस का आरम्भ होता है, उस का अन्त भी अवश्य ही होता है।

२—अमर-जीवन और मुक्ति से हाथ धोने पड़ते हैं। साथ ही नेकी नाम की कोई वस्तु भी नहीं रहती।

३—ईश्वर को एक रिशवत खोर, या भोला महादेव स्वीकारना पड़ता है।

४—ईश्वर का बहुत अधिक निरादर भी करना पड़ता है। अर्थात् उसे न्यायकारी और दयालु न मान कर, केवल अत्याचारी और मूर्ख मानना पड़ता है। क्योंकि वह किसी को उस के कर्मों का फल नहीं देता।

५—सभी बुजुर्गों का अपमान करना पड़ता है। अपितु उन को मिट्टी समझ कर, और वनस्पति की भान्ति खाकर ही बस नहीं, उन के साथ सभी बुराइयों को करना पड़ता है। जोकि बहुत ही लज्जाजनक है।

६— ईश्वर को ही जवाब देना पड़ता है। क्योंकि उस को अभाव का ईश्वर, सत्ता रहित ईश्वर, अस्थाई ईश्वर, वहमी ईश्वर, और काल्पनिक ईश्वर मानना पड़ता है। जब सन्देह दूर हुआ, तब ईश्वर भी दूर हुआ।

*यह कौन जानता है कि यह गुन्धी हुई मिट्टी किस-किस के दिल के खून में भीगी हुई है?

—अनुवादक।

७—विद्या, विज्ञान, दर्शन-शास्त्र, बुद्धि और तर्क के विरुद्ध होकर अविद्या और मूर्खता का आश्रय लेना पड़ता है।

८—वह सच्चा शिष्टाचार, जो स्वावलम्बन के सिद्धान्त के अनुष्ठान से प्राप्त होता है, उसकी हत्या करनी पड़ती है।

९—पशु-पक्षियों में आत्मा को न मानकर उन निर्दोषियों के सिर पर क़साइयों और जल्लादों की तरह छुरी चलानी पड़ती है।

१०—सब से अधिक बुरी बात यह है कि पाप, बुराई, बेईमानी, और बदचलनी को तुच्छ समझकर, उसका आचरण करने के लिए मानव जाति को उत्साहित कर दिया जाता है।

अतः ऐसे विद्या और औचित्य के विरोधी मत के प्रवर्त्तक तथा उसके अनुयाई या यूं कहें कि पाप कर्म करने के लिए उभारने वाले गुरु और उनकी शिक्षा, संसार को बहुत अधिक हानि पहुँचा रहे हैं। ऐसे लोगों की शिक्षा से, जो कोई, जितना अधिक, और जितना शीघ्र घृणा करे, उतना ही अच्छा है।

हे परमात्मन् ! तू ऐसे लोगों के माया जाल में फंसे हुए भोले-भाले अज्ञानी चेलों को शीघ्र ही उन के जाल से निकाल। और सत्य-धर्म की न्याय पूर्ण तथा शान्तिदायक छाया में उन नौनिहालों को सब प्रकार की पुष्टि और तुष्टि प्रदान कर। तू ही सत्य का रक्षक है। तू ही सत्य का संरक्षक है।

ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

पुनर्जन्म प्रमाण का प्रथम भाग समाप्त।

ब्रह्मसमाज के एक पुराने

जानकार की सम्मति

—:०:—

पुनर्जन्म का सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन काल के हिन्दू, मिस्री और यूनानी भी इसे मानते थे। परन्तु इस समय के बड़े-बड़े मजहब इस विषय में विभिन्न मत रखते हैं। हिन्दू और बौद्ध इस को मानते हैं। ईसाई और मुसलमान नहीं मानते। तब भी संसार की जन संख्या का बड़ा भाग अब भी उस के पक्ष में है। उस के मानने वालों का यह विश्वास है कि आत्मा अमर है। और अपने एक शरीर को छोड़ने के पश्चात् अपने शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार भला या बुरा शरीर धारण करता है। और यही क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक कि आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। वर्तमान मजहबों में सर्वप्रथम ईसाई मजहब ने इसे त्यागा। और अपने दण्ड तथा पुरस्कार के लिये सदा-सदा तक रहने वाले दोजख़ तथा बहिश्त निर्मित किये। फिर इस्लाम ने भी इस विषय में ईसाई मजहब का ही अनुकरण किया। परन्तु नाश न होने वाले दोजख़ का यह विचार इतना भयंकर है कि संसार के सुसभ्य अधिवासी इस को स्वीकार ही नहीं कर सकते। अतः उन को भी एक या दूसरे रूप में पुनर्जन्मवाद का सिद्धान्त स्वीकारना ही होगा।

(नानक चरित्र पृष्ठ २२३–२४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित तथा प्रसारित साहित्य का

* सूची-पत्र *

क्र० सं० पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
१—वेदों का यथार्थ स्वरूप	श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड	६–५०
२—बलिदान जयन्ती स्मृतिग्रन्थ (आर्य शहीदों का जीवन चरित्र)	विभिन्न आर्य विद्वानों द्वारा संकलित लेख	४–५०
३—आर्य पथिक लेखराम	स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज	१–२५
४—बुद्ध एण्ड दयानन्द (अंग्रेज़ी)	पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय	२–००
५—उर्दू सत्यार्थ प्रकाश	(अनुवादक पं० चमूपति एम० ए०)	३–५०
६—सुर्ख आन्धी (अर्थात् कम्युनिज़म के ढोल की पोल) (हिन्दी तथा उर्दू संस्करण)	म० चिरंजी लाल प्रेम	०–५०
७—भागवत् खण्डनम्	ऋषि दयानन्द जी	०–५०
८—हिन्दी सत्यार्थ प्रकाश	"	२–१०
९—संस्कार विधि	"	१–२५
१०—वैदिक सत्संग पद्धति (नवीन संस्करण)		०–४०
११—ज्ञानदीप (अर्थात् सर्वोत्तम धर्मोपदेश)	पं० हरिदेव जी सिद्धांतभूषण	२–००
१२—आर्य समाज दर्शन	प्रिं० रामचन्द्र जी जावेद एम० ए०	२–००
१३—ईशोपनिषद्	पं० हरिशरण जी सिद्धांतालंकार	१–००
१४—अष्टोत्तरशतनाम मालिका	पं० विद्यासागर जी शास्त्री	४–००
१५—श्री कृष्ण जीवन चरित्र	पं० लेखराम जी (१०) सैंकड़ा)	०–१२
१६—स्वाधीनता और नारी	कु० सुशीलादेवी जी आर्या एम० ए० (१०) सैंकड़ा)	०–१२
१७—आर्यसमाज प्रवेश पत्र	(सैंकड़ा)	१–२५
१८—खरी बातों का खोटापन	स्वामी रामेश्वरानन्द जी (५) सैंकड़ा)	०–५
१९—आर्य समाज क्या मानता है ?	पं० मदन मोहन विद्यासागर (३०) हज़ार)	०–५
२०—वैदिक धर्म की विशेषताएं	पं० हरिदेव जी सि० भू० (१०) सैंकड़ा)	०–१२
२१—स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	प्रिं० रामचन्द्र जी जावेद द्वारा संकलित तथा सम्पादित	२–१०

प्रिं० रामचन्द्र जावेद एम० ए०

अधिष्ठाता चमूपति साहित्य प्रकाशन विभाग

गुरुदत्त भवन, जालन्धर

...जायसवाल व विजय जायसवाल यहां भैंस उतारने का विरोध करने लगे इसी पर दोनों पक्षों के बीच मारपीट शुरु हो गयी। व्यवसायियों ने घटना की नामजद रिपोर्ट ४लोगों के विरुद्ध थाने मेंदर्ज कराई है।

● नयीदिल्ली, २३नवंबर-वार्ता। मशहूर शास्त्रीय गायिका गंगूबाई हंगल को इस वर्ष के विमला देवी सम्मान के लिए चुना गया है।

...र्यटक आवास गृहों ...को देने का निर्णय

...इलाहाबाद में बोट क्लब स्थापित ...क्रूज बोट की स्थापना का प्रस्ताव

...की अध्यक्षता में इस बाबत बनी विधानसभा की उपसमिति के अनुमोदन के साथ ही योजना पर कार्य आरंभ हो जाएगा। उन्होंने बताया कि योजना में आवास गृहों को एक से पांच वर्ष की प्रबंध व्यवस्था और ३०व ९०वर्ष की लीज पर दिए जाने की व्यवस्था की गयी है। श्रीशर्मा ने बताया कि सरकार ने प्रदेश में पर्यटन विकास के लिए बुंदेलखंड को आधार बनाया है। बुंदेलखंड को इंद्र का प्रदेश की संज्ञा दी जा रही है।यहां के संपूर्ण पर्यटन स्थलों के बारे में पर्यटकों में विशेष आकर्षण पैदा करने के लिए सुनियोजित विकास योजनाओं पर कार्य आरंभ कराया जा रहा है।इसी क्रममें महोबा में वाटर स्पोर्ट्स को विकसि... करने का प्रारुप तैयार किया गया है।उन्होंने ... कि बनारस-इलाहबाद और लखनऊ में ... की स्थापना कर दी गयी है।सारनाथ मे... क्रूज बोट की स्थापना का प्रस्ताव... के लिए पर्यटकों के पैकेज ... डा० शर्मा ने बताया ... मूलभूत सुविधाओं ...

आगरा, २३नवंबर-वार्ता। शाहगंज थाना क्षेत्र के दौरेठा गांव में कल शाम जमीनी विवाद को लेकर दो पक्षों के बीच हुई गोलीबारी में प्रहलाद नामक एक व्यक्ति की मृत्यु हो गयी तथा तीन घायल हो गये।

गंगा घाटों पर गंदगी... वीडियोग्राफी होगी...

काशी, २३नवंबर। गंगाघाटों पर गंदगी फैलाने वालों के विरुद्ध व्यापक अभियान चलाने के लिए नगर निगम ने व्यापक कार्ययोजना तैयार की है। इसी क्रममें मुख्यनगर अधिकारी तीरथराज त्रिपाठी ने आज दशाश्वमेध से राजघाट तक गंगाघाटों का निरीक्षण किया। उनके साथ देव दीपावली समिति के पदाधिकारी व सभासद भी थे।

अनौपचारिक बातचीत के दौरान एम एन ए श्रीत्रिपाठी ने बताया कि घाटों पर गंदगी फैलाने वाले की फोटोग्राफी कराई जाएगी। जिससे उन्हें चिंहित कर उनके विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई की जा सके। इसके लिए वीडियोकैमरा खरीदा जाएगा। उनकी फोटो समाचार पत्रों में भी प्रकाशित कराई जाएगी। दशाश्वमेध से राजघाट तक निरीक्षण के दौरान उन्होंने राजघाट पर जमा ...टी साफ करने एवं विगत बीस वर्षों से मिट्टी ...रानीघाट की मिट्टी तत्काल साफ कराने ...अधीनस्थ अधिकारियों को दिया। अति...दि केशव की साफ सफाई रंग पोताई ...त्काल दस हजार रुपये देने की

...की रिपोर्ट

थी उस पर इस बार नेतृत्व ने अपेक्षाकृत ज्यादा ध्यान केंद्रित कर रखा है। लेकिन इनकी सहयोगी दल लोकजनशक्ति, समता, लोकदल, लोक और किमबपा जीत का दावा बताकर दबाव बना रही हैं कि इन सीटों में अधिक से अधिक उन्हें मिल जाएं। ...सूत्रों ने बताया कि लोकजनशक्ति और ...को तकरीबन वह सभी सीटें मिल सकती ...के विधायक हैं। लोकदल को कुछ उन ...दिया जा सकता है जहां पिछले चुनावों

...प्रदेश में फैजाबाद की बीकापुर, जहांगीराबाद, ... तथा धानापुर विधानसभा सीटों के लिए भी श्रीसिंह का लगातार दबाव बना हुआ है। समता पार्टी भी कुछ ऐसी सीटों को चाहती है, जहां भाजपा के विधायक हैं। इनमें मल्लावां विधानसभा सीट प्रमुख है, जहां से समता पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष राम आसरे वर्मा चुनाव लड़ने के इच्छुक हैं। बहरहाल भाजपा ऐसी सीटों को छोड़ने के पक्ष में नहीं दिखती जहां उसके मौजूदा विधायक हैं। भाजपा ज्यादा से ज्यादा सीटों पर लड़कर

...जैसे हास्य अभिनेताओं की बालीवुड में पूछ ही कम हो गयी है।गाजीपुर के सैदपुर में आयोजित एक खेल प्रतियोगिता में हिस्सा लेने आए श्रीअ.सरानी ने यूनीवार्ता से कहा कि हीरो के तौर पर अमिताभ बच्चन ने सिलसिला से हास्य परोसने का जो क्रम जारी किया वह अबतक थमने का नाम नहीं ले रहा है। उन्होंने कहा कि आज की पीढ़ी में गोविंदा इस सिलसिले को बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं। अ.सरानी ने कहा कि पहले फिल्मों में हास्य अभिनेताओं के लिए लग से व्यवस्था की जाती थी, मगर आज ऐसी बात नहीं है। उन्होंने कहाकि अब फिल्मों में हास्यअभिनेताओं का किरदार महज खानापूर्ति के लिए रह गया है।उन्होंने विश्वास जताया कि इस हाल में भी हास्य अभिनेता को दर्शकों का प्यार हमेशा की तरह मिलता रहेगा।

…तर्गत … के दीपक … बाद भी युवक … आज अपहरण … किशोर का कहना … का अपहरण किया

…ों की

…ाठी

…दा पानी बहाने वालों … प्रामाणिक दर्ज कराने … धिकारी डा० धीरेश्वर … मिट्टी साफ दिखाई … किया देव दीपावली … कराने की भी आदेश … कूड़ा करकट फेंकने … लिए नाव की व्यवस्था … क्षण के दौरान उनके … ध्यक्ष नारायण गुरु, … तोष शर्मा, घनश्याम … के पी त्रिपाठी, एस … री शामिल थे।

…बीच दिसम्बर के लिए स्थगित कर दी गयी।

इस बात की संभावना बहुत ही कमहै कि तालिबान में शामिल गैर अफगानी लड़ाके आत्मसमर्पण को राजी होंगे क्योंकि ऐसा करने पर उनपर आपराधिक मुकदमा चलाए जाने की संभावना है। लेकिन दूसरी ओर दोस्तम का दावा है कि तालिबान के अफगानी और गैर अफगानी दोनों ही लड़ाके आत्मसमर्पण कर देंगे। इस बीच अमरीका ने साफ कहा हैकि वह नहीं चाहता कि तालिबान में शामिल अरब, चेचेन और पाकिस्तानी लड़ाकों को बच निकलने का कोई

वाराणसी में गंगा घाटों का आज निरीक्षण करते हुये मुख्य नगर अधिकारी तीरथराज त्रिपाठी, साथ में अपर मुख्य नगर अधिकारी एस०के० श्रीवास्तव,निर्दल सभासद घनश्याम सेठ, संतोष शर्मा, देव दीपावली समिति के अध्यक्ष नारायण गुरु व वागीश दत्त। (छाया- चंदन रुपानी)

वाशिंगटन पोस्ट ने दी है। दैनिक के मुताबिक पीले रंग के कवर वाली छब्बीस पृष्ठों कीयह पुस्तिका अलकायदा संगठन और उसके समर्थकों के बारे में एक प्रामाणिक दस्तावेज लगती है। जिसमें काफिरों के खिलाफ जंग में तालिबान का साथ देने वाले कट्टरपंथी गुटों के नामों की एक पूरी सूची छापी गयी है। सूची में मिस्र के इस्लामिक जिहाद मूवमेंट द लीबियन जिहाद फाइटर्स मूवमेंट फिलीपींस का अबूसयाफ उग्रवादी गुट, अबु अल अंसार तथा जार्डन लेबनान, तुर्की और पाकिस्तान के जिहादी गुटों के नाम भी शामिल हैं। सूची में कश्मीर, इंडोनेशिया, सोमालिया, बर्मा, बोस्निया, उजबेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और ताजिकिस्तान के कुछ गुमनाम गुटों का भी जिक्र किया गया है।

चोरी के पुर्तगाली पासपोर्ट अलकायदा के पास

पुर्तगाल के कुछ चोरी हुए पासपोर्ट संभवतः सउदी आतंकवादी सरगना ओसामा बिन लादेन के अल कायदा संगठन के संदिग्ध उग्रवादियों के पास पहुंच गये हैं। यह जानकारी पुर्तगाल कीएक समाचार पत्रिका विसाओ ने दी है। पत्रिका में छपी खबरो के मुताबिक अंतरराष्ट्रीय जांचकर्ताओं को पता चला है कि पाकिस्तान में पुर्तगाल दूतावास से १९९७ में चोरी गये ये खाली पासपोर्ट अल कायदा के उग्रवादियो के पास मौजूद हैं। यह मामला उस समय प्रकाश में आया जब अमरीका पुर्तगाल समेत विश्व के २९ देशों के नागरिकों को बगैर वीसा के अमरीका में प्रवेश करने कीअनुमति देने की अपनी नीति की फिर से समीक्षा कर रहा है। विसाओ का कहना है कि चोरी गये इन पासपोर्ट में चार ऐसे हैं जो राजनयिकों के नाम जारी किए गये हैं। वर्ष १९९७ से १९९८ के बीच पुर्तगाल के सथानीय और विदेशी कार्यालयों से कुल ४८६९ पासपोर्ट चोरी हो चुके हैं।

रुपये का पैकेज अभी स्वीकृत नहीं हो सका है।खोराडीह के दौरे के दौरान पुलिस महानिदेशक केसाथ मीरजापुर के डीआईजी गुरुदर्शन सिंह, वाराणसी जोन के पुलिस महानिरीक्षक डा०विक्रम सिंह ,डीआईजी सूर्यकुमार शुक्ला, अतिरिक्त महानिदेशक (पीएसी) तिलक काक, जिलाधिकारी अमित मोहन पुलिस अधीक्षक अविनाश चंद्र आदि रहे। पुलिस अधिकारियों को विश्वास है कि नक्सली आसपास के ही जंगलों में छिपे हैं जिन्हें शीघ्र ही मयशस्त्रों के साथ गिरफ्तार कर लिया जाएगा।

मुख्यमंत्री ने घटना की जानकारी ली

हमारे मीरजापुर प्रतिनिधि के अनुसार नक्सलियों द्वारा पीएसी कैंप पर धावा बोलकर असलहे लूटने की दुःसाहसिक घटना ने प्रदेश सरकार को हिलाकर रख दिया है। मुख्यमंत्री ने आज दूरभाष पर घटना की जानकारी मीरजापुर के पुलिस उप महानिरीक्षक से प्राप्त की।

पीपल के पेड़ से लटकता युवक का शव मिला

रामनगर (वाराणसी), २३नवंबर। रामनगर थानान्तर्गत सिपहिया घाट स्थित पीपल की पेड़ से आजप्रातः काशी हिंदू विश्वविद्यालय केएक कर्मी अनिल कुमार मिश्र (४०) की लाश लटकती अवस्था में पाए जाने से लोगो में सनसनी फैल गयी। प्राप्त जानकारी के अनुसार मृतक प्राचीन रामनगर स्थित अपने घर के विवाद के चलते इसी मुहल्ला में एक किराए के मकान में रहता था। वह कलरात्रि से ही गायब था। मृतक की चप्पल पेड़ के चबूतरे पर पड़ी थी।वह विद्यालय यूनीफार्म का कोट पहने था।जीभ उसकी बाहर निकली हुई थी और काली हो गयी थी। घटना की सूचना चरवाहों ने जैसे ही दी मृतक के परिवार में कोहराम मच गया।

अयोध्या में मस्जिद निर्माण का विरोध

अयोध्या, २३नवंबर। अयोध्या में ६दिसंबर १९९२ को विवादित ढांचा गिराए जाने के समय कई मस्जिदों को भी क्षतिग्रस्त किया गया, जिसे कल अल्पसंख्यकों द्वारा पुनः निर्माण करवाए कराए जाने का बिहिप व बजरंग दल के लोगों ने जमकर विरोध किया। कल जब दुराही कुएं के निकट की मस्जिद का पुनः निर्माण शुरु हुआ तो बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने शाम ४बजे जमकर विरोध किया। एस पी सिटी द्वारा निर्माण कार्य यह कहकर रुकवा दिया गया कि जिलाधिकारी के आदेश के बिना कोई काम संभव…

विधानसभा चुनाव में भाजपा-सपा की प्रतिष्ठा दांव पर

…र्तों। उत्तर प्रदेश में … व समाजवादी भारतीय … प्रमुख विपक्षी दल … प्रतिष्ठा कासवाल। … नीतिक दलों के लिए … और चार सपा के लिए … इन दोनों में से जो भी … क्षेत्र में भारी खामियाजा … चुनाव को हलका…

प्रदेश कार्यकारिणी के सदस्यों को चुनावी मंथन केलिए चार और पांच दिसंबर को लखनऊ में बुलाया है। चुनावकी गंभीरता को देखते हुए भाजपा ने अपने सहयोगी दलों से सीटों के बंटवारे तथा चुनाव घोषणा पत्र जैसे प्रमुख चुनावी गणित पर सोच समझकर कोई फैसला करने के पक्ष मेंहैपूर्व प्रदेश अध्यक्ष कुशाभाऊ ठाकरे ने अपने हाल हीके लखनऊ दौरे में इसके साफ संकेत भी दिए। भाजपा अपने सहयोगी दलों के साथ हर हाल में बहुमत में आना चाहती है इसीलिए इन दलों को पूरी तरजीह देते हुए कईदौर

में भाजपा तीसरे या उससे नीचे स्थान पर रही थी। १९९६ में भाजपा ४१४ सीटों पर चुनाव लड़ी थी, जिसमें वह १७४सीटें जीती थी। १५७ पर दूसरे स्थान पर रही थी जबकि ८३ पर तीसरे या उससे नीचे खिसक गयी थी। उत्तरांचल बनने केबाद २२विधायक उसमें चले गये जिसमें भाजपा के १७विधायक हैं। चकराता और लक्सर विधानसभा क्षेत्र में वह तीसरे स्थान पर रही थी। इस प्रकार उत्तर प्रदेश की बची ४०३ सीटों में ८१ सीटें ऐसी थी, जहां भाजपा सीधी लड़ाई से बाहर थी। इनमें कुछ ऐसी सीटें भी हैं,

सबसे बड़ी पार्टी के रूप में अपने को दर्शाना चाहती है। उसकी कोशिश हैकि अन्य दलों से उसकी सीटें अधिक आए, जिससे सबसे बड़ी पार्टी के नाते सरकार बनाने का बुलावा उसी को आए। सूत्रों के मुताबिक सहयोगी दलों से सीटों के तालमेल की रणनीति तय हो चुकी है। प्रदेश अध्यक्ष कलराज मिश्र को बनी रणनीति के मुताबिक सहयोगी दलों से बात कर अंतिम रूप देने की जिम्मेदारी सौंप दी गयी है।

चेतगंज सर्राफा खुला

प्रदेश … को…

वाराणसी … सारनाथ

अमरीका को … करने के लिए

नयीदिल्ली, २३…